अप्रमाद-सूत्र : 1
सुत्तेसु यावी पडिबुद्धजीवी,
न वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अवलं शरीरं,
भारुंडपक्खी व चरप्पमत्ते।।

आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोये हुए संसारी मनुष्यों के बीच रहकर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।
काल निर्दयी है और शरीर दुर्बल, यह जानकर भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त-भाव से विचरना चाहिए।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है, मनुष्य जीवन है दुर्लभ, लेकिन हम आदमियों को उस दुर्लभता का बोध क्यों नहीं होता? श्रवण करने की कला क्या है? कलियुग, सतयुग मनोस्थितियों के नाम हैं? क्या बुद्धत्व को भी हम एक मनोस्थिति ही समझें?

जो मिला हुआ है, उसका बोध नहीं होता। जो नहीं मिला है, उसकी वासना होती है, इसलिए बोध होता है।

दांत आपका एक टूट जाये, तो ही पता चलता है कि था। फिर जीभ चौबीस घंटे वहीं-वहीं जाती है। दांत था तो कभी नहीं गयी थी; अब नहीं है, खाली जगह है तो जाती है।

जिसका अभाव हो जाता है, उसका हमें पता चलता है। जिसकी मौजूदगी होती है, उसका हमें पता नहीं चलता। मौजूदगी के हम आदी हो जाते हैं।

हृदय धड़कता है, पता नहीं चलता, श्वास चलती है, पता नहीं चलता। श्वास में कोई अड़चन आ जाये तो पता चलता है, हृदय रुग्ण हो जाये तो पता चलता है। हमें पता ही उस बात का चलता है जहां कोई वेदना, कोई दुख, कोई अभाव पैदा हो जाये। मनुष्यत्व का भी पता चलता है, हम आदमी थे, इसका भी पता चलता है जब आदमियत खो जाती है हमारी, मौत छीन लेती है हमसे। जब अवसर खो जाता है, तब हमें पता चलता है।

इसलिए मौत की पीड़ा वस्तुतः मौत की पीड़ा नहीं है, बल्कि जो अवसर खो गया, उसकी पीड़ा है। अगर हम मरे आदमी से पूछ सकें कि अब तेरी पीड़ा क्या है तो वह यह नहीं कहेगा कि मैं मर गया, यह मेरी पीड़ा है। वह कहेगा, जीवन मेरे पास था और यों ही खो गया, यह मेरी पीड़ा है।

हमें पता ही तब चलता है जीवन का, जब मौत आ जाती है। इस विरोधाभास को ठीक से समझ लें।

आप किसी को प्रेम करते हैं। उसका आपको पता ही नहीं चलता, जब तक कि वह खो न जाये। आपके पास हाथ है, उसका पता नहीं चलता, कल टूट जाये तो पता चलता है। जो मौजूद है, हम उसके प्रति विस्मृत हो जाते हैं। खो जाये, न हो, तो हमें याद आती है। यही कारण है कि हम आदमी की तरह पैदा होते हैं तो हमें पता नहीं चलता कि कितना बड़ा अवसर हमारे हाथ में है। मछलियों को, कहते हैं, सागर का पता नहीं चलता। मछली को सागर के बाहर डाल दें रेत पर, तड़फे, तब उसे पता चलता है। जहां वह थी वह सागर था, जीवन था; जहां अब वह है, वहां मौत है।

जिस मछली को सागर में पता चल जाये, वह संतत्व को उपलब्ध हो गयी कि सागर है। जिस आदमी को आदमियत खोये बिना, अवसर खोये बिना, पता चल जाये, उसके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। महावीर हैं, बुद्ध हैं, कृष्ण हैं—उनकी सारी चेष्टा यही है कि हमें पता चल जाये तभी, जबकि अवसर शेष है। तो शायद हम अवसर का उपयोग कर लें। तो शायद अवसर को हम स्वर्णिम बना लें। शायद अवसर हमारे जीवन को और वृहत्तर परम जीवन में ले जाने का मार्ग बन जाये। अगर पता भी उस दिन चला जब हाथ से सब छूट चुकता है तो उस पता चलने की कोई सार्थकता नहीं है, मगर यह मन का नियम है, मन को अभाव का पता चलता है।

गरीब आदमी को पता चलता है धन का, अमीर आदमी को धन का पता नहीं चलता। जो नहीं है हमारे पास वह दिखायी पड़ता है, जो है वह हम भूल जाते हैं।

इसलिए जो-जो आपको मिलता चला जाता है, आप भूलते चले जाते हैं और जो नहीं मिला होता, उस पर आंख अटकी रहती है। यह सामान्य मन का लक्षण है। इस लक्षण को बदल लेना साधना है। जो है, उसका पता चले तो बड़ी क्रांति घटित होती है। अगर जो नहीं है, उसका पता चले तो आपके जीवन में सिर्फ असंतोष के अतिरिक्त कुछ भी न होगा। जो है, उसका पता चले तो जीवन में परम तृप्ति छा जायेगी। जो नहीं है, उसका ही पता चले तो अकसर अवसर जब खो जायेगा तब आपको पता चलेगा। जो है, उसका पता चले तो जो अवसर अभी मौजूद है, उसका आपको पता चलेगा; और अवसर आने के पहले, अवसर आते ही बोध हो जाये, तो हम अवसर को जी लेते हैं, अन्यथा चूक जाते हैं।

इसलिए ध्यान, जो है, उसको देखने की कला है। और मन, जो नहीं है, उसकी वासना करने की विधि है।

श्रवण करने की कला क्या है? सुनने की कला क्या है? निश्चित ही कला है, और महावीर ने कहा है, धर्म-श्रवण, दुर्लभ चार चीजों में एक है। तो बहुत सोच कर कहा है। श्रवण की कला—सुनते तो हम सब हैं। कला की क्या बात है? हम तो पैदा ही होते हैं कान लिए हुए, सुनना हमें आता ही है।

नहीं, लेकिन हम सुनते नहीं हैं, सुनने के लिए कुछ अनिवार्य शर्तें हैं। पहली—जब आप सुन रहे हों तब आपके भीतर विचार न हों। अगर विचार की भीड़ भीतर है तो आप सुनेंगे वह वही नहीं होगा, जो कहा गया है। आपके विचार उसे बदल देंगे, रूपांतरित कर देंगे। उसकी शक्ल और हो जायेगी। विचार हट जाने चाहिए बीच से। मन खाली हो, शून्य हो और सुने, तभी जो कहा गया है, वह आप सुनेंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप उस पर विचार न करें। लेकिन विचार तो सुनने के बाद ही हो सकता है। सुनने के साथ ही विचार नहीं हो सकता। जो सुनने के साथ ही विचार कर रहा है वह विचार ही कर रहा है, सुन नहीं रहा है।

सुनते समय सुनें, सुन लें पूरा, समझ लें क्या कहा गया है, फिर खूब विचार कर लें। लेकिन विचार और सुनने को जो साथ में मिश्रित कर देता है, वह बहरा हो जाता है। वह फिर अपने ही विचारों की प्रतिध्वनि सुनता है। फिर वह नहीं सुनता जो कहा गया है, वही सुन लेता है, जो उसके विचार उसे सुनने देते हैं।

अपने को अलग कर देना सुनने की कला है। जब सुन रहे हैं, तब सिर्फ सुनें। और जब विचार रहे हैं, तो सिर्फ विचारें। एक क्रिया को एक समय में करना ही उस क्रिया को शुद्ध करने कि विधि है। लेकिन हम हजार काम एक साथ करते रहते हैं। अगर मैं आपसे कुछ कह रहा हूं तो आप उसे सुन भी रहे हैं, आप उस पर सोच भी रहे हैं, उस संबंध में आपने जो पहले सुना है, उसके साथ तुलना भी कर रहे हैं। अगर आपको नहीं जंच रहा है, तो विरोध भी कर रहे हैं; अगर जंच रहा है, तो प्रशंसा भी कर रहे हैं। यह सब साथ चल रहा है। इतनी पर्तें अगर साथ चल रही हैं तो आप सुनने से चूक जायेंगे। फिर आपको राइट लिसनिंग, सम्यक श्रवण की कला नहीं आती।

महावीर ने तो श्रवण की कला को इतना मूल्य दिया है कि अपने चार घाटों में, जिनसे व्यक्ति मोक्ष तक पहुंच सकता है, श्रावक को भी एक घाट कहा है। जो सुनना जानता है, उसे श्रावक कहा है। महावीर ने तो कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले तो भी उस पार पहुंच जायेगा। क्योंकि सत्य अगर भीतर चला जाये तो फिर आप उससे बच नहीं सकते। सत्य अगर भीतर चला जाये तो वह काम करेगा ही। अगर उससे बचना है तो उसे भीतर ही मत जाने देना, तो सुनने में ही बाधा डाल देना। उसी समय अड़चन खड़ी कर देना। एक बार सत्य की किरण भीतर पहुंच जाये तो वह काम करेगी, फिर आप कुछ कर न पायेंगे।

इसलिए महावीर ने कहा है कि अगर कोई ठीक से सुन भी ले, तो भी पार हो सकता है। हमको हैरानी लगेगी कि ठीक से सुनने से कोई कैसे पार हो सकता है!

जीसस ने भी कहा है कि सत्य मुक्त करता है। अगर जान लिया जाये, तो फिर आप वही

नहीं हो सकते जो आप उसके जानने के पहले थे। क्योंकि सत्य को जान लेना, सुन लेना भी, आपके भीतर एक नयी घटना बन जाती है। फिर सारा पर्सपैक्टिव, सारा परिप्रेच्य बदल जाता है। फिर उस सत्य का जुड़ गया आपसे संबंध,

अब आप देखेंगे और ढंग से, उठेंगे और ढंग से। अब आप कुछ भी करेंगे, वह सत्य आपके साथ होगा। अब उससे बचकर भागने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए जो कुशल हैं भागने में, बचने में, वे सुनते ही नहीं। हमने सुना है कि लोग अपने कान बंद कर लेते हैं, विपरीत बात सुनायी न पड़ जाये, प्रतिकूल बात सुनायी न पड़ जाये। हाथों से कान बंद करने वाले मूढ़ तो बहुत कम हैं, लेकिन हम ज्यादा कुशल हैं। हम भी कान बंद रखते हैं। हाथों से नहीं रखते। हम भीतर विचारों की पर्त कान के आस-पास इकट्ठी कर देते हैं। बाहर से कान बंद नहीं करते, भीतर से विचार से कान बंद कर देते हैं। तब कान पर कोई बात सुनायी पड़ती है, वह विचार की पर्त जांच-पड़ताल कर लेती है। वह हमारा सैंसर है। वहां से पार हम होने देते हैं तभी, जब लगे हमारे अनुकूल है।

और ध्यान रखना, सत्य आपके अनुकूल नहीं हो सकता, आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ता है। अगर आप सोचते हैं, सत्य आपके अनुकूल हो, तभी गृहीत होगा, तो आप सदा असत्य में जीयेंगे। आपको ही सत्य के अनुकूल होना पड़ेगा। इसलिए पहली बात तो ठीक से सुन लेना जरूरी है कि क्या कहा गया है। जरूरी नहीं कि उसे मान लें।

सुनने का अर्थ मानना नहीं है। इससे लोगों को बड़ी भ्रांति होती है। कई को ऐसा लगता है कि अगर हमने सोचा-विचारा न, तो इसका मतलब हुआ कि हम बिना ही सोचे-विचारे मान लें ! सुनने का अर्थ मानना नहीं है। सिर्फ सुन लें, अभी मानने न मानने की बात ही नहीं है। अभी तो ठीक तस्वीर सामने आ जायेगी कि क्या कहा गया है। फिर मानना न मानना पीछे कर लेना।

और एक बड़ेँ मजे की बात है, अगर सत्य ठीक से सुन लिया जाये तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है; अगर सत्य है, तो पीछे न मानना बहुत मुश्किल है। अगर सत्य नहीं है तो पीछे मानना बहुत मुश्किल है। पर एक दफा शुद्ध प्रतिबिम्ब बन जाना चाहिए, फिर मानने न मानने की बात कठिन नहीं है। साफ हो जायेगी। सत्य मना ही लेता है। सत्य कन्वर्शन है। फिर आप बच न सकेंगे। फिर तो आपको ही दिखायी पड़ने लगेगा कि मानने के सिवाय कोई उपाय नहीं है। फिर सोचें खूब, फिर कसौटी करें खूब। लेकिन सोचना और कसौटी भी निष्पक्ष होनी चाहिए।

हमारा सोचने का क्या अर्थ होता है?

हमारा सोचने का अर्थ होता है—पूर्वाग्रह, हमारी जो प्रेजुडिस होती है, जो हमने पहले से मान रखा है उससे अनुकूल खाये, उससे अनुकूल हो तो सत्य है।

एक आदमी हिंदू घर में पैदा हुआ है, एक आदमी मुसलमान घर में, एक आदमी जैन घर में, तो जो उसने पहले से मान रखा है, वही, उससे मेल खा जाये, इसका नाम सोचना नहीं है। यह तो सोचने से बचनाहै, एस्केपिंग फ्राम थिंकिंग। आपने जो मान रखा है, अगर वही सत्य है तब तो आपको खोज ही नहीं करनी चाहिए। आपने जो मान रखा है, अगर उसको ही पकड़कर कसौटी करनी है, तब तो आपकी सारी कसौटियां झूठी हो जायेंगी। जो आपने मान रखा है, उसको भी दूर रखिये; जो आपने सुना है उसको भी दूर रखिये। आप दोनों से अलग हो जाएं, किसी से अपने को जोड़िये मत। क्योंकि जिससे आप जोड़ रहे हैं, वहां पक्षपात हो जायेगा। दोनों को तराजू पर रखिये,आप दूर खड़े हो जाइए। आप निर्णायक रहिए, पक्षपाती नहीं।

हर बार, जब नयी बात सुनी जाये तो पुरानी को अपनी मानकर, नयी को दूसरे की मानकर अगर तौलिएगा, तो आप कभी निष्पक्ष चिंतन नहीं कर सकते। अपनी पुरानी को भी दूर रखिए, इस नयी को भी दूर रखिए, दोनों परायी हैं। सिर्फ फर्क इतना है कि एक बहुत पहले सुनी थी, एक अब सुनी है। समय भर का फासला है। कोई बात बीस साल पहले सुनी थी, कोई आज सुनी है। बीस साल पुरानी जो थी, वह आपकी नहीं हो गयी है, वह भी परायी है। उसे भी दूर रखिए, इसे भी दूर रखिए। और स्वयं को पार, अलग रखिए, और तब दोनों को सोचिए। इस सोचने में पक्ष मत बनाइए, निष्पक्ष दृष्टि से देखिए तो निर्णय बहुत आसान होगा। और बड़ा मजा यह है कि इतना निष्पक्ष जो चित्त हो उसे सत्य दिखायी पड़ने लगता है, सोचना नहीं पड़ता।

इसलिए हमने निरंतर इस मुल्क में कहा है कि सत्य सोच विचार से उपलब्ध नहीं होता, दर्शन से उपलब्ध होता

है। यह निष्पक्ष चित्त दर्शन की स्थिति है, देखने में आप कुशल हो गये। अब आपको दिखायी पड़ेगा, कि क्या है सत्य और क्या है असत्य। अब आपकी आंख खुल गयी। यह आंख देख लेगी कि क्या है सत्य, क्या है असत्य। लेकिन अगर पक्षपात तय है, आप हिंदू हैं, मुसलमान हैं, जैन हैं। बंधे हैं अपने पक्षपात से, तो फिर आप कुछ भी न देख पायेंगे। वह पक्षपात आपकी आंख को बंद रखेगा।

जो पक्षपात से देखता है, वह अंधा है। जो निष्पक्ष होकर देखता है, वह आंखवाला है। सुनें, फिर आंखवाले का व्यवहार करें।

कलियुग, सतयुग मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है। स्वर्ग-नरक मनोस्थितियां हैं, बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, या जिनत्व मनोस्थिति नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

हमारे भीतर तीन तल हैं। एक हमारे शरीर का तल है। सुविधाएं असुविधाएं, कष्ट-अकष्ट शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए अगर आपका आपरेशन करना है तो आपको एक इंजेक्शन लगा देते हैं। वह अंग शून्य हो जाता है। फिर आपरेशन हो सकता है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती है। पैर कट रहा है, आपको कोई तकलीफ नहीं होती। क्योंकि पैर कट रहा है, इसकी खबर मन को होनी चाहिए। जब खबर होगी, तभी तकलीफ होगी।

मन की तकलीफ नहीं है, यह तकलीफ पैर की है। तो पैर और मन के बीच में जिनसे जोड़ है, जिन स्नायुओं से, उनको बेहोश कर दिया तो आप तक तकलीफ पहुंचती नहीं। तकलीफ पहुंचनी चाहिए तो ही!

कष्ट, असुविधाएं शरीर की घटनाएं हैं। इसलिए बड़े मजे की बात है, आपके पैर में तकलीफ हो रही है, इंजेक्शन लगा दिया जाये, आपको पता नहीं चलता। आप मजे से लेटे गप-शप करते रहते हैं। इससे उल्टा भी हो सकता है—पैर में तकलीफ नहीं हो रही, और आपके स्नायुओं को कंपित कर दिया जाये, जिनसे तकलीफ की खबर मिलती, तो आपको तकलीफ होगी। आप छाती पीटकर चिल्लाएंगे कि मैं मरा जा रहा हूं; और कहीं कोई तकलीफ नहीं हो रही।

तकलीफ से आपको जानने से रोका जा सकता है। तकलीफ की झूठी खबर मन को दी जा सकती है। मन के पास कोई उपाय नहीं है जांचने का कि सही क्या है, गलत क्या है। शरीर जो खबर दे देता है वह मन मान लेता है। ये शरीर की स्थितियां हैं, आपको भूख लगी है, प्यास लगी है, ये सब शरीर की स्थितियां हैं। इसके पीछे मन की स्थितियां हैं। आपको सुख हो रहा है, आपको दुख हो रहा है, ये मन की स्थितियां हैं।

देखते हैं कि मित्र चला आ रहा है, चित्त प्रसन्न हो जाता है। सुखी हो जाता है। लेकिन पास आकर पता चलता है कि धोखा हो गया, मित्र नहीं है, कोई और है, सुख तिरोहित हो गया। यह मन की स्थिति है, इसका मित्र से कोई संबंध नहीं था। क्योंकि मित्र तो वहां था ही नहीं।

रात निकले हैं, और दिखता है कि अंधेरे में कोई खड़ा है, छाती धड़कने लगी, भय हो गया। पास जाते हैं, देखते हैं, कोई भी नहीं है, लकड़ी का ठूंठ है, वृक्ष कटा हुआ है, निश्चिंत हो गये। छाती की धड़कन ठीक हो गयी। फिर गुनगुनाने लगे गीत और चलने लगे। यह मन की स्थिति है।

मन, सुख और दुख भोगता है। मन में सतयुग होता है, कलियुग होता है। मन में स्वर्ग होते हैं, नरक होते हैं। शरीर के भी जो पार उठ जाता है, मन के भी जो पार उठ जाता है। उस घड़ी को हम कहते हैं बुद्धत्व, जिनत्व। उस घड़ी को हमने कहा है, कृष्ण चेतना; उस घड़ी को हमने कहा है, क्राइस्ट हो जाना।

जीसस का नाम तो जीसस है, क्राइस्ट नाम नहीं है। क्राइस्ट चित्त के पार होने का नाम है। बुद्ध का नाम तो गौतम सिद्धार्थ है, बुद्ध उनका नाम नहीं है। बुद्धत्व, उनकी चेतना का मन के पार चले जाना है। महावीर का नाम तो वर्धमान है, जिन उनका नाम नहीं है। जिन का अर्थ है, मन के पार चले जाना।

क्राइस्ट के नाम में बड़ा मजा है। क्राइस्ट का नाम—जो इतिहास की गहरी खोज करते हैं, वे कहते हैं, क्राइस्ट कृष्ण का अपभ्रंश है। जीसस उनका नाम है, जीसस दी कृष्ण, जीसस जो कृष्ण हो गया। कृष्ण का रूप है क्राइस्ट। बंगाली में अब भी कृष्ण को कहते हैं, क्रिस्टो। बंगाली रूप है, क्रिस्टो। अगर कृष्ण का बंगाली रूप क्रिस्टो हो सकता है,

तो हिब्रू या अरबी में क्राइस्ट हो सकता है, कोई अड़चन नहीं है।

यह जो, व्यक्ति जहां शरीर और मन, दोनों के पार हट जाता है, उन अवस्थाओं के नाम हैं। बुद्धत्व मनोस्थिति नहीं है, स्टेट आफ माइंड नहीं है। बुद्धत्व है स्टेट आफ नो माइंड , अ-मन की स्थिति है, जहां मन नहीं है। बुद्ध के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको बुद्ध कहते हैं। महावीर के पास कोई मन नहीं है, इसलिए हम उनको जिन कहते हैं।

मन का क्या अर्थ होता है? मन का अर्थ होता है—विचारों का संग्रह, कर्मों का संग्रह, संस्कारों का संग्रह, अनुभवों का संग्रह। मन का अर्थ होता है—पास्ट, अतीत, जो बीत गया है उसका संग्रह। मन है जोड़ अतीत अनुभव का। जो हमने जाना, जीया, अनुभव किया उन सबका जोड़ हमारा मन है। मन हमारा संग्रह है समस्त अनुभवों का।

हमारा मन बहुत बड़ा है। हम जानते नहीं। आप तो अपना मन उतना ही समझते हैं, जितना आप जानते हैं, वह तो कुछ भी नहीं है। उसके नीचे पर्त-पर्त गहरा मन है। फ्रायड ने खोज की है कि हमारा चेतन मन, उसके नीचे गहरा अचेतन मन है, अन्कान्शस है। फिर जुंग ने और खोज की कि उसके नीचे हमारा कलेक्टिव अन्कान्शस, सामूहिक अचेतन मन है। लेकिन ये खोजें अभी प्रारम्भ हैं। बुद्ध और महावीर ने जो खोज की है, अभी उस अतल में उतरने की मनोविज्ञान की सामर्थ्य नहीं है। बुद्ध और महावीर तो कहते हैं, कि यह जो हमारा मन है, इसके नीचे बड़ी पर्तें हैं, आपके सारे जन्मों की, जो पशुओं में हुए हैं, उनकी पर्तें हैं। जो पौधों में हुए उनकी पर्तें हैं।

अगर आप कभी एक पत्थर थे, तो उस पत्थर का अनुभव भी आपके मन की गहरी पर्त में दबा हुआ पड़ा है। कभी आप पौधे थे, तो उस पौधे का अनुभव और स्मृतियां भी आपके मन के पर्त में दबी पड़ी हैं। आप कभी पशु थे, वह भी दबा हुआ पड़ा है। इसलिए कई बार ऐसा होता है कि आपकी उन पर्तों में से कोई आवाज आ जाती है तो आप आदमी नहीं रह जाते। जब आप क्रोध में होते हैं तो आप आदमी नहीं होते। असल में क्रोध के क्षण में आप तत्काल अपने पशु मन से जुड़ जाते हैं और पशु मन प्रगट होने लगता है।

इसलिए अकसर क्रोध में आप कुछ कर लेते हैं और पीछे कहते हैं, मेरे बावजूद, इन्सपाइट आफ मी—मैं तो नहीं करना चाहता था, फिर भी हो गया। फिर किसने किया, आप नहीं करना चाहते थे तो! कभी आपने अपनी क्रोध की तस्वीर देखी है? कभी आईने के सामने खड़े होकर क्रोध करना, तब आप पायेंगे, यह चेहरा आपका नहीं है। ये आंखें आपकी नहीं हैं। यह कोई और आपके भीतर आ गया। वह कौन है? यह आपका ही कोई पशु-संस्मरण है, कोई स्मृति है, कोई संस्कार; जब आप पशु थे, वह आपके भीतर काम कर रहा है। उसने आपको पकड़ लिया। जब आप अपने को ढीला छोड़ते हैं, तब आपके नीचे का मन आपको पकड़ लेता है।

कई बार कई आदमियों की आंखों में देखकर आपको लगेगा कि वह पथरा गयी हैं। लोग कहते हैं, उसकी आंखें पथरा गयी हैं। जब हम कहते हैं, किसी की आंखें पत्थर हो गयीं, तो उसका क्या मतलब होता है? उसका मतलब है कि इस व्यक्ति के पत्थर जीवन के अनुभव इसकी आंखों को पकड़ रहे हैं आज भी। इसलिए इसकी आंखों में कोई संवेदना नहीं मालूम होती।

अनेक लोग बिलकुल मुर्दा मालूम पड़ते हैं। उनका शरीर लगता है, जैसे लाश है। वे चलते हैं तो ऐसा जैसे कि ढो रहे हैं अपने को। क्या हो गया है इनको?

मन की बहुत पर्तें हैं। इस पर्त-पर्त मन का जो लम्बा इतिहास है, वह अतीत है। रोज हम इस मन में जोड़ दिये चले जाते हैं। जो भी हम अनुभव करते हैं, वह उसमें जुड़ जाता है। मैं कुछ बोल रहा हूं, यह आपके मन में जुड़ जायेगा। आपका मन रोज बढ़ रहा है, बड़ा हो रहा है, फैलता जा रहा है।

बुद्धत्व, जिनत्व, इस मन के अतीत के पार उठने की घटना है। जिस दिन कोई व्यक्ति अपने अतीत का त्याग कर देता है, अपने सारे मनों को छोड़ देता है, और अपनी चेतना को मन के पार खींच लेता है—और कहता है, अब मैं न शरीर हूं, न अब मैं मन हूं, अब मैं केवल जाननेवाला हूं, जो मन को भी जानता है—वह हूं—अब मैं आब्जेक्ट नहीं हूं, जाने-जानी वाली चीज नहीं हूं—ज्ञाता हूं, चिन्मय हूं, चैतन्य हूं।

कहने से नहीं—मन यह भी कह सकता है, यही बड़ा मजा है। मन यह भी कह सकता है कि मैं चैतन्य हूं, आत्मा

हूं, परमात्मा हूं। लेकिन अगर यह मन कह रहा है, अगर यह आप सुनी हुई बात कह रहे हैं, तो इसका आत्मा से कोई संबंध नहीं है। यह आपका अनुभव बन जाये और आप मन के पार अपने को पहचान लें कि यह मैं मन से अलग हूं, तब बुद्धत्व है।

बुद्ध से कोई पूछता है। बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। एक ज्योतिषी बड़ी मुश्किल में पड़ गया है। उसने बुद्ध के पैर देख लिए रेत पर बने हुए। वह काशी से लौट ही रहा था अपने पाण्डित्य की डिग्री लेकर। वह बड़ा ज्योतिषी था। उसने पोथे पण्डित, अपनी सारी पोथियां लेकर चला आ रहा था। उसने देखे बुद्ध के चरण, गीली रेत पर, गीली मिट्टी पर पैर के चिह्न थे। वह चकित हो गया। यह आदमी सम्राट होना चाहिए ज्योतिष के हिसाब से। पैर के चिह्न सम्राट के चिह्न हैं। लेकिन कौन सम्राट, नंगे पैर इस साधारण से गरीब गांव की रेत में चलने आयेगा!

वह बड़ी मुश्किल में पड़ गया। अभी लौटा ही है काशी से। उसने कहा कि अगर इस साधारण से गांव-देहात में सम्राट नंगे पैर रेत में चलते हों, सम्राट मिलते हों, तो पोथी वगैरह यहीं, इसी नदी में डुबाकर हाथ जोड़ लेना चाहिए। कोई मतलब नहीं है। इस आदमी को खोजना पड़ेगा।

वह खोज करके पहुंचा, तो बुद्ध एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं। बड़ी मुश्किल में पड़ गया ज्योतिषी। जिसको सम्राट होना चाहिए, वह भिक्षा पात्र लिए बैठा है ! अगर यह आदमी सही है, तो ज्योोतिष गलत है। अगर ज्योतिष सही है तो इस आदमी को यहां होना ही नहीं चाहिए इस वृक्ष के नीचे।

उसने बुद्ध से जाकर पूछा कि कृपा करें, मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। ये पैर के लक्षण सम्राट के हैं, चक्रवत□ सम्राट के । और आप यहां भिखारी होकर बैठे हुए हैं। क्या करूं, पोथियों को डुबा दूं पानी में?

बुद्ध ने कहा, पोथियों को डुबाने की जरूरत नहीं, क्योंकि मेरे जैसा आदमी दुबारा तुम्हें जल्दी नहीं मिलेगा। होना चाहिए था चक्रवत□ सम्राट ही। ज्योतिष तुम्हारा ठीक ही कहता है। लेकिन एक और जगत है अध्यात्म का, जो ज्योतिष के पार चला जाता है। पर तुम्हें ऐसा बार-बार नहीं होगा, तुम बहुत चिंता में मत पड़ो। ऐसा जल्दी फिर दुबारा नहीं होगा। चक्रवत□ सम्राट ही होने को पैदा हुआ था, लेकिन उससे और ज्यादा होने का द्वार खुल गया। तो भिखारी मैं नहीं हूं, सम्राट भी मैं नहीं हूं।

तब आश्वस्त हुआ ज्योतिषी। उसने गौर से—चिंता छोड़ी—बुद्ध के चेहरे को देखा। वहां जो आभा थी, वहां जो गरिमा थी, वहां जो प्रकाश की किरणें फूट रही थीं उसने पूछा, क्या आप देवता हैं? मुझसे भूल हो गयी, मुझे क्षमा कर दें।

बुद्ध ने कहा, मैं देवता भी नहीं हूं।

तो ज्योतिषी पूछता जाता है कि आप यह हैं, आप यह हैं, आप यह हैं। बुद्ध कहते जाते हैं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं, मैं यह भी नहीं। तब ज्योतिषी पूछता है, फिर आप हैं क्या? न आप पशु हैं, न आप पक्षी हैं, न आप पौधा हैं, न आप मनुष्य हैं, न आप देवता हैं, तो आप हैं क्या?

बुद्ध कहते हैं, मैं बुद्ध हूं।

तो वह ज्योतिषी पूछता है, बुद्ध होने का क्या अर्थ? तो बुद्ध कहते हैं, जो भी परिधियां हो सकती थीं आदमी की, देवता की, पशु की, वे सब मन के खेल थे। मैं उनके पार हूं। मैंने उसे पा लिया है जो उस मन के भीतर छिपा था। अब मैं मन नहीं हूं।

पशु भी मन के कारण पशु है। और आदमी भी मन के कारण मनुष्य है। पौधा भी मन के कारण पौधा है।

आप जो भी हैं, अपने मन के कारण हैं। जिस दिन आप मन को छोड़ देंगे उस दिन आप वह हो जायेंगे जो आप अकारण हैं। वह अकारण होना ही हमारा ब्रह्मत्व है, वह अकारण होना ही हमारा परमात्म है।

कारण से हम संसार में है, अकारण से हम परमात्मा में हो जाते हैं। कारण से हमारी देह निर्मित होती है, मन निर्मित होता है। अकारण हमारा अस्तित्व है। वह है, उसका कोई कारण नहीं है।

बुद्धत्व अवस्था नहीं है, अवस्थाओं के पार हो जाना है।

अब हम सूत्र लें।

'आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोहनिद्रा में सोये हुए संसारी मनुष्यों के बीच रहकर भी सभी तरह से जागरूक रहना चाहिए और किसी का विश्वास नहीं करना चाहिए।'

'काल निर्दयी है और शरीर दुर्बल। यह जानकर भारंड पक्षी की भांति अप्रमत्त भाव से विचरना चाहिए।'

बहुत सी बातें समझने की हैं।

महावीर अकेला पंडित नहीं कहते, आशुप्रज्ञ पंडित। तो पहले तो इस बात को हम समझ लें।

पंडित का अर्थ होता है, जानने वाला, जानकारी वाला, जिसके पास सूचनाओं का बहुत संग्रह है, लनच्ड। शास्त्र का जिसे पता है, सिद्धांत का जिसे पता है, प्राणियों का जिसे बोध है, तर्क में जो निष्णात है, ऐसा व्यक्ति पंडित है। जानकारियां जिसके पास है। आशुप्रज्ञ पंडित का अर्थ है—जानकारियां ही जिसके पास नहीं हैं, ज्ञान भी जिसके पास हैं। आशुप्रज्ञ शब्द का अर्थ होता है, ऐसे प्रश्न का उत्तर भी जो दे सकेगा, जिस प्रश्न के उत्तर की कोई जानकारी उसके पास नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

हम उस व्यक्ति को आशु कवि कहते हैं जो कविता बनाकर नहीं आया है; जिसकी कविता तत्क्षण बनेगी। जो कविता पहले बनायेगा नहीं, फिर गायेगा नहीं; जो गायेगा और गाने में ही कविता निर्मित होगी। उसको कहते हैं, आशु कवि। उसका गाना और बनाना साथ-साथ है। वह पहले बनाता और फिर गाता, ऐसा नहीं। वह गाता है, और कविता बनती चली जाती है।

आशु कवि का अर्थ है, कविता उसके लिए कोई रचना नहीं है, उसका स्वभाव है। वह बोलेगा, तो कविता है। उसके बोलने में ही काव्य होगा। काव्य को उसे बाहर से लाकर आरोपित नहीं करना होता। वह उससे वैसे ही निकलता है, जैसे वृक्षों में पत्ते निकलते हैं। जैसे झरना बहता है वैसा उसकी कविता बहती है, निष्प्रयोजन है, निष्चेष्ठित है। उसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। जितना छोटा कवि हो उतना ज्यादा प्रयास करना पड़ता है। जितना बड़ा कवि हो उतना कम प्रयास करना पड़ता है। आशु कवि हो तो प्रयास होता ही नहीं, कविता बहती है। तब कविता एक निर्माण नहीं है, कोई आयोजना, कोई व्यवस्था नहीं है। तब कविता वैसे ही है जैसे श्वास का चलना है। ऐसे व्यक्ति को हम कहते हैं, आशु कवि। आशुप्रज्ञ उसे कहते हैं, जिसका ज्ञान स्मृति नहीं है। आप उससे पूछते हैं।

आप किसी से कुछ पूछते हैं तो दो तरह के उत्तर सम्भव हैं। एक सवाल आप मुझसे पूछें तो दो तरह के उत्तर सम्भव हैं। एक—आप सवाल पूछते हैं, मैं तत्काल अपनी स्मृति के संग्रह में जाऊं और उत्तर खोज लाऊं। आप मुझसे कुछ पूछें, मैं तत्काल खोजूं अपने अतीत में, अपने मस्तिष्क में, अपनी स्मृति में, अपने कोश में, अपने संग्रह में उत्तर—उत्तर खींचकर स्मृति से ले आऊं, उत्तर दे दूं। यह एक पंडित का उत्तर है।

आप मुझसे प्रश्न पूछें, मैं अपने भीतर चला जाऊं, स्मृति में नहीं। आप मुझसे उत्तर पूछें, मैं उत्तर के सामने अपनी चेतना को खड़ा कर दूं, स्मृति को नहीं। आप उत्तर पूछें, मैं दर्पण की तरह आपके उत्तर के सामने खड़ा हो जाऊं, और मेरी यह चेतना प्रतिध्वनि दे, आपके प्रश्न का उत्तर दे। यह उत्तर स्मृति से न आये, इस क्षण की मेरी चेतना से आये, तो आशुप्रज्ञ। आशुप्रज्ञ का अर्थ है, अभी जिसकी चेतना से उत्तर आयेगा, ताजा, सद्यःस्नात, अभी-अभी नहाया हुआ, बासा नहीं।

हमारे सब उत्तर बासे होते हैं। बासे उत्तर में समय लगता है, पता चले या न चले। आशुप्रज्ञ में समय नहीं लगता।

आपसे कोई प्रश्न पूछे, समय लगता है। अगर ऐसा प्रश्न पूछे कि आपका नाम क्या है तो आपको लगता है, कोई समय नहीं लगता। कह देते हैं, राम। लेकिन इसमें भी समय लगता है। असल में आदत हो गयी है। आपको पता है कि आपका नाम राम है, इसलिए समय लगता मालूम नहीं पड़ता, लेकिन इसमें भी समय जाता है। लेकिन कोई आपसे पूछे कि आपके पड़ोसी का नाम क्या है? तो आप कहते हैं, जबान पर रखा है, लेकिन याद नहीं आ रहा है।

इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है, स्मृति में है, लेकिन हम स्मृति तक पहुंच नहीं पा रहे, बीच में कुछ दूसरी चीजें अड़ गयी हैं, कुछ दूसरी स्मृतियां अड़ गयी हैं; इसलिए हम ठीक पहुंच नहीं पा रहे। मालूम भी है, लेकिन

पकड़ नहीं पा रहे स्मृति में।

आपको जो याद है, उसको आप तत्काल उत्तर दे देते हैं। समय बीत जाता है तो भूल जाता है, फिर आप तत्काल उत्तर नहीं दे पाते। लेकिन अगर आपको थोड़ा समय मिले, सुविधा मिले, तो आप खोज ले सकते हैं उत्तर।

स्मृति से आया हुआ उत्तर पाण्डित्य का उत्तर है।

आपसे किसी ने पूछा, ईश्वर है? तो आप जो भी उत्तर देंगे वह पाण्डित्य का हो जायेगा। लेकिन कोई महावीर से पूछे, तो वह उत्तर पाण्डित्य का नहीं होगा, वह महावीर के जानने से निकलेगा। वह महावीर की जानकारी से नहीं निकलेगा—जानने से निकलेगा। मेमोरी से नहीं, कांशसनेस से, चैतन्य से निकलेगा।

महावीर कोई बंधा हुआ उत्तर तैयार नहीं रखते हैं कि आप पूछेंगे, वह दे देंगे। उनके पास रेडीमेड कुछ भी नहीं है। पंडित के पास सब रेडीमेड है। आप पूछेंगे, वह वही उत्तर देगा जो तैयार है। इसलिए एक बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। महावीर का आज का उत्तर जरूरी नहीं कि कल भी हो, परसों भी हो। पंडित का आज भी वही होगा, कल भी वही होगा, परसों भी वही होगा। क्योंकि पंडित के पास वस्तुतः कोई उत्तर नहीं है, केवल एक जानकारी है। महावीर का उत्तर रोज बदल जायेगा, रोज बदल सकता है, प्रतिपल बदल सकता है। क्योंकि वह कोई जानकारी नहीं है।

महावीर की चेतना जो प्रतिध्वनि करेगी, इस प्रतिध्वनि में अंतर पड़ेगा, क्योंकि पूछनेवाला रोज बदल जायेगा। और पूछनेवाले पर निर्भर करेगा। इसे ऐसा समझें—एक फोटोग्राफ है , तो फोटोग्राफ आज भी वही शक्ल बतायेगा, कल भी वही शक्ल बतायेगा, परसों भी वही शक्ल बतायेगा। किसी को दे दें देखने के लिए, इससे फर्क नहीं पड़ेगा। एक दर्पण है, दर्पण वही शक्ल नहीं बतायेगा। जो देखेगा, उसकी ही शक्ल बतायेगा। रोज बदल जायेगी शक्ल।

पांडित्य फोटोग्राफ है। सब पक्का बंधा हुआ है। हम उसी आदमी को बड़ा पंडित कहते हैं जिसका फोटोग्राफ बिलकुल साफ है, एक-एक रेखा-रेखा साफ दिखायी पड़ती हो।

महावीर और बुद्ध जैसे लोग तो दर्पण की भांति हैं। आपकी शक्ल दिखायी पड़ेगी। इसलिए जब प्रश्न पूछनेवाला बदल जायेगा तो उत्तर बदल जायेगा । पंडित का उत्तर कभी न बदलेगा। आप सोते से उठाकर पूछ लो, कुछ भी करो, उसका उत्तर नहीं बदलेगा। उसका उत्तर वही रहेगा।

इससे एक बड़ी कठिनाई पैदा होती है। महावीर और बुद्ध के वचनों में बड़ी असंगतियां दिखायी पड़ती हैं, दिखायी पड़ेंगी। पंडित ही संगत हो सकता है। आशुप्रज्ञ संगत नहीं हो सकता। क्योंकि प्रतिपल परिस्थिति बदल जाती है, पूछनेवाला बदल जाता है, संदर्भ बदल जाता है, उत्तर बदल जाता है, दर्पण का प्रतिबिम्ब बदल जाता है।

आप पर निर्भर करेगा कि महावीर का उत्तर क्या होगा। पूछनेवाले पर निर्भर करेगा कि उत्तर क्या होगा। इसलिए महावीर कहते हैं, आशुप्रज्ञ पण्डित, जिसकी प्रज्ञा प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को। प्रज्ञा, जिसका ज्ञान, प्रतिपल तैयार है उत्तर देने को।

'आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को मोह-निद्रा में सोये हुए संसारी मनुष्यों के बीच रहकर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए।'

महावीर कहते हैं कि जिसको भी ऐसी प्रज्ञा में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में थिर रहना है, ऐसे ज्ञान में गति करते जाना है , उसे संसारी सोये हुए मनुष्यों के बीच रहकर भी सब तरह से जागरूक रहना चाहिए। रहना तो पड़ेगा ही सोये हुए लोगों के बीच। क्योंकि वे ही हैं, और तो कोई है भी नहीं। भागने से कोई सार भी नहीं है। कहीं भी भाग जाओ, सोये हुए लोगों के बीच ही रहना पड़ेगा। यह जरा समझ लेने जैसा है।

अकसर लोग सोचते हैं कि शहर छोड़कर गांव चला जाऊं। गांव में भी सोये हुए लोग ही हैं। कोई सोचता है, गांव छोड़कर जंगल चला जाये। लेकिन आपको कभी खयाल न आया होगा कि जंगल के पौधे मनुष्य से ज्यादा सोये हुए हैं, इसलिए तो पौधे हैं। और जंगल के पशु-पक्षी मनुष्य से ज्यादा सोये हुए हैं, इसलिए तो पशु-पक्षी हैं। ये मनुष्य भी कभी पशु-पक्षी थे और पौधे थे। ये थोड़े-थोड़े जागकर मनुष्य तक आ गए हैं।

अगर एक आदमी मनुष्यों को छोड़कर जंगल जा रहा है तो वह और भी गहन, सोयी हुई चेतनाओं के बीच जा रहा

है। वहां उसे शांति मालूम पड़ सकती है। उसका कुल कारण इतना है कि वह इन सोये हुए प्राणियों की भाषा नहीं समझ रहा है।

लेकिन सारा जंगल सोया हुआ है। ये सोये हुए वृक्ष, सोये हुए मनुष्य ही हैं। जो कभी मनुष्य हो जायेंगे। ये जागे हुए मनुष्य जो दिखायी पड़ रहे हैं, ये थोड़े से आगे बढ़ गये वृक्ष ही हैं जो कभी वृक्ष थे। पीछे लौटने में चूंकि भाषा का पता नहीं चलता, इसलिए आदमी सोचता है, जंगल में ठीक रहेगा। न कोई रहेगा आदमी, न कोई होगा उपद्रव। उपद्रव न होने का कुल कारण इतना है कि आदमी की भाषा जल्दी चोट करती है, और ज्यादा होश रखना पड़ता है, नहीं तो चोट से बचा नहीं जा सकता। आदमी गाली देगा तो क्रोध जल्दी आ जायेगा। पत्थर की चोट पैर में लगेगी तो उतनी जल्दी क्रोध नहीं आयेगा क्योंकि हम सोचते हैं, पत्थर है। छोटे बच्चों को आ जाता है। क्योंकि अभी उनको पता नहीं है कि पत्थर और आदमी में फर्क करना है। वह पत्थर को भी गाली देंगे, डंडा उठाकर पत्थर को भी मारेंगे। कभी-कभी आप भी बचकाने होते हैं, तब वैसा कर लेते हैं। कलम ठीक से नहीं चलती तो गाली देकर फर्श पर पटक देते हैं।

लेकिन चाहे कहीं भी चले जाओ, महावीर कहते हैं, संसार में तो रहना ही पड़ेगा। संसार का मतलब ही है, सोयी हुई चेतनाओं की भीड़। यह भीड़ चाहे बदल लो, चाहे वृक्षों की हो, चाहे पशुओं की हो, चाहे मनुष्यों की हो, यह भीड़ तो मौजूद है। यह स्थिति है, इससे बचा नहीं जा सकता।

संसार अनिवार्य है, उससे तब तक बचा नहीं जा सकता, जब तक हम पूरी तरह जाग न जायें। तो आशुप्रज्ञ पंडित को भी, जो इस जागने की चेष्टा में सतत संलग्न है, सोये हुए लोगों के बीच रहना पड़ेगा। तो उसे सदा जागरूक रहना चाहिए।

क्यों?

क्योंकि नींद भी संक्रामक है, इनफैक्शस है। यहां इतने लोग बैठे हैं, हम सब संक्रामक रूप से जीते हैं। अभी एक आदमी खांस दे, तभी पता चलेगा, दस बीस लोग खांसने लगेंगे। क्या हो गया? अभी तक ये चुपचाप बैठे थे, इनके गले को क्या हो गया? अभी तक कोई गड़बड़ न थी। एक आदमी ने खांसना शुरू किया, दस बीस लोग खांसना शुरू कर देंगे। संक्रामक है। हम अनुकरण से जीते हैं। एक आदमी पेशाब करने चला जाये तो कई लोगों को खयाल हो जायेगा कि पेशाब करने जाना है। संक्रामक है। हम एक दूसरे के हिसाब से जी रहे हैं।

हिटलर अपनी सभाओं में अपने दस पांच आदमियों को दस जगह बिठा रखता था। ठीक वक्त पर दस आदमी ताली बजाते, वह पूरा हाल तालियों से गूंज उठता था। समझ गया था कि ताली संक्रामक है। दस आदमी अपने हैं, वे ताली बजा देते हैं, फिर बाकी दस हजार लोग भी ताली बजा देते हैं। ये दस हजार लोगों को क्या हो गया? इनकी ताली को क्या हो गया?

हमारा मन आसपास से एकदम प्रभावित होता रहता है। बीमारियां ही नहीं पकड़ती हमको, च्फलू ही नहीं पकड़ता हमको, एक दूसरे से क्रोध भी पकड़ता है, मोह भी पकड़ता है, लोभ भी पकड़ता है, कामवासना भी पकड़ती है। शरीर ही नहीं पकड़ता जीवाणुओं को, मन भी पकड़ता है।

इसलिए महावीर कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को सोये हुए लोगों के बीच जागरूक रहना चाहिए, क्योंकि वे चारों तरफ गहन निद्रा में सो रहे हैं। उनकी निद्रा की लहरें तुम्हें छुयेंगी। वे चारों तरफ से तुम्हारे भीतर आयेंगी। तुम अकेले ही अपनी नींद के लिए जिम्मेवार नहीं हो, तुम एक नींद के सागर में हो जहां चारों तरफ से नींद तुम्हें छुयेगी। अगर तुमने बहुत चेष्टा न की तो वह नींद तुम्हें पकड़ लेगी। वह नींद तुम्हें डुबा देगी। कोई तुम्हें डुबाने की उसकी आकांक्षा नहीं है, यह कोई सचेतन प्रयास नहीं है, यह केवल स्थिति है।

कभी आपने खयाल किया है, अगर दस लोग बैठे हैं और एक आदमी जम्हाई लेने लगे फौरन दूसरे कुछ लोग जम्हाई लेना शुरू कर देंगे। एक आदमी सो जाये दूसरे लोगों को नींद पकड़ने लगेगी।

हम समूह का एक अंग हैं जब तक हम पूरे नहीं जाग गये। जब तक कोई व्यक्ति पूरा नहीं जागा, तब तक वह व्यक्ति नहीं है, भीड़ है। तब तक वह कितना ही समझे कि मैं अलग हूं, वह अलग है नहीं।

इसलिए बड़ी मजे की घटनाएं घटती हैं। दुनिया में बड़े पाप व्यक्ति से नहीं होते, भीड़ से होते हैं। क्योंकि भीड़ में संक्रमण हो जाता है। हजार लोगों की भीड़ मंदिर को जला रही है या मस्जिद में आग लगा रही है। इनमें से एक-एक आदमी को अलग करके पूछें कि मस्जिद में आग लगाना चाहते हो? मंदिर तोड़ना चाहते हो? क्या होगा? एक-एक आदमी को अलग पूछें, वह कहेगा, नहीं, इससे कुछ होने वाला नहीं है, इसमें कोई सार भी नहीं है। फिर क्या कर रहे थे?

लेकिन हजार आदमियों की भीड़ में वह आदमी था ही नहीं, वह सिर्फ भीड़ का एक हिस्सा था। इसलिए बड़ा पाप भीड़ करती है। छोटे पाप निजी होते हैं। बड़े पाप सामूहिक होते हैं। जितना बड़ा पाप करना हो, उतनी बड़ी भीड़ चाहिए। क्योंकि भीड़ में व्यक्ति को जो निज की जिम्मेदारी है वह खो जाती है। भीड़ में व्यक्ति अपने में नहीं रह जाता। भीड़ में उसे लगता है, एक सागर है जिसमें बहे चले जा रहे हैं। भीड़ में उसे ऐसा नहीं लगता है कि मैं कर रहा हूं, भीड़ कर रही है, मैं सिर्फ साथ हूं।

कभी आपने खयाल किया, अगर भीड़ तेजी से चल रही हो, आपके पैर भी तेज हो जाते हैं। हिटलर ने अपने सैनिकों को आदेश दे रखे थे कि जब भी तुम चलो तो एक दूसरे के शरीर छूते रहें। अगर पचास आदमी चल रहे हों, और एक दूसरे के शरीर छूते हैं और उनके कदम एक लय में पड़ते हैं, तो आप उस लय में फंस जायेंगे। जब उनका हाथ आपको छुयेगा तो उनका जोश भी आपके भीतर चला जायेगा। और जब उनके कदम की चाप आपके सिर में पड़ेगी तो आपका कदम भी वैसा ही पड़ने लगेगा। पचास आदमियों की भीड़ में आप अकेले नहीं रह जाते, आप सिर्फ एक अंग हो जाते हैं, एक बड़ी चेतना का हिस्सा हो जाते हैं। और वह चेतना फिर आपको प्रवाहित कर लेती है। जैसे नदी की धार में कोई बहता हो और जब नदी वर्षा के पूर में आयी हो जब कोई बहता हो, वैसा असहाय आदमी हो जाता है भीड़ में।

इसलिए सारे लोग भीड़ बनाकर जीते हैं। राष्टर भीड़ों के नाम हैं। धर्म भीड़ों के नाम हैं— हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, जैनों की भीड़, हिंदुस्तान, पाकिस्तान, चीन, रूस—ये सब भीड़ों के नाम हैं।

रूस खतरे में है, तो फिर सारा मामला खत्म हो गया। भारत खतरे में है, तो फिर आप व्यक्ति नहीं रह जाते। सिर्फ एक बड़ी भीड़ के हिस्से रह जाते हैं। फिर उसमें आप बहते हैं।

राजनीति भीड़ों को संचालित करने की कला है। इसलिए जहां भी भीड़ है वहां राजनीति होगी। चाहे वह धर्म की भीड़ क्यों न हो, राजनीति आ जायेगी। इसलिए मैं आपसे कहता हूं, धर्म का संबंध है व्यक्ति से और राजनीति का संबंध है भीड़ से। जहां धर्म भी भीड़ से संबंधित होता है वहां राजनीति का रूप है। इसलिए हिंदुओं की भीड़, मुसलमानों की भीड़, ईसाइयों की भीड़ , ये सब राजनीति के रूप हैं, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं है। धर्म का संबंध है व्यक्ति से। धर्म की चेष्टा ही यही है कि व्यक्ति को हम भीड़ से कैसे मुक्त करें, वह भीड़ के उपद्रव से कैसे बाहर आये, भीड़ के प्रभाव से कैसे छूटे, यही तो धर्म की सारी चेष्टा है। लेकिन धर्म भी भीड़ बन जाता है, और धर्म भीड़ बन जाता है तो उससे मुश्किल हो जाती है, कठिनाई खड़ी होती है। युद्ध में सैनिक ही भीड़ में नहीं लड़ते, लोग मस्जिदों में, मंदिरों में, भीड़ में प्रार्थना भी करते हैं। बह जायेंगे आप। बह जाना निद्रा में भी हो जायेगा, महावीर कहते हैं।

इसलिए जागे हुए व्यक्ति को आसपास पूरे वक्त सचेत रहना पड़ेगा। सब तरफ से नींद आ रही है, सब तरफ सोये हुए लोग हैं। क्रोध आयेगा, लोभ आयेगा, मोह आयेगा, सब तरफ से बह रहा है, जैसे कि कोई आदमी सब तरफ से गंदी नालियां बह रही हों और उनके बीच में बैठा हो। उसको बहुत सचेत रहना पड़ेगा अन्यथा वे गंदी नालियां उसे भी गंदा कर देंगी। उसकी सचेतना ही उसको पवित्र रख सकती है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तरह से जागरूक रहना चाहिए, सब तरह से। इसलिए बहुत अदभुत वचन उन्होंने कहा है।

'और किसी का भी विश्वास नहीं करना चाहिए।'

इसका यह मतलब नहीं है कि महावीर अविश्वास सिखा रहे हैं। महावीर कहते हैं, तुमने किसी का विश्वास किया, सोये हुए आदमी का, तो तुम खुद सो जाओगे। तुमने अगर सोये हुए आदमी का विश्वास किया तो तुम सो जाओगे, क्योंकि विश्वास का मतलब यह है कि अब सचेतन रहने की कोई भी जरूरत नहीं है।

इसे थोड़ा समझ लें।

जिसका हम विश्वास करते हैं, उससे हमें सचेतन नहीं रहना पड़ता। एक अजनबी आदमी आपके कमरे में ठहर जाये तो आप रात ठीक से सो न पायेंगे। क्यों?

अजनबी आदमी कमरे में है, पता नहीं क्या करे! नींद उखड़ी-उखड़ी रहेगी, रात में दो-चार दफा आप आंख खोलकर देख लेंगे कि कुछ कर तो नहीं रहा। आपकी पत्नी आपके कमरे में सो रही है, आप मजे से घोड़े बेचकर सो जाते हैं, क्योंकि अब अजनबी नहीं, और जो भी कर सकती थी, कर चुकी। अब सब परिचित है। अब जो कुछ भी होगा, होगा। अब इसमें कुछ ऐसा नया कुछ होने वाला नहीं है। कोई भय नहीं है। आप चेतना खो सकते हैं। आपको चेतन रहने की कोई जरूरत नहीं है।

इसीलिए तो नये मकान में, नये कमरे में नींद नहीं आती। स्थिति नयी है, आदतन नहीं है। नये बिस्तर पर नींद नहीं आती, नये लोगों के बीच नींद नहीं आती, क्योंकि स्थिति नयी है और थोड़ा-सा होश रखना पड़ता है। पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता।

महावीर कहते हैं, जीना जगत में जैसे अजनबियों के बीच ही हो सदा—च्सटरेंजर्स! है ही सच्चाई यह। पति और पत्नी चाहे बीस साल चाहे चालीस साल साथ रहे हों, अजनबी हैं। कभी भी कोई पहचान हो नहीं पाती; च्सटरेंजर्स हैं। मान लेते हैं बीस साल साथ रहने के कारण कि अब हम परिचित हो गये हैं। क्या खाक परिचित हो गये! कोई परिचित नहीं होते, कोई परिचित नहीं होता, सब आइलैंड बने रहते हैं, अपने-अपने में द्वीप बने रहते हैं। परिचय हो जाता है ऊपरी, नाम-धाम, ठिकाना, यह सब पता हो जाता है, शकल-सूरत, लेकिन भीतर क्या संभावनाएं छिपी हैं, उसका कुछ परिचय नहीं होता, कोई पहचान नहीं होती।

महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास मत करना। इसका क्या मतलब है? इसका मतलब यह नहीं है कि अविश्वासी हो जाना, अच्नटरस्टिंग हो जाना। इसका यह मतलब नहीं कि हर आदमी को समझना कि बेईमान है, हर आदमी को समझना कि चोर है। इससे कई लोगों को बड़ी प्रसन्नता होगी कि किसी का विश्वास मत करना। वे कहेंगे, यह तो हम कर ही रहे हैं, यह तो हमारी साधना ही है। किसी का विश्वास हम करते कहां हैं? अपना नहीं करते, दूसरे की तो बात ही दूसरी है।

कोई किसी का विश्वास नहीं कर रहा है, मगर वह अर्थ नहीं है महावीर का, इसे ठीक से समझ लें—

हम अविश्वास करते हैं, लेकिन वह अविश्वास महावीर का प्रयोजन नहीं है। महावीर कहते हैं, किसी का विश्वास न करना इस कारण, ताकि तुम सो न जाओ। निकटतम भी तुम्हारे कोई हो तो भी इतना विश्वास मत करना कि अब होश रखने की कोई जरूरत नहीं है। होश तो तुम रखना ही, जागे तो तुम रहना ही। क्योंकि जो निकटतम हैं उन्हीं से बीमारियां आसानी से आती हैं। वे करीब हैं उनका रोग जल्दी लगता है। होश तो रखना ही। अगर तुम होश खोकर अपनी पत्नी या अपने पति, या अपने बेटे, या अपनी मां के पास भी बैठे हो, तो उसकी बीमारियां तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रही हैं। तुम्हारा चित्त पहरेदार बना ही रहे और मन की कोई बीमारी तुममें प्रवेश न कर पाये।

बुद्ध कहते थे, कि जिस मकान के बाहर पहरे पर कोई बैठा हो, चोर उसमें प्रवेश नहीं करते। जिस मकान का दीया जला हो और घर के बाहर रोशनी आ रही हो, चोर उस मकान से जरा दूर ही रहते हैं। ठीक ऐसे ही जिसके भीतर होश का दीया जला हो, ठीक ऐसे ही जिसने सावधानी को पहरे पर रखा हो, उसके भीतर मन की बीमारियां प्रवेश नहीं करतीं। जरा दूर ही रहती हैं।

हम ऐसे जीते हैं कि न कोई पहरे पर है, न घर का दीया जला है, अंधकार है घना, चोरों के लिए निमंत्रण है, और चारों तरफ हमारे चोर मौजूद हैं। हम गड्ढा बन जाते हैं, वे हममें बह जाते हैं भीतर।

खयाल करें, एक उदास आदमी आकर आपके घर बैठ जाता है। कभी आपने खयाल किया है, थोड़ी देर में आप भी उदास हो जाते हैं ! एक हंसता हुआ, मुस्कुराता हुआ आदमी आपके घर में आ जाता है। कभी आपने खयाल किया, आप भी मुस्कुराने लगते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों को देखकर आपको इतना अच्छा क्यों लगता है? छोटे बच्चे उसका कारण नहीं हैं। छोटे बच्चे प्रसन्न हैं। उनकी प्रसन्नता संक्रामक हो जाती है। वे नाच रहे हैं, कूद रहे हैं, संसार का

उन्हें अभी कोई पता नहीं, मुसीबतों का उन्हें अभी कोई बोध नहीं। अभी वे नये-नये खिले फूलों जैसे हैं। न उन्होंने तूफान देखे, न आंधियां देखीं, न अभी सूरज की तपती हुई आग देखी, अभी उन्हें कुछ भी पता नहीं।

उनको देखकर आप भी प्रसन्न हो जाते हैं। छोटे बच्चों के बीच भी अगर कोई उदास बैठा रहे तो समझो कि साधु। मतलब यह कि उसे बहुत चेष्टा करके उदास रहना पड़े, वह बीमार है, पैथोलाजिकल है, रुग्ण है। छोटे बच्चों के बीच तो कोई प्रसन्न हो ही जायेगा।

नेहरू को छोटे बच्चों से बहुत लगाव था। उसका कारण, छोटे बच्चे नहीं थे, राजनीति की बीमारी थी। बच्चों में जाकर वे दुष्टों को भूल पाते थे, जिनसे घिरे थे, जिनके बीच थे, जिस उपद्रव में पड़े थे। वह बच्चों के बीच जाकर हल्का हो जाता था मन। जैसे कि कोई हाली-डे पर पहाड़ चला गया, छुट्टी मना ली। छोटे बच्चों के बीच उनका होना इस बात का सूचक था कि नेहरू मन से राजनीतिज्ञ नहीं थे, इसलिए छोटे बच्चों की तलाश थी, ताकि इन आदमियों से बचें जो उनको घेरे हुए थे।

नेहरू कम से कम राजनीतिज्ञ आदमी थे, नियति उनकी वह नहीं थी। नियति तो थी कि वह कवि होते। हिंदुस्तान ने एक बड़ा कवि खो दिया, और एक कमजोर राजनीतिज्ञ पाया। वे हो नहीं सकते थे। कोई उपाय नहीं था। उनके लिए कोई वहां गति नहीं थी। इसलिए बचाव करते थे, बच्चों के साथ ही खेलते थे और प्रसन्न हो जाते थे। जैसे वहां उनको निकटता मालूम होती थी, सानिध्य मालूम होता था।

जहां भी आप हैं, आप प्रभावित हो रहे हैं। कैसे लोगों के बीच आप हैं, आप वैसे हो जायेंगे।

तो महावीर कहते हैं, 'किसी का विश्वास मत करना।' इसका मतलब यह हुआ कि अगर कोई और हंसता है और आपको हंसी आ जाती है तो समझना कि आपकी हंसी झूठी है। कोई और रोता है और आपको रोना आ जाता है, तो समझना कि रोना झूठा है। न यह हंसी आपकी है, न यह रोना आपका है। यह सब उधार है।

और हम सब उधारी में जीते हैं, हम बिलकुल उधारी में जीते हैं। एक फिल्म में आप देख लेते हैं कोई करुण दृश्य और आपकी आंखों में आंसू बहने लगते हैं। ये उधार हैं। कुछ भी तो वहां नहीं हो रहा है। पदच पर केवल धूप-छाया का खेल है, मगर आप रोने लगे। वह बता रहा है कि आप किस भांति बाहर से संक्रामित होते हैं। फिर थोड़ी देर में आप हंसने लगेंगे। आपकी हंसी भी बाहर से खींची जाती है और आपका रोना भी बाहर से खींचा जाता है। आपकी अपनी कोई आत्मा है? जिसका सब कुछ बाहर से संचालित हो रहा है, उसके पास कोई आत्मा नहीं है।

महावीर कहते हैं, 'जागरूक रहना, किसी का विश्वास मत करना।' इसका मतलब यह है कि किसी को भी इस भांति मत स्वीकार करना कि वहां तुम्हें असावधान रहने की सुविधा मिले। तुम मानकर चलना कि तुम एक अजनबी देश में हो, अजनबी लोगों के बीच, एक आउट साइडर हो, जहां कोई तुम्हारा अपना नहीं, जहां सब पराये हैं। सब अपने-अपने हैं, कोई किसी दूसरे का नहीं है।

लेकिन हम सब धोखा देते हैं। पत्नी कहती, कि मैं आपकी। पति कहता, कि मैं तुम्हारा। बाप कहता है बेटे से, कि मैं तुम्हारा। बेटा कहता, मां से, कि मैं तुम्हारा। सब अपने-अपने हैं। कोई यहां किसी का नहीं है। चारों तरफ हम इसे रोज देखते हैं, फिर भी एक-दूसरे को कहते हैं, मैं तुम्हारा, मैं तुम्हारे बिना न जी सकूंगा, और सब सबके बिना जी लेते हैं। मगर यह कठोर है, सत्य।

महावीर कहते हैं, कोई अपना नहीं। इसका यह मतलब नहीं है कि सब दुश्मन हैं। इसका कुल मतलब इतना है कि तुम होश रखना। जैसे कि कोई आदमी युद्ध के मैदान पर होश रखता है। एक क्षण भी चूकता नहीं, बेहोशी को आने नहीं देता, तलवार सजग रखता, धार पैनी रखता, आंख तेज रखता, चारों तरफ चौकन्ना होता है। कभी भी, किसी भी क्षण जरा-सी बेहोशी और खतरा हो जायेगा। ठीक वैसे जीना जैसे कि प्रतिपल कुरुक्षेत्र है, प्रतिपल युद्ध है, किसी का विश्वास न करना।

'काल निर्दयी है, और शरीर दुर्बल।'

इन सत्यों को स्मरण रखना कि काल निर्दयी है। समय आपकी जरा भी चिन्ता नहीं करता। समय आपका विचार

ही नहीं करता, बहा चला जाता है। समय को आपको

होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौटकर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाये द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा बना है।

एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुलाकर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाये तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।

जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आयेगी, कब नहीं आयेगी, देखा जायेगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गयी। जिस दिन वह मर गयी, उसके बेटे की खबर आयी कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहनाकर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें!

'काल निर्दयी है।' लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाये। न जिन्दा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है।

संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इन्टेंशनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखायी पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाये, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गयी क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीयेगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लम्बे यात्रापथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जायें तो पहचानेंगे नहीं।

क बूढ़ी औरत का मुर्गा बांग देता था एक गांव में। तो वह सोचती थी, सूरज उसी की वजह से उगता है। न मुर्गा बांग देगा, न सूरज उगेगा। अब यह बिलकुल तर्कयुक्त था। क्योंकि रोज जब मुर्गा बांग देता था तभी सूरज उगता था। ऐसा कभी हुआ ही नहीं था कि सूरज बिना मुगच की बांग के उगा हो, इसलिए यह बात बिलकुल तर्क शुद्ध थी।

फिर एक दिन बुढ़िया गांव पर नाराज हो गयी। किन्हीं लोगों ने उसे नाराज कर दिया, तो उसने कहा, ठहरो। पछताओगे पीछे। चली जाऊंगी अपने मुगच को लेकर दूसरे गांव। तब रोओगे, छाती पीटोगे, जब सूरज नहीं उगेगा।

नाराजगी में बुढ़िया अपने मुगच को लेकर दूसरे गांव चली गयी। दूसरे गांव में मुगच ने बांग दी और सूरज उगा। बुढ़िया ने कहा, अब रो रहे होंगे। सूरज यहां उग रहा है, जहां मुर्गा बांग दे रहा है।

तिनका भी सोचता है, मैं न होऊंगा तो नदी कैसे बहेगी। आप भी सोचते हैं, आप न होंगे तो संसार कैसे होगा! हर आदमी यही सोचता है। कब्रों में जाकर देखें, बहुत ऐसे सोचने वाले कब्रों में दबे पड़े हैं जो सोचते थे उनके बिना संसार कैसे होगा। और संसार बड़े मजे में है, संसार उनको बिलकुल भूल ही गया। संसार को कोई पता ही नहीं है।

हर आदमी के मरने पर हम कहते हैं कि अपूरणीय क्षति हो गयी, अब कभी भरी न जा सकेगी, और फिर बिलकुल भूल जाते हैं, फिर पता ही नहीं चलता कि किसकी अपूरणीय क्षति हुई। ऐसा लगता है, सब अन्धकार हो गया। और कोई अन्धकार नहीं होता। दीये जलते चले जाते हैं, फूल खिलते चले जाते हैं।

समय की धारा निरपेक्ष है। आपसे कुछ लेना-देना नहीं। समय से आप कुछ कर सकते हैं, समय का आप कोई उपयोग कर सकते हैं। तिनका नदी का उपयोग करके सागर भी पहुंच सकता है, किनारे पर भी अटक सकता है, डूब भी सकता है। लेकिन नदी को कोई प्रयोजन नहीं है।

समय की धारा बही जाती है। आप उसका कोई उपयोग कर सकते हैं। आप सिर्फ एक उपयोग करते हैं, स्थगित करने का। कल करेंगे, परसों करेंगे, छोड़ते चले जाते हैं इस भरोसे कि कल भी होगा! लेकिन कल कभी होता नहीं है।

कल कभी भी नहीं होता है। जब भी हाथ में आता है, तो आता है आज। और उसको भी कल पर छोड़ देते हैं। जीते ही नहीं, स्थगित किये चले जाते हैं। कल जी लेंगे, परसों जी लेंगे। फिर एक दिन द्वार पर मौत खड़ी हो जाती है, वह क्षण भर का अवसर नहीं देती है और तब हम पछताते हैं। वह सब जो स्थगित किया हुआ जीवन है, सब आपके सामने खड़ा हो जाता है कि क्या-क्या जी सकते थे, क्या हो सकता था, कितने अंकुर निकल सकते थे जीवन में, कितनी यात्रा हो सकती थी, वह कुछ भी न हो पायी।

तब पीछे लौटकर देखते हैं तो कुछ तिजोरियों में रुपये दिखायी पड़ते हैं, जिनको भर लिया, जीवन के मूल्य पर। कुछ लड़के-बच्चे दिखायी पड़ते हैं, जिनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। वे चारों तरफ बैठे हैं खाट के और सोच रहे हैं कि चाबी किसके हाथ लगती है। रो रहे हैं, लेकिन ध्यान चाबी पर है। इनको बड़ा कर लिया जीवन के मूल्य पर। हिसाब-किताब, खाता-बही, बैंक सब चलेगा। आप हट जायेंगे। आपका खाता किसी और के नाम हो जायेगा। आपका मकान किसी और का निवास स्थान बन जायेगा। आपकी आकांक्षाएं किन्हीं और के भूत बन जायेंगी, उन पर सवार हो जायेंगी और आप बिदा हो जायेंगे। और आपने सारे जीवन, जो भी मूल्यवान था, उसको स्थगित किया।

हम धर्म को स्थगित करते हैं और अधर्म को जीते हैं। क्रोध हम अभी कर लेते हैं, ध्यान हम कहते हैं, कल कर लेंगे। प्रार्थना हम कहते हैं, कल कर लेंगे, बेईमानी हम अभी कर लेते हैं। धर्म को करते हैं स्थगित, अधर्म को अभी जी लेते हैं। लेकिन क्यों? हमको भी पता है कि जो कल पर स्थगित किया वह हो नहीं पायेगा; इसलिए जो हम करना चाहते हैं, वह आज कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते हैं, और केवल दिखाते हैं कि करना चाहते हैं वह हम कल पर छोड़ देते हैं। इसमें गणित है साफ। कोई महावीर को ही पता है, ऐसा नहीं, हमको भी पता है। हमको भी पता है, क्रोध करना हो, अभी कर लो। हम कभी नहीं कहते, कल क्रोध करेंगे।

गुरजिएफ का पिता मरा, तो उसने बेटे के कान में कहा कि तू एक वचन मुझे दे दे। मेरे पास और कुछ तुझे देने को नहीं है। लेकिन जो मैंने जीवन में सर्वाधिक मूल्यवान पाया है वह मैं तुझसे कह देता हूं। वह नौ ही साल का था लड़का, समझ भी नहीं सकता था कि बाप क्या कह रहा है। लेकिन उसने कहा, इतना तू याद कर ले, कभी न कभी समझ जायेगा। जब भी तुझे क्रोध आये, तो चौबीस घण्टे बाद करना। कोई गाली दे, सुन लेना, समझ लेना, क्या कह रहा है, उसको ठीक से देख लेना, क्या उसका मतलब है, उसकी पूरी स्थिति समझ लेना ताकि तू ठीक से क्रोध कर सके। और उससे कह आना कि अब मैं चौबीस घण्टे बाद आकर उत्तर दूंगा।

गुरजिएफ बाद में कहता था, उस एक वाक्य ने मेरे पूरे जीवन को बदल डाला। वह एक वाक्य ही मुझे धार्मिक बना गया। क्योंकि चौबीस घण्टे बाद क्रोध किया ही नहीं जा सका। वह उसी वक्त किया जा सकता है। जो भी किया जा सकता है, उसी वक्त किया जा सकता है। और जब क्रोध न किया जा सका, और बुराई न की जा सकी, तो जो शक्ति बच गयी उसका क्या करना?

तो गुरजिएफ ने ध्यान कर लिया आज और क्रोध किया कल। हम क्रोध करते हैं आज, और ध्यान करेंगे कल। शक्ति क्रोध में चुक जायेगी, ध्यान कभी होगा नहीं। गुरजिएफ की शक्ति ध्यान में बह गयी, क्रोध कभी हुआ नहीं।

जो हम करना चाहते हैं, हम भी जानते हैं, आज कर लो। समय का कोई भरोसा नहीं। महावीर ही जानते हैं, ऐसा नहीं, हम भी जानते हैं। जो हम करना चाहते हैं, अभी कर लेते हैं। जो हम नहीं करना चाहते—हम बेईमान हैं, नहीं करना चाहते तो साफ कहना चाहिए, नहीं करना चाहते हैं—लेकिन हम होशियार हैं। अपने को धोखा देते हैं। हम कहते हैं करना तो हम चाहते हैं, लेकिन अभी समय नहीं है। कल कर लेंगे।

इसे ठीक से समझ लें। जिसे आप कल पर छोड़ रहे हैं, जान लें, आप करना नहीं चाहते हैं। यह अच्छा होगा, ईमानदारी होगी अपने प्रति कि मैं करना ही नहीं चाहता। इसलिए तो शायद आपको चोट भी लगेगी कि क्या मैं ध्यान करना ही नहीं चाहता? क्या मैं शांत होना ही नहीं चाहता? क्या मैं अपने को जानना ही नहीं चाहता? क्या इस जीवन के

रहस्य में मैं उतरना ही नहीं चाहता?

अगर आप ईमानदार हों तो आपको चोट लगेगी। शायद आपको खयाल आये कि मैं गलती कर रहा हूं। यह करने योग्य जो है, मैं छोड़ रहा हूं। होशियारी यह है कि हम कहते हैं, करना तो हम चाहते हैं। कौन मना कर रहा है?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, साधना में तो हम जाना चाहते हैं। कौन मना कर रहा है? लेकिन अभी नहीं। यह है तरकीब। इस तरकीब में उनको यह नहीं दिखायी पड़ता कि जो हम नहीं करना चाहते, उसे हम भ्रम पाल रहे हैं कि हम करना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं, 'काल है निर्दयी, और शरीर दुर्बल।' काल पर भरोसा नहीं किया जा सकता, उससे हमारा कोई संबंध नहीं है और शरीर है दुर्बल। शरीर पर हम बहुत भरोसा करते हैं। शरीर पर हम इतना भरोसा करते हैं जो कि आश्चर्यजनक है।

क्या है हमारे शरीर की क्षमता? क्या है शक्ति? 98 डिग्री गम और 110 डिग्री गम के बीच में 12 डिग्री गम आपकी क्षमता है। इधर जरा नीचे उतर जायें, 95 डिग्री हो जाये, फैसला हो गया। उधर जरा 110 के करीब पहुंचने लगे, फैसला हो गया। 12 डिग्री गम आपके शरीर की क्षमता है।

उम्र कितनी है आपकी? इस विराट अस्तित्व में जहां समय को नापने के लिए कोई उपाय नहीं है, वहां आप कितनी देर जीते हैं? सत्तर वर्ष, अस्सी वर्ष, कोई सौ वर्ष जी गया तो चत्मकार है। सौ वर्ष हमें बहुत लगते हैं। क्या है सौ वर्ष इस समय की धारा में? कुछ भी नहीं है। क्योंकि पीछे है अनन्त धारा, जो कभी प्रारंभ नहीं हुई। और आगे है अनन्त धारा, जो कभी अन्त नहीं होगी। इस अनन्त में सौ वर्ष का क्या है अर्थ? इस सौ वर्ष में भी क्या करेंगे? वैज्ञानिक हिसाब लागाते हैं तो आदमी आठ घण्टे सोता है चौबीस घण्टे में। चार घण्टे खाना, पीना, स्नान, कपड़े बदलना, उसमें व्यय हो जाते हैं। आठ घण्टे रोटी कमाना, घर से दच्फतर, दच्फतर से घर उसमें व्यय हो जाते हैं—बीस घण्टे। जो चार घण्टे बचते हैं उसमें रेडिओ सुनना, फिल्म देखना, अखबार पढ़ना, सिगरेट पीना, दाढ़ी बनाना—ऐसा चौबीस घण्टे व्यय हो जाते हैं। बचता क्या है सौ वर्ष में आपके पास? जिससे आप अपनी आत्मा को जान सकें, पा सकें।

अगर आदमी की कहानी हम ठीक से बांटे तो बड़ी फिजूल मालूम पड़ेगी, ए टेल टोल्ड बाई ऐन इडिएट, फुल आफ च्फयूरी एण्ड न्वाइज सिग्निफाइंग नथिंग। एक मूर्ख द्वारा कही हुई कथा, शोरगुल बहुत, मतलब बिलकुल नहीं। शोरगुल बड़ा होता है। हर बच्चा बड़ा शोरगुल करता हुआ संसार में आता है कि तूफान आ रहा है और थोड़े दिन में ठंडे हो जाते हैं। लकड़ी टेककर चलने लगते हैं। वह सब तूफान, वह सब शोरगुल, सब खो जाता है। आंखें धुंधली पड़ जाती हैं, हाथ-पैर कमजोर हो जाते हैं। बिस्तर पर लग जाते हैं

झूले से लेकर कब्र तक कहानी क्या है? सामर्थ्य क्या है शरीर की? बड़ा कमजोर है। जरा-सा बेक्टीरिया घुस जाये बीमारी का, तब पता चल जाता है कि कितनी आपकी ताकत है। गामा लड़ते होंगे पहलवानों से, लेकिन क्षय रोग से नहीं लड़ पाते। गामा टी ब्री से मरा। और टी ब्री के कीटाणु कितनी छोटी चीज है। आंख से दिखायी भी नहीं पड़ते। बड़े पहलवानों से जीत लिए, छोटे पहलवानों से हार गये। शरीर की ताकत कितनी है? बड़ी-बड़ी बीमारियां छोड़ दीजिए, कामन कोल्ड से लड़ना मुश्किल होता है। साधारण सद-जुकाम पकड़ ले तो उपाय नहीं, सब ताकत रखी रह जाती है।

इस शरीर को अगर हम भीतर गौर से देखें, इसकी क्षमता क्या है? हड्डी, मांस, मज्जा, इसका मूल्य कितना है? वैज्ञानिक कहते हैं, पांच रुपये से ज्यादा नहीं। वह भी मंहगाई की वजह से। आपकी वजह से नहीं। इतना अल्युमीनियम है, इतना लोहा है, इतना तांबा है, इतना फलां-ढिंका। सब निकालकर रख लें, पांच रुपये का सामान, पांच रुपये के सामान पर इतने इतरा रहे हैं?

यह जो थोड़ा-सा अवसर है जीवन का, उसमें शरीर की कोई क्षमता तो है नहीं। शरीर दुर्बल है, एकदम दुर्बल है। उधर सूरज ठंडा हो जाये, ये साढ़े तीन अरब लोग यहां एकदम ठंडे हो जायेंगे। क्या है क्षमता? जरा-सा ताप बढ़ जाये, गिर जाये जमीन का, ठंडे हो जायेंगे। अभी ध्रुव की जमी हुई बर्फ पिघल जाये, सब डूब जाये। वैज्ञानिक कहते हैं, वह पिघलेगी किसी न किसी दिन। अगर ध्रुव प्रदेश में जमी हुई बर्फ किसी भी दिन पिघल गयी तो सारे समुद्रों का पानी हजार

फीट ऊंचा उठ जायेगा। सारी जमीन डूब जायेगी। वह किसी भी दिन पिघलेगी। नहीं पिघलेगी तो रूसी या अमरीकी उसको पिघलाने का उपाय खोजते हैं। क्योंकि वे इसलिए खोजते हैं कि अगर कोई उपद्रव का, झगड़े का मौका हो तो दूसरे को मौका नहीं मिलना चाहिए दुनिया मिटाने का, हमको ही मिलना चाहिए। हालंकि हम भी उसमें मिटेंगे, लेकिन कहानी रह जायेगी, हालांकि कहानी कहनेवाला कोई भी नहीं रहेगा।

कहते हैं, रूसी वैज्ञानिकों ने तो तरकीबें खोज ली हैं कि किसी भी दिन, आनेवाला अगर कोई तीसरा महायुद्ध हुआ, तो वह ध्रुव प्रदेश की, साइबेरिया की बर्फ को पिघला देंगे। कोई सात सेकेंड लगेंगे उनको पिघलाने में। एटामिक एक्सप्लोजन से पिघल जायेगी। तत्काल सारी जमीन बाढ़ में डूब जायेगी। वैसी बाढ़ पुराने ग्रंथों में एक दफा और आयी है।

ईसाई कहते हैं, कि नोह ने अपनी नाव में लोगों को बचाया। सारी जमीन डूब गयी। अध्यात्म की दिशा में जो गहरे काम करते हैं वे कहते हैं, पूरा महाद्वीप, एटलांटिस डूब गया। पूरा महाद्वीप, जो उस समय की शिखर सभ्यता पर था, जैसे आज अमरीका, वैसे एटलांटिस पूरा का पूरा डूब गया। अभी तक यह समझा नहीं जा सका। दुनिया के सभी धर्मों की कथाओं में उस महान बाढ़, ग्रेट च्फलड की बात है। भारतीय कथाओं में, मिस्त्री कथाओं में, यूनानी कथाओं में, सारी दुनिया की कथाओं में उस बाढ़ की बात है। बाढ़ जरूर हुई होगी। जबसे वैज्ञानिकों को पता चला है कि ध्रुव की बर्फ पिघलायी जा सकती है, तब से यह संदेह है कि वह बाढ़ भी किसी युद्ध का परिणाम थी। वह अपने आप नहीं हो गयी थी, किसी महायुद्ध में, किसी महासभ्यता ने बर्फ को पिघला डाला, सारी जमीन डूब गयी। वह महाप्रलय थी। वह कल फिर हो सकती है। आदमी का वश कितना है?

हिरोशिमा पर बम गिरा, जो जहां था वहीं सूख गया, एक सेकेंड में। एक तस्वीर मेरे मित्र ने मुझे भेजी थी। एक बच्ची सीढ़ियां चढ़कर अपना होम-वर्क करने ऊपर जा रही है, रात नौ बजे वह अपनी किताब, बस्ता, बही के साथ सूखकर दीवार से चिपक गयी। राख हो गयी। एक लाख बीस हजार आदमी सेकेंडों में राख हो गए। उनकी भी आकांक्षाएं आप ही जैसी थीं। उनकी भी योजनाएं आप ही जैसी थीं। उन्होंने भी समय का बड़ा भरोसा किया था। उन्होंने भी शरीर का बड़ा बल माना था। वह एक सेकेंड नहीं रुकता। अभी हम यहां बैठकर बात कर रहे हैं, एक सेकेंड में सब रुक जा सकता है। और कोई उपाय नहीं है शिकायत का।

महावीर कहते हैं, 'शरीर है, दुर्बल, काल है निर्दयी। यह जानकर भारंड पक्षी की तरह अप्रमत्त भाव से विचरण करना चाहिए।'

भारंड पक्षी एक मिथ, माइथोलाजिक, पौराणिक पक्षी है, एक काल्पनिक कवि की कल्पना है कि भारंड पक्षी मृत्यु से, समय से, जीवन की क्षणभंगुरता से इतना ज्यादा भयभीत है कि वह सोता ही नहीं। वह उड़ता ही रहता है, जागता हुआ। कि सोये, और कहीं मौत न पकड़ ले, कि सोये और कहीं जीवन समाप्त न हो जाये, कि सोये और कहीं वापस न उठे। काल्पनिक पक्षी है।

तो महावीर कहते हैं, भारंड पक्षी की तरह समय निर्दयी, शरीर दुर्बल, ऐसा जानकर अप्रमत्त भाव से, बिना बेहोश हुए, होशपूर्वक, विद अवेयरनेस, जागरूकता से जीना ही प्राज्ञ व्यक्ति का, प्रज्ञावान व्यक्ति का लक्षण है।

एक ही सूत्र है कृष्ण का, महावीर का, बुद्ध का, क्राइस्ट का। वह सूत्र है अप्रमत्त भाव, अवेयरनेस, होश। इसे हम आगे समझेंगे।

आज इतना ही।
रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें, और फिर जायें!

□

अलिप्तता और अनासक्ति का भाव-बोध

दूसरा प्रवचन

दिनांक 14 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

21

अप्रमाद-सूत्र : 2

वोच्छिन्द सिणेहमप्पणो,
कुमुयं सारइयं व पाणियं
से सव्वसिणेहवज्जिए,
समयं गोयम! मा पमायए।।
तिण्णो हु सि अण्णवं महं,
किं पुण चिट्ठसि तीरमागओ।
अभितुर पारं गमितए,
समयं गोयम! मा पमायए।।

जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है, वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटाकर सब प्रकार के स्नेहबंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका है। भला किनारे पहुंचकर तू क्यों अटक रहा है? उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद मत कर।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है—कल आपने कहा, प्रश्न के उत्तर देने के दो तरीके हैं। एक स्मृति के संग्रह से, दूसरा स्वयं की चेतना से। जब आप उत्तर देते हैं, तब आपका उत्तर चेतना से होता है, या स्मृति से? क्योंकि आप अब तक हजारों किताबें पढ़ चुके हैं और आपकी स्मरण शक्ति भी फोटोग्राफिक है। यदि आपकी चेतना ही उत्तर देने में समर्थ है, तो इतनी विविध किताबें पढ़ने का क्या प्रयोजन है?

दो तीन बातें समझनी चाहिए। एक, आपके प्रश्न पर निर्भर होता है कि उत्तर चेतना से दिया जा सकता है या स्मृति से। यदि आपका प्रश्न बाच्ह्य जगत से संबंधित है तो चेतना से उत्तर देने का कोई भी उपाय नहीं है। न महावीर दे सकते हैं, न बुद्ध दे सकते हैं, न कोई और दे सकता है। चेतना से तो उत्तर चेतना के संबंध में पूछे गये प्रश्न का ही हो सकता है। अगर महावीर से जाकर पूछें कि कार पंक्चर हो जाती हो तो कैसे ठीक करनी है, तो इसका उत्तर चेतना से नहीं आ सकता। महावीर की स्मृति में हो तो ही आ सकता है।

बाच्ह्य जगत को जानने का सूचनाओं के अतिरिक्त कोई भी उपाय नहीं है। और ठीक ऐसा ही अंतर्जगत को जानने का सूचनाओं के द्वारा कोई उपाय नहीं है। बाहर का जगत जाना जाता है इन्फमच्शन से, सूचनाओं से, और भीतर का जगत नहीं जाना जाता है सूचनाओं से। इसलिए अगर कोई व्यक्ति बाहरी तथ्यों के संबंध में चेतना से उत्तर दे तो वे वैसे ही गलत होंगे जैसे कोई चेतना के संबंध में शास्त्रों से पायी गयी सूचनाओं से उत्तर दे। वे दोनों ही गलत होंगे।

हम दोनों तरह की भूल करने में कुशल हैं। हमने सोचा कि चूंकि महावीर या बुद्ध, कृष्ण ज्ञान को उपलब्ध हो चुके हैं, इसलिए अब बाहर के जगत के संबंध में भी उनसे जो हम पूछेंगे, वह भी विज्ञान होने वाला है। वहां हमसे भूल

हुई, इसलिए हम विज्ञान को पैदा नहीं कर पाये।

विज्ञान पैदा करना है तो भीतर पूछने का कोई उपाय नहीं है, बाहर के जगत से ही पूछना पड़ेगा। अगर पदार्थ के संबंध में कुछ जानना है तो पदार्थ से ही पूछना पड़ेगा। वृक्षों के संबंध में कुछ जानना है तो वृक्षों में ही खोजना पड़ेगा। लेकिन हमने इस मुल्क में ऐसा समझा कि जो आत्मज्ञानी हो गया, वह सर्वज्ञ हो गया। इसलिए हमने विज्ञान को कोई जन्म न दिया और हम सारी दुनिया में पिछड़ गये।

महावीर जो भी कहते हैं अंतस के संबंध में, वह उनकी चेतना से आया है। लेकिन महावीर भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहते हैं, वे सूचनाएं हैं। इसलिए एक और बात समझ लेनी चाहिए।

वे सूचनाएं जो महावीर बाहर के जगत के संबंध में देते हैं, कल गलत हो सकती हैं। क्योंकि महावीर के समय तक बाहर के जगत के संबंध में जो सूचनाएं थीं, वही महावीर देते थे। फिर सूचनाएं बदलेंगी, विज्ञान तो रोज बढ़ता है, बदलता है। नयी खोज होती है। तो महावीर ने भी जो बाहर के जगत के संबंध में कहा है, वह कल गलत हो जायेगा। उस कारण महावीर गलत नहीं होते। महावीर तो उसी दिन गलत होंगे जो उन्होंने भीतर के संबंध में कहा है, जब गलत हो जाये। इससे बड़ी तकलीफ होती है।

जीसस ने उस समय जो उपलब्ध सूचनाएं थीं, उसके संबंध में बातें कहीं। कहा कि जमीन चपटी है। क्योंकि उस समय तक यही सूचना थी। जीसस भी नहीं जान सकते थे कि जमीन गोल है। फिर ईसाइयत बड़ी मुश्किल में पड़ गयी। जब पता चला कि जमीन गोल है और जमीन चपटी नहीं है तो बड़ा संकट आया। तो ईसाइयत ने पूरी कोशिश की कि जमीन चपटी ही है, क्योंकि जीसस ने कहा है। और जीसस गलत तो कह ही नहीं सकते। इसमें डर था। अगर जीसस एक बात गलत कह सकते हैं तो फिर दूसरी भी गलत हो सकती है, यह संदेह था।

अगर जीसस इतनी गलत बात कह सकते हैं कि जमीन चपटी है गोल की बजाय, तो क्या भरोसा? ईश्वर के संबंध में जो कहते हैं, आत्मा के संबंध में कहते हैं, वह भी गलत कहते हों। जब किसी की एक बात गलत हो जाये तो दूसरी बातों पर भी संदेह निर्मित हो जाता है। इसलिए ईसाइयत ने भरसक कोशिश की कि जो जीसस ने कहा है, सभी सही है। लेकिन उसका परिणाम घातक हुआ। क्योंकि विज्ञान ने जो सिद्ध किया, हजार जीसस भी कहें, उसको गलत नहीं किया जा सकता।

गैलेलियो को सजा दी जाये, सताया जाये, इससे कोई अंतर नहीं पड़ता, तथ्य को झुठलाया नहीं जा सकता। और तब आखिर में, मजबूरी में ईसाइयत को मानना पड़ा कि जमीन गोल है। तब ईसाइयों के मन में ही संदेह उठना शुरू हो गया कि फिर क्या होगा! जीसस जो कहते हैं और चीजों के संबंध में, कहीं वह भी तो गलत नहीं है!

महावीर के माननेवाले सोचते हैं कि महावीर ने कहा है कि चंद्रमा देवताओं का आवास है। उस समय तक ऐसी बाहरी जानकारी थी। उस समय तक जो श्रेष्ठतम जानकारी थी, वह महावीर ने दी है। लेकिन यह महावीर के कहने की वजह से सच नहीं होती। यह तो वैज्ञानिक तथ्य है, बाहर का तथ्य है। इसमें महावीर क्या कहते हैं, सिर्फ उनके कहने से सही नहीं होता।

अब जैन मुनि तकलीफ में पड़ गये हैं। क्योंकि चांद पर आदमी उतर गया है, कोई देवता नहीं है। तो अब जैन मुनि उसी दिक्कत में पड़ गये हैं जिस दिक्कत में ईसाइयत पड़ गयी थी। अब क्या करें? तो अब वे सिद्ध करने की कोशिश कर रहे हैं! सिद्ध करने की तीन-चार कोशिशें हैं, वह पिटीपिटायी हैं, वही कोशिशें की जाती हैं। पहली तो यह, कि यह चांद वह चांद ही नहीं है, एक यह कोशिश है। तो कौन-सा चांद है? दूसरी यह कोशिश की जा रही है कि इस चांद पर वैज्ञानिक उतरे ही नहीं है, यह झूठ है, यह अफवाह है। यह भी पागलपन है। तीसरी कोशिश यह की जा रही है, कि वे उतर तो गये हैं—एक जैन मुनि कोशिश कर रहे हैं—वे उतर तो गये हैं, अफवाह भी नहीं है, चांद भी यही है, लेकिन वे चांद पर नहीं उतरे हैं। चांद के पास देवी-देवताओं के जो बड़े-बड़े यान, उनके बड़े-बड़े रथ, विराटकाय रथ और यान ठहरे रहते हैं चांद के आसपास, उन पर उतर गये हैं। उसी को वे समझ रहे हैं कि चांद है।

यह सब पागलपन है। लेकिन इस पागलपन के पीछे तर्क है। तर्क यह है कि अगर महावीर की यह बात गलत

होती है, तो बाकी बातों का क्या होगा? तो मैं आपसे कहना चाहता हूं, महावीर, बुद्ध या कृष्ण किसी ने भी बाहर के जगत के संबंध में जो भी कहा है, वह उस समय तक की उपलब्ध जानकारी में जो श्रेष्ठतम था, वही कहा है। वह उस समय तक जो सत्यतर था, वही कहा है। लेकिन, बाहर की जानकारी रोज बढ़ती चली जाती है। और आज नहीं कल, महावीर और बुद्ध से आगे बात निकल जायेगी। जब आगे बात निकल जायेगी तो भक्त को, अनुयायी को परेशान होने की जरूरत नहीं है। एक विभाजन साफ कर लेना चाहिए। वह विभाजन यह कि महावीर ने जो बातें बाहर के जगत के संबंध में कही हैं, वे सूचनाएं हैं। और महावीर ने जो अंतस-जगत के संबंध में बातें कही हैं, वे अनुभव हैं।

उचित होगा कि हम आर्मच्सटरांग की बात मान लें चांद के संबंध में, बजाय महावीर की बात के। हम आइंस्टीन की बात मान लें पदार्थ के संबंध में, बजाय कृष्ण के। उसका कारण यह है कि बाहर के जगत में जो खोज चल रही है वह खोज रोज बढ़ती चली जायेगी। आज मैं आपसे जो बातें कह रहा हूं, उसमें जब भी मैं बाहर के जगत के संबंध में कुछ कहता हूं तो वह आज नहीं कल गलत हो जायेगा। गलत हो जायेगा, उससे ज्यादा ठीक खोज लिया जायेगा। लेकिन तब भी जो मैं भीतर के जगत के संबंध में कह रहा हूं, वह गलत नहीं हो जायेगा। वह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं।

सूचना और ज्ञान का अगर यह फासला हम न रख पाये तो आज नहीं कल, बुद्ध, महावीर, कृष्ण सब नासमझ मालूम होने लगेंगे। यह फासला रखना जरूरी है।

आपके प्रश्न पर निर्भर करता है कि मैं उत्तर कहां से दे रहा हूं। कुछ उत्तर तो केवल स्मृति से ही दिये जा सकते हैं। क्योंकि बाहर के संबंध में स्मृति ही होती है, ज्ञान नहीं होता है। भीतर के संबंध में ज्ञान होता है, स्मृति नहीं होती। तो आप क्या पूछते हैं, इस पर निर्भर करता है।

दूसरी बात—पूछते हैं कि अगर भीतर का ज्ञान हो गया हो तो फिर शास्त्र, साहित्य, पुस्तक, इसका क्या प्रयोजन है?

इसका प्रयोजन है, आपके लिए, मेरे लिए नहीं। आज मेरे पास कोई आ जाता है पूछने, या महावीर के पास, या बुद्ध के पास आ जाता था पूछने, चांद के संबंध में, तो महावीर कुछ कहते थे। महावीर को कोई प्रयोजन नहीं है चांद से, लेकिन जो पूछने आया था, उसका प्रयोजन है। लेकिन इसे भी कहने की क्या जरूरत है?

कारण है। मेरे पास ऐसे लोग आते हैं। कोई फ्रायड को पढ़कर विक्षिप्त हुआ जा रहा है, तो वह मेरे पास आता है। जब तक मैं फ्रायड के संबंध में उसे कुछ न कह सकूं तब तक उससे मेरा कोई सेतु निर्मित नहीं होता। जब उसे यह समझ में आ जाता है कि मैं फ्रायड को समझता हूं, तभी आगे चर्चा हो पाती है, तभी आगे बात हो पाती है। मेरे पास कोई आदमी आइंस्टीन को समझकर आता है, और अगर मैं पिटीपिटायी तीन हजार साल पुरानी फिजिक्स की बातें उससे कहूं, तो मैं तत्काल ही व्यर्थ हो जाता हूं। आगे कोई संबंध ही नहीं जुड़ पाता। अगर मुझे उसे कोई भी आंतरिक सहायता पहुंचानी है तो उसे मैं बाहर के जगत में उतना तो कम से कम मैं जानता ही हूं, जितना वह जानता है, इतना भरोसा दिलाना अत्यन्त आवश्यक है। इस भरोसे के बिना उससे गति नहीं हो पाती, उससे संबंध नहीं बन पाता।

आज साधुओं संन्यासियों से आम आदमी का जो संबंध टूट गया है, उसका कारण यह है कि आम आदमी उनसे ज्यादा जानता है बाहर के जगत के संबंध में। और जब आम आदमी भी उनसे ज्यादा जानता है तो यह भरोसा करना आदमी को मुश्किल होता है कि जिन्हें बाहर के जगत के संबंध में भी कुछ पता नहीं, वह भीतर के संबंध में कुछ जानते होंगे। आज हालत यह है कि आपका साधु आपसे कम जानकार है। महावीर के वक्त का साधु आम आदमी से ज्यादा जानकार था।

आपसे अगर कोई भी संबंध निर्मित करना है, तो पहले तो आपका जो बाच्हय ज्ञान है, उससे ही संबंध जुड़ता है और जब तक मैं आपके बाच्हय-ज्ञान को व्यर्थ न कर दूं तब तक भीतर की तरफ इशारा असंभव है। अपने लिए नहीं पढ़ता हूं, आपके लिए पढ़ता हूं। उसका पाप आपको लगेगा, मुझको नहीं।

और यह, मैं ऐसा कर रहा हूं, ऐसा नहीं है। बुद्ध या महावीर या कृष्ण सभी को यही करना पड़ा है। करना ही पड़ेगा। अगर कृष्ण अर्जुन से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में, तो बात आगे नहीं चल सकती। अगर महावीर

गौतम से कम जानते हों बाहर के जगत के संबंध में तो बात आगे नहीं चल सकती। महावीर गौतम से ज्यादा जानते हैं। आपको पता होना चाहिए, गौतम महावीर का प्रमुख शिष्य है, जिसका नाम इस सूत्र में आया है। उसके संबंध में थोड़ा समझना अच्छा होगा, ताकि सूत्र समझा जा सके।

गौतम उस समय का बड़ा पंडित था। हजारों उसके शिष्य थे, जब वह महावीर को मिला, उसके पहले। वह एक प्रसिद्ध ब्राह्मण था। महावीर से विवाद करने ही आया था। गौतम, महावीर से विवाद करने ही आया था। महावीर को पराजित करने ही आया था। अगर महावीर के पास गौतम से कम जानकारी हो, तो गौतम को रूपांतरित करने का कोई उपाय नहीं था। गौतम पराजित हुआ महावीर की जानकारी से। और गौतम ज्ञान से पराजित नहीं हो सकता था, क्योंकि ज्ञान का तो कोई सवाल ही नहीं था। जानकारी से ही पराजित हो सकता था। जानकारी ही उसकी संपदा थी। जब महावीर से वह जानकारी में हार गया, गिर गया, तभी उसने महावीर की तरफ श्रद्धा की आंख से देखा। और तब महावीर ने कहा कि अब मैं तुझे वह बात कहूंगा, जिसका तुझे कोई पता ही नहीं है। अभी तो मैं वह कह रहा था जिसका तुझे पता है। मैंने तुझसे जो बातें कहीं हैं वह तेरे ज्ञान को गिरा देने के लिए, अब तू अज्ञानी हो गया। अब तेरे पास कोई ज्ञान नहीं है। अब मैं तुझसे वे बातें कहूंगा जिससे तू वस्तुतः ज्ञानी हो सकता है। क्योंकि जो ज्ञान विवाद से गिर जाता है, उसका क्या मूल्य है? जो ज्ञान तर्क से कट जाता है, उसका क्या मूल्य है?

गौतम महावीर के चरणों में गिर गया, उनका शिष्य बना। गौतम इतना प्रभावित हो गया महावीर से, कि आसक्त हो गया, महावीर के प्रति मोह से भर गया। गौतम महावीर का प्रमुखतम शिष्य है, प्रथम शिष्य, श्रेष्ठतम। उनका पहला गणधर है। उनका पहला संदेशवाहक है। लेकिन, गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम के पीछे हजारों-हजारों लोग दीक्षित हुए और ज्ञान को उपलब्ध हुए, और गौतम ज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सका। गौतम महावीर की बातों को ठीक-ठीक लोगों तक पहुंचाने लगा, संदेशवाहक हो गया। जो महावीर कहते थे, वही लोगों तक पहुंचाने लगा। उससे ज्यादा कुशल संदेशवाहक महावीर के पास दूसरा न था। लेकिन वह ज्ञान को उपलब्ध न हो सका। वह उसका पांडित्य बाधा बन गया। वह पहले भी पंडित था, वह अब भी पंडित था। पहले वह महावीर के विरोध में पंडित था, अब महावीर के पक्ष में पंडित हो गया। अब महावीर जो जानते थे, कहते थे, उसे उसने पकड़ लिया और उसका शास्त्र बना लिया। वह उसी को दोहराने लगा। हो सकता है, महावीर से भी बेहतर दोहराने लगा हो। लेकिन ज्ञान को उपलब्ध नहीं हुआ, वह पंडित ही रहा। उसने जिस तरह बाहर की जानकारी इकट्ठी की थी, उसी तरह उसने भीतर की जानकारी भी इकट्ठी कर ली। यह भी जानकारी रही, यह भी ज्ञान न बना।

गौतम बहुत रोता था। वह महावीर से बार-बार कहता था, मेरे पीछे आये लोग, मुझसे कम जाननेवाले लोग, साधारण लोग, मेरे जो शिष्य थे वे, आपके पास आकर ज्ञान को उपलब्ध हो गये। यह दीया मेरा कब जलेगा? यह ज्योति मेरी कब पैदा होगी? मैं कब पहुंच पाऊंगा?

जिस दिन महावीर की अंतिम घड़ी आयी, उस दिन गौतम को महावीर ने पास के गांव में संदेश देने भेजा था। गौतम लौट रहा है गांव से संदेश देकर, तब राहगीर ने रास्ते में खबर दी कि महावीर निर्वाण को उपलब्ध हो गये। गौतम वहीं छाती पीटकर रोने लगा, सड़क पर बैठकर। और उसने राहगीरों को पूछा कि वह निर्वाण को उपलब्ध हो गये? मेरा क्या होगा? मैं इतने दिन तक उनके साथ भटका, अभी तक मुझे तो वह किरण मिली नहीं। अभी तो मैं सिर्फ उधार, वह जो कहते थे, वही लोगों को कहे चला जा रहा हूं। मुझे वह हुआ नहीं, जिसकी वह बात करते थे। अब क्या होगा? उनके साथ न हो सका, उनके बिना अब क्या होगा। मैं भटका, मैं डूबा। अब मैं अनंत काल तक भटकूंगा। वैसा शिक्षक अब कहां? वैसा गुरु अब कहां मिलेगा? क्या मेरे लिए भी उन्होंने कोई संदेश स्मरण किया है, और कैसी कठोरता की उन्होंने मुझ पर? जब जाने की घड़ी थी तो मुझे दूर क्यों भेज दिया?

तो राहगीरों ने यह सूत्र उसको कहा है। यह जो सूत्र है, राहगीरों ने कहा है। राहगीरों ने कहा, कि तेरा उन्होंने स्मरण किया और उन्होंने कहा है कि गौतम को यह कह देना। गौतम यहां मौजूद नहीं है, गौतम को यह कह देना। यह जो सूत्र है, यह गौतम के लिए कहलाया गया है।

'जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता और अलिप्त रहता है वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटाकर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा। अतः गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।'

'तू इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका, भला किनारे पहुंचकर तू क्यों अटक गया है। उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षणमात्र भी प्रमाद न कर।'

ये जो आखिरी शब्द हैं कि तू सारे संसार के सागर को पार कर गया—गौतम पत्नी को छोड़ आया, बच्चों को छोड़ आया, धन, प्रतिष्ठा, पद। प्रख्यात था, इतने लोग जानते थे, सैकड़ों लोगों का गुरु था, उस सबको छोड़कर महावीर के चरणों में गिर गया, सब छोड़ आया। तो महावीर कहते हैं, तूने पूरे सागर को छोड़ दिया गौतम, लेकिन अब तू किनारे को पकड़कर अटक गया। तूने मुझे पकड़ लिया। तूने सब छोड़ दिया, तूने महावीर को पकड़ लिया। तू किनारा भी छोड़ दे, तू मुझे भी छोड़ दे। जब तू सब छोड़ चुका तो मुझे क्यों पकड़ लिया? मुझे भी छोड़ दे।

जो श्रेष्ठतम गुरु हैं, उनका अंतिम काम यही है कि जब उनका शिष्य सब छोड़कर उन्हें पकड़ ले, तो तब तक तो वे पकड़नें दें जब तक यह पकड़ना शेष को छोड़ने में सहयोगी हो, और जब सब छूट जाये तब वे अपने से भी छूटने में शिष्य को साथ दें। जो गुरु अपने से शिष्य को नहीं छुड़ा पाता, वह गुरु नहीं है। यह महावीर का वचन है, कि अब तू मुझे भी छोड़ दे, किनारे को भी छोड़ दे। सब छोड़ चुका, अब नदी भी पार कर गया, अब किनारे को पकड़कर भी नदी में अटका हुआ है, नदी को नहीं पकड़े हुए है। किनारे को पकड़े हुए है। किनारा नदी नहीं है। लेकिन कोई आदमी किनारे को पकड़कर भी तो नदी में हो सकता है। और फिर किनारा भी बाधा बन जायेगा। किनारा चढ़ने को है, बाधा बनने को नहीं। इसे भी छोड़ दे और इसके भी पार हो जा।

इस सूत्र को हम समझेंगे। उसके पहले एक दो सवाल और हैं।

जिन मित्र ने यह पूछा है—ज्ञान और स्मृति का, वे ठीक से समझ लें। स्मृति व्यर्थ नहीं है। स्मृति सार्थक है बाहर के जगत के लिए। पांडित्य व्यर्थ नहीं है, सार्थक है, बाहर के जगत के लिए। भीतर के जगत के लिए व्यर्थ है। मगर उल्टी बात, इससे विपरीत बात भी सही है।

अन्तःप्रज्ञा भीतर जगत के लिए सार्थक है, लेकिन बाहर के जगत के लिए सार्थक नहीं है। विज्ञान बाहर के जगत के लिए, धर्म भीतर के जगत के लिए। विज्ञान है स्मृति, धर्म है अनुभव। इसलिए विज्ञान दूसरों के सहारे बढ़ता है, धर्म केवल अपने सहारे। अगर हम न्यूटन को हटा लें तो आइंस्टीन पैदा नहीं हो सकता। हालांकि मजे की बात है कि आइंस्टीन न्यूटन को ही गलत करके आगे बढ़ता है, लेकिन फिर भी न्यूटन के बिना आगे नहीं बढ़ सकता। न्यूटन ने जो कहा है, उसके ही आधार पर आइंस्टीन काम शुरू करता है। फिर पाता है कि वह गलत है। तो फिर छांटता है। लेकिन अगर न्यूटन हुआ ही न हो तो आइंस्टीन कभी नहीं हो सकता, क्योंकि बाहर का ज्ञान सामूहिक है, पूरे समूह पर निर्भर है।

ऐसा समझ लें कि अगर हम विज्ञान की सारी किताबें नष्ट कर दें, तो क्या आप समझते हैं कि आइंस्टीन पैदा हो सकेगा, बिलकुल पैदा नहीं हो सकेगा। अ ब स से शुरू करना पड़ेगा। अगर हम विज्ञान की सब किताबें नष्ट कर दें तो क्या आप सोचते हैं, अचानक कोई आदमी हवाई जहाज बना लेगा? नहीं बना सकता। बैलगाड़ी के चक्के से शुरू करना पड़ेगा, और कोई दस हजार साल लगेंगे, बैलगाड़ी के चक्के से हवाई जहाज तक आने में। और यह दस हजार साल में एक आदमी का काम नहीं होने वाला है, हजारों लोग काम करेंगे। विज्ञान परंपरा है, ट्रेडिशन है। हजारों लोगों के श्रम का परिणाम है।

धर्म? महावीर न हों, बुद्ध न हों, तो भी आप महावीर हो सकते हैं। कोई बाधा नहीं है। जरा भी बाधा नहीं है। क्योंकि मेरे महावीर या मेरे बुद्ध होने में महावीर और बुद्ध के ऊपर उनके कंधे पर खड़े होने की कोई जरूरत नहीं है। कोई खड़ा हो भी नहीं सकता। धर्म के जगत में हर आदमी अपने पैर पर खड़ा होता है, विज्ञान के जगत में हर आदमी दूसरे के कंधे पर खड़ा होता है। इसलिए विज्ञान की शिक्षा दी जा सकती है, धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती। विज्ञान की शिक्षा हमें देनी ही पड़ेगी। अगर हम एक बच्चे को गणित न सिखायें, तो कैसे समझेगा आइंस्टीन को?

धर्म का मामला उल्टा है। अगर हम एक बच्चे को बहुत धर्म सिखा दें तो फिर महावीर को न समझ सकेगा। धर्म

की कोई शिक्षा नहीं हो सकती। शिक्षा बाहर की होती है, भीतर की नहीं होती, भीतर की साधना होती है। बाहर की शिक्षा होती है। शिक्षा से स्मृति प्रबल होती है, साधना से ज्ञान के द्वार टूटते हैं। इसको और इस तरह से समझ लें—कि बाहर के संबंध में हम जो जानते हैं वह नयी बात है, जो कल पता नहीं थी और अगर हम खोजते न तो कभी पता न चलती। भीतर के संबंध में जो हम जानते हैं वह सिर्फ दबी थी। पता थी गहरे में। खोज लेने पर जब हम उसे पाते हैं तो वह कोई नयी चीज नहीं है। बुद्ध से पूछें, महावीर से पूछें, वे कहेंगे, जो हमने पाया, वह मिला ही हुआ था। सिर्फ हमारा ध्यान उस पर नहीं था।

आपके घर में हीरा पड़ा हो, रोशनी न हो, दीया जले, रोशनी हो जाये, हीरा मिल जाये तब आप ऐसा नहीं कहेंगे कि हीरा कोई नई चीज है जो हमारे घर में जुड़ गयी, थी ही घर में। प्रकाश नहीं था, अंधेरा था, दिखायी नहीं पड़ता था।

आत्मज्ञान आपके पास है, सिर्फ ध्यान उस पर पड़ जाये। लेकिन विज्ञान आपके पास नहीं है, उसे खोजना पड़ता है। जैसे हीरे को खदान से खोजकर, निकालकर घर लाना पड़े। इस फर्क के कारण विज्ञान सीखा जा सकता है। जो खदान तक गये हैं, जिन्होंने हीरा खोदा है, कैसे लाये हैं, क्या है तरकीब? वह सब सीखी जा सकती है। धर्म सीखा नहीं जा सकता, साधा जा सकता है। साधने और सीखने में बुनियादी फर्क है। सीखना, सूचनाओं का संग्रह है। साधना, जीवन का रूपांतरण है। अपने को बदलना होता है। इसलिए कम पढ़ा लिखा आदमी भी धार्मिक हो सकता है। लेकिन कम पढ़ा लिखा आदमी वैज्ञानिक नहीं हो पाता। बिलकुल साधारण आदमी, जो बाहर के जगत में कुछ भी नहीं जानता है, वह भी कबीर हो सकता है, कृष्ण हो सकता है, क्राइस्ट हो सकता है।

क्राइस्ट खुद एक बढ़ई के लड़के हैं, कबीर एक जुलाहे के, कुछ जानकारी बाहर की नहीं है। कोई पांडित्य नहीं है, कोई बड़ा संग्रह नहीं है, फिर भी अन्तःप्रज्ञा का द्वार खुल सकता है। क्योंकि जो पाने जा रहे हैं, वह भीतर छिपा ही हुआ है, थोड़े से खोदने की बात है। हीरा पास है, मुट्ठी बंद है, उसे खोल लेने की बात है। यह जो मुट्ठी खोलना है, यह साधना है। हीरा क्या है, कहां छिपा है, किस खदान में मिलेगा, कैसे खोदा जायेगा, इन सबकी जानकारी बाच्ह्य सूचना है। शास्त्रों में अगर हम यह भेद कर लें तो हम शास्त्रों को बचाने में सहयोगी हो जायेंगे, अन्यथा हमारे सब शास्त्र डूब जायेंगे। क्योंकि कृष्ण के मुंह से ऐसी बातें निकलती हैं जो जानकारी की हैं। वह गलत होंगी आज नहीं कल। महावीर ऐसी बातें बोलते हैं, जो जानकारी की हैं, वह गलत हो जायेंगी।

विज्ञान के जगत में कोई कभी सदा सही नहीं हो सकता। रोज विज्ञान आगे बढ़ेगा और अतीत को गलत करता जायेगा। बुद्ध ने ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जायेंगी। जीसस ने, मुहम्मद ने, ऐसी बातें कही हैं जो गलत हो जायेंगी। लेकिन इससे कोई भी धर्म का संबंध नहीं है। धर्मशास्त्र में दोनों बातें हैं, वे भी जो भीतर से आयी हैं, और वे भी जो बाहर से आयी हैं। अगर भविष्य में हमें धर्मशास्त्र की प्रतिष्ठा बचानी हो तो हमें धर्मशास्त्र के विभाजन करने शुरू कर देने चाहिए। जानकारी एक तरफ हटा देनी चाहिए, अनुभव एक तरफ।

अनुभव सदा सही रहेगा, जानकारी सदा सही नहीं रहेगी।

तो मैं कुछ जानकारी की बातें आपसे कहता हूं। जरूरी नहीं है कि आपसे कहूं, और आपकी तैयारी बढ़ जाये तो नहीं कहूंगा। लेकिन जहां आप हैं वहां जो जानकारी की बातें हैं वही आपकी समझ में आती हैं। वह जो अनुभव की बातें कहता हूं वह तो आपको सुनायी ही नहीं पड़तीं। इस आशा में जानकारी की बात कहता हूं कि शायद उसी के बीच में एकाध अनुभव की बात भी आपके भीतर प्रवेश हो जाये। वह जानकारी की बात करीब-करीब ऐसी है जैसी एक कड़वी दवा की गोली पर थोड़ी शक्कर लगा दी जाये। वह शक्कर देने के लिए आपको नहीं लगायी गयी है, उस शक्कर के पीछे कुछ छिपा है जो शायद साथ चला जाये। अगर आप समझदार हैं तो शक्कर लगाने की जरूरत नहीं है, दवा सीधी ही दी जा सकती है। लेकिन दवा थोड़ी कड़वी होगी। उसको समझदार ले सकेगा, बाल-बुद्धि के लोग नहीं ले सकेंगे।

सत्य, वह जो अनुभव का सत्य है वह थोड़ा कड़वा होगा। क्योंकि वह आपकी जिंदगी के विपरीत होगा। उसे आप तक पहुंचाना हो तो जानकारी केवल एक साधन है।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या सिद्ध पुरुष को भी सोये हुए लोगों के बीच रहने में खतरा है, या केवल साधकों के

लिए यह निदच्श है?

सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है, क्योंकि वह मिट ही गया। खतरा तो उसको है जो अभी है। ऐसा समझें, कि क्या बीमारों के बीच मरे हुए आदमी को रहने में कोई खतरा है? कोई बीमारी न लग जाये। लगेगी नहीं अब। मरे हुए आदमी को बीमारी नहीं लगती। चारों तरफ प्लेग हो, चारों तरफ हैजा हो, मरे हुए आदमी को बिठा दें बीच में आसन लगाकर, वे मजे से बैठे रहेंगे। न हैजा पकड़ेगा, न प्लेग पकड़ेगी। क्योंकि बीमारी लगने के लिए होना जरूरी है, पहली शर्त। वह मरा हुआ आदमी है ही नहीं अब। लगेगी किसको? सिद्ध पुरुष को तो कोई खतरा नहीं है। क्योंकि सिद्ध पुरुष एक गहरे अर्थों में मर गया है, भीतर से वह अहंकार मर गया, जिसको बीमारियां लगती हैं। लोभ लगता है, क्रोध लगता है। वह अहंकार अब नहीं है। अब सिद्ध पुरुष को कोई खतरा नहीं है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जो अब नहीं है। खतरा तो रास्ते पर है। जब तक आप सिद्ध नहीं हो गये हैं तब तक खतरा है।

मगर एक बड़े मजे की बात है अगर आपको ऐसा पता चलता है कि मैं सिद्ध हो गया हूं, तो अभी खतरा है। क्योंकि अगर आपको पता चलता है कि मैं मर गया हूं तो अभी आप जिंदा हैं। आंख बंद करके बैठे और आप सोच रहे हैं कि मैं मर गया हूं, अब मुझे कोई बीमारी लगनेवाली नहीं है तो आप पक्का समझना, अभी सावधानी बरतें। अभी काफी जिंदा हैं, अभी बीमारी लगेगी।

सिद्ध पुरुष का अर्थ है—जो हवा पानी की तरह हो गया। अब जिसे कुछ भी नहीं है, जिसे यह भी नहीं है कि मैं सिद्ध पुरुष हो गया हूं। ऐसा भाव ही मैं का जहां खो गया है वहां कोई बीमारी नहीं है। क्योंकि बीमारी लगने के लिए मैं की पकड़ने की क्षमता चाहिए, और मैं बीमारी पकड़ने का मैगनेट है। वह जो मैं का भाव है, जो अहम है, वह है मैगनेट, वह बीमारियों को खींचता है। और आप ऐसा मत सोचना कि दूसरा ही आपको बीमारी दे देता है। आप लेने के लिए तैयार होते हैं तभी देता है।

आपने कभी खयाल किया होगा, प्लेग है और डाक्टर घूमता रहता है और उसको प्लेग नहीं पकड़ती, और आपको पकड़ लेती है। क्या मामला है? खुद चिकित्सक बहुत परेशान हुए हैं इस बात से कि डाक्टर है, वहीं घूम रहा है। दिन भर हजारों मरीजों की सेवा कर रहा है, इंजेक्शन लगा रहा है, भाग-दौड़ कर रहा है। उन्हीं कीटाणुओं के बीच में भटक रहा है। जहां आपको बीमारी पकड़ती है, उसे बीमारी नहीं पकड़ती। कारण क्या है? कारण सिर्फ एक है कि डाक्टर की उत्सुकता मरीज में है, अपने में नहीं है। इसलिए मैं क्षीण हो जाता है। वह उत्सुक है दूसरे को ठीक करने में। वह इतना व्यस्त है दूसरे को ठीक करने में कि उसके होने की उसे सुविधा ही नहीं है जहां बीमारी पकड़ती है। वह नान-रिसेप्टिव हो जाता है, क्योंकि उसको पता ही नहीं रहता है कि मैं हूं।

जब बीमारी जोर की होती है, महामारी होती है, तो डाक्टर अपने को भूल ही जाता है। न भूले, तो बीमार पड़ेगा। यह भूलना बाहर की बीमारी तक को रोक देता है। वे जो दूसरे लोग हैं चारों तरफ, वे भयभीत हो जाते हैं कि कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाये। यह कहीं बीमारी मुझे न पकड़ जाये, यह मैं भाव ही बीमारी को पकड़ने का द्वार बन जाता है। रिसेप्टिव हो जाता है।

यह तो बाहर की बीमारी के संबंध में है, भीतर की बीमारी के संबंध में तो और जटिलता हो जाती है।

ये सारी सूचनाएं साधक के लिए हैं। यही सूचनाएं नहीं, सूचनाएं मात्र साधक के लिए हैं। सिद्ध पुरुष के लिए क्या सूचना है। सिद्ध पुरुष का अर्थ ही यह है कि जिसको करने को अब कुछ न बचा। सिद्ध का अर्थ क्या होता है? सिद्ध का अर्थ होता है जिसे करने को कुछ न बचा, सब पूरा हो गया, सब सिद्ध हो गया। उसके लिए तो कोई भी सूचना नहीं है। ये सारी सूचनाएं मार्ग पर चलनेवाले के लिए हैं, साधक के लिए हैं।

एक और प्रश्न है।

आशुप्रज्ञ होना प्रकृति-दत्त आकस्मिक घटना है या साधना-जन्य परिणाम?

प्रकृति-दत्त घटना नहीं है, आकस्मिक घटना नहीं है, साधना-जन्य परिणाम है। प्रकृति है अचेतन। आपको भूख लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आपको प्यास लगती है, यह प्रकृति-दत्त है। आप सोते हैं रात, यह प्रकृति-दत्त है। आप

जागते हैं सुबह, यह प्रकृति-दत्त है। यह सब प्राकृतिक है, यह अचेतन है। इसमें आपको कुछ भी नहीं करना पड़ा है, यह आपने पाया है। यह आपके शरीर के साथ जुड़ा हुआ है। लेकिन एक आदमी ध्यान करता है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। अगर आदमी न करे तो अपने आप यह कभी भी न होगा। भूख लगेगी अपने आप, प्यास लगेगी अपने आप, ध्यान अपने आप नहीं लगेगा। कामवासना जगेगी अपने आप, मोह के बंधन निर्मित हो जायेंगे अपने आप, लोभ पकड़ेगा, क्रोध पकड़ेगा अपने आप। धर्म नहीं पकड़ेगा अपने आप। इसे ठीक से समझ लें।

धर्म निर्णय है, संकल्प है, चेष्टा है, इन्टेंशन है। बाकी सब इंसटिंक्ट है। बाकी सब प्रकृति है। आपके जीवन में जो अपने आप हो रहा है, वह प्रकृति है। जो आप करेंगे तो ही होगा और तो भी बड़ी मुश्किल से होगा। वह धर्म है। जो आप करेंगे, तभी होगा, बड़ी मुश्किल से होगा क्योंकि आपकी प्रकृति पूरा विरोध करेगी कि यह क्या कर रहे हो? इसकी क्या जरूरत है? पेट कहेगा, ध्यान की क्या जरूरत है? भोजन की जरूरत है। शरीर कहेगा, नींद की जरूरत है, ध्यान की क्या जरूरत है? काम-ग्रंथियां कहेंगी कि काम की, प्रेम की जरूरत है। धर्म की क्या जरूरत है?

आपके शरीर को अगर सर्जन के टेबल पर रखकर पूरा परीक्षण किया जाये तो कहीं भी धर्म की कोई जरूरत नहीं मिलेगी, किसी ग्रंथि में। सब जरूरतें मिल जायेंगी। किडनी की जरूरत है, फेफड़े की जरूरत है, मस्तिष्क की जरूरत है, वह सब जरूरतें सर्जन काटकर अलग-अलग बता देगा कि किस अंग की क्या जरूरत है, लेकिन एक भी अंग मनुष्य के शरीर में ऐसा नहीं जिसकी जरूरत धर्म है।

तो धर्म बिलकुल गैरजरूरत है। इसीलिए तो जो आदमी केवल शरीर की भाषा में सोचता है वह कहता है, धर्म पागलपन है, शरीर के लिए कोई जरूरत है नहीं। बिहेवियरिस्ट्स हैं, शरीरवादी मनोवैज्ञानिक हैं; वे कहते हैं, क्या पागलपन है? धर्म की कोई जरूरत ही नहीं है। और जरूरतें हैं, धर्म की क्या जरूरत है? समाजवादी हैं, कम्युनिस्ट हैं, वे कहते हैं, धर्म की क्या जरूरत है? और सब जरूरतें हैं। और जरूरतें समझ में आती हैं। क्योंकि उनको खोजा जा सकता है। धर्म की जरूरत समझ में नहीं आती। कहीं कोई कारण नहीं है। इसलिए पशुओं में सब है जो आदमी में है। सिर्फ धर्म नहीं है। और जिस आदमी के जीवन में धर्म नहीं है, उसको अपने को आदमी कहने का कोई हक नहीं है। क्योंकि पशु के जीवन में सब है जो आदमी के जीवन में है। ऐसे आदमी के जीवन में, जिसके जीवन में धर्म नहीं है, वह कहां से अपने को अलग करेगा पशु से?

पशु प्रकृति-जन्य है। आदमी भी प्रकृति-जन्य है, जब तक धर्म उसके जीवन में प्रवेश नहीं करता। जिस क्षण धर्म जीवन में प्रवेश करता है, उसी दिन मनुष्य प्रकृति से परमात्मा की तरफ उठने लगा।

प्रकृति है निम्नतम, अचेतन छोर; परमात्मा है अंतिम, आत्यंतिक चेतन छोर। जो अपने आप हो रहा है, अचेतना में हो रहा है, वह है प्रकृति। जो होगा चेष्टा से, जागरूक प्रयत्न से, वह है धर्म। और जिस दिन यह प्रश्न इतना बड़ा हो जायेगा कि अचेतन कुछ भी न रह जायेगा, भूख भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, प्यास भी लगेगी तो मेरी आज्ञा से, चलूंगा तो मेरी आज्ञा से, उठूंगा तो मेरी आज्ञा से, शरीर भी जिस दिन प्रकृति न रह जायेगा, अनुशासन बन जायेगा, उस दिन व्यक्ति परमात्मा हो गया।

अभी तो हम जो भी कर रहे हैं, सोचते भी हैं तो, मंदिर भी जाते हैं तो, प्रार्थना भी करते हैं तो, खयाल कर लेना, प्रकृति-जन्य तो नहीं है। हमारा तो धर्म भी प्रकृति-जन्य होगा। इसलिए धर्म नहीं होगा, धोखा होगा। जिसको हम धर्म कहते हैं, वह धोखा है धर्म का। इसलिए जब आप दुख में होते हैं तो धर्म की याद आती है। सुख में नहीं आती।

बर्ट्रन्ड ने तो कहा है कि जब तक दुख है, तभी तक धर्मगुरु भगवान से प्रार्थना करें कि बचे हुए हैं। जिस दिन दुख नहीं होगा उस दिन धर्मगुरु नहीं होगा। वह ठीक कहता है। निन्यानबे प्रतिशत बात ठीक है। कम से कम आपके धर्मगुरु तो नहीं बच सकते, अगर दुख समाप्त हो जाये। क्योंकि दुखी आदमी उनके पास जाता है। दुख जब होता है तब आपको धर्म की याद आती है, क्यों? क्योंकि आप सोचते हैं कि अब यह दुख मिटता नहीं दिखता है, अब कोई उपाय नहीं दिखता मिटाने का, तो अब धर्म की तलाश में जायें। जब आप सुखी होते हैं तो निश्चिंत हैं, तब कोई बात नहीं। आप ही अपने मसले हल कर रहे हैं, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं है। जब आपकी समस्या कहीं ऐसी उलझ जाती

है—प्रकृतिगत समस्या—जो आप हल नहीं कर पाते, तब आप परमात्मा की तरफ जाते हैं।

आदमी की असमर्थता उसका धर्म है? आदमी की नपुंसकता उसका धर्म है? उसकी विवशता? जब वह कुछ नहीं कर पाता तब वह परमात्मा की तरफ चल पड़ता है। तब तो उसका मतलब यह हुआ कि वह परमात्मा की तरफ भी किसी प्रकृति-जन्य प्यास या भूख को पूरा करने जा रहा है। अगर आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं कि मेरे लड़के की नौकरी लगा दे, कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दे, तो उसका अर्थ क्या हुआ? उसका अर्थ हुआ कि आपकी भूख तो प्रकृति-जन्य है, और आप परमात्मा के सामने हाथ जोड़कर खड़े हैं। आप परमात्मा से भी थोड़ी सेवा लेने की उत्सुकता रखते हैं। थोड़ा अनुगृहीत करना चाहते हैं उसको भी, कि थोड़ा सेवा का अवसर देना चाहते हैं। इसका, ऐसे धर्म का कोई भी संबंध धर्म से नहीं है।

यह जो आशुप्रज्ञ होना है, यह प्रकृति-दत्त नहीं है। यह आपकी इन्सटिंक्ट, आपकी मूल वृत्तियों से पैदा नहीं होगा। कब होगा पैदा यह? अगर यह प्रकृति से पैदा नहीं होगा तो फिर पैदा कैसे होगा? यह कठिन बात मालूम होती है। यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से ऊब जाते हैं, यह तब पैदा होता है जब हम प्रकृति से भर जाते हैं। यह तब पैदा होता है जब हम देख लेते हैं कि प्रकृति में कुछ भी पाने को नहीं है। यह दुख से पैदा नहीं होता। जब हमें सुख भी दुख जैसा मालूम होने लगता है, तब पैदा होता है। यह अतृप्ति से पैदा नहीं होता है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

प्रकृति की सब भूख प्यास कमी से पैदा होती है। शरीर में पानी की कमी है तो प्यास पैदा होती है। शरीर में भोजन की कमी है तो भूख पैदा होती है। शरीर में वीर्य ऊर्जा ज्यादा इकट्ठी हो गयी तो कामवासना पैदा होती है। फेंको उसे बाहर, उलीचो उसे, फेंक दो उसे, खाली हो जाओ, ताकि फिर भर सको।

शरीर की दो तरह की जरूरतें हैं—भरने की और निकालने की। जो चीज नहीं है उसे भरो, जो चीज ज्यादा हो जाये उसे निकालो। यह शरीर की कुल दुनिया है। वीर्य भी एक मल है। जब ज्यादा हो जाये तो उसे फेंक दो बाहर, नहीं तो वह बोझिल करेगा, सिर को भारी इसलिए फ्रायड ने तो कहा है कि संभोग से ज्यादा अच्छा ट्रैंक्विलाईजर कोई भी नहीं है। नींद के लिए अच्छी दवा है। क्योंकि अगर शक्ति भीतर है तो सो न पायेंगे। उसे फेंक दो बाहर, हल्के हो जाओ, खाली हो जाओ। नींद लग जायेगी।

तो दो ही जरूरतें है—जब कमी हो तो भरो, जब ज्यादा हो जाये तो निकाल दो। इसलिए दुनिया में इतनी कामवासना दिखायी पड़ रही है आज, उसका कारण यह है कि भरने की जरूरतें काफी दूर तक काफी लोगों की पूरी हो गयी हैं, निकालने की जरूरत बढ़ गयी है, भूखा आदमी है, गरीब आदमी है, मकान नहीं, कपड़ा नहीं, प्रतिपल भरने की चिंता है, तो निकालने की चिंता का सवाल नहीं उठता। इसलिए आज अगर अमरीका में एकदम कामुकता है, तो उसका कारण आप यह मत समझना कि अमरीका अनैतिक हो गया है। जिस दिन आप भी इतनी समृद्धि में होंगे, इतनी ही कामुकता होगी। क्योंकि जब भरने का काम पूरा हो गया, तब निकालने का ही काम बचता है। जब भोजन की कोई जरूरत न रही, तो सिर्फ संभोग की ही, सेक्स की ही जरूरत रह जाती है, और कोई जरूरत बचती नहीं है।

भोजन है भरना, और संभोग है निकालना। तो जब भोजन ज्यादा होगा, तो तकलीफ शुरू होगी। इसलिए सभी सभ्यताएं जब भोजन की जरूरत पूरी कर लेती हैं, तब कामुक हो जाती हैं। इसलिए हम बड़े हैरान होते हैं कि समृद्ध लोग अनैतिक क्यों हो जाते हैं ! गरीब आदमी सोचता है, हम बड़े नैतिक हैं। अपनी पत्नी से तृप्त हैं। ये बड़े आदमी, समृद्ध आदमी, तृप्त क्यों नहीं होते, शांत क्यों नहीं हो जाते? ये क्यों भागते रहते हैं।

मोरक्को का सुलतान था, उसके पास अनगिनत पत्नियां थीं, कभी गिनी नहीं गयीं। लेकिन अनगिनत होंगी—उसके पास दस हजार बच्चे पैदा करने की कामना थी, उसकी। काफी दूर तक सफल हुआ। एक हजार छप्पन लड़के और लड़कियां उसने पैदा किये। गरीब आदमी को लगेगा, यह क्या पागलपन है! लेकिन एक सुलतान को नहीं लगेगा। भरने की जरूरतें सब पूरी हैं, जरूरत से ज्यादा पूरी हैं, अब निकालने की ही जरूरत रह गयी है।

यह जो स्थिति है, यह तो प्रकृतिगत है। धर्म कहां से शुरू होता है? धर्म वहां से शुरू होता है, जहां भरना भी व्यर्थ हो गया, निकालना भी व्यर्थ हो गया। जहां दुख तो व्यर्थ हो ही गये, सुख भी व्यर्थ हो गये। जहां सारी प्रकृति व्यर्थ

मालूम होने लगी।

एक स्त्री से असंतुष्ट हैं तो आप दूसरी स्त्री की तलाश पर जायेंगे। लेकिन अगर स्त्री-मात्र से असंतुष्ट हो गये, तब धर्म का प्रारंभ होगा। इस भोजन से असंतुष्ट हैं, दूसरे भोजन की तलाश में जायेंगे। लेकिन भोजन मात्र, एक व्यर्थ का क्रम हो गया, तो धर्म की खोज शुरू होगी। यह सुख भोग लिया, इससे असंतुष्ट हो गये तो दूसरे सुख की खोज शुरू होगी। सब सुख देखे, और व्यर्थ पाये, तो धर्म की खोज शुरू होगी। जहां प्रकृति व्यर्थता की जगह पहुंच जाती है, मीनिंगलेसनेस, वहां आदमी आशुप्रज्ञता की तरफ, उस अंतस चैतन्य, उस भीतरी ज्योति की तरफ यात्रा करता है। क्यों?

क्योंकि प्रकृति है बाहर। जब बाहर से कोई व्यर्थता अनुभव करता है तो भीतर की तरफ आना शुरू होता है। एक है जगत, जो खाली है उसे भरो, जो भरा है उसे खाली करो ताकि फिर भर सको, ताकि फिर खाली कर सको। एक है जगत इस सर्कल, व्हिसियस सर्कल का। और एक और जगत है, कि बाहर व्यर्थ हो गया, भीतर की तरफ चलो। प्रकृति व्यर्थ हो गयी, परमात्मा की तरफ चलो।

इसलिए प्रकृति की ही मांग के लिए अगर आप परमात्मा की तरफ जाते हों, तो जानना कि अभी गये नहीं। जिस दिन आप परमात्मा के लिए ही परमात्मा की तरफ जाते हैं, उस दिन जानना कि धर्म का प्रारंभ हुआ।

अब हम सूत्र लें।

'जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, और अलिप्त रहता है।'

कमल को देखा आपने? कमल हमारा बड़ा पुराना प्रतीक है। महावीर बात करते, कृष्ण बात करते, बुद्ध बात करते, उनकी बातों में कितने ही फर्क पड़ते हों; लेकिन कमल जरूर आ जाता है।

इस मुल्क में तीन बड़े धर्म पैदा हुए, हिन्दू, जैन, बौद्ध, और फिर सैकड़ों महत्वपूर्ण संप्रदाय पैदा हुए। लेकिन अब तक एक सदगुरु ऐसा नहीं हुआ जो कमल को भूल गया हो। कमल की बात करनी ही पड़ती है। कुछ मामला है, कुछ एक सत्य भीतर सब धर्मों की आवाज के भीतर दौड़ता हुआ एक स्वर है—चाहे कोई भी हो सिद्धांत। अलिप्तता मार्ग है, इसलिए कमल की बात आ जाती है।

भारत के बाहर जिन मुल्कों में कमल नहीं होता, उन मुल्कों के सदगुरुओं को बड़ी कठिनाई रही है। कोई उदाहरण नहीं है उनके पास संन्यासी का, कि संन्यासी का क्या अर्थ है?

संन्यासी का अर्थ है—कमलवत। कमल के पत्ते पर बूंद गिरती है पानी की, पड़ी रहती है, मोती की तरह चमकती है। जैसी पानी में भी कभी नहीं चमकी थी, वैसी कमल के पत्ते पर चमकती है। मोती हो जाती है। जब सूरज की किरण पड़ती, तो कोई मोती भी क्या; फीका हो जाये, वैसी कमल के पत्ते पर बूंद चमकती है। लेकिन पत्ते को कहीं छूती नहीं, पत्ता अलिप्त ही बना रहता है। ऐसी चमकदार बूंद, ऐसा मोती जैसा अस्तित्व उसका, और पत्ता अलिप्त बना रहता है। भागता भी नहीं छोड़कर पानी को, पानी में ही रहता है। पानी में ही उठता है, पानी के ही ऊपर जाता है और कभी छूता नहीं, अछूता बना रहता है, कुआंरा बना रहता है।

एक यह अलिप्तता का जो भाव है, यह संसार के बीच संन्यास का अर्थ है। इसलिए कमल प्रतीक हो गया। पर कमल एक और कारण से भी प्रतीक है। मिट्टी से पैदा होता है, गंदे कीचड़ से पैदा होता है। ऊपर उठ जाता है और कमल हो जाता है। कमल में और कीचड़ में कितना फासला है! जितना फासला हो सकता है दो चीजों में। कहां कमल का निदाच्ष अस्तित्व! कहां कमल का सौदर्य! और कहां कीचड़! पर कीचड़ से ही कमल निर्मित होता है।

इस कारण से भी कमल की बड़ी मीठी चर्चा जारी रही सदियों-सदियों तक। आदमी संसार में पैदा होता है कीचड़ में, पर कमल हो सकता है। कीचड़ में ही पैदा होना पड़ता है। चाहे महावीर हों, चाहे बुद्ध हों, कीचड़ में ही पैदा होते हैं। चाहे आप हों, चाहे कोई हो—सभी को कीचड़ में पैदा होना पड़ता है। संसार कीचड़ है। थोड़े से लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं और कमल हो जाते हैं। वे ही लोग इस कीचड़ के पार जाते हैं जो अलिप्तता को साध लेते हैं।

अलिप्तता ही कीचड़ के पार जाने की पगडण्डी है। उससे ही वे दूर हो पाते हैं। कीचड़ नीचे रह जाती है, कमल ऊपर आ जाता है। जिस दिन कमल ऊपर आ जाता है, कमल को देखकर कीचड़ की याद भी नहीं आती। कभी कमल

आपको दिखायी पड़े, कीचड़ की याद आती है? वह याद भी नहीं आती। इसलिए बड़ी अदभुत घटनाएं घटीं।

जीसस के माननेवाले कहते हैं कि जीसस सामान्य संभोग से पैदा नहीं हुए, कुआंरी मां से पैदा हुए हैं। यह बात बड़ी मीठी है और बड़ी गहरी है। असल में जीसस को देखकर ऐसा नहीं मालूम पड़ता कि दो व्यक्तियों की कामवासना से पैदा हुए हों। कमल को देखकर कहां कीचड़ का खयाल आता है। जीसस को देखकर खयाल नहीं आता कि दो व्यक्ति जानवरों की तरह कामवासना में गुंथ गये हों, और उनके शरीर की बेचैनी, और उनके शरीर की अस्त-व्यस्तता, अराजकता, पशुता और उनके शरीर की वासना की दुर्गन्ध की कीचड़ से जीसस पैदा हुए।

कमल को देखकर कीचड़ का खयाल ही भूल जाता है। और अगर हमें पता ही न हो कि कीचड़ से कमल पैदा होता है, और जिस आदमी ने कभी कीचड़ न देखी हो और कमल ही देखा हो, वह कहेगा यह असंभव है कि यह कमल और कीचड़ से पैदा हो जाये।

इसलिए जीसस को देखकर अगर लोगों को लगा हो कि ऐसा व्यक्ति कुंआरी मां से ही पैदा हो सकता है, तो वह लगना वैसा ही है, जैसे कमल को देखकर किसी को लगे कि ऐसा कमल जैसा फूल तो मक्खन से ही पैदा हो सकता है, कीचड़ से नहीं। लेकिन मक्खन से कोई कमल पैदा नहीं होता। अभी तक कोई मक्खन कमल पैदा नहीं कर पाया। कमल कीचड़ से ही पैदा होता है। असल में पैदा होने का ढंग कीचड़ में ही संभव है। इसलिए हमने कहा जो एक दफा कमल हो जाता है, फिर वह दुबारा पैदा नहीं होता, क्योंकि दुबारा पैदा होने का कोई उपाय नहीं रहा। अब वह कीचड़ में नहीं उतर सकता है इसलिए दुबारा पैदा नहीं हो सकता। इसलिए हम कहते हैं, उसकी जन्म-जन्म की यात्रा समाप्त हो जाती है, जिस दिन व्यक्ति कमल हो जाता है। कमल तक यात्रा है कीचड़ की। कीचड़ कमल हो सकती है लेकिन फिर कमल कीचड़ नहीं हो सकता। वापस गिरने का कोई उपाय नहीं है।

इसलिए भी कमल बड़ा मीठा प्रतीक हो गया। अगर हम भारतीय चेतना का, पूवय चेतना का कोई एक प्रतीक खोजना चाहें तो वह कमल है।

महावीर कहते हैं—'जैसे कमल शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता।'

बड़ी मजे की बात कही है। गंदे जल को तो छूता ही नहीं—निर्मल, शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता। जिसको छूने में कोई हर्जा भी न होगा, लाभ भी शायद हो जाये, उसको भी नहीं छूता। छूता ही नहीं। लाभ-हानि का सवाल नहीं है। गंदे और पवित्र का भी सवाल नहीं है। छूना ही छोड़ दिया है। पाप को तो छूता ही नहीं, पुण्य को भी नहीं छूता है।

'शरद-काल के निर्मल जल को भी नहीं छूता, जैसे कमल, अलिप्त रहता है। वैसे ही संसार से अपनी समस्त आसक्तियां मिटाकर सब प्रकार के स्नेह-बंधनों से रहित हो जा गौतम!'

वह गौतम को कह रहे हैं कि ऐसा ही तू भी हो जा। जहां-जहां हमारा स्नेह है, वहां-वहां स्पर्श है, स्नेह हमारे छूने का ढंग है। जब आप स्नेह से किसी को देखते हैं, छू लिए, चाहे कितने ही दूर हों।

एक आदमी क्रोध से आकर छुरा मार दे आपको, तो भी छूता नहीं है। छुरा आपकी छाती में चला जाये, लहूलुहान हो जाये सब, तो भी आपको छूता नहीं है। दूर है बहुत। और एक आदमी हजारों मील दूर हो और आपकी याद आ जाये स्नेह-सिक्त, तो छू लेता है, उसी वक्त। स्नेह स्पर्श है। जब आप स्नेह से किसी की तरफ देखते हैं, तब आपने अलिंगन कर ही लिया, छू लिया। छूना हो गया। मन छू ही गया।

महावीर कहते हैं, जब तक यह स्पर्श चल रहा है बाहर, यह आकांक्षा चल रही है कि किसी का स्पर्श सुख देगा, यही स्नेह का अर्थ है। तब तक व्यक्ति संसार में ही होगा संन्यास में नहीं हो सकता।

जब तक कमल कीचड़ को छूने को आतुर है, तब तक दूर कैसे जायेगा, उठेगा कीचड़ से पार कैसे? जब तक कमल खुद ही छूने को आतुर है, तब तक मुक्त कैसे होगा। स्नेह बंधन है। जहां-जहां हम छूने की आकांक्षा से भरते हैं, जहां-जहां हम दूसरे में, दूसरे से सुख पाने की आकांक्षा से भरते हैं, वहां-वहां हम लिप्त हो जाते हैं। असल में, जहां दूसरा महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं।

जहां दूसरे पर ध्यान जाता है, वहीं हम लिप्त हो जाते हैं। आपका ध्यान चारों तरफ तलाश करता रहता है कि किसको देखें, किसको छुएं। आपका ध्यान चारों तरफ दौड़ता रहता है। जैसे आक्टोपस के पंजे चारों तरफ ढूंढते रहते हैं किसी को पकड़ने को। आपका ध्यान आपकी सारी इंद्रियों से बाहर जाकर तत्पर रहता है, किसको छुएं! आप अपने को रोकते होंगे, संभालते होंगे। जरूरी है , उपयोगी है, सुविधापूर्ण है। लेकिन आपका ध्यान भागता रहता है चारों तरफ। आप अपने मन की खोज करेंगे तो पायेंगे कि कहां-कहां आप लिप्त हो जाना चाहते हैं, कहां-कहां आप छू लेना चाहते हैं।

यह जो भागता हुआ, चारों तरफ बहता हुआ मन है आपका, यह जो सारे संसार को छू लेने के लिए आतुर मन है आपका वायरन ने कहीं कहा है कि एक स्त्री से नहीं चलेगा, मन तो सारी स्त्रियों को ही भोग लेना चाहता है। रिल्के ने अपने एक गीत में कड़ी लिखी है और कहा है कि यह नहीं है कि एक स्त्री को मैं मांगता हूं। एक स्त्री के द्वारा मैं सारी स्त्रियों को मांगता हूं। और ऐसा भी नहीं है कि सारी स्त्रियों को भोग लूं तो भी तृप्त हो जाऊंगा। तब भी मांग जारी रहेगी। छूने की मांग है, वह फैलती चली जाती है—स्त्री हो या पुरुष हो, धन हो या मकान हो—वह फैलती चली जाती है।

महावीर कहते हैं, अलिप्त हो जा समस्त आसक्तियां मिटाकर, सब तरफ से अपने स्नेह-बंधन को तोड़ ले। यह जो फैलता हुआ वासना का विस्तार है, इसे काट दे।

यह कैसे कटेगा?

तो महावीर कहते हैं, गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।

प्रमाद का अर्थ है, बेहोशी। प्रमाद का अर्थ है, गैर-ध्यानपूर्वक जीना, प्रमत्त, मूर्छा में। यह जब-जब भी हम संबंध निर्मित करते हैं स्नेह के, तब तक मूर्छा में ही निर्मित करते हैं। यह कोई होश में निर्मित नहीं करते। होशपूर्वक जो व्यक्ति जीयेगा, वह कोई स्नेह के बंधन निर्मित नहीं करेगा। इसका यह मतलब नहीं है कि वह पत्थर हो जायेगा, और उससें प्रेम नहीं होगा। सच तो यह है कि उसी में प्रेम होगा, लेकिन उसका प्रेम अलिप्त होगा। यह कठिनतम घटना है जगत में, प्रेम का और अलिप्त होना!

महावीर जब गौतम को यह कह रहे हैं, तो यह बड़ा प्रेमपूर्ण वक्तव्य है कि गौतम, तू ऐसा कर कि मुक्त हो जा, कि तू ऐसा कर गौतम कि तू पार हो जाए। इसमें प्रेम तो भारी है, लेकिन स्नेह जरा भी नहीं है, मोह जरा भी नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता तो महावीर छाती पीटकर रोनेवाले नहीं है। अगर गौतम मुक्त नहीं होता, तो यह कोई महावीर की चिंता नहीं बन जायेगी। अगर गौतम महावीर की नहीं सुनता तो इसमें महावीर कोई परेशान नहीं हो जायेंगे।

महावीर जब गौतम से कह रहे हैं कि तू मुक्त हो जा, और ये करुणापूर्ण वचन बोल रहे हैं, तब वे ठीक कमल की भांति हैं, जिस पर पानी की बूंद पड़ी है। बिलकुल निकट है बूंद, और बूंद को यह भ्रम भी हो सकता है कि कमल ने मुझे छुआ। और मैं मानता हूं, कि बूंद को होता ही होगा यह भ्रम। क्योंकि बूंद यह कैसे मानेगी कि जिस पत्ते पर मैं पड़ी थी उसने मुझे छुआ नहीं। जिस पत्ते पर मैं रही हूं, जिस पत्ते पर मैं बसी हूं, जिस पत्ते पर मेरा निवास रहा, उस पत्ते ने मुझे नहीं छुआ, यह बूंद कैसे मानेगी! बूंद को यह भ्रम होता ही होगा कि पत्ते ने मुझे छुआ। पत्ता बूंद को नहीं छूता है।

गौतम को भी लगता होगा कि महावीर मेरे लिए चिंतित हैं। महावीर चिंतित नहीं हैं। महावीर जो कह रहे हैं, इसमें कोई चिंता नहीं है, सिर्फ करुणा है। ध्यान रहे, करुणा अपेक्षारहित प्रेम है। मोह, अपेक्षा से परिपूर्ण प्रेम है। अपेक्षा जहां है वहां स्पर्श हो जाता है। जहां अपेक्षा नहीं है, वहां कोई स्पर्श नहीं होता। प्रमाद है स्पर्श का द्वार, आसक्ति का द्वार, मूर्छित।

कभी आपने खयाल किया, जब आप किसी के प्रेम में पड़ते हैं तो होश में नहीं रह जाते। बेहोशी पकड़ लेती है। बायोलाजिस्ट कहते हैं कि इसका कारण ठीक वैसा ही है, जैसा शराब पीकर आपके पैर डगमगाने लगते हैं, वैसा ही है। या एल्र‌एस्र‌डी, मारिजुआना लेकर जगत बहुत रंगीन मालूम होने लगता है। एक साधारण-सी स्त्री या एक साधारण-सा पुरुष, जब आप उसके प्रेम में पड़ जाते हैं, तो एकदम अप्सरा हो जाती है, देवता हो जाता है।

एक साधारण-सी स्त्री अचानक, जिस दिन आप प्रेम में पड़ जाते हैं। कल भी इस रास्ते से गुजरी थी, परसों भी

इस रास्ते से गुजरी थी, हो सकता है, बचपन से आप उसे देखते रहे हों, और कभी नहीं सोचा था कि यह स्त्री अप्सरा है। अचानक एक दिन कुछ हो जाता है आपके भीतर। आपको भी पता नहीं चलता क्या होता है, और एक स्त्री अप्सरा हो जाती है। उस स्त्री का सब कुछ बदल जाता है, मेटामाफार्चसिस हो जाती है। उस स्त्री में आपको वह सब दिखायी पड़ने लगता है, जो आपको कभी दिखायी नहीं पड़ा था। सारा संसार उस स्त्री के आसपास, इर्द-गिर्द इकट्ठा हो जाता है। सारे सपने उस स्त्री में पूरे होते मालूम होने लगते हैं। सारे कवियों की कविताएं एकदम फीकी पड़ जाती हैं, वह स्त्री काव्य हो जाती है।

क्या हो जाता है?

बायोलाजिस्ट कहते हैं कि आपके शरीर में भी सम्मोहित करने के केमिकल्स हैं। कोई आदमी ऊपर से एल्रएस्रडी लेता है, एल्रएस्रडी लेने से ही; जब हक्सले ने एल्रएस्रडी लिया तो जिस कुस□ के सामने बैठा था, वह कुस□ एकदम इंद्रधनुषी रंगों से भर गयी। लिया एल्रएस्रडी, भीतर एक केमिकल डाला, उससे सारी आंखें आच्छादित हो गयीं। कुस□—साधारण कुस□, जिसको उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया था, जो उसके घर में सदा से थी, वह उसके सामने रखी थी—उस कुस□ में से रंग-बिरंगी किरणें निकलने लगीं। वह कुस□ एक इंद्रधनुष बन गयी।

हक्सले ने लिखा है, कि उस कुस□ से सुंदर कोई चीज ही नहीं थी उस क्षण में। ऐसा मैंने कभी देखा ही नहीं था। हक्सले ने लिखा है कि क्या कबीर ने जाना होगा अपनी समाधि में, क्या इकहार्ट को पता चला होगा, जब वह कुस□ ऐसी रंगीन हो गयी, स्वग□य हो गयी। देवताओं के स्वर्ग की कुर्सियां फीकी पड़ गयीं। सारा जगत ओछा मालूम पड़ने लगा।

क्या हो गया उस कुस□ को? उस कुस□ को कुछ नहीं हुआ। कुस□ अब भी वही है। हक्सले को कुछ हो गया। हक्सले को भीतर कुछ हो गया। वह जो भीतर केमिकल गया है, खून में दौड़ गया है, उसने हक्सले की मनोदशा बदल दी। हक्सले अब सम्मोहित है। अब यह कुस□ अप्सरा हो गयी। छह घंटे बाद जब नशा उतर गया एल्रएस्रडी का, तो, कुस□ वापस कुस□ हो गयी। कुस□, कुस□ थी ही; हक्सले वापस हक्सले हो गये। फिर कुस□ साधारण है।

इसलिए हनीमून के बाद अगर स्त्री साधारण हो जाये, पुरुष साधारण हो जाये घबराना मत। कुस□, कुस□ हो गयी। कोई आदमी सुहागरात में ही जिंदगी बिताना चाहे तो गलती में है। पूरी रात भी सुहागरात हो जाये तो जरा कठिन है। कब नशा टूट जाये, कुछ कहा नहीं जा सकता।

मुल्ला नसरुद्दीन स्टेशन पर खड़ा था। पत्नी को बिदा कर रहा था। गाड़ी छूट गयी। किसी परिचित ने पूछा कि नसरुद्दीन! पत्नी कहां जा रही है?

मुल्ला ने कहा, 'हनीमून पर, सुहागरात पर।'

मित्र थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहा, 'क्या कहते हो? तुम्हारी ही पत्नी है न?'

मुल्ला ने कहा, 'मेरी ही है।'

'तो अकेली कैसे जा रही है हनीमून पर?'

मुल्ला ने कहा, 'हम पिछले साल हनीमून पर हो आये, यह सस्ता भी था, अलग-अलग जाना, सुविधापूर्ण भी था।'

'और फिर मैंने सुना है कि हनीमून के बाद विवाह फीका हो जाता है। तो हम अलग-अलग हो आये हैं, ताकि विवाह जो है फीका न हो। हनीमून पर हो भी आये हैं नियमानुसार, और हनीमून अभी हुआ भी नहीं।'

वह जो हनीमून है, वह जो सुहागरात है, वह जो दिखायी पड़ता है, वह आपके भीतर केमिकल्स ही हैं। इसलिए बहुत खयाल रखें, जहां अमरीका में या योरोप में शादी के पहले यौन के संबंध निर्मित होने लगे हैं, वहां हनीमून तिरोहित हो गया। वहां हनीमून पैदा होता था—अगर बीस पच्चीस वर्ष की उम्र तक आपने अपनी काम-ऊर्जा को संग्रहीत किया हो तो ही वे केमिकल्स निर्मित होते थे संग्रह के कारण, जो एक स्त्री और पुरुष को देवी और देवता बना देते थे। अब वे संग्रहीत ही नहीं होते। इसलिए हनीमून वैसा ही साधारण होता है जैसा कि साधारण रोज के दिन होते हैं।

हमारे भीतर रासायनिक उपक्रम हैं, जैविक विज्ञान के अनुसार, जिससे हम सम्मोहित होते रहते हैं। जब आप एक स्त्री के प्रेम में गिरते हैं तो आप मूर्छित हैं। इसे महावीर ने प्रमाद कहा है। जिसको जीव विज्ञानी बेहोशी के रासायनिक द्रव्य कहता है उसको महावीर ने प्रमाद कहा है। आप बेहोश हो जाते हैं।

इस बेहोशी को जो नहीं तोड़ता रहता है निरंतर, वह आदमी कभी भी कमलवत नहीं हो पायेगा। और जो कमलवत नहीं हो पायेगा, वह इस कीचड़ में कीचड़ ही रहेगा। इस कीचड़ के जगत में उसे फूल के होने का आनंद उपलब्ध नहीं हो सकता। उसे कीचड़ की ही पीड़ा झेलनी पड़ेगी।

प्रमाद मिटता है ध्यान से। ध्यान प्रमाद के विपरीत है। ध्यान का अर्थ है होश। जो भी करें, होश से करना। अगर प्रेम भी करें तो होश से करना। यह कठिन मामला है। न चोरी हो सकती होश से, न क्रोध हो सकता होश से, न प्रेम हो सकता होश से। बेहोशी उनकी अनिवार्य शर्त है। बेहोश हों तो ही वे होते हैं।

इसलिए अंग्रेजी में शब्द अच्छा है। हम कहते हैं कि कोई आदमी प्रेम में गिर गया, वन हैज फालन इन लव। कहना चाहिए, वन हैज राइजन इन लव। कहते हैं, गिर गया बेचारा; वह गिर गया, ठीक ही कहते हैं। क्योंकि बेहोशी का अर्थ है गिर जाना, होश खो दिया, सिर गंवा दिया।

इसलिए प्रेमी सबको पागल मालूम पड़ता है। इसका यह मतलब नहीं, कि जब आप प्रेम में गिरेंगे तब आपको पागलपन पता चलेगा। तब आपको सारी दुनिया पागल मालूम पड़ेगी। आप भर समझदार मालूम पड़ेंगे, और सारी दुनिया आपको पागल समझेगी। ऐसा नहीं है कि उनकी कोई बुद्धि बढ़ गयी है। वे भी गिरते रहे हैं, गिरेंगे। लेकिन जब तक नहीं गिरे हैं, तब तक वे समझते हैं, देखते हैं, किसके पैर डगमगा रहे हैं, कौन बेहोशी में चल रहा है।

आसक्ति प्रमाद है, ध्यान, अनासक्ति है, कितने होश से जीते हैं। एक-एक पल होश में रह गौतम।

'इस प्रपंचमय विशाल संसार-समुद्र को तैर चुका तू। भला किनारे पहुंचकर तू क्यों अटक रहा है?

महावीर कहते हैं, गौतम! तेरा स्नेह मुझसे अटक गया है। अब तू मुझे प्रेम करने लगा है। यह भी छोड़। पत्नी का, पति का, मित्र का, स्वजन का मोह छोड़ दिया, यह गुरु का मोह भी छोड़। यह स्नेह मत बना। यह आसक्ति मत बना।

'उस पार पहुंचने के लिए शीघ्रता कर। हे गौतम! क्षण मात्र भी प्रमाद मत कर।'

एक क्षण को भी बेहोश मत जी। उठ, तो यह जानते हुए उठ, कि तू उठ रहा है। बैठ तो जानते हुए बैठ, कि तू बैठ रहा है। श्वास भी ले तो यह जानते हुए ले, कि तू श्वास ले रहा है। यह श्वास भीतर गयी तो महावीर ने कहा है, जान कि भीतर गयी। यह श्वास बाहर गयी, तो जान कि बाहर गयी। तेरे भीतर कुछ भी न हो पाये जो तेरे बिना जाने हो रहा है।

यह कठिनतम साधना है, लेकिन एकमात्र साधना है। अनेक-अनेक रास्तों से लोग इसी साधना पर पहुंचते हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति एक क्षण भी बेहोशी नहीं करता है और निरंतर होश की चेष्टा में लगा रहता है। भोजन करे तो होशपूर्वक, बिस्तर पर लेटने जाये तो होशपूर्वक, करवट ले तो रात में होशपूर्वक, इतना जो होश से जीता है, धीरे-धीरे होश सघन हो जाता है, इंटेन्स हो जाता है। और जब होश सघन होता है तो अंतर-ज्योति बनती है। होश की सघनता ही भीतर की ज्योति है। होश का बिखर जाना ही भीतर का अंधकार है। जितना होश सघन हो जाता है, उतने हम प्रकाशित हो जाते हैं। और यह प्रकाश भीतर हो, तो फिर आसक्ति निर्मित नहीं होती। अंधेरे में निर्मित होती है। यह प्रकाश भीतर हो तो आपको मिल गयी वह व्यवस्था, जिससे कीचड़ से कमल अपने को दूर करता जायेगा। होश बीच की डण्डी है, जिससे कीचड़ से कमल दूर चला जाता है। पार हो जाता है। फिर कुछ भी उसे स्पर्श नहीं करता। फिर वह अस्पर्शित और कुंआरा रह जाता है।

कमल का कुंआरापन संन्यास है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें।

एक ही नियम ः होश
तीसरा प्रवचन

दिनांक 15 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

प्रमाद-स्थान-सूत्र ः 1
पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पंडियमेव वा।।
दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो,
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं।।

प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को अकर्म अर्थात जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करनेवाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने और न होने से मनुष्य क्रमशः बाल-बुद्धि (मूर्ख) और पण्डित कहलाता है।

जिसे मोह नहीं उसे दुख नहीं, जिसे तृष्णा नहीं उसे मोह नहीं, जिसे लोभ नहीं उसे तृष्णा नहीं, और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।

पहले एक-दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है कि स्नेहयुक्त प्रेम और स्नेहमुक्त प्रेम में क्या अंतर है। साथ ही काम, प्रेम और करुणा की आंतरिक भिन्नता पर भी कुछ कहें।

जिस प्रेम को हम जानते हैं, वह एक बंधन है, मुक्ति नहीं। और जो प्रेम बंधन है उसे प्रेम कहना भी व्यर्थ ही है। प्रेम का बंधन पैदा होता है अपेक्षा से। मैं किसी को प्रेम करूं तो मैं सिर्फ प्रेम करता नहीं, कुछ पाने को प्रेम करता हूं। प्रेम करना शायद साधन है, प्रेम पाना साध्य है। मैं प्रेम पाना चाहता हूं, इसलिए प्रेम करता हूं।

मेरा प्रेम करना एक इनवेस्टमेंट है। उसके बिना प्रेम पाना असंभव है। इसलिए जब मैं प्रेम करता हूं प्रेम पाने के लिए, तब प्रेम करना केवल साधन है, साध्य नहीं। नजर मेरी पाने पर लगी है। देना गौण है, देना पाने के लिए ही है। अगर बिना दिये चल जाये तो मैं बिना दिये चला लूंगा। अगर झूठा धोखा देने से चल जाये कि मैं प्रेम दे रहा हूं, तो मैं धोखे से चला लूंगा, क्योंकि मेरी आकांक्षा देने की नहीं, पाने की है। मिलना चाहिए।

जब भी हम देते हैं कुछ पाने को, तो हम सौदा करते हैं। स्वभावतः सौदे में हम कम देना चाहेंगे और ज्यादा पाना चाहेंगे। इसलिए सभी सौदे के प्रेम व्यवसाय हो जाते हैं, और सभी व्यवसाय कलह को उत्पन्न करते हैं। क्योंकि सभी व्यवसाय के गहरे में लोभ है, छीनना है, झपटना है, लेना है। इसलिए हम इस पर तो ध्यान ही नहीं देते कि हमने कितना दिया। हम सदा इस पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। और दोनों ही व्यक्ति इसी पर ध्यान देते हैं कि कितना मिला। दोनों ही देने में उत्सुक नहीं हैं, पाने में उत्सुक हैं।

वस्तुतः हम देना बंद ही कर देते हैं और पाने की आकांक्षा में पीड़ित होते रहते हैं। फिर प्रत्येक को यह खयाल होता है कि मैंने बहुत दिया और मिला कुछ भी नहीं।

इसलिए हर प्रेमी सोचता है कि मैंने इतना दिया और पाया क्या? मां सोचती है, मैंने बेटे को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पत्नी सोचती है कि मैंने पति को इतना प्रेम दिया और मिला क्या? पति सोचता है, मैंने पत्नी के लिए सब कुछ

किया, मुझे मिला क्या?

जो आदमी भी आपको कहीं कहते मिले कि मैंने इतना किया और मुझे मिला क्या, आप समझ लेना, उसने प्रेम किया नहीं, सौदा किया। दृष्टि ही जब पाने पर लगी हो, तो प्रेम जन्मता ही नहीं। यही अपेक्षा से भरा हुआ प्रेम बंधन बन जाता है। और तब इस प्रेम से सिवाय दुख के, पीड़ा के, कलह के और जहर के कुछ भी पैदा नहीं होता।

एक और प्रेम भी है जो व्यवसाय नहीं है, सौदा नहीं है। उस प्रेम में देना ही महत्वपूर्ण है, लेने का सवाल ही नहीं उठता। देने में ही बात पूरी हो जाती है, देना ही साध्य है। तब वैसा व्यक्ति प्रेम मिले, इसकी भाषा में नहीं सोचता, प्रेम दिया, इतना काफी है। मैं प्रेम दे सका, इतना काफी है। और जिसने मेरा प्रेम लिया उसका अनुग्रह है, क्योंकि लेने से भी इनकार किया जा सकता है।

फर्क को समझ लें।

मैं अगर आपको प्रेम दूं और मेरी नजर लेने पर हो तो बंधन निर्मित होगा। और अगर मैं प्रेम दूं, और मेरी नजर देने पर ही हो तो प्रेम मुक्ति बन जायेगा। और जब प्रेम मुक्ति होता है, तभी उसमें सुवास होती है। क्योंकि जब आगे कुछ मांग नहीं है तो पीड़ा का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब प्रेम देना ही होता है, मात्र देना, तो जो ले लेता है उसके अनुग्रह के प्रति, उसकी दया के प्रति, उसने स्वीकार किया, इसके प्रति भी मन गहरे आभार से भर जाता है, अहोभाव से भर जाता है। जो मांगता है, वह सदा कहेगा कि मुझे कुछ मिला नहीं। जो देता है वह कहेगा कि इतने लोगों ने मेरा प्रेम स्वीकार किया, इतना स्वीकार किया, इतना मेरे प्रेम में कुछ था भी नहीं कि कोई स्वीकार करे।

जिसका जोर देने पर है, उसका अनुग्रह भाव बढ़ता जायेगा। जिसका जोर लेने पर है उसका भिक्षा भाव बढ़ता जायेगा। और भिखारी कभी भी धन्यवाद नहीं दे सकता, क्योंकि भिखारी की आकांक्षाएं बहुत हैं और जो मिलता है, वह हमेशा थोड़ा है। सम्राट धन्यवाद दे सकता है, क्योंकि देने की बात है, लेने की कोई बात नहीं है। ऐसा प्रेम बंधन मुक्त हो जाता है।

इसमें और एक बात समझ लेनी जरूरी है जो बड़ी मजेदार है और जीवन के जो गहरे पेराडाक्से, जीवन के जो गहरे विरोधाभास हैं, पहेलियां हैं, उनमें से एक है। जो मांगता है उसे मिलता नहीं और जो नहीं मांगता उसे बहुत मिल जाता है। जो देता है पाने के लिए उसके हाथ की पूंजी समाप्त हो जाती है, लौटता कुछ नहीं है। जो देता है पाने के लिए नहीं, दे देने के लिए, बहुत वर्षा हो जाती है उसके ऊपर; बहुत लौट आता है।

उसके कारण हैं।

जब भी हम मांगते हैं, तब दूसरे आदमी को देना मुश्किल हो जाता है। जब भी हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है कि उससे कुछ छीना जा रहा है। जब भी हम मांगते हैं तो दूसरे आदमी को लगता है, वह परतंत्र हो रहा है। जब हमारी मांग उसे चारों तरफ से घेर लेती है तो उसे लगता है कि कारागृह हो गया है यह। अगर वह देता भी है तो मजबूरी है, प्रसन्नता खो जाती है। और बिना प्रसन्नता के जो दिया गया है वह कुम्हलाया हुआ होता है, मरा हुआ होता है। अगर वह देता भी है तो कर्तव्य हो जाता है, एक भार हो जाता है कि देना पड़ेंगा। और प्रेम इतनी कोमल, इतनी डेलिकेट, इतनी नाजुक चीज है कि कर्तव्य का खयाल आते ही मर जाती है।

जहां खयाल आ गया कि यह प्रेम मुझे करना ही पड़ेगा, यह मेरा पति है, यह मेरी पत्नी है, यह मेरा मित्र है, यह तो प्रेम करना ही पड़ेगा। जहां प्रेम करना पड़ेगा बन जाता है, कर्तव्य बन जाता है, वहीं वह प्राण तिरोहित हो गये जिससे पक्षी उड़ता था। अब मरा हुआ पक्षी है, जिसके पंख सजाकर रखे जा सकते हैं, लेकिन उड़ने के काम में नहीं आ सकते। वह जो उड़ता था, वह थी स्वतंत्रता। कर्तव्य में कोई स्वतंत्रता नहीं है, एक बोझ है, एक ढोने का खयाल है।

प्रेम इतना नाजुक है कि इतना-सा बोझ भी नहीं सह सकता। प्रेम सूक्ष्मतम घटना है मनुष्य के मन में घटनेवाली। जहां तक मन का संबंध है, प्रेम बारीक से बारीक घटना है। फिर प्रेम के बाद मन में और कोई बारीक घटना नहीं है। फिर तो जो घटता है वह मन के पार है, जिसको हम प्रार्थना कहते हैं। वह मन के भीतर नहीं है। लेकिन मन की आखिरी सीमा पर, मन का जो सूक्ष्मतम रूप घट सकता है, वह प्रेम है। शुद्धतम, मन की जो आत्यंतिक, अल्टीमेट पासिबिलिटी है, आखिरी

संभावना है, वह प्रेम है। वह बहुत नाजुक है। हम वह भी काम करता है चित्रों के बेचने का। वह एक दुकानदार है, वह चित्र बेचने का काम करता है। उसकी कल्पना के ही बाहर है, समझ के ही बाहर है कि चित्र बनाने में ही कोई बात हो सकती है, जब तक चित्र बिके न, तब तक बेमानी है। तब तक व्यर्थ गया श्रम।

उसने सोचा कि यह वानगाग जीवनभर हो गया बनाते-बनाते, इसका एक चित्र न बिका। कितना दुखी न होता होगा मन में! स्वभावतः व्यवसायी को लगेगा कि कितना दुखी न होता होगा मन में, कभी कुछ मिला नहीं। सारा जीवन व्यर्थ गया। तो उसने एक मित्र को कुछ पैसे दिये और कहा कि जाकर वानगाग का एक चित्र खरीद लो, कम से कम एक चित्र तो उसका बिके। उसको लगे कि कुछ मेरा चित्र भी बिका।

वह मित्र गया। उसे तो खरीदना था, यह कर्तव्य था। उसे कोई चित्र से लेना-देना तो था नहीं। वानगाग चित्र दिखा रहा है, वह चित्र वगैरह देखने में उतना उत्सुक नहीं है, वह एक चित्र देखकर कहता है कि यह मैं खरीदना चाहता हूं। देखने में उसने कोई रस न लिया, डूबा भी नहीं, चित्रों में उतरा भी नहीं, चित्रों से उसका कोई स्पर्श भी नहीं हुआ। वानगाग खड़ा हो गया, उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। उसने कहा, कि मालूम होता है, मेरे भाई ने तुम्हें पैसे देकर भेजा। तुम बाहर निकल जाओ और कभी दुबारा लौटकर यहां मत आना। चित्र बेचा नहीं जा सकता।

वह आदमी तो हैरान हुआ। वानगाग का भाई भी हैरान हुआ कि यह पता कैसे चला! जब उसने वानगाग को पूछा तो वानगाग ने कहा, इसमें भी कुछ पता चलने की बात है! उस आदमी को मतलब ही न था चित्रों से। उसे तो खरीदना था। खरीदने में उसका कोई भाव नहीं था। मैं समझ गया कि तुमने ही भेजा होगा।

जीवनभर जिसके चित्र नहीं बिके, हमें भी लगेगा, कितनी पीड़ा रही होगी, लेकिन वानगाग पीड़ित नहीं था। आनंदित था। आनंदित था इसलिए कि वह बना पाया।

प्रेम भी ऐसा ही है। वह चित्र बनाना वानगाग का प्रेम था। जब आप किसी को प्रेम करते हैं तो पीछे कुछ मिलेगा, ऐसा नहीं, जब आप प्रेम करते हैं तभी आपके प्राण फैलते हैं, विस्तृत होते हैं। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं तभी आपकी चेतना छलांग लगाकर ऊंचाइयों पर पहुंच जाती है। जब आप प्रेम के क्षण में होते हैं, जब आप दे रहे होते हैं, तभी वह घटना घट जाती है जिसे आनंद कहते हैं। अगर आपको वह घटना नहीं घटी है तो आप समझना कि आप व्यवसायी हैं, प्रेम के काव्य को आपने जाना नहीं है।

अगर आप पूछते हैं कि मिलेगा क्या, तब फिर बहुत फर्क नहीं रह जाता, तब बहुत फर्क नहीं रह जाता। एक वेश्या भी प्रेम करती है, वह भी मिलने के लिएक्या मिलेगा? इसमें उत्सुक है, प्रेम में उत्सुक नहीं है। एक पत्नी भी प्रेम करती है, वह भी क्या मिलेगा, इसमें उत्सुक है। प्रेम में उत्सुक नहीं है। मिलना सिक्कों में हो सकता है, साड़ियों में हो सकता है, मिलना गहनों में हो सकता है, मकान में हो सकता है, सुरक्षा में हो सकता है, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। यह सब इकानामिकली हैं, सभी आर्थिक मामले हैं, चाहे नगद रुपये हों, चाहे नगद साड़ियां हों, चाहे नगद गहने हों, चाहे नगद मकान हो, चाहे भविष्य की सुरक्षा हो, बुढ़ापे में सेवा की व्यवस्था हो, कुछ भी हो, यह सब पैसे का ही मामला है।

तो वेश्या में और फिर प्रेयसी में फर्क कहां है? इतना ही फर्क है कि वेश्या तत्काल इंतजाम कर रही है, प्रेयसी लंबा इंतजाम कर रही है, लांग टर्म प्लानिंग। लेकिन फर्क कहां है? अगर मिलने पर ध्यान है तो कोई फर्क नहीं है। प्रेम वहां नहीं है, व्यवसाय है। फिर व्यवसाय कई ढंग के होते हैं—पत्नी के ढंग का भी होता है, वेश्या के ढंग का भी होता है।

यह वेश्या और पत्नी में कोई बुनियादी अंतर तब तक नहीं हो सकता, जब तक ध्यान मिलने पर लगा हुआ है। बुनियादी अंतर उस दिन पैदा होता है जिस दिन प्रेम अपने में पूरा है, उसके पार कुछ भी नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि उसके पार कुछ घटित नहीं होगा,

बहुत घटित होगा, लेकिन मन से उसका कोई लेना-देना नहीं है। उसकी कोई अपेक्षा नहीं है, उसकी कोई आयोजना नहीं है। क्षण काफी है, क्षण अनंत है। जो मौजूद है वह बहुत है।

इसलिए प्रेम में एक गहन संतृप्ति है, एक गहन संतोष है। एक इतनी गहन तृप्ति का भाव है, फुलफिलमेंट का, सब आप्तकाम मन हो जाता है। लेकिन हम प्रेमियों को देखें, वहां कोई फुलफिलमेंट नहीं है। वहां, सिवाय दुख, छीनाझपटी,

कलह, और ज्यादा, और ज्यादा मिलना चाहिए, उसकी दौड़, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या ऐसी हजार तरह की बीमारियां हैं, तृप्ति का कोई भी भाव नहीं है।

जिस प्रेम में मांग है, वह बंधनयुक्त है। और जिस प्रेम में दान है, वह बंधनमुक्त है। यह जो मुक्त दान है प्रेम का, इसमें अगर काम की घटना घटती हो; यह जो दान है मुक्त प्रेम का इसे ठीक से समझ लें।

जिसमें मांग है उसमें तो काम घटेगा ही। घटेगा नहीं, काम के लिए ही प्रेम होगा। सेक्स ही आधार होगा सारे प्रेम का जिसमें व्यवसाय है। वहां प्रेम तो बहाना होगा। वैज्ञानिक कहते हैं, वह जस्ट ए फोर प्ले—वह कामवासना में उतरने के पहले की थोड़ी क्रिया।

इसलिए जब नया-नया संबंध होता है दो व्यक्तियों का, तो काफी काम-क्रीड़ा चलती है। पति-पत्नी की काम-क्रीड़ा बंद हो जाती है। सीधा काम ही हो जाता है। फोर प्ले, वह जो पहले का खेल है वह सब बंद हो जाता है। उसकी कोई जरूरत नहीं रह जाती, लोग आश्वस्त हो जाते हैं।

जिसमें लच्य कुछ और है, कुछ पाना है, वहां यौन केंद्र होगा। जहां लच्य कोई और नहीं है, प्रेम देना है, वहां भी यौन घटित हो सकता है, लेकिन गौण होगा। छाया की तरह होगा। यौन के लिए वहां प्रेम नहीं होगा, प्रेम की घटना में यौन भी घट सकता है। लेकिन तब वह यौन सेक्सुअल नहीं रह जायेगा। उसमें दृष्टि ही पूरी बदल जायेगी। वह प्रेम की विराट घटना के बीच घटती हुई एक घटना होगी। प्रेम यौन के लिए नहीं होगा, प्रेम में कहीं यौन समाविष्ट हो जायेगा।

यह दूसरी स्थिति है, लेकिन यौन संभव है। इसकी शुद्धतम तीसरी स्थिति है जहां यौन तिरोहित हो जाता है। उसी को हम करुणा कहते हैं। जहां प्रेम बस प्रेम रह जाता है। न तो यौन लच्य रहता, और न यौन, प्रेम के बीच में घटनेवाली कोई चीज रहती है। सिर्फ प्रेम रह जाता है।

जैसे हम दीया जलायें, तो थोड़ा-सा धुआं उठे। जैसे हम धुआं करें, तो थोड़ी-सी लपट जले। एक आदमी धुआं करे तो थोड़ी-सी लपट जल जाये। ऐसा पहले ढंग का प्रेम। यौन, धुआं असली चीज है। अगर उस धुएं के करने में कहीं लपट जल जाती है प्रेम की, तो गौण है, बात अलग है। जल जाये तो ठीक, न जले तो ठीक। और जले भी तो उसके जलाने का मजा इतना ही है कि धुआं ठीक से दिखाई पड़ जाये। बाकी और कोई प्रयोजन नहीं है।

दूसरी स्थिति, जहां हम दीये की ज्योति जलाते हैं। लच्य ज्योति का जलाना है। थोड़ा धुआं भी पैदा हो जाता है। धुएं के लिए ज्योति नहीं जलायी है। ज्योति जलाते हैं तो थोड़ा धुआं पैदा हो जाता है। प्रेम जलाते हैं तो थोड़ा-सा यौन सरक आता है।

तीसरी अवस्था है, जहां सिर्फ शुद्ध ज्योति रह जाती है, कोई धुआं नहीं रहता—स्मोकलेस च्फलेम, धूम्ररहित ज्योति। उसका नाम करुणा है।

हम पहले प्रेम में जीते हैं। कभी-कभी कोई कवि, कोई चित्रकार, कोई संगीतज्ञ, कोई कलात्मक, एस्थेटिक बुद्धि की प्रज्ञा, दूसरे प्रेम को उपलब्ध होती है। लाखों में एक और कभी करोड़ों में एक व्यक्ति तीसरे प्रेम को उपलब्ध होता है— बुद्ध, महावीर, क्राइस्ट, कृष्ण यह है शुद्ध प्रेम। यहां अब लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां अब देने का भी भाव नहीं है। इसको ठीक से समझ लें। यहां लेने का तो कोई सवाल ही नहीं है, यहां देने का भी कोई भाव नहीं है। यहां तो करुणा ऐसे ही बहती है

जैसे फूल से गंध बहती है। राह निर्जन हो तो भी बहती है। कोई न निकले तो भी बहती है। जैसे दीये से रोशनी बहती है। कोई न हो देखनेवाला तो भी बहती है।

पहले तरह के प्रेम में कोई देनेवाला हो, तो बहता है। दूसरे तरह के प्रेम में कोई लेनेवाला हो, तो बहता है। तीसरे तरह के प्रेम में जिसको हमने करुणा कहा है, कोई भी न हो, न लेनेवाला, न देनेवाला, तो भी बहता है; स्वभाव है।

बुद्ध अकेले बैठे हैं तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई आ गया तो भी करुणापूर्ण हैं। कोई चला गया तो भी करुणापूर्ण हैं।

पहला प्रेम मांग करता है कि मेरे अनुकूल जो है वह दो, तो मेरे प्रेम को मैं दूंगा। दूसरा प्रेम अनुकूल की मांग नहीं करता, लेकिन जहां प्रतिकूल होगा वहां से हट जायेगा। तीसरा प्रेम, प्रतिकूल हो, तो भी नहीं हटेगा।

मैं दूं पहले प्रेम में आप भी लौटायें तो ही टिकेगा। दूसरे प्रेम में आप न लौटायें, सिर्फ लेने को राजी हों तो भी टिकेगा। तीसरे प्रेम में आप द्वार भी बंद कर लें, लेने को भी राजी न हों, नाराज भी हो जाते हों, क्रोधित भी होते हों, तो भी बहेगा। तीसरा प्रेम अबाध है, उसे कोई बाधा नहीं रोक सकती। उसे लेनेवाला भी नहीं रोक सकता। वह बहता ही रहेगा। वह अपने को लेने से रोक सकता है, लेकिन प्रेम की धारा को नहीं रोक सकता। उसको हमने करुणा कहा है।

करुणा प्रेम का परम रूप है।

पहला प्रेम, शरीर से बंधा होता है। दूसरा प्रेम, मन के घेरे में होता है। तीसरा प्रेम, आत्मा के जीवन में प्रवेश कर जाता है। ये हमारे तीन घेरे हैं—शरीर का, मन का, आत्मा का।

शरीर से बंधा हुआ प्रेम यौन होता है मूलतः। प्रेम सिर्फ आसपास चिपकाये हुए कागज के फूल होते हैं। दूसरा प्रेम मूलतः प्रेम होता है। उसके आसपास शरीर की घटनाएं भी घटती हैं, क्योंकि मन शरीर के करीब है। तीसरे प्रेम में शरीर बहुत दूर हो जाता है, बीच में मन का विस्तार हो जाता है, शरीर से कोई संबंध नहीं रह जाता। तीसरा प्रेम शुद्ध आत्मिक है।

एक प्रेम है शारीरिक, बंधनवाला। दूसरा प्रेम है शुद्ध मानसिक, निबच्ध, तीसरा प्रेम है शुद्ध आत्मिक। न बंधन है, न अबंधन है। न लेने का भाव है, न देने का भाव है। तीसरा प्रेम है स्वभाव।

बुद्ध से कोई पूछे, महावीर से कोई पूछे कि क्या आप हमें प्रेम करते हैं, तो वे कहेंगे कि नहीं। वे कहेंगे, हम प्रेम हैं, करते नहीं हैं। करते तो वे लोग हैं जो प्रेम नहीं हैं। उन्हें करना पड़ता है, बीच-बीच में करना पड़ता है। लेकिन जो प्रेम ही है, उसे करना नहीं पड़ता, करने का खयाल ही नहीं उठता। करना तो हमें उन्हीं चीजों को पड़ता है—जो हम नहीं हैं। करना अभिनय है—होना—तो डूइंग और बीइंग का, करने और होने का फर्क है। करते हम वह हैं, जो हम हैं नहीं। मां कहती है, मैं बेटे को प्रेम करती हूं, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। पति कहता है, मैं पत्नी को प्रेम करता हूं, क्योंकि वह प्रेम है नहीं। बुद्ध नहीं कहते कि मैं प्रेम करता हूं, महावीर नहीं कहते हैं कि मैं प्रेम करता हूं, क्योंकि वे प्रेम हैं। प्रेम उनसे हो ही रहा है। करने के लिए कोई चेष्टा, कोई आयोजन, कोई विचार भी आवश्यक नहीं है।

अब सूत्र—

'प्रमाद को कर्म कहा है, अप्रमाद को अकर्म। जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं, वे कर्म-बंधन करनेवाली हैं। जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करतीं। प्रमाद के होने न होने से मनुष्य क्रमशः मूढ़ और प्रज्ञावान कहलाता है।'

जो मैं कह रहा था, उससे जुड़ा हुआ सूत्र है। महावीर करने को कर्म नहीं कहते, न करने को अकर्म नहीं कहते। हम करते हैं तो कहते हैं कर्म, और नहीं करते हैं तो कहते हैं अकर्म। हमारा जानना बहुत ऊपरी है। आपने क्रोध नहीं किया तो आप कहते हैं कि मैंने क्रोध नहीं किया। आपने क्रोध किया तो आप कहते हैं मैंने क्रोध किया। जब आप कुछ करते हैं तो उसको कर्म कहते हैं, और कुछ नहीं करते हैं तो उसे अकर्म कहते हैं।

महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्छा से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।

अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गये हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ड हो गये हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।

अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।

इसे हम उदाहरण लेकर समझें।

आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं

किया, किसी और ने आपसे करवा लिया—पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करनेवाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबायी और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है।

और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश संभालकर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पायेंगे कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी, क्रोध तिरोहित हो गया।

होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।

एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आनेवाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?

महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्छा में किया है, उससे आप बंध जायेंगे। करने में ही बंध गये हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।

अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पायेंगे, वे सभी ऐसे हैं। वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी उसे अकर्म कहते हैं।

महावीर प्रमाद को कर्म कहते हैं, करने को नहीं। महावीर कहते हैं, मूर्छा से किया हुआ हो तो कर्म, होशपूर्वक किया हो तो अकर्म। जरा जटिल है और थोड़ा गहन उतरना पड़ेगा।

अगर आपने कोई भी काम बेहोशीपूर्वक किया हो, आपको करना पड़ा हो, आप अचेतन हो गये हों करते वक्त, आप अपने मालिक न रहे हों करते वक्त, आपको ऐसा लगा हो कि जैसे आप पजेस्ड हो गये हों, किसी ने आपसे करवा लिया है, आप मुक्त नियंता न रहे हों, तो कर्म है।

अगर आप अपने कर्म के मालिक हों, नियंता हों, किसी ने करवा न लिया हो, आपने ही किया हो पूरी सचेतनता से, पूरे होश से, अप्रमाद से, तो महावीर कहते हैं; अकर्म।

इसे हम उदाहरण लेकर समझें।

आपने क्रोध किया। क्या आप कह सकते हैं कि आपने क्रोध किया? या आपसे क्रोध करवा लिया गया? एक आदमी ने गाली दी, एक आदमी ने आपको धक्का मार दिया, एक आदमी ने आपके पैर पर पैर रख दिया, एक आदमी ने आपको इस ढंग से देखा, इस ढंग का व्यवहार किया कि क्रोध आप में हुआ, क्रोध आप में किसी से पैदा हुआ। यह आदमी गाली न देता, यह आदमी पैर पर पैर न रख देता, यह आदमी इस भद्दे ढंग से देखता नहीं तो क्रोध नहीं होता। क्रोध आपने नहीं किया, किसी और ने आपसे करवा लिया—पहली बात। मालिक कोई और है, मालिक आप नहीं हैं। इसको कर्म कहना ही फिजूल है, करनेवाले ही जब आप नहीं हैं, तो इसे कर्म कहना फिजूल है। बटन हमने दबायी और पंखा चल पड़ा। पंखा नहीं कह सकता कि यह मेरा कर्म है। या कि कह सकता है? बटन बंद कर दी, पंखा चलना बंद हो गया। यह पंखे से करवाया गया। पंखा मालिक नहीं है, पंखा अपने वश में नहीं है। पंखा किसी और के वश में है।

और के वश में होने का मतलब होता है, बेहोश होना। जब आप क्रोध करते हैं तब आप होश में करते हैं? कभी आपने होश में क्रोध किया है? करके देखना चाहिए। पूरा होश संभालकर कि मैं क्रोध कर रहा हूं, और तब आप अचानक पायेंगे

कि पैर के नीचे से जमीन खिसक गयी, क्रोध तिरोहित हो गया।

होशपूर्वक आज तक क्रोध नहीं हो सका। और जब भी होगा तब बेहोशी में होगा। जब आप क्रोध करते हैं तब आप मौजूद नहीं होते, आप यंत्रवत हो जाते हैं। कोई बटन दबाता है, क्रोध हो जाता है। कोई बटन दबाता है, प्रेम हो जाता है। कोई बटन दबाता है, ईर्ष्या हो जाती है। कोई बटन दबाता है, यह हो जाता है, वह हो जाता है। आप हैं कि सिर्फ बटनों का एक जोड़ हैं, एक मशीन हैं जिसमें कई बटनें लगी हैं। यहां से दबाओ ऐसा हो जाता है, वहां से दबाओ वैसा हो जाता है।

एक आदमी मुस्कुराते हुए आकर कह देता है कुछ दो शब्द प्रशंसा के, भीतर कैसे गीत लहराने लगते हैं, वीणा बजने लगती है। और एक आदमी जरा तिरछी आंख से देख लेता है और एक तिरस्कार का भाव आंख से झलक जाता है। भीतर सब फूल मुरझा जाते हैं, सब धारा रुक जाती है गीत की। आग जलने लगती है, धुआं फैलने लगता है। आप हैं या सिर्फ चारों तरफ से आनेवाली संवेदनाओं का आघात आपको चलायमान करता रहता है?

महावीर कहते हैं, मैं उसे ही कर्म कहता हूं, जो प्रमाद में किया गया हो। उसी से बंधन निर्मित होता है, इसलिए कर्म कहता हूं। जिसको आपने मूर्छा में किया है, उससे आप बंध जायेंगे। करने में ही बंध गये हैं, करने के पहले भी बंधे थे, इसीलिए किया है। वह बंधन है।

अगर हम अपने कर्मों की जांच-पड़ताल करें तो हम पायेंगे, वे सभी ऐसे हैं। वे सब एक दूसरे पर निर्भर हैं। उसमें हम कहीं भी मालिक नहीं हैं। हम केवल तंतुओं का एक जोड़ हैं और जगह-जगह से तंतु खींचे जाते हैं, और हमारे भीतर कुछ होता है। इसे महावीर कहते हैं, प्रमाद, मूर्छा, बेहोशी, अचेतना।

एक आदमी ने गाली दी, क्रोध हो गया। दोनों के बीच में जरा भी अंतराल नहीं है, जहां आप सजग हुए हों। और जहां आपने होशपूर्वक सुना हो कि गाली दी गयी, और जहां आपने होशपूर्वक भीतर देखा हो कि कहां क्रोध पैदा हो रहा है, आप अगर दूर खड़े हो गये हों, गाली दी गयी है, गाली सुनी गयी है, गाली देनेवाले के भीतर क्या हो रहा है, गाली सुननेवाले के भीतर क्या हो रहा है, अगर इन दोनों के पार खड़े होकर आपने देखा हो क्षणभर, तो उसका नाम होश है।

कहां लगी गाली, कहां घाव किया उसने, कहां छू दिया कोई पुराना छिपा हुआ घाव, कहां हरा हो गया कोई दबा हुआ घाव, कहां पड़ी चोट, क्यों पड़ी चोट, कहां भीतर मवाद बहने लगी। इसको अगर आपने खड़े होकर निष्पक्ष भाव से देखा हो जैसे यह गाली किसी और को दी गयी हो, और ने तो दी है, किसी और को दी गयी हो, अगर यह भी आपने देखा हो तो आप होश के क्षण में हैं । तो अप्रमाद है। और फिर आपने निर्णय किया हो कि क्या करना, और यह निर्णय शुद्ध रूप से आपका हो। यह निर्णय आपसे करवा न लिया गया हो, यह निर्णय आपका हो।

बुद्ध को कोई गाली दे, महावीर को कोई पत्थर मारे, जीसस को कोई सूली लगाये, तो भी वह साक्षी बने रहते हैं। यह जो साक्षी भाव हैतो भी वे देखते रहते हैं। जीसस मरते वक्त भी प्रार्थना करते हैं, हे प्रभु! इन सबको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।

यह वही आदमी कह सकता है जो अपने शरीर से भी दूर खड़ा हो। नहीं तो यह कैसे कह सकते हैं आप? आपको कोई सूली दे रहा हो, और आप यह कह सकते हैं कि इनको माफ कर देना?

जीसस के शिष्य नहीं सोच रहे थे ऐसा। जीसस के शिष्य सोच रहे थे, इस वक्त होगा चमत्कार। पृथ्वी फटेगी, आग बरसेगी आकाश से, महाप्रलय हो जायेगी। जीसस का एक इशारा और भगवान से यह कहना कि नष्ट कर दो इन सबको, अभी चमत्कार हो जायेगा।

लेकिन जीसस ने जो कहा वह असली चमत्कार है। अगर जीसस ने यह कहा होता, कि नष्ट कर दो इन सबको, आग लगा दो, राख कर दो इस पूरी भूमि को, जिन्होंने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया। मैं जो ईश्वर का इकलौता बेटा हूं। हे पिता, नष्ट कर दे इन सबको, तो शिष्य समझते कि चमत्कार हुआ।

लेकिन यह चमत्कार नहीं था, यह तो आप भी करते। यह तो कोई भी कर सकता था। यह चमत्कार था ही नहीं, क्योंकि यह तो जिसको सूली लगती है वह करता ही है, हो या न हो यह दूसरी बात है। सूली तो बहुत दूर है, कांटा गड़ता है तो सारी दुनिया में आग लगवा देने की इच्छा होती है। जरा-सा दांत में दर्द होता है तो लगता है, कोई ईश्वर वगैरह नहीं है।

सब नरक है।

यह तो सभी करते। आप थोड़ा सोचें, आप सूली पर लटके होते, क्या भाव उठता आपके भीतर? न तो पृथ्वी फटती आपके कहने से, क्योंकि ऐसे फटने लगे तो एक दिन भी बिना फटे नहीं रह सकती। एक क्षण नहीं रह सकती। न कोई सूरज आग बरसाता न और कुछ होता। लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आपका मन तो यही होता कि हो जाये ऐसा।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जो जिंदगी में दस-पांच बार हत्याएं करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार अपनी हत्या करने का विचार न करता हो। दस-पांच बार सारी दुनिया को नष्ट कर देने का जिसे खयाल न आ जाता हो, ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है।

जीसस ने यह जो कहा कि इनको माफ कर देना, क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, इसमें कई बातें निहित हैं। पहली बात, ये जीसस के साथ कर रहे हैं, ऐसा जीसस को अगर लगता हो तो यह बात पैदा नहीं हो सकती। जिसके साथ ये कर रहे हैं वह जीसस से उतना ही दूर है जितना कि ये करनेवाले लोग दूर हैं। यह चेतना भीतर अलग खड़ी है। एक तीसरा कोण मौजूद हो गया है।

साधारण आदमी की जिंदगी में दो कोण होते हैं—करनेवाला, जिस पर किया जा रहा है, वह।

होशवाले आदमी की जिंदगी में तीन कोण होते हैं—जो कर रहा है वह, जिस पर किया जा रहा है वह, और जो दोनों को देख रहा है वह।

यह जो थर्ड, यह जो तीसरा है, यह जो तीसरी आंख है, यह जो देखने का तीसरा स्थान है, इसे महावीर कहते हैं, अप्रमाद।

बड़ा मुश्किल है, सूली पर चढ़े हों, हाथ में खीलें ठोंके जा रहे हों, होश बचाये रखना मुश्किल है। जरा-सा एक आदमी धक्का देता है होश खो जाता है। हमारा होश है ही कितना? किसी आदमी का होश मिटाना हो, जरा-सी, कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। जरा-सा कुछ और सारा होश खो जाता है। होश जैसे है ही नहीं। एक झीनी पर्त है, झूठी पर्त है ऊपर-ऊपर। जरा-सा कम्पन, सब टूट जाता है।

किसी भी आदमी को पागल करने में कितनी देर लगती है। आप जरूर दूसरों के बाबत सोच रहे होंगे, जिन-जिन को आपने पागल किया है। अपने बाबत सोचिए। पत्नी एक शब्द बोल देती है, और आप पागल हो जाते हैं। पत्नी को भी तब तक राहत नहीं मिलती, जब तक आप पागल हो न जायें। अगर न हों तो उसको लगता है, वश के बाहर हो गये।

एक मित्र मेरे पास आते हैं। पत्नी कर्कशा है, उपद्रवी है। वे मुझसे बार-बार कहते हैं, क्या करूं! सब संभालकर घर जाता हूं , लेकिन उसका एक शब्द, और आग में घी का काम हो जाता है। बस उपद्रव शुरू हो जाता है।

मैंने उनसे कहा कि एक दिन संभालकर मत जाओ, क्योंकि संभालकर तुम जो जाते हो वही तुम्हारे भीतर इकट्ठा हो जाता है। फिर पत्नी जरा सा घी छिड़क देती है तो आग तो तुम संभालकर ला रहे हो। एक दिन तुम संभालकर जाओ ही मत। गीत गुनगुनाते जाओ, नाचते जाओ, संभालकर मत जाओ, कोई फिक्र ही मत करो, जो होगा देखा जायेगा। और जब पत्नी कुछ करे, क्योंकि तुमने आज तक बहुत क्रोध पत्नी पर कर लिया, कोई परिणाम तो होता नहीं, कोई हल तो होता नहीं। एक नयी तरकीब का उपयोग करो। जब पत्नी कुछ करे तो तुम मुस्कुराते रहना। कुछ नहीं करना है, ऐसा नहीं, कुछ नहीं करोगे तो मुश्किल पड़ेगी। तुम मुस्कुराते रहना। यह कुछ करना रहेगा, एक बहाना रहेगा। हंसते रहना।

पांच-सात दिन बाद उनकी पत्नी ने आकर कहा कि मेरे पति को क्या हो गया है। बिलकुल हाथ के बाहर जाते हुए मालूम पड़ते हैं। उनका दिमाग तो ठीक है? पहले मैं कुछ कहती थी तो क्रोधित होते थे, वह समझ में आता था। अब मैं कुछ कहती हूं तो वे हंसते हैं। इसका मतलब क्या है? उनका दिमाग तो ठीक है! जब उनका दिमाग बिगड़ जाता था तब पत्नी मानती थी कि ठीक है, क्योंकि वह नार्मल था। अब ठीक हो रहा है तो पत्नी समझती है कि दिमाग कुछ खराब हो रहा है।

स्वभावतः जब कोई गाली दे तो हंसना। तो अगर जीसस को सूली देनेवाले लोगों को लगा हो कि यह आदमी पागल है, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि एब-नार्मल था, असाधारण थी यह बात। जो सूली दे रहे हैं इनके लिए प्रार्थना करनी कि हे प्रभु, इन्हें माफ कर देना।

हम सब जीते हैं प्रमाद में, इसलिए प्रमाद में होना हमारी साधारण, नार्मच अवस्था हो गयी है। हमारे बीच कोई जरा होश से जीये तो हमें अड़चन मालूम होती है। क्योंकि होश से जीनेवाला हमारे बंधन के बाहर होने लगता है। होश से जीनेवाला हमारे हाथ के बाहर खिसकने लगता है। क्योंकि होश से जीनेवाले का अर्थ है कि हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर क्रोध नहीं होता। हम बटन दबाते हैं, उसके भीतर आनंद नहीं होता, वह अपना मालिक होता जा रहा है। अब जब वह आनंदित होता है, होता है।

एक और ध्यान रखने की बात है कि आनंदित आप अकेले हो सकते हैं, लेकिन क्रोधित आप अकेले नहीं हो सकते। आनंद के लिए किसी की आपको अपेक्षा नहीं है कि कोई आपकी बटन दबाये। इसलिए हमने कहा है कि जब कोई व्यक्ति अपना परम मालिक हो जाता है तो परम आनंद को उपलब्ध हो जाता है।

कुछ चीजें हैं जो दूसरों पर निर्भर हैं। जो दूसरों पर निर्भर हैं वह प्रमाद में ही हो सकती हैं। कुछ चीजें हैं जो किसी पर निर्भर नहीं—स्वतंत्र हैं—वे अप्रमाद में हो सकती हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं प्रमाद को कर्म, कर्म-बंधन के कारण। जब भी हम बेहोशी में कुछ कर रहे हैं, हम बंध रहे हैं। और यह कर्म-बंधन हमें लंबी यात्राओं में उलझा देगा, लंबे जाल में डाल देगा।

अप्रमाद को अकर्म, होश को अकर्म कहा है महावीर ने। अगर आप होशपूर्वक क्रोध कर सकते हैं तो महावीर कहते हैं कि आपको क्रोध का कोई बंधन नहीं होगा। लेकिन होशपूर्वक क्रोध होता ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक चोरी कर सकते हैं, तो महावीर कहते हैं चोरी अकर्म है। इसमें फिर कोई कर्म-बंधन नहीं है। लेकिन होशपूर्वक चोरी होती ही नहीं। अगर आप होशपूर्वक हत्या कर सकते हैं, तो महावीर हिम्मतवर हैं, वे कहते हैं, इसमें कोई कर्म का बंधन नहीं है। आप होशपूर्वक हत्या करें। लेकिन होशपूर्वक हत्या होती ही नहीं। हत्या होती है अनिवार्य रूप से बेहोशी में।

तो महावीर कहते हैं, एक ही है नियम, होशपूर्वक। एक ही है पुण्य, होशपूर्वक। एक ही है धर्म, होशपूर्वक। फिर सारी छूट है। होशपूर्वक जो भी करना हो करो। धर्म को इतना इसेंशिएल, इतना सारभूत कम ही लोगों ने समझा और कहा है। इसलिए महावीर की सारी उपदेशना, उनकी सारी धर्मदेशना इस एक ही शब्द के आसपास घूमती है—होश, विवेक, जागरूकता, अप्रमाद। इतना मूल्य दिया है उन्होंने तो सोचने जैसा है। नीति की दूसरी कोई आधारशिला नहीं रखी। यह करना बुरा है, यह करना अच्छा है, इस पर महावीर का जोर नहीं है, लेकिन तब बड़ी हैरानी होती है। महावीर को जिन्होंने पच्चीस सौ साल अनुगमन किया है, उनको होश की कोई फिक्र नहीं है! उनको कर्मों की फिक्र है। वे कहते हैं—यह कर्म ठीक, वह कर्म गलत।

इस फर्क को समझ लें।

जब मैं कहता हूं, यह कर्म ठीक, यह कर्म गलत, तो होश का कोई सवाल नहीं है। जब मैं कहता हूं, होश ठीक, बेहोशी गलत, तो कर्म का कोई सवाल नहीं है। जिस कर्म के साथ भी मैं होश जोड़ लेता हूं वह ठीक हो जाता है। वह अकर्म हो जाता है, उसका कोई बंधन नहीं रह जाता। और जिस कर्म के साथ मैं होश नहीं जोड़ पाता हूं वह पाप है, वह बंधन है, वह अधर्म है, वह कर्म है।

रहस्य यह है कि जो भी गलत है, उसके साथ होश नहीं जोड़ा जा सकता। गलत होने का मतलब ही यह है कि वह केवल बेहोशी में ही संभव है। गलत होने का एक ही गहरा मतलब है कि जो बेहोशी में ही संभव है। सही होने का एक ही मतलब है कि जो केवल होश में ही होता है, बेहोशी में कभी नहीं होता।

इसका क्या मतलब हुआ?

इसका मतलब हुआ कि आप अगर बेहोशी से दान करते हैं तो वह बंधन है।

एक आदमी रास्ते पर भीख मांगता हुआ खड़ा है। आप अकेले जा रहे हैं तो आप भीख मांगनेवाले की फिक्र नहीं करते। चार लोग आपके साथ हैं और भीख मांगनेवाला हाथ फैला देता है तो आपको कुछ देना पड़ता है। यह भीख मांगनेवाले को आप नहीं देते, अपनी इज्जत को, जो चार लोगों के सामने दांव पर लगी है। इसलिए भिखारी भी जानता है कि अकेले आदमी से उलझना ठीक नहीं। चार आदमियों के सामने हाथ फैला देता है, पैर पकड़ लेता है। उस वक्त सवाल यह नहीं

है कि भिखारी को देना है, उस वक्त सवाल यह है कि लोग क्या कहेंगे कि दो पैसे न दे सके। आपका हाथ खीसे में जाता है। यह लोगों के लिए जा रहा है, जो मौजूद हैं। यह दान नहीं है, यह मूर्छा है। आप भिखारी को दे रहे हैं, लेकिन कहीं कोई दया-भाव नहीं है। यह मूर्छा है।

आप दान करते हैं कि मंदिर पर मेरे नाम का पत्थर लग जाये। यह मूर्छा है। आप ही न बचे, मंदिर का पत्थर कितने दिन बचेगा? और जरा जाकर देखें पुराने मंदिरों पर जो पत्थर लगे हैं कौन उनको पढ़ रहा है। वह भी आप ही जैसे लोग लगवा गये हैं। आप भी लगवा जायेंगे।

अगर दान मूर्छा है तो कर्म-बंधन है। लेकिन दान मूर्छा से हो ही नहीं सकता। अगर हो रहा है तो उसका मतलब वह दान नहीं है। आप धोखे में हैं, वह कुछ और है। चार लोगों में प्रशंसा मिलेगी, यह दान नहीं है। हजारों साल तक नाम रहेगा, यह दान नहीं है। यह तो सौदा है, यह तो सीधा सौदा है। अगर अकेले भी हैं आप, कोई देखनेवाला नहीं है और भिखारी हाथ फैलाता है, तब भी जरूरी नहीं है कि दान ही हो।

कई बार ऐसा होता है कि इनकार करना ज्यादा मंहगा और दे देना सस्ता होता है। एक दो पैसे दे देने में ज्यादा सस्ता मालूम पड़ता है मामला, बजाय यह कहने में कि नहीं देंगे। यह नहीं देना ज्यादा मंहगा मालूम पड़ता है। आप दो पैसे दे देते हैं। भिखारियों को लोग अकसर दान नहीं देते, सिर्फ टालने की रिश्वत देते हैं कि जाओ, आगे बढ़ो। वह रिश्वत है, और भिखारी भी अच्छी तरह जानते हैं कि ज्यादा शोरगुल मचाओ, डटे रहो।

आप देखेंगे कि भिखारी डटा ही रहता है। वह भी जानता है कि एक सीमा है, वहां तक रुको। एक सीमा है, जहां यह आदमी रिश्वत देगा कि अब जाओ। भिखारी भी जानते हैं कि दान कोई नहीं देता, इसलिए भिखारी भी आप यह मत सोचना कि अनुगृहीत होते हैं। भिखारी भी जानते हैं, अच्छा बुद्धू बनाया। जब वह लेकर आपसे चले जाते हैं तो आप यह मत सोचना कि वह समझते हैं कि बड़ा दानी आदमी मिल गया था।

आप रिश्वत देते हैं। भिखारी भी जानता है कि यह रिश्वत है। इसलिए जानता है कि आपकी सहनशीलता की सीमा को तोड़ना जरूरी है, तब आपका हाथ खीसे में जाता है। कितनी सहनशीलता है, इस पर निर्भर करता है।

अकेले में भी अगर आप देते हैं तो टालने के लिए, हटाने के लिए। तो फिर दान नहीं है, मूर्छा है। दान मूर्छा से हो ही नहीं सकता। अगर मूर्छा है, दान नहीं हो सकता।

चोरी बिना मूर्छा के नहीं हो सकती। अगर आप होशपूर्वक चोरी करने जायें, तो जा ही न सकेंगे। अगर आप होशपूर्वक किसी की चीज उठाना चाहें, उठा ही न सकेंगे। और अगर उठा लें तो जरा भीतर गौर करके देखना। जिस क्षण उठायेंगे, उस क्षण होश खो जायेगा, मोह पकड़ लेगा, तृष्णा पकड़ लेगी, होश खो जायेगा।

एक बारीक संतुलन है भीतर होश और बेहोशी का। जो आदमी होशपूर्वक जी रहा है, उससे पाप नहीं होता। इसका मतलब यह नहीं है कि महावीर चलेंगे तो कोई चींटी कभी मरेगी ही नहीं, महावीर चलेंगे तो चींटी मर सकती है, मरेगी। फिर भी महावीर कहते हैं, उसमें पाप नहीं, क्योंकि महावीर अपने तइच पूरे होशपूर्वक चल रहे हैं। अपने होश में कोई कमी नहीं है। अब अगर चींटी मरती है तो यह केवल प्रकृति की व्यवस्था है, महावीर का कोई हाथ नहीं है।

और आप, आप भी चल रहे हैं उसी रास्ते पर, और चींटी मरती है तो आपको पाप लगेगा। यह जरा अजीब सा गणित मालूम पड़ता है। महावीर चलते हैं, पाप नहीं लगता। आप चलते हैं, पाप लगता है, चींटी वही मरती है। क्या फर्क है?

आप बेहोशी से चल रहे हैं। इसलिए प्रकृति-दत्त मरना नहीं है चींटी का, आपका हाथ है। आप अपनी तरफ से होश से चले होते, आपने मारने के लिए न जाने, न अनजाने कोई चेष्टा की होती, आपने सब भांति अपने होश को संभालकर कदम उठाया होता, फिर चींटी मर जाती, वह चींटी जाने, प्रकृति जाने, आप जिम्मेदार नहीं थे। आप जो कर सकते थे, वह किया था।

लेकिन आप बेहोशी से चल रहे हैं। आपको पता ही नहीं कि आप चल रहे हैं। आपको यह पता ही नहीं कि पैर आपका कहां पड़ रहा है, क्यों पड़ रहा है? आपका सिर कहीं आसमान में घूम रहा है, पैर जमीन पर चल रहे हैं। आप मौजूद यहां हैं शरीर से, मन कहीं और है।

यह जो बेहोश चलना है, इसमें जो चींटी मर रही है, उसमें आप जिम्मेदार हैं। वह जिम्मेदारी बेहोशी की जिम्मेदारी है, चींटी के मरने की नहीं। चींटी तो आपके होश में भी मर सकती है, लेकिन तब जिम्मेदारी आपकी नहीं।

महावीर चालीस साल जीये, और यह बड़ी गहन चिंतना का विषय रहा है, तत्व-दार्शनिकों को, तत्वज्ञों को, कि महावीर को ज्ञान हुआ, उसके बाद वह चालीस साल जिंदा थे। तो कर्म तो कुछ किया ही होगा। इन चालीस सालों में जो कर्म किया, उसका बंधन महावीर पर हुआ या नहीं? कितना ही कम किया हो, कुछ तो किया ही होगा, उठे होंगे, बैठे होंगे, नहीं उठे, नहीं बैठे, सांस तो ली होगी। सांस लेने में भी तो जीवाणु मर रहे हैं, लाखों मर रहे हैं। एक श्वास में कोई एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। बहुत छोटे हैं, सूक्ष्म हैं।

और जब महावीर ने पहली दफे इनकी बात कही थी तो लोगों को भरोसा नहीं आया कि सांस में कहां के जीवाणु। लेकिन अब तो विज्ञान कहता है कि वे हैं, और महावीर ने जितनी संख्या बतायी थी, उससे ज्यादा संख्या है।

आपके खयाल में नहीं है, आप एक चुंबन लेते हैं तो एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। दो ओठों के संस्पर्श के दबाव में एक लाख जीवाणु मर जाते हैं। यह वैज्ञानिक कहते हैं। महावीर ने तो बहुत पहले इशारा किया था कि श्वास लेते हैं तो भी जीवाणु मर जाते हैं।

इसलिए आप जानकर हैरान होंगे कि महावीर ने प्राणायम जैसी क्रियाओं को जरा भी जगह नहीं दी। यह हैरानी की बात है। क्योंकि योग प्राणायाम पर इतना जोर देता हो, उसके कारण बिलकुल दूसरे हैं। लेकिन महावीर ने बिलकुल जोर नहीं दिया। क्योंकि इतने जोर से श्वास का लेना, छोड़ना, महावीर को लगा, अकारण हिंसा को बढ़ा देना हो जायेगा।

इसलिए महावीर उतनी ही श्वास लेते हैं जितने के बिना नहीं चल सकता, जितने के बिना नहीं चल सकता। श्वास लेने में भी महावीर होश में हैं, जिसके बिना नहीं चल सकता है। अनिवार्य है जो होने के लिए, बस उतनी ही श्वास, वह भी होश में हैं वह, इसलिए दौड़ते नहीं कि श्वास तेज न हो जाये। चिल्लाते नहीं कि श्वास तेज न हो जाये। उतना ही बोलते हैं जितना अपरिहार्य है। चुप रह जाते हैं। क्योंकि जब कुछ भी हम कर रहे हैं उसमें अगर बेहोशी है, तो हिंसा हो रही है।

पर फिर भी महावीर बोले, फिर भी महावीर चले। नहीं कुछ किया तो श्वास तो ली। रात जमीन पर लेटे तो, शरीर का वजन पड़ा होगा। जब एक चुंबन में एक लाख कीटाणु मर जाते हैं, तो जब आदमी जमीन पर लेटेगा, कितना ही साफ-सुथरा करके लेटे करोड़ों कीटाणु मर जायेंगे, करोड़ों जीवाणु मर जायेंगे।

महावीर रात करवट नहीं लेते हैं, फिर भी एक करवट तो लेनी ही पड़ेगी, सोते वक्त। एक बार तो पृथ्वी छूनी ही पड़ेगी। महावीर रात में करवट नहीं बदलते कि बार-बार बहुत सी हिंसा अकारण है। एक करवट से काम चल जाता है तो बस एक करवट काफी है। एक ही करवट सोये रहते हैं। फिर भी एक करवट तो सोते ही हैं।

आप ज्यादा हिंसा करते होंगे, वे कम करते हैं, लेकिन नहीं करते हैं ऐसा तो दिखायी नहीं पड़ता। तो सवाल है कि महावीर ने चालीस साल में इतनी हिंसा की, उसका कर्म-बंधन अगर हुआ हो तो फिर वह मोक्ष कैसे जा सकते हैं? उनका पुनर्जन्म होगा। उतना बंधन, उतना संस्कार फिर जीवन में ले आयेगा। लेकिन नहीं कोई कर्म-बंधन नहीं होता क्योंकि महावीर की कर्म की परिभाषा हम समझ लें।

जो हम मूर्छापूर्वक करते हैं, तभी कर्म-बंधन होता है। जो हम होशपूर्वक करते हैं, कोई कर्म-बंधन नहीं होता। तो महावीर यह नहीं कहते, आप क्या करते हैं। महावीर यह कहते हैं कि आप कैसे करते हैं। क्या महत्वपूर्ण नहीं है, भीतर का होश महत्वपूर्ण है।

'प्रमाद को कर्म, अप्रमाद को अकर्म कहा है, अर्थात जो प्रवृत्तियां प्रमादयुक्त हैं वे कर्म-बंधन करने वाली हैं और जो प्रवृत्तियां प्रमादरहित हैं, वे कर्म-बंधन नहीं करती हैं।'

इसलिए उन प्रवृत्तियों की खोज कर लेना जो मूर्छा के बिना नहीं हो सकतीं। उनको छोड़ना। उन प्रवृत्तियों की भी खोज कर लेना जो बेहोशी में हो ही नहीं सकतीं, सिर्फ होश में हो सकती हैं, उनकी खोज करना, उनका अभ्यास करना। लेकिन यह अभ्यास बहिर्मुखी न हो, भीतरी हो, और होश से प्रारंभ होता हो। होश को बढ़ाना, ताकि वे प्रवृत्तियां बढ़ जायें जीवन में, जो होश में ही होती हैं।

जैसे मैंने कहा, प्रेम। अगर आप बेहोश हैं तो पहले तरह का प्रेम होगा। अगर थोड़े से होश में हैं और थोड़े से बेहोश में हैं तो दूसरे तरह का प्रेम होगा। अगर बिलकुल होश में हैं तो तीसरे तरह का प्रेम होगा। प्रेम करुणा बन जायेगी। अगर बेहोश हैं तो करुणा कामवासना बन जाती है। अगर दोनों के मध्य में हैं तो काम और करुणा के बीच में वह जो कवियों का प्रेम है, वह होता है।

प्रमाद के होने और न होने से; ज्ञान के होने या न होने से नहीं, प्रमाद के होने या न होने से, महावीर कहते हैं, मैं किसी को मूढ़ और किसी को ज्ञानी कहता हूं। वह कितना जानता है, इससे नहीं; कितना होशपूर्वक जीता है, इससे। उसकी जानकारी कितनी है, इससे मैं उसे ज्ञानी नहीं कहता हूं, और उसकी जानकारी बिलकुल नहीं है, इससे अज्ञानी भी नहीं कहता हूं। जानकारी का ढेर लगा हो और आदमी बेहोश जी रहा हो।

मैंने सुना है एडिसन के बाबत। शायद इस सदी का बड़े से बड़ा जानकार आदमी था। एक हजार आविष्कार एडिसन ने किये हैं, कोई दूसरे आदमी ने किये नहीं। आपकी जिंदगी अधिकतर एडिसन से घिरी है। चाहे आप कहते कितने ही हों कि हम भारतीय हैं और हम महावीर और बुद्ध से घिरे हैं। भूल में मत रहना, महावीर और बुद्ध से आपके फासले अनंत हैं। घिरे आप किसी और से हैं। एडिसन से ज्यादा घिरे हैं, बजाय महावीर या बुद्ध के।

बिजली का बटन दबाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। रेडियो खोलो तो एडिसन का आविष्कार है। फोन उठाओ, तो एडिसन का आविष्कार है। हिलो-डुलो, सब तरफ एडिसन है। एक हजार आविष्कार हैं, जो हमारी जिंदगी के हिस्से बन गये हैं। इस आदमी के पास जानकारी का अंत नहीं था। बड़ा अदभुत जानकार आदमी था।

लेकिन एक दिन एडिसन का एक मित्र मिलने आया है। एडिसन सुबह-सुबह अपना नाश्ता करता है। नाश्ता रखा हुआ है। और एडिसन किसी सवाल को हल करने में लगा हुआ है। नौकर को आज्ञा नहीं है कि वह कहे, चुपचाप नाश्ता रख जाये। मित्र ने देखा, एडिसन उलझा है अपने काम में। नाश्ता तैयार है, उसने नाश्ता कर लिया। प्लेट साफ करके, ढांक करके रख दी। थोड़ी देर बाद जब एडिसन ने अपनी आंख उठायी कागज के ऊपर, देखा, मित्र आया है। कहा कि बड़ा अच्छा हुआ आये। नजर डाली खाली प्लेट पर। एडिसन ने कहा जरा देर से आये। पहले आते तो तुम भी नाश्ता कर लेते। मैं नाश्ता कर चुका। खाली प्लेट।

जानकारी अदभुत है इस आदमी की, लेकिन होश? होश बिलकुल नहीं है।

होश और बात है, जानकारी और बात है। आप कितना जानते हैं, यह अंततः निर्णायक नहीं है धर्म की दृष्टि से। आप कितने हैं, कितने चेतन हैं, कितने जगे हुए हैं, इस पर निर्भर करेगा।

कबीर की जानकारी कुछ भी नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। मुहम्मद की जानकारी बहुत ज्यादा नहीं है, लेकिन होश अनूठा है। जीसस की जानकारी क्या है? कुछ भी नहीं, एक बढ़ई के लड़के की जानकारी हो भी क्या सकती है? लेकिन होश अनूठा है।

एडिसन नाश्ते में भी बेहोश हो जाता है और जीसस सूली पर भी होश में हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, प्रमाद को मैं कहता हूं, मूर्खता। अप्रमाद को मैं कहता हूं, पांडित्य, प्रज्ञा।

'जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।'

जो प्रज्ञावान है, उसको यह सूत्र खयाल में आ जायेगा जीवन की व्यवस्था का। जीवन की जो आंतरिक व्यवस्था है वह यह है, जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं। अगर आपको दुख है, तो आप जानना कि मोह है। दुख हम सभी को है। कम ज्यादा, और हर आदमी सोचता है, उससे ज्यादा दुखी आदमी संसार में दूसरा नहीं है। हर आदमी यह सोचता है, सारे दुख के हिमालय वही ढो रहा है।

'जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।' अगर आपको ऐसा लगता हो कि दुख के हिमालय ढो रहे हैं तो समझ लेना कि मोह के प्रशांत सागर भी आपके भीतर होंगे। मोह के बिना दुख होता ही नहीं। जब भी दुख होता है, मोह से होता है।

मोह का अर्थ है—ममत्व। मोह का अर्थ है—मेरा का भाव। मकान में आग लग गयी, मेरा है तो दुख होता है। मेरा नहीं है तो दुख नहीं होता। मेरा नहीं है तो सहानुभूति दिखा सकते हैं आप, लेकिन उसमें भी एक रस होता है। मेरा है, तब दुख

होता है। मकान वही है, लेकिन अगर इन्श्योर्ड है तो उतना दुख नहीं होता। बीमा कंपनी का जाता होगा, सरकार का जाता होगा; अपना क्या जाता है?

अपना है, तो दुख होता है। आपका बेटा मर गया, छाती पीट रहे हैं। और तभी एक चिट्ठी आपके हाथ लग जाये, जिससे पता चले कि यह बेटा आपसे पैदा नहीं हुआ। पत्नी का किसी और से संबंध था, उससे पैदा हुआ। आंसू तिरोहित हो जायेंगे, दुख विलीन हो जायेगा। छुरी निकाल कर पत्नी की तलाश में लग जायेंगे कि पत्नी कहां है।

क्या हो गया?

वही व्यक्ति मरा हुआ पड़ा है सामने। मरने में कोई कमी नहीं होती है, आपकी इस जानकारी से, इस पत्र से। मौत हो गयी है, लेकिन मौत का दुख नहीं है, मेरे का दुख है। जो हमारा नहीं है उसे हम मारना भी चाहते हैं। जो हमारे विपरीत है, उसको हम नष्ट भी करना चाहते हैं। जो अपना है, उसे बचाना चाहते हैं।

महावीर कहते हैं, 'जिसे मोह नहीं, उसे दुख नहीं।' अगर दुख है तो जानना कि मोह है।

'जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।' अगर मोह है तो उसके भीतर तृष्णा होती है। 'मेरा', हम कहते ही क्यों हैं? क्योंकि बिना 'मेरे' के 'मैं' को खड़े होने की कोई जगह नहीं। जितना मेरे 'मेरे' का विस्तार होता है उतना बड़ा मेरा 'मैं' होता है। इसलिए मैं की एक ही तृष्णा है, एक ही वासना है कि बड़ा, बड़ा हो जाऊं।

जिसके पास बड़ा राज्य है, उसके पास बड़ा मैं है। एक राजा का राज्य छीन लो, राज्य ही नहीं छिनता उसका, मैं भी छिन जाता है, सिकुड़ जाता है। एक धनी का धन छीन लो, धन ही नहीं छिनता, धनी सिकुड़ जाता है।

जो भी आपके पास है, वह आपका फैलाव है। मैं की एक ही तृष्णा है कि मैं ही बचूं। यह सारा ब्रह्माण्ड मेरे अहंकार की भूमि बन जाये। यह जो वासना है कि मैं फैलूं, मैं बचूं, सुरक्षित रहूं, सदा रहूं, अमरत्व को उपलब्ध हो जाऊं, मेरी कोई सीमा न हो, अनंत हो जाये मेरा साम्राज्य, तो यह है तृष्णा, यह है डिजायर।

महावीर कहते हैं, 'जिसे तृष्णा नहीं, उसे मोह नहीं।' जिसको अपने मैं को बढ़ाना ही नहीं है, वह मेरे से क्यों जुड़ेगा?

छोटे झोपड़े में जब आप रहते हैं तो आपका मैं भी उतना ही छोटा रहता है, झोपड़ेवाले का मैं। बड़े महल में रहते हैं तो बड़े महल वाले का मैं। मैं आपका खोज करता है, कितनी बड़ी जगह घेर ले। स्पेस चाहिए मैं को फैलने के लिए।

इसलिए आप देखते हैं कि अगर एक नेता चल रहा हो भीड़ में, तो बिलकुल भीड़ के साथ नहीं चलता, थोड़ी स्पेस, थोड़ा आगे चलेगा, भीड़ थोड़ी पीछे चलेगी, जगह चाहिए। अगर भीड़ बिलकुल पास आ जाये तो नेता को तकलीफ शुरू हो जाती है। तकलीफ इसलिए शुरू हो जाती है कि उसका जो विस्तार था मैं का, वह छीना जा रहा है।

और कोई आदमियों के नेता की ही ऐसी बात नहीं, अगर बंदरों का झुंड चल रहा हो, तो जो नेता है, उसमें जो बॉस है, उसके आसपास एक आदरपूर्ण स्थान होता है, जिसमें कोई प्रवेश नहीं कर सकता। बाकी बंदर की जो भीड़ है, वह थोड़ी दूर जगह पर बैठेगी।

अगर आप नेता से मिलने गये हैं तो बिलकुल पास नहीं बैठ सकते। अपने-अपने स्थान पर बैठना पड़ता है। एक जगह है, उसको वैज्ञानिक कहते हैं, टैरिटोरियल। एक अहंकार है जो प्रदेश घेरता है। फिर कितना बड़ा प्रदेश घेरता है? जितना बड़ा घेरता है उतना 'मैं' को मजा आता है। उतना लगता है कि अब मैं मजबूत हूं, शक्तिशाली हूं। इसलिए किसी सम्राट के कंधे पर हाथ जाकर मत रख देना।

कहा जाता है कि हिटलर की जिंदगी में कोई उसके कंधे पर हाथ नहीं रख सका। इतना फासला ही कभी मिटने नहीं दिया। गोबेल्स हो कि उसके और निकट के मित्र हों, वह भी एक फासले पर खड़े रहेंगे, दूर, कंधे पर कोई हाथ नहीं रख सकता।

हिटलर का कोई मित्र नहीं था। मित्र बनाये नहीं जा सकते, क्योंकि मित्र का मतलब है कि वह जो जगह है अहंकार की, उसको आप दबायेंगे। छीनेंगे। राजनीतिज्ञ के आप अनुयायी हो सकते हैं, शत्रु हो सकते हैं, मित्र नहीं हो सकते।

यह जो महावीर कहते हैं, जिसे मोह है, उसे तृष्णा है। अगर दुख है तो जानना कि मोह का सागर भरा है नीचे। अगर मोह है तो जानना कि तृष्णा की दौड़ है पीछे।

'जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं।'

और इसलिए लोभ गहरे से गहरा है। तृष्णा भी लोभ का विस्तार है, ग्रीड का। मैं ज्यादा हो जाऊं। ज्यादा होने की जो दौड़ है, वह तृष्णा है। ज्यादा होने की जो वृत्ति है, वह लोभ है।

तृष्णा परिधि है, लोभ केंद्र है। परिधि सफल हो जाये तो मोह निर्मित होता है। परिधि असफल निर्मित हो जाये, असफल हो जाये तो क्रोध निर्मित होता है। जितनी तृष्णा सफल होती जाये, मोह बनता जाता है, और जितनी असफल हो उतना दुख। असफल हो, तो दुख।

'जिसे लोभ नहीं, उसे तृष्णा नहीं। और जो ममत्व से अपने पास कुछ भी नहीं रखता, उसका लोभ नष्ट हो जाता है।'

क्या है उपाय फिर?

एक ही उपाय है, 'मेरे' को क्षीण करते जाना। पत्नी होगी, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। बेटा होगा, पर मेरे का भाव क्षीण कर लें। मकान को रहने दें, मकान को गिराने से कुछ न गिरेगा। मेरे को हटा लें। मकान पर वह जो मेरे को चिपका दिया है, वह जो आपके प्राण भी मकान के इच्ट-गारे में समा गये हैं, उनको वापस हटा लें।

मेरे को हटाते जायें, ममत्व को तोड़ते चले जायें, और एक दिन ऐसी स्थिति आ जाये कि मकान तो दूर, यह जो और पास का मकान है—देह, शरीर—इससे भी पीछे हटा लें। ये हड्डियां भी मेरी नहीं; हैं भी नहीं। यह मांस भी मेरा नहीं, यह खून भी मेरा नहीं, यह चमड़ी भी मेरी नहीं। है भी नहीं। मैं नहीं था, तब ये हड्डियां किसी और की हड्डियां थीं, और मैं नहीं रहूंगा तब यह मांस किसी और का मांस हो जायेगा। यह खून किसी और की नसों में बहेगा। और यह चमड़ी किसी और के मकान का घेरा बनेगी। यह मेरा है नहीं। यह मेरे पहले भी था और मेरे बाद भी होगा। इससे भी अपने को हटा लें।

फिर और भीतर मैं का एक मकान है, मन का। कहते हैं, मेरे विचार। तो जरा गौर से देखें, कौन-सा विचार आपका है? सब विचार पराये हैं। सब संग्रह हैं, सब स्मृति है। वहां से भी अपने को तोड़ लें। तोड़ते चले जायें ममत्व से उस घड़ी तक, उस समय तक, जब तक कि मेरा कहने योग्य कुछ भी बचे। जब कुछ भी न बचे मेरा कहने योग्य, तब जो शेष रह जाता है, उसका नाम आत्मा है।

लेकिन हम तो ऐसे हैं कि हम कहते हैं, मेरी आत्मा। मेरी आत्मा जैसी कोई चीज नहीं होती। जहां तक मेरा होता है, वहां तक आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता।

इसलिए बुद्ध ने तो कह दिया कि आत्मा शब्द ही छोड़ दो, क्योंकि इससे मेरे का भाव पैदा होता है, यह शब्द ही मत उपयोग करो, क्योंकि इससे लगता है मेरा, आत्मा का मतलब ही होता है मेरा। यह छोड़ ही दो। तो बुद्ध ने कहा, यह शब्द ही छोड़ दो, ताकि यह मेरा पूरी तरह टूट जाये। कहीं मेरा न बचे, तब भी आप बचते हैं।

जब सब मेरा छूट जाता है तब जो बचता है, वही है आपका अस्तित्व, वही है आपकी चेतना, वही है आपकी आत्मा। वह जो शून्य निराकार, होना, बच रहता है, वही है आपकी मुक्ति, वही है आनंद।

आज इतना ही।

रुकें पांच मिनट, कीर्तन करें।

सारा खेल काम-वासना का

चौथा प्रवचन

दिनांक 16 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

प्रमाद-स्थान-सूत्र : 2

रसा पगामं न निसेवियव्वा,

पायं रसा दित्तिकरा नराणं।

दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति,
दुमं जहा साउफलं व पक्खी।।
न कामभोगा समयं उवेन्ति,
न यावि भोगा विगइं उवेन्ति।
जे तप्पओसी य परिग्गही य,
सो तेसु मोहा विगइं उवेइ।।

दूध, दही, घी, मक्खन, मलाई, शक्कर, गुड़, खांड, तेल, मधु, मद्य, मांस आदि रसवाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष की ओर पक्षी।

काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं और न किसी में राग-द्वेष रूप विकृति पैदा करते हैं, परन्तु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बनाकर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।

पहले एक दो प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है—यदि महावीर की साधना विधि में अप्रमाद प्राथमिक है, तो क्या अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम उसके ही परिणाम हैं या वे साधना के अलग आयाम हैं?

जीवन अति जटिल है, और जीवन की बड़ी से बड़ी और गहरी से गहरी जटिलता यह है कि जो भीतर है, आंतरिक है, वह बाहर से जुड़ा है, और जो बाहर है, वह भी भीतर से संयुक्त है। यह जो सत्य की यात्रा है यह कहां से शुरू हो, यह गुच्हयतम प्रश्न रहा है मनुष्य के इतिहास में।

हम भीतर से यात्रा शुरू करें या बाहर से, हम आचरण बदलें या अंतस, हम अपना व्यवहार बदलें या अपना चैतन्य? स्वभावतः दो विपरीत उत्तर दिये गये हैं। एक ओर हैं वे लोग, जो कहते हैं, आचरण को बदले बिना अंतस को बदलना असंभव है। उनके कहने में भी गहरा विचार है। वे यह कहते हैं, कि अंतस तक हम पहुंच ही नहीं पाते, बिना आचरण को बदले। वह जो भीतर छिपा है उसका तो हमें कोई पता नहीं है, जो हमसे बाहर होता है उसका ही हमें पता है। तो जिसका हमें पता ही नहीं है उसे हम बदलेंगे कैसे? जिसका हमें पता है उसे ही हम बदल सकते हैं। हमें अपने केंद्र का तो कोई अनुभव नहीं है, परिधि का ही बोध है। हम तो वही जानते हैं जो हम करते हैं।

मनसविदों का एक वर्ग है जो कहता है, मनुष्य उसके कर्म के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। कहलर ने कहा है—यू आर व्हाट यू डू। जो करते हो, वही हो तुम, उससे ज्यादा नहीं। उससे ज्यादा की बात करनी ही नहीं चाहिए। हमारा किया हुआ ही हमारा होना है। इसलिए हम जो करते हैं, उससे ही हम निर्मित होते हैं।

सार्त्र ने भी कहा है कि प्रत्येक कृत्य तुम्हारा जन्म है, क्योंकि प्रत्येक कृत्य से तुम निर्मित होते हो, और प्रत्येक व्यक्ति प्रतिपल अपने को जन्म दे रहा है। आत्मा कोई बंधी हुई , बनी हुई चीज नहीं है, बल्कि एक लम्बी शृंखला है निर्माण की। तो जो हम करते हैं, उससे ही वह निर्मित होती है।

आज मैं झूठ बोलता हूं तो मैं एक झूठी आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं चोरी करता हूं तो मैं एक चोर आत्मा निर्मित करता हूं। आज मैं हिंसा करता हूं तो मैं एक हिंसक आत्मा निर्मित करता हूं, और यह आत्मा मेरे कल के व्यवहार को प्रभावित करेगी, क्योंकि कल का व्यवहार इससे निकलेगा।

पहले, क्योंकि अण्डे के पहले मुग हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुग पहले कि अण्डा पहले।

एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर कि मुग पहले कि अण्डा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।

असल में जब हम मुग कहते हैं तो अण्डा आ गया। जब हम अण्डा कहते हैं तो मुग आ गयी। हम बाहर

से मुर्गी-अण्डे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी-अण्डे दो नहीं हैं। एक श्रृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अण्डा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अण्डा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी तो यह मुर्गी अण्डे से ही पैदा हुई है। यह अण्डे का ही फैलाव है, यह अण्डे का ही आगे का कदम है। यह अण्डा ही तो मुर्गी बना है।

जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अण्डा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।

अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूं कि मुझे अण्डा चाहिए और वह मुझे मुर्गी दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अण्डा अलग समझा जाये, मुर्गी अलग समझी जाये। लेकिन मुर्गी और अण्डे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अण्डे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अण्डा।

देकार्त ने मजाक में कहा है—यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अण्डे का एक ढंग और अण्डे पैदा करने का। ए मैथड आफ दि एग टु प्रोड्यूस मोर एग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अण्डे की और अण्डे पैदा करने की। इससे उल्टा भी हम कह सकते हैं, कि अण्डा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अण्डा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एक श्रृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अण्डा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अण्डा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अण्डा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पायेंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।

ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गयी नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवार उठा लेने से, वह एक ही है।

मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखण्डित है, आत्मा भी अखण्डित है। आत्मा का अर्थ है, भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ है, बाहर फैली हुई आत्मा।

यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको यह दिखायी पड़ जाये कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।

पहले, क्योंकि अण्डे के पहले मुर्गी हो कैसे सकेगी! और ऐसा नहीं कि गैर-बुद्धिमान इस तरह के तर्क में पड़ते हैं, बड़े-बड़े विचारशील लोग, बड़े दार्शनिकों ने भी इस पर चिंतन किया है कि मुर्गी पहले कि अण्डा पहले।

एक भारतीय विचारक राहुल सांकृत्यायन ने बड़ी मेहनत की है इस विचार पर कि मुर्गी पहले कि अण्डा पहले। हमको भी लगता है कि प्रश्न तो सार्थक है, पूछा जा सकता है। लेकिन प्रश्न व्यर्थ है, पूछा ही नहीं जा सकता। प्रश्न भाषा की भूल से पैदा होता है, लिंग्विस्टिक फैलिसी है।

असल में जब हम मुर्गी कहते हैं तो अण्डा आ गया। जब हम अण्डा कहते हैं तो मुर्गी आ गयी। हम बाहर से मुर्गी-अण्डे को दो में कर लेते हैं, लेकिन मुर्गी-अण्डे दो नहीं हैं। एक श्रृंखला के हिस्से हैं। हम तोड़ लेते हैं कि यह रही मुर्गी और यह रहा अण्डा। जब हम कहते हैं, यह रही मुर्गी, तो मुर्गी में अण्डा छिपा है। जब हम कहते हैं, यह

रही मुर्गी तो यह मुर्गी अण्डे से ही पैदा हुई है। यह अण्डे का ही फैलाव है, यह अण्डे का ही आगे का कदम है। यह अण्डा ही तो मुर्गी बना है।

जब हम आपसे कहते हैं बूढ़ा, तो आपका बचपन उसमें छिपा हुआ है। आपकी जवानी उसमें छिपी हुई है। बूढ़ा आदमी जवानी लिए हुए है, बचपन लिए हुए है। जब हम कहते हैं बच्चा, तो बच्चा भी बुढ़ापा लिए हुए है, जवानी लिए हुए है जो कल होगा वह अभी छिपा हुआ है। जो कल हो गया, वह भी छिपा है। लेकिन हम भाषा में तोड़ लेते हैं, मुर्गी अलग मालूम पड़ती है, अण्डा अलग मालूम पड़ता है। और ठीक भी है, जरूरी भी है।

अगर दुकानदार से मैं जाकर कहूं कि मुझे अण्डा चाहिए और वह मुझे मुर्गी दे दे, तो बड़ी कठिनाई खड़ी हो जायेगी। दुकानदार के लिए और मेरे लिए जरूरी है कि अण्डा अलग समझा जाये, मुर्गी अलग समझी जाये। लेकिन मुर्गी और अण्डे की जीवन व्यवस्था में वे अलग नहीं हैं। अण्डे का अर्थ होता है, होने वाली मुर्गी। मुर्गी का अर्थ होता है, हो गया अण्डा।

देकार्त ने मजाक में कहा है—यह सवाल किसी ने देकार्त को पूछा है, तो देकार्त ने कहा कि मुझे मुश्किल में मत डालो। पहले तुम मेरी मुर्गी की परिभाषा समझ लो। देकार्त ने कहा कि मुर्गी है अण्डे का एक ढंग और अण्डे पैदा करने का। ए मैथड आफ दि एग टु प्रोड्यूस मोर एग्स। मुर्गी बस केवल एक विधि है अण्डे की और अण्डे पैदा करने की। इससे उल्टा भी हम कह सकते हैं, कि अण्डा केवल एक विधि है मुर्गी की, और मुर्गियां पैदा करने की। एक बात साफ है, कि अण्डा और मुर्गी अस्तित्व में दो नहीं हैं, एक श्रृंखला के दो छोर हैं। एक कोने पर अण्डा है, दूसरे कोने पर मुर्गी है। जो अण्डा है वही मुर्गी हो जाता है, जो मुर्गी है वही अण्डा हो जाती है। इसलिए जो इसे दो में तोड़कर हल करने की कोशिश करते हैं, वे कभी हल न कर पायेंगे। भाषा की भूल है। अस्तित्व में दोनों एक हैं, भाषा में दो हैं।

ठीक ऐसा ही बाहर और भीतर भाषा की भूल है। जिसको हम बाहर कहते हैं, वह भीतर का ही फैलाव है। जिसको हम भीतर कहते हैं, वह बाहर की ही भीतर प्रवेश कर गयी नोक है। बाहर और भीतर हमारे लिए दो हैं, अस्तित्व के लिए एक हैं। वह जो आकाश आपके बाहर है मकान के, और जो मकान के भीतर है वह दो नहीं हो गया है आपकी दीवार उठा लेने से, वह एक ही है।

मैंने अपनी गागर सागर में डाल दी है। वह जो पानी मेरी गागर में भर गया है वह, और वह जो पानी मेरी गागर के बाहर है, दो नहीं हो गया है मेरी गागर की वजह से। वह जो भीतर है, वह जो बाहर है, वह एक ही है। आकाश अखण्डित है, आत्मा भी अखण्डित है। आत्मा का अर्थ है, भीतर छिपा हुआ आकाश। आकाश का अर्थ है, बाहर फैली हुई आत्मा।

यह मैं क्यों कह रहा हूं? यह मैं इसलिए कह रहा हूं ताकि आपको यह दिखायी पड़ जाये कि चाहे बाहर से शुरू करो, चाहे भीतर से शुरू करो। बाहर से शुरू करो तो भी भीतर से शुरू करना पड़ता है, भीतर से शुरू करो तो भी बाहर से शुरू करना पड़ता है।

महावीर जैसे व्यक्ति मनुष्य के अस्तित्व को देखते हैं उसकी अखण्डता में। इसलिए महावीर ने कहा है, कहां से शुरू करो, यह गौण है, क्योंकि बाहर और भीतर जुड़े हुए हैं। अगर एक व्यक्ति अहिंसक आचरण से शुरू करे, तो भी उसको अप्रमाद साधना पड़ेगा। उसको होश साधना पड़ेगा। क्योंकि बिना होश के अहिंसा नहीं हो सकती। और अगर बिना होश के अहिंसा हो रही है तो वह महावीर की अहिंसा नहीं है, वह जैनियों की अहिंसा भले हो। महावीर की अहिंसा में तो अप्रमाद आ ही जायेगा, क्योंकि महावीर की अहिंसा का मतलब दूसरे को मारने से बचाना नहीं है।

यह बड़े मजे की बात है। क्योंकि दूसरे को हम मार ही कहां सकते हैं। इसलिए जो लोग सोचते हैं, अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना—उनसे ज्यादा मूढ़, चिंतना करनेवाले लोग खोजने मुश्किल हैं। लेकिन यही समझाया जाता है कि अहिंसा का अर्थ है दूसरे को न मारना। दूसरे की हत्या न करना, दूसरे को दुख न पहुंचाना।

इसे हम थोड़ा समझ लें।

महावीर कहते हैं, आत्मा अमर है, इसलिए दूसरे को मार कैसे सकते हैं। दूसरे को मारने का उपाय कहां है?

अगर मैं एक चींटी को पैर रखकर पिसल डालता हूं, तो भी मैं मार नहीं सकता। चींटी मर नहीं सकती मेरे पिसल देने से। अगर चींटी मर ही नहीं सकती, और उसकी आत्मा अमृत है, तो फिर दूसरे को मारना, नहीं मारना—ऐसी बातें करना अहिंसा के संबंध में बेमानी हैं। मार तो हम सकते ही नहीं—पहली बात। मारने का तो कोई उपाय ही नहीं है। और अगर हम मार ही सकते और आत्मा मिट जाती तो फिर आत्मा को खोजने का भी कोई उपाय नहीं था। फिर व्यर्थ थी सारी खोज। क्योंकि अगर मेरे मारने से किसी की आत्मा मर जाती है तो कोई मुझे मार डाले, मेरी आत्मा मर जायेगी। तो जो मर जाती है, उस आत्मा को पाकर भी क्या करेंगे? वह तो जरा-सा पत्थर फेंक दिया जाये और आत्मा खत्म हो जायेगी।

अमृत की तलाश है, इसलिए महावीर यह नहीं कह सकते कि दूसरे को मत मारो, यह अहिंसा की परिभाषा है। दूसरा तो मारा जा नहीं सकता—पहली बात। फिर अहिंसा का क्या अर्थ होगा?

महावीर के लिए अहिंसा का अर्थ है दूसरे को मारने की धारणा मत करो। दूसरे को मारा नहीं जा सकता, लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है। वही विचार पाप है। दूसरे को मारने का तो कोई उपाय नहीं है। लेकिन दूसरे को मारने का विचार किया जा सकता है, वही पाप है।

इसलिए महावीर ने कहा, मारो या विचार करो, बराबर है। इसलिए भाव-हिंसा को भी उतना ही मूल्य दिया, जितना वास्तविक हिंसा को। हम कहेंगे, ज्यादती है। अदालत भाव-हिंसा को नहीं पकड़ती। अगर आप कहें कि मैं एक आदमी को मारने का विचार कर रहा हूं, तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। आप कहें कि मैंने सपने में एक आदमी की हत्या कर दी है तो अदालत आपको सजा नहीं दे सकती। अपराध जब तक कृत्य न हो तब तक अपराध नहीं है। लेकिन महावीर ने कहा है, पाप और अपराध में यही फर्क है। अदालत तो तभी पकड़ेगी जब कृत्य हो, लेकिन धर्म तभी पकड़ लेता है, जब भाव हो।

एक आदमी को मैं मारूं, या एक आदमी को मारने का विचार करूं, बराबर पाप हो गया, बराबर। जरा भी फर्क नहीं है। क्यों? क्योंकि वास्तविक मारकर भी मैं मार कहां पाता हूं? वह भी मेरा विचार ही है मारने का। और कल्पना में भी मारकर मैं मारता नहीं, मेरा विचार ही है, लेकिन जो मारने के विचार करता है, वह हिंसक है। कोई मरता नहीं मेरे मारने से, लेकिन मार-मारकर मैं अपने भीतर सड़ता हूं।

हम कहते हैं आमतौर से कि दूसरे को दुख नहीं देना है, दूसरे को दुख देना हिंसा है, लेकिन यह भी बात महावीर की नहीं हो सकती। क्योंकि दूसरे को मैं दुख दे कैसे सकता हूं? आप महावीर को दुख देकर देखें, तब आपको पता चलेगा। आप लाख उपाय करें, आप महावीर को दुख नहीं दे सकते। दूसरे को दुख देना मेरे हाथ में कहां है, जब तक दूसरा दुखी होने को तैयार न हो। यह मेरी स्वतंत्रता नहीं है कि मैं दूसरे को दुख दे दूं। जीसस को हमने सूली देकर देख ली, और हम दुख नहीं दे पाये। और मंसूर के हमने हाथ पैर काट डाले और गर्दन तोड़ डाली, तो भी हम दुख नहीं दे पाये। मंसूर हंस रहा था। और हमने वह लोग भी देख लिए हैं कि उनको सिंहासनों पर बिठा दो तो भी उनके चेहरे पर हंसी नहीं आती।

हम न सुख दे सकते हैं, न दुख दे सकते हैं। यह हमारे हाथ में नहीं है। यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। हम आमतौर से सोचते हैं, किसी को दुख मत दो। आप दे कब सकते हो दूसरे को दुख? यह कहा किसने? यह वहम आपको पैदा कैसे हुआ? यह वहम एक गहरे दूसरे वहम पर खड़ा हुआ है। हम सोचते हैं, हम दूसरे को सुख दे सकते हैं। इसलिए यह जुड़ा हुआ है।

सब आदमी सुख दे रहे हैं। मां बेटों को सुख दे रही हैं। बेटे मां को सुख दे रहे हैं। पति पत्नियों को सुख दे रहे हैं। भाई भाई को, मित्र मित्र को सुख देने की कोशिश में लगे हैं और कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। अभी तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला जो कहे कि मुझे मेरी मां ने सुख दिया। कि मां मिले, कहे कि मेरे बेटे ने मुझे सुख दिया। कोई किसी को सुख नहीं दे पा रहा है। और सारी दुनिया सुख देने की कोशिश में लगी है। इतनी सुख देने की चेष्टा, और सुख का कहीं कोई पता नहीं चलता। बल्कि अकसर ऐसा लगता है कि जितना सुख देने की चेष्टा करो उतना दुख पहुंचता मालूम पड़ता है।

क्या, हो क्या रहा है? हम सुख दे सकते हैं दूसरे को, तब तो यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती थी, कभी की बन जाती, कोई कमी नहीं है इसमें। कभी कोई कमी नहीं रही है। लेकिन यह पृथ्वी स्वर्ग बन नहीं पाती, क्योंकि हम दूसरे को सुख दे नहीं सकते। कितने ही उपकरण जुटा लें हम, और कितना ही धन हो, और कितना ही वैभव हो, कितना ही धान्य हो, कितनी ही खुशहाली हो, एफ्फलुएंस कितना ही हो जाये, समृद्धि कितनी ही हो जाये, हम सुख नहीं दे सकते, क्योंकि सुख दिया नहीं जा सकता। कोई सुखी होना चाहे तो सुखी हो सकता है, लेकिन कोई किसी को सुखी कर नहीं सकता।

इस बात को ठीक से समझ लें।

सुख दूसरे के द्वारा, दूसरे से, निर्मित नहीं होता। आप चाहें तो सुखी हो सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति चाहे तो सुखी हो सकता है। लेकिन महावीर की भी यह हैसियत नहीं है कि किसी को सुखी कर दें। आप अगर महावीर के पास भी हों तो दुखी रहेंगे। आपसे महावीर हारेंगे, जीतने का कोई उपाय नहीं है। आप जीतकर ही लौटेंगे। अपनी रोती हुई शक्ल लेकर ही आप लौटेंगे। महावीर भी आपको हंसा नहीं सकते। विजेता अंत में आप ही होंगे। इसका कारण यह नहीं कि महावीर कमजोर हैं और आप बड़े शक्तिशाली हैं।

इसका कुल कारण इतना है कि दूसरे को सुखी करने का कोई उपाय ही नहीं है। दूसरे को दुखी करने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर सुखी करने का उपाय होता तो दुखी करने का भी उपाय होता। जो अपने हैं, जिनके साथ हमारा ममत्व का बन्धन है, उनको हम सुखी करने का उपाय करते हैं। जिनके साथ हमारा ममत्व के विपरीत संबंध है, जिनसे हमारी घृणा है, ईर्ष्या है, जलन है, क्रोध है, उन्हें हम दुखी करने का उपाय करते हैं। हम दोनों में असफल होते हैं। न हम मित्रों को सुखी कर पाते, न हम शत्रुओं को दुखी कर पाते।

अगर मित्र सुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा; अगर शत्रु दुखी होते हैं तो यह उनका ही कारण होगा। आप इसमें नाहक अपने को न लायें। क्योंकि अगर मैं दुखी होना न चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे दुखी नहीं कर सकती। अगर मैं सुखी न होना चाहूं तो कोई दुनिया की शक्ति मुझे सुखी नहीं कर सकती। सुख और दुख व्यक्ति के निर्णय हैं, निजी, आत्मगत और व्यक्ति स्वतंत्र है।

तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि अहिंसा का यह अर्थ भी करना ठीक नहीं कि हम दूसरे को दुखी न करें, यह अर्थ भी ठीक नहीं है। दूसरे को दुखी करने की चेष्टा न करें, इतना है अहिंसा का अर्थ। क्योंकि दूसरे को हम दुखी तो कर ही न पायेंगे, लेकिन दूसरे को दुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं। ठीक अगर इसको हम और गहरा समझें तो हम दूसरे को सुखी तो कर ही न पायेंगे, लेकिन दूसरे को सुखी करने की चेष्टा में हम अपने को दुखी कर लेते हैं।

यह बड़े मजे की बात है, अगर आप अपने को सुखी करने में लग जायें तो शायद आपके आसपास के लोग भी थोड़े सुखी होने लगेंगे। लेकिन हम उनको सुखी करने में लगे रहते हैं। उसमें वह तो सुखी हो नहीं पाते, हम दुखी हो जाते हैं। अगर आप अपने आसपास के लोगों को पूरी स्वतंत्रता दे सकें, यही अहिंसा है। इसे ठीक से समझ लें।

अगर मैं दूसरे को परिपूर्ण स्वतंत्रता दे सकूं कि न तो मैं तुम्हें दुखी करूंगा, और न तुम्हें मैं सुखी करूंगा, मैं तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्रता देता हूं। तुम जो होना चाहो हो जाओ, मैं कोई बाधा नहीं डालूंगा, इस भाव का नाम अहिंसा है। अहिंसा जरा जटिल मामला है। इतना आसान नहीं है, जितना आप सोचते हैं। कई लोग कहते हैं, हम किसी को दुखी नहीं कर रहे। फिर भी अहिंसा नहीं हो जायेगी। यह खयाल भी कि आप दूसरे को दुखी कर सकते थे और अब नहीं कर रहे हैं, भ्रम है।

अहिंसा का अर्थ है, व्यक्ति परम स्वतंत्र है और मैं कोई बाधा नहीं डालूंगा। इतनी बाधा भी नहीं डालूंगा कि उसे सुखी करने की कोशिश करूं। मैं सुखी हो जाऊं तो शायद मेरे आसपास जो आभा निर्मित होती है सुख की, वह किसी के काम आ जाये, लेकिन वह भी मेरी चेष्टा से काम नहीं आयेगी। वह भी उसका ही भाव होगा काम में लाने का, तो काम में आयेगी।

अहिंसा का इतना ही मतलब है कि मेरे चित्त में दूसरे को कुछ करने की धारणा मिट जाये। अगर कोई आदमी

अहिंसा से शुरू करेगा तो भी अप्रमाद पर पहुंच जायेगा। क्योंकि बड़ा होश रखना पड़ेगा। हमें पता ही नहीं रहता है कि हम किन-किन मार्गों से, कितनी-कितनी तरकीबों से दूसरे को बाधा देते हैं—हमें पता ही नहीं रहता। हमारे उठने में, हमारे बैठने में, निन्दा, प्रशंसा सम्मिलित रहती है। हमारे देखने में, समर्थन और विरोध शामिल रहता है। हम दूसरे को स्वतंत्रता देना ही नहीं चाहते। और जितने निकट हमारे कोई हो, हम उसको उतना परतंत्र करने की कोशिश में संलग्न रहते हैं। हमारी चेष्टा ही यही है कि दूसरा स्वतंत्र न हो जाये। इसका नाम हिंसा है, इस चेष्टा का नाम।

कोई आप परतंत्र कर पायेंगे, इस भ्रम में मत पड़ें। कोई परतंत्र हो नहीं पाता। पति अपने मन में कितना ही सोचता हो कि हम मालिक हैं, पति हैं और पत्नी उसको चिट्ठी में लिखती भी हो, स्वामी, आपके चरणों की दासी; मगर इससे कुछ हल नहीं होता। घर लौटकर पता चलेगा कि दासी क्या करती है। पत्नी कितनी ही सोचती हो कि मालकियत मेरी है, और पति के शरीर पर नहीं, उसकी आत्मा पर भी मेरा कब्जा है और उसकी आंख भी किस तरफ देखे और किस तरफ न देखे, यह भी मेरे इशारे पर चलता है। वह कितनी ही चेष्टा करती हो, लेकिन वह भ्रम में है। कोई किसी को परतंत्र कर नहीं पाता। हां, करने की चेष्टा में कलह, संघर्ष, संताप, धुंआ, चारों तरफ जीवन में जरूर पैदा हो जाता है।

महावीर का अहिंसा से अर्थ है—प्रत्येक व्यक्ति की जो परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। एक चींटी की भी परम स्वतंत्रता है, उसका समादर। न हमने उसे जन्म दिया है, न हमने उसे जीवन दिया है, हम उसे मृत्यु कैसे दे सकते हैं। जो जीवन हमने दिया नहीं, वह हम छीन कैसे सकते हैं। वह अपनी हैसियत से जीती है, लेकिन हम बाधा डालने की कोशिश कर सकते हैं। उस कोशिश में चींटी को नुकसान होगा, यह महावीर का कहना नहीं है। उस कोशिश में हमको नुकसान हो रहा है। वह कोशिश हमें पथरीला बनायेगी और डुबा देगी जिन्दगी में।

जो व्यक्ति दूसरे को परतंत्र करने चला है, या दूसरे की स्वतंत्रता में बाधा डालने चला है वह गुलाम की तरह मरेगा। जो व्यक्ति सबको स्वतंत्र करने चला है और जिसने सारे बन्धन ढीले कर दिये हैं, और जिसने जाना भीतर कि प्रत्येक व्यक्ति परम गुच्हय रूप से स्वतंत्र है,

आत्यंतिक रूप से स्वतंत्र है, और दूसरे की आत्मा का अर्थ ही यह होता है कि उसे परतंत्र नहीं किया जा सकता।

इसे ठीक से समझ लें।

परतंत्र हम कर ही सकते हैं किसी को तब, जब कि उसमें आत्मा न हो। मशीन परतंत्र हो सकती है। मशीन के लिए स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं होता। लेकिन व्यक्ति कभी परतंत्र नहीं हो सकता, और हम व्यक्ति को मशीन की तरह व्यवहार करना चाहते हैं। वह व्यवहार ही हिंसा है। तब तो बड़ा होश रखना पड़ेगा। व्यवहार के छोटे-छोटे हिस्से में होश रखना पड़ेगा कि मैं किसी की परतंत्रता लाने की चेष्टा में तो नहीं लगा हूं। आयेगी तो है ही नहीं, लेकिन चेष्टा, मेरा प्रयास, मुझे दुख में डाल जायेगा। अप्रमाद तो रखना पड़ेगा, होश तो रखना पड़ेगा।

आप रास्ते से गुजर रहे हैं और एक आदमी की तरफ आप किसी भांति देखते हैं। अगर उसमें निन्दा है, और भले आदमी बड़े निन्दा के भाव से देखते हैं। एक साधु के पास आप सिगरेट पीते चले जायें, फिर उसकी आंखें देखें कैसी हो गयीं। उसका वश चले तो अभी इसी वक्त आपको नरक भेज दे। साधु नहीं है यह आदमी, क्योंकि आपकी स्वतंत्रता पर गहन बाधा डाल रहा है, चेष्टा कर रहा है।

साधुओं के पास जाओ तो उनके पास बात ही इतनी है, ऐसा मत करो, वैसा मत करो। जैसे ही साधु के पास जायेंगे वहां आपकी स्वतंत्रता को छीनने की चेष्टा में संलग्न हो जायेगा। उसको वह कहता है, व्रत दे रहा हूं। कौन किसको व्रत दे सकता है? इसीलिए साधुओं के पास जाने में डर लगता है लोगों को, कि वहां गये तो यह छोड़ दो, यह पकड़ लो। ऐसा मत करो, वैसा मत करो; यह नियम ले लो।

मगर सारी चेष्टा का मतलब क्या है कि साधु आपको बर्दाश्त नहीं कर सकता, कि आप जैसे हैं। आप में फर्क करेगा, आपके पंख काटेगा, आपकी शक्ल-सूरत में थोड़ा सा हिसाब-किताब बांटेगा। तब, आप जैसे हैं इसकी परम स्वतंत्रता का कोई समादर साधु के पास नहीं है। और जिसके पास आपकी स्वतंत्रता का समादर नहीं है, वह साधु कहां?

साधुता का मतलब ही यह है कि मैं कौन हूं जो बाधा दूं। मुझे जो ठीक लगता है वह मैं निवेदन कर सकता हूं, आग्रह नहीं।

महावीर ने कहा है, साधु उपदेश दे सकता है, आदेश नहीं। उपदेश का मतलब अलग होता है, आदेश का मतलब अलग। उपदेश का मतलब होता है, ऐसा मुझे ठीक लगता है, वह मैं कहता हूं। आदेश का मतलब है, ऐसा ठीक है, तुम भी करो। मुझे जो ठीक लगता है वह जरूरी नहीं कि ठीक हो। यह मेरा लगना है। मेरे लगने की क्या गारन्टी है? मेरे लगने का मूल्य क्या है? यह मेरी रुचि है, यह मेरा भाव है। यह परम सत्य होगा, यह मैं कैसे कहूं?

असाधुता वहीं से शुरू होती है जहां मैं कहता हूं, मेरा सत्य तुम्हारा भी सत्य है, बस असाधुता शुरू हो गयी, हिंसा शुरू हो गयी। जब तक मैं कहता हूं, मेरा सत्य मेरा सत्य है। निवेदन करता हूं कि मुझे क्या ठीक लगता है। शायद तुम्हारे काम आ जाये, शायद काम न भी आये, शायद तुम्हें सहयोगी हो, शायद तुम्हें बाधा बन जाये। सोच-समझकर, अप्रमाद से, होशपूर्वक, तुम्हें जैसा लगे करना। आदेश मैं नहीं दे सकता हूं। लेकिन जब मैं आदेश देता हूं तब उसका मतलब हुआ कि मैं कह रहा हूं, मेरा सत्य सार्वभौम सत्य है, माई ट्रुथ मीन्स दि ट्रुथ, मेरा जो सत्य है वही सत्य है, और कोई सत्य नहीं है। अगर मेरे सत्य के विपरीत किसी का सत्य है तो वह असत्य है, उसे छोड़ना होगा। अगर उसे नहीं छोड़ते हो तो नरक जाना पड़ेगा, वह नरक की व्यवस्था मेरी है। जो मुझे नहीं मानेगा वह नरक जायेगा, यह उसका अर्थ है। जो मुझे नहीं मानेगा वह आग में सड़ेगा, इसका यह अर्थ है। जो मुझे मानेगा उसके लिए स्वर्ग का आश्वासन है, उसे स्वर्ग के सुख हैं।

यह क्या हुआ? यह साधु का भाव न हुआ। यह असाधु हो गया आदमी। यह हिंसा हो गयी।

महावीर की अहिंसा गुच्हय है, एसोटेरिक है, गुप्त है। अहिंसा का मतलब यह है, यह स्वीकृति कि प्रत्येक आत्मा परमात्मा है, उससे नीचे नहीं। यह अहिंसा का अर्थ है। अहिंसा का अर्थ है कि मैं तुमसे ऐसा व्यवहार करूंगा कि तुम परमात्मा हो, इससे कम नहीं। और मैं अपने को तुम्हारे ऊपर थोपूंगा नहीं। और अगर तुम मेरे विपरीत जाते हो, तो तुम्हें नरक में नहीं डाल दूंगा। और तुम अनुकूल आते हो तो तुम्हारे लिए स्वर्ग का आयोजन नहीं करूंगा। तुम अनुकूल आते हो या प्रतिकूल, यह तुम्हारा अपना निर्णय है, और मेरा कोई भाव इस निर्णय पर आरोपित नहीं होगा।

तो अहिंसा साधते वक्त अप्रमाद अपने आप सध जायेगा। तो चाहे कोई अहिंसा से शुरू करे, अलोभ से शुरू करे, अक्रोध से शुरू करे, वह अप्रमाद पर उसे जाना ही होगा। वह अण्डे से शुरू करे, मुग तक उसे जाना ही होगा। और चाहे कोई अप्रमाद से शुरू करे वह अप्रमाद से शुरू करेगा, हिंसा गिरनी शुरू हो जायेगी। क्योंकि अप्रमाद में कैसे, होश में कैसे, हिंसा टिक सकती है? हिंसा गिरेगी, परिग्रह गिरेगा, पाप हटेगा, पुण्य अपने आप प्रवेश करने लगेगा।

तो जब मुझसे कोई पूछता है कि इसमें महावीर की विधि क्या? वह बाहर पर जोर देते हैं कि भीतर पर? महावीर इस बात पर जोर देते हैं कि तुम कहीं से भी शुरू करो, दोनों सदा मौजूद रहेंगे। और अगर एक मौजूद रहता है तो विधि में भूल है और खतरा है। अगर कोई व्यक्ति कहता है, मैं तो भीतर से ही मैं बाहर से ध्यान नहीं दूंगा, वह अपने को धोखा दे सकता है। क्योंकि वह बाहर हिंसा कर सकता है और कहे कि मैं तो भीतर से अहिंसक हूं। ऐसे बहुत लोग हैं जो भीतर से साधु और बाहर से असाधु हैं। और वे कहते चले जायेंगे, यह तो मामला बाहर का है। बाहर में क्या रखा हुआ है, बाहर तो माया है।

एक बौद्ध भिक्षु कहता था कि सारा संसार माया है। बाहर क्या रखा है? है ही नहीं कुछ, सपना है। इसलिए वेश्या के घर में भी ठहर जायेगा, शराब भी पी लेगा। क्योंकि अगर सपना ही है तो पानी और शराब में फर्क कैसे हो सकता है? अगर शराब में कुछ वास्तविकता है, तो ही फर्क हो सकता है। नहीं तो पानी में और शराब में क्या फर्क है, अगर सब माया है? तो आपको मैं मारूं कि जिलाऊं, कि जहर दूं, कि दवा दूं क्या फर्क है? फर्क तो सच्चाइयों में होता है। दो झूठ बराबर झूठ होते हैं। और अगर आप कहते हैं, एक झूठ थोड़ा कम झूठ है, तो उसका मतलब है कि वह थोड़ा सच हो गया।

अगर सारा जगत माया है तो ठीक है। तो वह जो मन में आये करता था। एक सम्राट ने उससे अपने द्वार पर

बुलाया। विवाद में जीतना उस आदमी से मुश्किल था। असल में विवाद की जिसे कुशलता आती हो, उससे जीतना किसी भी हालत में मुश्किल है। क्योंकि तर्क वेश्या की तरह है। कोई भी उसका उपयोग कर ले सकता है। और यह तर्क गहन है कि सारा जगत माया है। सिद्ध भी कैसे करो कि नहीं है।

पर सम्राट था बुद्धू, इसलिए कभी-कभी बुद्धू तार्किकों को बड़ी मुश्किल में डाल देते हैं। तो उसने कहा, अच्छा! सब माया है? तो उसने कहा, अपना जो पागल हाथी है, उसे ले आओ। वह भिक्षु घबराया कि यह झंझट होगी। तर्क का मामला था तो वह सिद्ध कर लेता था। तर्क के मामले में आप जीत नहीं सकते, जो आदमी कहता है कि सब असत्य है, उसको कैसे सिद्ध करियेगा कि सत्य है? क्या उपाय है? कोई उपाय नहीं है।

उस सम्राट ने कहा कि बैठें, अभी पता चलता है। वह पागल हाथी बुलाकर उसने महल के आंगन में छोड़ दिया और भिक्षु को खींचने लगे सिपाही, तो वह चिल्लाने लगा। कि यह क्या कर रहे हैं! विचार से विचार करिए।

पर सम्राट ने कहा कि हाथी पागल है। हमारी समझ में वास्तविकता है यह, तुम्हारी समझ में तो सब माया है। माया के हाथी से ऐसा भय क्या?

उस भिक्षु ने कहा, 'क्या मेरी जान लोगे?'

उस सम्राट ने कहा कि माया का हाथी है, क्या जान ले पायेगा!

भिक्षु चिल्लाता रहा। जबर्दस्ती उसे आंगन में छोड़ दिया। भिक्षु भागता है। और हाथी उसके पीछे चिंघाड़ता है। भिक्षु चिल्लाता है कि क्षमा करो, वापस लेता हूं अपना सिद्धांत। अब कभी ऐसी भूल की बात न करूंगा। ऐसा मैंने कभी देखा नहीं था कि तर्क का और यह! बहुत रोता-गिड़गिड़ाता है, आंसू बहने लगते हैं। सम्राट उसे उठवा लेता है और कहता है, अब शांत होकर बैठ जायें, भूल जायें अपनी बात ।

भिक्षु ने कहा, 'कौन सी बात?'

'वह जो अभी आप माफी मांग रहे थे, चिल्ला रहे थे।'

भिक्षु ने कहा, 'सब माया है—वह रोना, चिल्लाना, तुम्हारा बचाना।'

जहां तक तर्क का मामला है, उससे बचना मुश्किल है।

सम्राट ने कहा, 'क्या मतलब?'

उसने कहा, 'लेकिन दुबारा उस झंझट को खड़ा करने की'

अगर पागल हाथी फिर पागल मालूम पड़ता है, तो फर्क है। भेद अगर दिखायी पड़ता है जरा-सा भी, तो फर्क है। तो फिर हम अपने को धोखा दे सकते हैं। हम कह सकते हैं कि बाहर की तो हमें कोई चिन्ता नहीं है। बाहर तो सब ठीक है, असली चीज भीतर है। लेकिन अगर असली चीज भीतर है , तो उसके प्रमाण बाहर भी मिलेंगे, क्योंकि भीतर बाहर आता रहता है, प्रतिपल । वह जो झरना भीतर छिपा है वह बाहर छलांग लगा कर उचकता रहता है। बाहर फेंकता रहता है अपनी धारा को। अगर कोई झरना यह कहे, कि हम तो भीतर भीतर हैं, बाहर कुछ भी नहीं, बाहर रेगिस्तान है, तो झरना झूठा है। झरने का मतलब ही क्या जो फूटे न। फूटे तभी झरना है।

अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर परिणाम होंगे। बाहर हिंसा गिरेगी। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है, तो बाहर लोभ गिरेगा। अगर भीतर मेरे अप्रमाद है तो बाहर, वह जो आसक्ति है, मोह है, क्षीण होगा।

भीतर की बात करके आदमी अपने को धोखा दे सकता है। बाहर से भी आदमी अपने को धोखा दे सकता है। बाहर इन्तजाम कर लेता है वह कि मैं अहिंसा पालन करूंगा, लोभ नहीं करूंगा, दान करूंगा और भीतर प्रमाद घना होता है। बेहोशी घनी होती है। बाहर संभलकर चलने लगता है। चींटी पर पैर नहीं रखता। लेकिन भीतर दूसरे को दुख-सुख पहुंचाने का भाव घना होता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन नरक और स्वर्ग की बातें करता रहता है। वह साधु हो जाता है, लेकिन दूसरों को ऐसे देखता है जैसे वे कीड़े-मकोड़े हों।

शायद साधु होने का गहरा मजा यही है कि दूसरे कीड़े-मकोड़ें दिखायी पड़ने लगते हैं। हम सभी एक दूसरे को कीड़ा-मकोड़ा देखना चाहते हैं। तरकीबें अलग-अलग हैं। कोई एक बहुत बड़ा मकान बनाकर उस पर खड़ा हो जाता है,

झोपड़ों के लोग कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। कोई आदमी चढ़ जाता है राजधानी के शिखर पर, भीड़ कीड़ा-मकोड़ा हो जाती है। एक आदमी त्याग के शिखर पर खड़ा हो जाता है, भोगी कीड़े-मकोड़े हो जाते हैं। और बड़ा मजा यह है कि झोपड़ेवाला आदमी तो शायद अकड़कर भी चल सके महल वाले के सामने कि तुम शोषक, हत्यारे, हिंसक। भीड़ का आदमी राजनीति के शिखर पर खड़े आदमी के सामने अकड़कर भी चल सके कि तुम बेईमान, झूठे; लेकिन भोगी, त्यागी के सामने अकड़कर नहीं चल सकता।

तो त्याग बारीक से बारीक अकड़ है, जिसका जवाब देना मुश्किल है। भोगी को खुद ही लगता है, हम गलत , तुम ठीक। यह भोगी को इसीलिए लगता है कि त्यागी हजारों साल से उसको समझा रहे हैं, बिल्ट इन कंडीशनिंग कर दी है उसके दिमाग में कि तुम गलत हो। उसको भी लगता है कि गलत तो मैं हूं। त्यागी ठीक, त्यागी शिखर पर हो जाता है, भोगी नीचे पड़ जाता है। सारी दुनिया में एक

चेष्टा चलती रहती है कि मैं दूसरे से ऊपर, यही हिंसा है।

तो चींटी से बचकर चलने में बहुत कठिनाई नहीं है। अगर जो चींटी से बचकर नहीं चलता, उसको मैं देखता हूं कि वह कीड़ा-मकोड़ा है, तो कोई कठिनाई नहीं है, चींटी से बचकर चलने में अगर यही मजा है कि जो बचकर नहीं चलते, उनको मैं पापी की तरह देख सकता हूं, तो चींटी से बचा जा सकता है। लेकिन यह हिंसा और गहरी हो गयी। चींटी का मर जाना, उसको बेहोशी से दबा देना, हिंसा थी, अप्रमाद था। यह अप्रमाद और गहरा हो गया। इसने रास्ता बदल दिया, रुख बदल दिया। बीमारी दूसरी तरफ चली गयी, लेकिन मौजूद है, और गहरी हो गयी।

चाहे तो कोई बाहर के आचरण को ठोंक-पीटकर ठीक कर ले, और भीतर बेहोश बना रहे। चाहे तो कोई भीतर बेहोशी न टूटे, और बाहर के आचरण में जैसा है वैसा ही चलता रहे, जरा भी न बदले, धोखा दे सकता है।

महावीर जैसे व्यक्ति अखण्ड व्यक्ति को स्वीकार करते हैं। वे कहते हैं, पूरा व्यक्ति ही बदलना है। बाहर और भीतर दो टुकड़े नहीं हैं। एक धारा के अंग हैं। कहीं से भी शुरू करो, दूसरा भी अंतर्निविष्ट है, दूसरा भी अंतर्निहित है।

अब सूत्र।

'रस वाले पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसी ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष की ओर पक्षी।'

अप्रमाद की बात कही, वह भीतर की बात थी। तत्काल रस की बात कही, वह बाहर की बात है। कहा कि भीतर जागते रहो, होश सम्भाले रखो, और फिर तत्काल यह कहा कि बाहर से भी वही लो अपने भीतर जो बेहोशी न बढ़ाता हो। नहीं तो एक आदमी ध्यान करता रहे और शराब पीता रहे, तो यह ऐसे हुआ कि एक कदम आगे गये और एक कदम पीछे आये। फिर जिन्दगी के आखिर में पाये कि वहीं खड़े हैं। खड़े नहीं, गिर पड़े हैं, वहीं जहां पैदा हुए थे। तो इसमें हैरानी न होगी, लेकिन हम सब यही कर रहे हैं। एक कदम जाते हैं, तत्काल एक कदम उल्टा वापस लौट आते हैं। तो इससे बेहतर है, जाओ ही मत। शक्ति और श्रम नष्ट मत करो।

अगर भीतर अप्रमाद की साधना चल रही है, भीतर ध्यान की साधना चल रही है, तो महावीर कहते हैं, फिर ऐसे पदार्थ मत लो जो बेहोशी बढ़ाते हैं। और पदार्थ ऐसे हैं जो बेहोशी बढ़ाते हैं। मादक हैं। ऐसे पदार्थ हैं जो हमारे भीतर के प्रमाद को सहारा देते हैं।

इसलिए आप देखें—एक आदमी शराब पी लेता है, तत्काल दूसरा आदमी हो जाता है, इसलिए तो शराबी को भी शराब का रस है, कि एक ही आदमी रहते-रहते ऊब जाता है, अपने से ऊब जाता है। जब शराब पी लेता है तो जरा मजा आता है। नयी जिन्दगी हो जाती है, नया आदमी हो जाता है, यह नया आदमी कौन है?

यह शराब से नहीं आता, यह नया आदमी भीतर छिपा था। शराब इसको सिर्फ सहारा दे सकती है। शराब आपके भीतर कुछ पैदा नहीं करती। जो छिपा है, उसको उकसा सकती है। जगा सकती है। इसलिए बहुत मजे की घटनाएं घटती हैं।

एक अदामी शराब पीकर उदास हो जाता है। एक आदमी शराब पीकर प्रसन्न हो जाता है, एक आदमी

गाली-गलौज बकने लगता है, एक आदमी बिलकुल मौन ही हो जाता है। मौन साध लेता है। एक आदमी नाचने कूदने लगता है और एक आदमी बिलकुल शिथिल होकर मुर्दा हो जाता है, सोने की तैयारी करने लगता है। शराब एक, फर्क इतने! शराब कुछ भी नहीं करती। जो आदमी के भीतर पड़ा है, उसको भर उत्तेजित करती है।

तो अकसर उल्टा हो जाता है। जो आदमी आमतौर से हंसता रहता है वह शराब पीकर उदास हो जाता है, क्योंकि हंसी झूठी थी, ऊपर-ऊपर थी, उदासी भीतर थी, असली थी। शराब ने झूठ को हटा दिया। शराब सत्य की बड़ी खोजी है। शराब ने असत्य को हटा दिया, वह जो हंसते रहते थे बन-बनकर। अब उतना भी होश रखना मुश्किल है कि बनकर हंस सकें। अब बनावट नहीं टिकेगी। हंसी खो जायेगी। और वह जो हंसी के नीचे छिपा रखा था, अम्बार लगा रखा था उदासी का, दुख का, आंसुओं का, वह बाहर आने लगेंगे।

इसलिए गुरजिएफ के पास जब भी कोई जाता था, पच्नदरह दिन तो वह धुआंधार शराब पिलाता था। सिर्फ उसकी डाइग्नोसिस, उसके निदान के लिए। पच्नदरह दिन वह उसे शराब पिलाता जाता था, जब तक कि उसे बेहोश न कर दे इतना कि जो उसने ऊपर-ऊपर से थोपा है वह टूट जाये। और जो भीतर-भीतर है वह बाहर आने लगे। तब वह उसका निरीक्षण करता।

गुरजिएफ ने कहा है कि जब तक कोई साधक मेरे पास आकर पच्नदरह दिन जितनी शराब मैं कहूं, उतना पीने को राजी न हो, तब तक मैं साधना शुरू नहीं करता। क्योंकि मुझे असली आदमी का पता ही नहीं चलता कि असली आदमी है कौन। जो वह बताता है, मैं हूं, वह, वह है नहीं। उस पर मैं मेहनत करूं, वह बेकार जायेगी, वह पानी पर खींची गयी लकीरें सिद्ध होंगी। और जो वह है, उसका उसको भी पता नहीं, उसको वह दबा चुका है जन्मों-जन्मों। उसका उसे भी पता नहीं कि वह कौन है।

इधर मुझे भी निरन्तर यह अनुभव आता है, एक आदमी आकर मुझे कहता है कि यह मेरी तकलीफ है। वह उसकी तकलीफ ही नहीं है। वह कहता है, यह मेरा रोग है, वह उसका रोग ही नहीं है। वह समझता है कि वह उसका रोग है। यह रोग उसकी पर्त का रोग है, और पर्त वह है नहीं। पर्त उसने बना ली है।

एक आदमी आता है और कहे कि मेरी कमीज पर यह दाग लगा है, यह मेरी आत्मा का दाग है। अब इसको मैं धोने में लग जाऊं, यह धुल भी जाये तो भी आत्मा नहीं धुलेगी क्योंकि यह दाग कमीज पर था, आत्मा पर नहीं। यह न भी धुले, तो भी आत्मा पर नहीं है। इस आदमी को मुझे नग्न करके देखना पड़ेगा कि इसकी आत्मा पर दाग कहां है। उसको धोने में ही कोई सार है, इसकी कमीज को धोने में समय गंवाना व्यर्थ है।

गुरजिएफ पच्नदरह दिन शराब पिलाता, पूरी तरह बेहोश कर देता, डुबा देता बुरी तरह। और जिसने कभी नहीं पी है, वह बिलकुल मतवाला हो जाता, बिलकुल पागल हो जाता। तब वह अध्ययन करता उस आदमी का, कि यह आदमी असलियत में क्या है।

फ्रायड जिन लोगों का अध्ययन करता, वह उनसे कहता कि अपने सपने बताओ, और बातें नहीं चाहिए। अपने सिद्धान्त मत बताओ। अपनी फिलासफी अपने पास रखो, सिर्फ अपने सपने बताओ। जब पहली दफे फ्रायड ने सपनों पर खोज शुरू की, तो उसने अनुभव किया कि सपने में असली आदमी प्रगट होता है। ऊपरी चेहरे झूठे हैं।

एक आदमी को देखें, अपने बाप के पैर छू रहा है, और सपने में बाप की हत्या कर रहा है। आप आमतौर से यह सोचेंगे कि सपना तो सपना है, असली तो वही है, वह जो सुबह हम रोज पैर छूते हैं। वह असली नहीं है, ध्यान रख लें। सपना आपकी असलियत से ज्यादा असली हो गया है, क्योंकि आप बिलकुल झूठे हैं। वह जो सुबह आप पैर छूते हैं पिता का, वह सिर्फ सपने में जो असली काम किया, उसका पश्चाताप है। सपना असली है। क्यों? सपने में धोखा देने में अभी आप कुशल नहीं हो पाये। सपना गहरा है, बेहोश है। आप का जो होश है, उस वक्त आप आदर दिखा रहे हैं। आपका जो होश है उस वक्त पत्नी कह रही है पति से कि तुम मेरे परमात्मा हो, और सपने में उसे दूसरा पति और दूसरा परमात्मा दिखायी पड़ रहा है। वह कहती है, यह तो सब सपना है।

बाकी यह सपना ज्यादा गहरा है। क्योंकि सपने में न सिद्धांत काम आते हैं, न समाज काम आता है, न

सिखावन काम आती है। सपने में तो वह जो असली मन है, अचेतन, वह प्रगट होता है। इसलिए फ्रायड ने कहा कि अगर असली आदमी को जानना है तो सपनों का अध्ययन जरूरी है। बात एक ही है।

गुरजिएफ ने कहा है कि शराब पिलाकर उघाड़ लेंगे, अन्कान्शस, अचेतन को। उसने कहा कि हम आपका सपना; गुरजिएफ का मैथड ज्यादा तेज है। पच्नदरह दिन में पता चल जाता है। फ्रायड के मैथड में पांच साल लग जाते हैं। पांच साल सपनों का अध्ययन करना पड़ेगा तब वह नतीजा निकालेगा कि तुम आदमी कैसे हो, तुम्हारे भीतर असलियत क्या है, तुम्हारा मूल रोग क्या है? लेकिन यह निदान बहुत लम्बा हो गया।

महावीर कहते हैं कि जो भी हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भीतर किसी चीज को पैदा नहीं कर सकता, लेकिन अगर भीतर कोई चीज पड़ी है तो उसके लिए सहयोगी हो सकता है, या विरोधी हो सकता है।

तो जो आदमी भीतर अप्रमाद की साधना करने में लगा है, जो इस साधना में लगा है कि मैं होश को जगा लूं, वह साथ में शराब पीता रहे और होश जगाने की कोशिश करता रहे, सांझ शराब पी ले और सुबह प्रार्थना करे और पूजा करे और ध्यान करे, वह आदमी असंगत है। अपने ही साथ उल्टे काम कर रहा है, कंट्राडिक्टरी है। वह आदमी कभी कहीं पहुंचेगा नहीं। उसकी गाड़ी का एक बैल एक तरफ जा रहा है, दूसरा बैल दूसरी तरफ जा रहा है। एक चक्का एक तरफ जा रहा है, दूसरा चक्का दूसरी तरफ जा रहा है।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन एक यात्रा में था। जब ऊपर की बर्थ पर सोने लगा तो उसने नीचे के आदमी से पूछा कि मैं यह तो पूछना ही भूल गया कि आप कहां जा रहे हैं? उस नीचे के आदमी ने कहा कि मैं बम्बई जा रहा हूं।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, गजब! विज्ञान का चमत्कार! मैं कलकत्ता जा रहा हूं, एक ही गाड़ी में हम दोनों! विज्ञान का चमत्कार देखो कि नीचे की बर्थ बम्बई जा रही है, ऊपर की बर्थ कलकत्ता जा रही है।

और मुल्ला शान से सो गया।

मुल्ला पर हमें हंसी आयेगी, लेकिन हमारी जिन्दगी ऐसी ही है; एक बर्थ बम्बई जा रही है, एक कलकत्ता जा रही है। आदमी का चमत्कार देखो। आप विरोधी काम किये चले जा रहे हैं, पूरे वक्त। बड़ा मजा यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, करीब-करीब उससे विपरीत भी कर रहे हैं। और जब तक विपरीत नहीं करते, तब तक भीतर एक बेचैनी मालूम पड़ती है। विपरीत कर लेते हैं, सब ठीक हो जाता है।

एक आदमी क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। आप आमतौर से सोचते होंगे कि पश्चात्ताप करनेवाला आदमी अच्छा आदमी है। लेकिन आपको पता नहीं, एक बर्थ कलकत्ता जा रही है, एक बम्बई जा रही है। क्रोध करता है, पश्चात्ताप करता है। फिर क्रोध करता है, फिर पश्चात्ताप करता है। जिंदगीभर यही चलता है। कभी आपने खयाल किया? और हमेशा सोचता, अब क्रोध न करूंगा। क्रोध करके पश्चात्ताप कर लेता है। होता क्या है? आमतौर से आदमी सोचता है, क्रोध करके पश्चात्ताप कर लिया, अच्छा ही हुआ, अब कभी क्रोध न करेंगे। लेकिन यह तो बहुत बार पहले भी हो चुका है, हर बार क्रोध किया, पश्चात्ताप किया, पश्चात्ताप से क्रोध कटता नहीं।

सचाई उल्टी है। सचाई यह है कि पश्चात्ताप से क्रोध बचता है, कटता नहीं। क्योंकि जब आप क्रोध करते हैं तो आपकी जो अपनी प्रतिमा है, अपनी आंखों में, अच्छे आदमी की, वह खण्डित हो जाती है। अरे, मैंने क्रोध किया! मैंने क्रोध किया! इतना सज्जन आदमी हूं मैं! इतना साधु चरित्र, और मैंने क्रोध किया! तो आपको जो पीड़ा अखरती है, खटकती है, अपनी प्रतिमा अपनी आंखों में गिर गयी। पश्चात्ताप करके प्रतिमा फिर अपनी जगह खड़ी हो जाती है। फिर आप सज्जन हो जाते हैं कि मैंने पश्चात्ताप कर लिया। मांग ली क्षमा, मिच्छामि दुक्कड़म, निपटारा हो गया, आदमी फिर अच्छे हो गये। फिर अपनी जगह खड़ी हो गयी प्रतिमा। यही प्रतिमा क्रोध करने के पहले अपनी जगह खड़ी थी, क्रोध करने से गिर गयी थी। पश्चात्ताप ने फिर इसे खड़ा कर दिया। जहां यह क्रोध करने के पहले खड़ी थी, वहीं फिर खड़ी हो गयी। अब आप फिर क्रोध करेंगे, जगह आ गयी वापस, स्थान पर आ गये आप अपने।

पश्चात्ताप तरकीब है। जैसे मुग तरकीब है अण्डे की और अण्डा पैदा करने की। पश्चात्ताप तरकीब है क्रोध की, और क्रोध करने की।

अब आप फिर क्रोध कर सकते हैं। अब आप फिर अपनी जगह आ गये। तो दो में से एक भी टूट जाये, फिर दूसरा नहीं टिक सकता। मुग□ मर जाये तो फिर अंडा नहीं हो सकता, अंडा फूट जाये तो फिर मुग□ नहीं हो सकती। क्रोध को तो छोड़ने की बहुत कोशिश की, अब कृपा करके इतना करो कि पश्चात्ताप ही छोड़ दो, मत करो पश्चात्ताप। रहने दो क्रोध को वहीं, तो आपकी प्रतिमा वापस खड़ी न हो पायेगी, और वही प्रतिमा खड़े होकर क्रोध करती है। लेकिन हम होशियार हैं। हम हर कृत्य से दूसरे कृत्य को बैलेंस कर लेते हैं। तराजू को हम हमेशा संभालकर रखते हैं। अच्छाई करते हैं थोड़ी, तत्काल थोड़ी बुराई कर लेते हैं। थोड़ा हंसते हैं, थोड़ा रो लेते हैं, थोड़े रोते हैं, थोड़े हंस लेते हैं। संभाले रहते हैं अपने को।

हम नटों की तरह हैं जो रस्सियों पर चल रहे हैं, पूरे वक्त संभाल रहे हैं। बायें झुकते हैं, दायें झुक जाते हैं। दायें गिरने लगते हैं, बायें झुक जाते हैं। अपने को संभाले हुए रस्सी पर खड़े हैं।

आदमी तभी पहुंचता है मंजिल तक, जब उसके जीवन की यात्रा यह इस चमत्कार से बच जाती है, कि एक बर्थ बम्बई, एक बर्थ कलकत्ता। जब आदमी एक दिशा में यात्रा करता है तो परिणाम, निष्पत्तियां, उपलब्धियां आती हैं, नहीं तो जीवन व्यर्थ हो जाता है, अपने ही हाथों व्यर्थ हो जाता है।

तो महावीर कहते हैं, ऐसे रस का अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।

महावीर बहुत ही सुविचारित बोलते हैं। उन्होंने ऐसा भी नहीं कहा कि सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वह अति हो जायेगी। कभी सेवन करने की जरूरत भी पड़ सकती है। कभी जहर भी औषधि होता है।

महावीर बहुत ही सुविचारित हैं। एक-एक शब्द उनका तुला हुआ है। कहीं भी वे अति नहीं करते, क्योंकि अति में हिंसा हो जाती है। वे ऐसा नहीं कहते कि ऐसा करना ही नहीं चाहिए, वे इतना ही कहते हैं कि अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए।

ध्यान रहे, औषधि की मात्रा होती है, शराब की कोई मात्रा नहीं होती। शराब का मजा ही अधिक मात्रा में है। औषधि की मात्रा होती है। औषधि मात्रा से ली जाती है, शराब कोई मात्रा से नहीं ली जाती। और जितनी मात्रा से आप लेते हैं, कल मात्रा बढ़ानी पड़ती है, क्योंकि उतने आप आदी होते चले जाते हैं । जितनी आप शराब पीते चले जाते हैं उतनी शराब बेकार होती चली जाती है। फिर और पियो, और पियो, तो ही कुछ परिणाम होता दिखायी पड़ता है।

ध्यान रहे अगर एक आदमी शराब पी रहा है तो मात्रा बढ़ती जायेगी। और अगर एक आदमी शराब को दवा की तरह ले रहा है तो मात्रा घटती जायेगी। क्योंकि जैसे-जैसे बीमारी कम होगी, मात्रा कम होगी। और जिस दिन बीमारी नहीं होगी, मात्रा विलीन हो जायेगी। और अगर एक आदमी शराब नशे की तरह ले रहा है, तो मात्रा रोज बढ़ेगी। क्योंकि हर शराब बीमारी को बढ़ायेगी, और ज्यादा शराब की मांग करेगी।

मुल्ला नसरुद्दीन कहता था कि मैं कभी एक पैग से ज्यादा नहीं पीता। उसके मित्रों ने कहा, 'हद् कर दी ! झूठ की भी एक सीमा होती है। अपनी आंखों से तुम्हें पैग पर पैग ढालते देखते हैं!' तो मुल्ला ने कहा, 'मैं तो पहला ही पीता हूं। फिर पहला पैग दूसरा पीता है, फिर दूसरा, तीसरा। अपना जिम्मा एक का ही है। उससे सिलसिला शुरू हो जाता है। बाकी के हम जिम्मेवार नहीं है। हम अपने होश में एक ही पीते हैं। फिर होश ही कहां, फिर हम कहां, फिरपीने वाला कहां, फिर तो बस शराब ही शराब को पिये चली जाती है।'

वह ठीक कहता है। बेहोशी का पहला कदम आप उठाते हैं। फिर पहला कदम दूसरा कदम उठाता है, फिर दूसरा तीसरा उठाता है।

जिसे बेहोशी को रोकना हो, उसे पहले कदम पर ही रुक जाना चाहिए, क्योंकि वहीं उसके निर्णय की जरूरत है। दूसरे कदम पर रुकना मुश्किल है। तीसरे पर असम्भव हो जायेगा। हर रोग हमारे मानसिक जीवन में पहले कदम पर ही रोका जा सकता है। दूसरे कदम पर रोकना बहुत मुश्किल है। जितना हम आगे बढ़ते हैं उतना ही रोग भयंकर होता चला जाता है और जो पहले पर ही नहीं रोक पाया, वह अगर सोचता हो कि तीसरे पर रोक लेंगे तो वह अपने को धोखा दे रहा है। क्योंकि पहले पर वह वजनी था, ताकतवर था, तब नहीं रोक पाया, अब तीसरे पर रोकेगा, जब कमजोर हो

जायेगा।

इसलिए महावीर कहते हैं, 'अधिक मात्रा में सेवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे मादकता पैदा करते हैं। और मत्त पुरुष अथवा स्त्री के पास वासनाएं वैसे ही दौड़ी आती हैं, जैसे स्वादिष्ट फलवाले वृक्ष की ओर पक्षी।'

लेकिन हम तो चाहते हैं कि लोग हमारे चारों तरफ दौड़ें हुए आयें, हम तो चाहते हैं कि स्वादिष्ट फल बन जायें हम, लदे हुए वृक्ष। सारे पक्षी हम पर ही डेरा करें। तो जहां नहीं भी हैं फल, वहां हम झूठे नकली फल लटका देते हैं ताकि वृक्ष पर दौड़े हुए लोग आयें। पक्षी तो धोखा नहीं खाते नकली फलों से, आदमी धोखा खाते हैं।

हर आदमी बाजार में खड़ा है अपने को रसीला बनाये हुए कि चारों तरफ से लोग दौड़ें और मधुमक्खियों की तरह उस पर छा जायें। जब तक किसी को ऐसा न लगे कि मैं बहुत लोगों को पागल कर पाता हूं तब तक आनन्द ही नहीं मालूम होता है जीवन में। जब भीड़ चारों तरफ से दौड़ने लगे तब आपको लगता है कि आप मैग्नेट हो गये, करिश्मैटिक हो गये। अब आप चमत्कारी हैं।

राजनीतिक का रस यह है, नेता का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। अभिनेता का, अभिनेत्री का रस यह है कि लोग उसकी तरफ दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं।

तो हम तो अपने को एक मादक बिंदु बनाना चाहते हैं, जिसमें चारों तरफ, जिसके व्यक्तित्व में शराब हो और खींच ले। और महावीर कहते हैं कि जो दूसरे को खींचने जायेगा, वह पहले ही दूसरों से खिंच चुका है। जो दूसरों के आकर्षण पर जीयेगा वह दूसरों से आकर्षित है। और जो अपने भीतर मादकता भरेगा, बेहोशी भरेगा, लोग उसकी तरफ खिंचेगे जरूर, लेकिन वह अपने को खो रहा है और डुबा रहा है। और एक दिन रिक्त हो जायेगा और जीवन के अवसर से चूक जायेगा।

निश्चित ही, एक स्त्री जो होशपूर्ण हो, कम लोगों को आकर्षित करेगी। एक स्त्री जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित करेगी। क्योंकि जो मदमत्त स्त्री पशु जैसी हो जायेगी—सारी सभ्यता, सारा संस्कार, सारा जो ऊपर था वह सब टूट जायेगा। वह पशुवत हो जायेगी। एक पुरुष भी, जो मदमत्त हो, ज्यादा लोगों को आकर्षित, ज्यादा स्त्रियों को आकर्षित कर लेगा, क्योंकि वह पशुवत हो जायेगा। उसमें ठीक पशुता जैसी गति आ जायेगी। और सब वासनाएं पशु जैसी हों तो ज्यादा रसपूर्ण हो जाती हैं। इसलिए जिन मुल्कों में भी कामवासना प्रगाढ़ हो जायेगी, उन मुल्कों में शराब भी प्रगाढ़ हो जायेगी। सच तो यह है कि फिर बिना शराब पिये कामवासना में उतरना मुश्किल हो जायेगा। क्योंकि वह थोड़ी-सी जो समझ है, वह भी बाधा डालती है। शराब पीकर आदमी फिर ठीक पशुवत व्यवहार कर सकता है।

यह जो हमारी वृत्ति है कि हम किसी को आकर्षित करें, अगर आप आकर्षित करना चाहते हैं किसी को, तो आपको किसी न किसी मामले में मदमत्त होना चाहिए। जो राजनीतिज्ञ नेता पागल की तरह बोलता है, जो पागल की तरह आश्वासन देता है, जो कहता है कि कल मेरे हाथ में ताकत होगी तो स्वर्ग आ जायेगा पृथ्वी पर, वह ज्यादा लोगों को आकर्षित करता है। जो समझदारी की बातें करता है, उससे कोई आकर्षित नहीं होता। जिस अभिनेत्री की आंखों से शराब आपकी तरफ बहती हुई मालूम पड़ती है, वह आकर्षित करती है। अभिनेत्री के पास बुद्ध जैसी आंख हो, तो आप पागल जैसे गये हों तो शांत होकर घर लौट आयेंगे। उसके पास आंख चाहिए जिसमें शराब का भाव हो। मदहोश आंख चाहिए। उसके चेहरे पर जो रौनक हो, वह आपको जगाती न हो, सुलाती हो।

जहां भी हमें बेहोशी मिलती है, वहां हमें रस आता है। जिस चीज को भी देखकर आप अपने को भूल जाते हैं, समझना कि वहां शराब है। जिस चीज को भी देखकर आप अपने को भूल जाते हैं, अगर एक अभिनेत्री को देखकर आपको अपना खयाल नहीं रह जाता, तो आप समझना कि वहां बेहोशी है, शराब है। और शराब ही आपको खींच रही है। शराब, शराब की बोतलों में ही नहीं होती, आंखों में भी होती है, वस्त्रों में भी होती है, चेहरों में भी होती है, हाथों में भी होती है, चमड़ी में भी होती है। शराब बड़ी व्यापक घटना है।

महावीर कहते हैं कि जो व्यक्ति इस तरह के रसों का सेवन करता है जो मादक हैं, और जो अपने भीतर की मादकता को मिटाता नहीं, बढ़ाता है, उसकी तरफ वासनाएं ऐसे ही दौड़ने लगेंगी जैसे फल भरे वृक्ष के पास पक्षी दौड़

आते हैं। और जो व्यक्ति अपने पास वासनाएं बुला रहा है वह अपने हाथ से अपने बन्धन आकर्षित कर रहा है। वह अपनी हथकड़ियों और अपनी बेड़ियों को निमंत्रण दे रहा है कि आओ, वह अपने हाथ से अपने कारागृहों को बुला रहा है कि आओ, और मेरे चारों तरफ निर्मित हो जाओ। वह व्यक्ति कभी मुक्त, वह व्यक्ति कभी शांत, वह व्यक्ति कभी शून्य, वह व्यक्ति कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि सत्य की पहली शर्त है, स्वतंत्रता। सत्य की पहली शर्त है, एक मुक्त भाव। और वासनाओं से कोई कैसे मुक्त हो सकता है?

'काम-भोग अपने आप न किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, और न किसी में राग-द्वेष रूपी विकृति पैदा करते हैं। परन्तु मनुष्य स्वयं ही उनके प्रति राग-द्वेष के नाना संकल्प बनाकर मोह से विकारग्रस्त हो जाता है।'

यह सूत्र कीमती है।

महावीर कहते हैं कि सारा खेल काम-वासना का तुम्हारा अपना है।

मैं कुम्भ के मेले में था। एक मित्र मेरे साथ थे। मेला शुरू होने में अभी देर थी कुछ। हम दोनों बैठे थे गंगा के किनारे, दूर बहुत दूर नहीं, दिखायी पड़े इतने दूर। एक महिला अपने बाल संवार रही थी स्नान करने के बाद। उसकी पीठ ही दिखायी पड़ती थी। मित्र बिलकुल पागल हो गये। बात-चीत में उनका रस जाता रहा। उन्होंने मुझसे कहा कि रुकें। मैं इस स्त्री का चेहरा न देख लूं तब तक मुझे चैन न पड़ेगा। मैं जाऊं, चेहरा देख आऊं। वह गये, और वहां से बड़े उदास लौटे। वह स्त्री नहीं थी, एक साधु था जो अपने बाल संवार रहा था। गये, तब उनके पैरों की चाल, लौटे तब उनके पैरों का हाल! मगर संकोची होते, शिष्ट होते, मन में ही रख लेते, और जिन्दगी भर परेशान रहते।

सच में ही पीछे से आकृति आकर्षक मालूम पड़ी थी। पर वह आकर्षण वहां था या मन में था? क्योंकि वहां जाकर पता चला कि पुरुष है, तो आकर्षण खो गया।

आकर्षण स्त्री में है या स्त्री के भाव में है? आकर्षण पुरुष में है या पुरुष के भाव में?

गहरा आकर्षण भीतर है, उसे हम फैलाते हैं बाहर। बाहर खूंटियां हैं सिर्फ, उन पर हम टांगते हैं अपने आकर्षण को। और ऐसा भी नहीं है कि ऐसी घटना घटे, तभी पता चलता है। आज आप किसी के लिए दीवाने हैं, बड़ा रस है। और कल सब फीका हो जाता है, और आप खुद ही नहीं सोच पाते कि क्या हुआ, कल इतना रस था, आज सब फीका क्यों हो गया? व्यक्ति वही है, सब रस फीका हो गया!

मन का जो आकर्षण था, वह पुनरुक्ति नहीं मांगता। अगर व्यक्ति का ही आकर्षण हो तो वह आज भी उतना ही रहेगा, कल भी उतना था, परसों भी उतना ही रहेगा। लेकिन मन नये को मांगता है। इसलिए जिसे आज आकर्षित जाना है, पक्का समझ लेना, कल वह उतना आकर्षित नहीं रहेगा। परसों और फीका हो जायेगा। नरसों धूमिल हो जायेगा, आठ दिन बाद दिखायी भी नहीं पड़ेगा, सब खो जायेगा।

यह मन तो नये को मांगता है। पुराने में इसका रस खोने लगता है। यह मन का स्वभाव है। कुछ भूल नहीं है इसमें, सिर्फ उसका स्वभाव है। आज जो भोजन किया, कल जो भोजन किया, परसों जो भोजन किया, तो चौथे दिन घबराहट हो जायेगी। मन तो ऐसा ही मांगता है; आज भी वही पत्नी है, कल भी वही पत्नी है, परसों भी वही पत्नी है। चौथे दिन मन उदास हो जायेगा। मन तो नये को मांगता है। इसलिए अगर पत्नी में आकर्षण जारी रखना है, तो नये के सब उपाय बिलकुल बन्द कर देने चाहिए, तो मार पीटकर आकर्षण चलता रहता है। इसलिए हमने विवाह के इतने इंतजाम किये हैं, ताकि बाहर कोई उपाय ही न रह जाये।

जिन मुल्कों ने बाहर के उपाय छोड़ दिये, वहां विवाह टूट रहा है। विवाह बच नहीं सकता। विवाह एक बड़ी आयोजना है, वह आयोजना ऐसी है कि पुरुष फिर किसी और स्त्री को ठीक से देख भी न पाये। स्त्री फिर किसी और पुरुष के निकट पहुंच भी न पाये। तो फिर मजबूरी में उन दोनों को हमने छोड़ दिया। उसका मतलब यह हुआ कि मुझे आज भी वही भोजन दें, कल भी वही भोजन दें, परसों भी वही भोजन दें, और अगर किसी और भोजन का कोई उपाय ही न हो, और मेरी कालकोठरी में वही भोजन मुझे उपलब्ध होता हो, तो चौथे दिन भी मैं वही भोजन करूंगा। पांचवें दिन भी करूंगा। लेकिन अगर मुझे और भोजन उपलब्ध हो सकते हों, कोई अड़चन न आती हो, कोई असुविधा न होती हो, तो

नहीं करूंगा।

इसलिए एक बात पक्की है, विवाह तभी तक टिक सकता है दुनिया में, जब तक हम बाहर के सारे आकर्षणों को पूरी तरह रोक रखते हैं। और बाहर के आकर्षण में जितना आकर्षण मिलता है, उससे ज्यादा खतरा मिले, उपद्रव मिले, झंझट मिले, परेशानी मिले, तो रुक सकता है। नहीं तो विवाह टूट जायेगा। लेकिन यह विवाह जो टूट जायेगा, झूठा ही होगा। जिस दुनिया में सारा आकर्षण मिलता हो और विवाह बच जाये, तो ही समझना कि विवाह है। नहीं तो धोखा था इसलिए जिस दिन विवाह के कोई दिन बंधन नहीं होंगे, उसी दिन हमें पता चलेगा कि कौन पति-पत्नी है, उसके पहले कोई पता नहीं चल सकता—कोई उपाय नहीं पता चलने का।

मुझे क्या पसन्द है, मेरा किसके साथ गहरा नाता है, आंतरिक, वह तभी पता चलेगा जब बदलने के सब उपाय हों, और बदलाहट न हो, जब बदलने के कोई उपाय ही न हों, और बदलाहट न हो तो सभी पत्नियां सतियां हैं। कोई अड़चन नहीं है, और सभी पति एक पत्नीव्रती हैं। जितना हमारे चारों तरफ खूंटियां हों, उतना ही हमें पता चलेगा कि कितना प्रोजेक्शन है, कितना हमारा मन एक खूंटी से दूसरी खूंटी, दूसरी से तीसरी पर नाचता रहता है। जो हम रस पाते हैं उस खूंटी से, वह भी हमारा दिया हुआ दान है, यह महावीर कह रहे हैं। उससे कुछ मिलता नहीं है हमें।

एक कुत्ता है, वह एक हड्डी को मुंह में लेकर चूस रहा है। कुत्ता जब हड्डी चूसे, तो बैठकर ध्यान करना चाहिए उस पर क्योंकि वह बड़ा गहरा काम कर रहा है, जो सभी आदमी करते हैं। कुत्ता हड्डी चूसता है, तो हड्डी में कुछ रस तो होता नहीं, लेकिन कुत्ते के खुद ही मुंह में जख्म हो जाते हैं। हड्डी चूसने से, उनसे खून निकलने लगता है। वह जो खून निकलने लगता है, वह कुत्ता समझता है, हड्डी से आ रहा है। वह खून गले में जाता है, स्वादिष्ट मालूम पड़ता है, अपना ही खून है। लेकिन कुत्ता समझे भी कैसे कि हड्डी से नहीं निकल रहा है। जब हड्डी चूसता है, तभी निकलता है। स्वभावतः तर्कयुक्त है, गणित साफ है कि जब हड्डी चूसता हूं, तभी निकलता है, हड्डी से निकलता है। लेकिन वह निकलता है अपने ही मसूढ़ों के टूट जाने से, अपने ही मुंह में घाव हो जाने से। कुत्ता मजे से हड्डी चूसता रहता है, और अपना ही खून पीता रहता है।

जब आप किसी और से रस लेते हैं, तब आप हड्डी चूस रहे हैं। रस आपके ही मन का है, अपना ही खून झरता है। किसी दूसरे से कोई रस मिलता नहीं, मिल सकता नहीं। अगर एक व्यक्ति संभोग में भी सोचता है, सुख मिल रहा है तो वह अपने ही खून झरने से मिलता है, किसी दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है। हड्डी चूसना है। लेकिन कठिन है, न कुत्ते की समझ में आता है, न आदमी की समझ में आता है। खुद को समझना जटिल है।

महावीर कहते हैं। काम-भोग अपने आप न मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं, न तो सोचना कि काम-भोग से कोई समता उपलब्ध होती है, सुख उपलब्ध होता है, शांति उपलब्ध होती है। इससे विपरीत भी मत सोचना। साधु-संन्यासी यही सोचते हैं, काम-भोग से दुख उत्पन्न होता है। कठिनाई आती है, राग-द्वेष पैदा होते हैं, नरक निर्मित होता है। ध्यान रखना कि यह वही आदमी है जो कल सोचता था कि काम-भोग से स्वर्ग मिलता है। यह वही आदमी है, अब शीर्षासन करने लगा। अब यह कहता है कि काम-भोग से नरक मिलता है।

महावीर कहते हैं, काम-भोग से न स्वर्ग मिलता है, न नरक मिलता है। काम-भोग पर स्वर्ग भी तुम्हारा मन ही आरोपित करता है, काम-भोग पर तुम्हारा मन ही तुम्हारा नरक भी निर्मित करता है। तुम काम-भोग से वही पाते हो जो तुम डाल देते हो उसमें। तुम्हें वही मिलता है जो तुम्हारा ही दिया हुआ है। और तुम देना, डालना बंद कर दो तो काम-भोग विलीन हो जाता है, तिरोहित हो जाता है। खूंटियां खड़ी रहें अपनी जगह, तुम अपनी वृत्तियों को उन पर टांगना बन्द कर देते हो।

और जिस दिन कोई व्यक्ति यह जान लेता है कि सुख भी मेरे, दुख भी मेरे—सब भाव मेरे हैं, उस दिन व्यक्ति मुक्त हो जाता है। जब तक मुझे लगता है कि दुख किसी और से आता है, सुख किसी और से आता है, तब तक मैं परतंत्र होता हूं, निर्भर होता हूं।

मुक्ति का यही है अर्थ—जिस दिन मुझे लगता है कि सब कुछ मेरा फैलाव है। जहां मैंने चाहा, सुख पाऊं,

वहां मैंने सुख देख लिया। जहां मैंने चाहा दुख पाऊं वहां मैंने दुख देख लिया। जो मैंने देखा वह मेरी आंख से गये हुए चित्र थे, जगत ने केवल पदच का काम किया, चित्र मेरे थे। प्रोजेक्टर मैं हूं। लेकिन प्रोजेक्टर दिखायी नहीं पड़ते। फिल्म में भी आप बैठकर देखते हैं, प्रोजेक्टर पीठ के पीछे होता है। वह वहां छिपा रहता है, दीवार के भीतर, छोटे से छेद से निकलते रहते हैं चित्र, दिखायी पड़ते हैं पदच पर, जहां होते नहीं। जहां होते हैं, वह होती है पीठ के पीछे, वहां कोई देखता नहीं। पदच पर कुछ होता नहीं। पदच पर केवल जो प्रोजेक्टर फेंकता है वही दिखायी पड़ता है।

ध्यान रहे, जब मैं किसी स्त्री, किसी पुरुष, किसी मित्र, किसी शत्रु के प्रति किसी भाव में पड़ जाता हूं, तो प्रोजेक्टर मेरे पीछे भीतर छिपा है जहां से मैं चित्र फेंकता हूं, और दूसरा व्यक्ति केवल एक पर्दा है, जिस पर वह चित्र दिखायी पड़ता है। मैं ही दिखायी पड़ता हूं बहुत लोगों पर।

मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि जब किसी आदमी में तुम्हें कोई बुराई दिखायी पड़े, तो बहुत गौर से सोचना। ज्यादा मौके ये हैं कि वह बुराई तुम्हारी होगी। जैसे एक बाप है—अगर बाप गधा रहा हो स्कूल में, तो बेटे को गधा बिलकुल बर्दाश्त नहीं कर सकेगा, बेटे को वह बुद्धिमान बनाने की कोशिश में लगा रहेगा। और जरा-सा बेटा कुछ नासमझी और मूढ़ता करे, जरा नम्बर उसके कम हो जायें तो भारी शोरगुल मचायेगा। बुद्धिमान बाप इतना नहीं मचायेगा। बुद्धू बाप जरूर मचायेगा। उसका कारण है, कि बेटा सिर्फ प्रोजेक्शन का पर्दा है। जो उनमें कम रह गया है वह उसमें पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा एक दिन अपना स्कूल से प्रमाण-पत्र लेकर लौटा सालाना परीक्षा का। मुल्ला ने बहुत हाय-तौबा मचायी, बहुत उछला-कूदा। और कहा कि बरबाद कर दिया, नाम डुबा दिया। किसी विषय में बेटा उत्तीर्ण नहीं हुआ है। अधिकतर में शून्य प्राप्त हुआ है।

लेकिन बेटा नसरुद्दीन का ही था। वह खड़ा मुस्कुराता रहा। जब बाप काफी शोरगुल कर लिया और काफी अपने को उत्तेजित कर लिया, तब उसने कहा कि जरा ठहरिए, यह प्रमाण-पत्र मेरा नहीं है, पुरानी कुरान की किताब में मिल गया है। यह आपका है।

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, 'तो ठीक, तो जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था वही मैं तेरे साथ करूंगा।'

उसके लड़के ने पूछा, 'तुम्हारे बाप ने तुम्हारे साथ क्या किया था?'

उसने कहा, 'नंगा करके चमड़ी उधेड़ दी थी।'

'तो ठीक! मेरा ही सही, कोई हर्जा नहीं। तेरा कहां है?'

उसके बेटे ने कहा, 'मेरी भी हालत यही है। इसीलिए तो मैंने आपका दिखाया है, शायद आप थोड़े नरम हो जायें।'

उसने कहा कि नरम का कोई उपाय नहीं। जो मेरे बाप ने मेरे साथ किया था, वही मैं तेरे साथ करूंगा।

जो हमें दूसरों में दिखायी पड़ता है—आपको दिखायी पड़ता है कि फलां आदमी बहुत ईर्ष्यालु है, थोड़ा खयाल करना, कहीं वह आदमी पर्दा तो नहीं है, और आपके भीतर ईर्ष्या है। आपको दिखायी पड़ता है, फलां आदमी बहुत अहंकारी है, थोड़ा खयाल करना, वह पर्दा तो नहीं है, और अहंकार आपके भीतर है। आपको लगता है, फलां आदमी बेईमान है, थोड़ा खयाल करना, थोड़ा मुड़-मुड़कर देखना शुरू करो, ताकि प्रोजेक्टर का पता चले। पदच पर ही मत देखते रहो।

महावीर कहते हैं, सब पीछे से, भीतर से आ रहा है और बाहर फैल रहा है। सारा खेल तुम्हारा है। तुम्हीं हो नाटक के लेखक, तुम्हीं हो उसके पात्र, तुम्हीं हो उसके दर्शक। दूसरे को मत खोजो, अपने को खोज लो। जो इस खोज में लग जाता है, वह एक दिन मुक्त हो जाता है।

आज इतना ही।

ये चार शत्रु

पांचवां प्रवचन

दिनांक 17 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

कषाय-सूत्र

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,

माया य लोभो य पवड्ढमाणा।

चत्तारि एए कसिणा कसाया,

सिंचन्ति भूलाइं पुण्णब्भवस्स।।

पुढवी साली जवा चेव,

हिरण्णं पसुभिस्सह।

पडिपुण्णं नालमेगस्स,

इह विज्जा तवंचरे।।

अनिगृहित क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ, ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार-वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।

चावल और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जानकर संयम का ही आचरण करना चाहिए।

सूत्र के पूर्व कुछ प्रश्न।

महावीर ने अप्रमाद को साधना का आधार कहा है, होश को, सतत जागृति को। एक मित्र ने पूछा है कि जो होश के बारे में कहा गया है वह हम अपने काम-काज में, आफिस में, दुकान में कार्य करते समय कैसे आचरण में लायें? होश में रहने पर ध्यान जाये तो काम कैसे हो? काम में होते हुए होश का क्या स्थान और साधना हो सकती है?

दो तीन बातें खयाल में लेनी चाहिए।

एक— होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है। आप भोजन कर रहे हैं, तो होश कोई अलग प्रक्रिया नहीं है कि भोजन करने में बाधा डाले। जैसे मैं आपसे कहूं कि भोजन करें और दौड़ें। तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, दौड़ना या भोजन करना। आपसे मैं कहूं कि दफ्तर जायें, तब सोयें, तो दोनों में से एक ही हो सकेगा, सोयें या दफ्तर जायें।

होश कोई प्रतियोगी प्रक्रिया नहीं है। भोजन कर सकते हैं, होश को रखते हुए या बेहोशी में। होश भोजन के करने में बाधा नहीं बनेगा। होश का अर्थ इतना ही है कि भोजन करते समय मन कहीं और न जाये, भोजन करने में ही हो। मन कहीं और चला जाये तो भोजन बेहोशी में हो जायेगा। आप भोजन कर रहे हैं, और मन दफ्तर में चला गया। शरीर भोजन की टेबल पर, मन दफ्तर में, तो न तो दफ्तर में हैं आप, क्योंकि वहां आप हैं नहीं, और न भोजन की टेबल पर हैं आप, क्योंकि मन वहां नहीं रहा। तो वह जो भोजन कर रहे हैं, वह बेहोश है, आपके बिना हो रहा है।

इस बेहोशी को तोड़ने की प्रक्रिया है होश, भोजन करते वक्त मन भोजन में ही हो, कहीं और न जाये। सारा जगत जैसे मिट गया, सिर्फ यह छोटा-सा काम भोजन करने का रह गया। पूरी चेतना इसके सामने है। एक कौर भी आप बनाते हैं,

उठाते हैं, मुंह में ले जाते हैं, चबाते हैं, तो यह सारा होशपूर्वक हो रहा है। आपका सारा ध्यान भोजन करने में ही है, इस फर्क को आप ठीक से समझ लें।

अगर मैं आपसे कहूं कि भोजन करते वक्त राम-राम जपें, तो दो क्रियाएं हो जायेंगी। राम-राम जपेंगे तो भोजन से ध्यान हटेगा। भोजन पर ध्यान लायेंगे तो राम-राम का ध्यान टूटेगा। मैं आपको कहीं और ध्यान ले जाने को नहीं कह रहा हूं, जो आप कर रहे हैं उसको ही ध्यान बना लें। इससे आपके किसी काम में बाधा नहीं पड़ेगी, बल्कि सहयोग बनेगा। क्योंकि जितने ध्यानपूर्वक काम किया जाये, उतना कुशल हो जाता है।

काम की कुशलता ध्यान पर निर्भर है। अगर आप अपने दफ्तर में ध्यानपूर्वक कर रहे हैं, जो भी कर रहे हैं तो आपकी कुशलता बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और आप दफ्तर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दफ्तर में, मन होता है सिनेमागृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।

जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।

काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थककर जायेगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूबकर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जायेगी।

जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबर्दस्ती से की गयी एकाग्रता। तो आप थक जायेंगे। अगर आप जबर्दस्ती अपने को खींचकर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जायेंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबर्दस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।

ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनायें। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाये कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हल्के-हल्के इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी खयाल आ जाये, तो होशपूर्वक करें। भूल जाये, तो चिंता न लें। जब खयाल आ जाये, फिर होशपूर्वक करने लगें।

अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पायेंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जायेंगे। क्षणभर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होश पूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पायेंगे और होश कहीं और चला जायेगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिन्तित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जायें? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।

जैसे ही खयाल आ जाये कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आयें। इसको पश्चात्ताप न बनायें। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूं, कमजोर हूं, मुझसे होनेवाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिलकुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारम्भ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखायी पड़ा है, महावीर के प्रारम्भ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारम्भ में सभी के पैर डगमगाते हैं।

छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाये थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोचकर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर चारों से घिसटने लगता है।

बढ़ेगी, क्षमता बढ़ेगी, काम की मात्रा बढ़ेगी और आप थकेंगे नहीं। और आपकी शक्ति बचेगी। और आप दच्फतर से भी ऐसे वापस लौटेंगे जैसे ताजे लौट रहे हैं। क्योंकि जब शरीर कुछ और करता है, मन कुछ और करता है तो दोनों के बीच तनाव पैदा होता है। वही तनाव थकान है। आप होते हैं दच्फतर में, मन होता है सिनेमागृह में। आप होते हैं सिनेमा में, मन होता है घर पर, तो मन और शरीर के बीच जो फासला है वह तनाव ही आपको थकाता है और तोड़ता है।

जब आप जहां होते हैं वहीं मन होता है। इसलिए आप देखें, जब आप कोई खेल-खेल रहे होते हैं तो आप ताजे होकर लौटते हैं। खेल में शक्ति लगती है, लेकिन खेल के बाद आप ताजे होकर लौटते हैं। बड़ी उल्टी बात मालूम पड़ती है। आप बेडमिंटन खेल रहे हैं कि आप कबड्डी खेल रहे हैं, या कुछ भी, या बच्चों के साथ बगीचे में दौड़ रहे हैं। शक्ति व्यय हो रही है, लेकिन इस दौड़ने के बाद आप ताजे होते हैं। और यही काम अगर आपको करना पड़े तो आप थकते हैं।

काम और खेल में एक ही फर्क है, खेल में पूरा ध्यान वहीं मौजूद होता है, काम में पूरा मौजूद नहीं होता। इसलिए अगर आप किसी को नौकरी पर रख लें खेलने के लिए, तो वह खेलने के बाद थककर जायेगा। क्योंकि वह फिर खेल नहीं है, काम है। और जो होशियार हैं, वे अपने काम को भी खेल बना लेते हैं। खेल का मतलब यह है कि आप जो भी कर रहे हैं, इतने ध्यान, इतनी तल्लीनता, इतने आनंद से डूबकर कर रहे हैं कि उस करने के बाहर कोई संसार नहीं बचा है। आप इस करने के बाहर ज्यादा ताजे, सशक्त लौटेंगे। और कुशलता बढ़ जायेगी।

जो भी हम ध्यान से करते हैं, उसकी कुशलता बढ़ जाती है। लेकिन, अनेक लोग ध्यान का मतलब समझते हैं, जोर जबर्दस्ती से की गयी एकाग्रता। तो आप थक जायेंगे। अगर आप जबर्दस्ती अपने को खींचकर किसी काम पर मन को लगाते हैं, तो आप थक जायेंगे। तब तो यह ध्यान भी एक काम हो गया। जो भी जबर्दस्ती किया जाता है, वह काम हो जाता है।

ध्यान को भी आनंद समझें। इसको भी बेचैनी मत बनायें। यह आपके सिर पर एक बोझ न हो जाये कि मुझे ध्यानपूर्वक ही काम करना है। इसको चेष्टा और प्रयत्न का बोझ न दें, हल्के-हल्के इसे विकसित होने दें, इसको सहारा दें। जब भी खयाल आ जाये, तो होशपूर्वक करें। भूल जाये, तो चिंता न लें। जब खयाल आ जाये, फिर होशपूर्वक करने लगें।

अगर आपने तय किया है कि अब मैं काम अपना होशपूर्वक करूंगा, तो आप कर पायेंगे आज ही, ऐसा नहीं है; वर्षों लग जायेंगे। क्षणभर भी होश रखना मुश्किल है। तय करेंगे कि होश पूर्वक चलूंगा, दो कदम नहीं उठा पायेंगे और होश कहीं और चला जायेगा, कदम, कहीं और चलने लगेंगे। उससे चिन्तित न हों, पश्चात्ताप न करें। लाखों-लाखों जीवन की आदत है बेहोशी की, इसलिए दुखी होने का कोई कारण नहीं है। हमने ही साधा है बेहोशी को, इसलिए किससे शिकायत करने जायें? और परेशान होने से कुछ हल नहीं होता।

जैसे ही खयाल आ जाये कि पैर बेहोशी में चलने लगे, मेरा ध्यान कहीं और चला गया था, आनंदपूर्वक फिर ध्यान को ले आयें। इसको पश्चात्ताप न बनायें। इससे मन में दुखी न हों, इससे पीड़ित न हों, इससे ऐसा न समझें कि यह अपने से न होगा। यह भी न समझें कि मैं तो बहुत दीन-हीन हूं, कमजोर हूं, मुझसे होनेवाला नहीं है। होता होगा महावीर से, अपने वश की बात नहीं है। बिलकुल न सोचें। महावीर भी शुरू करते हैं तो ऐसा ही होगा। कोई भी शुरू करता है तो ऐसा ही होता है। महावीर इस यात्रा का अंत हैं, प्रारम्भ पर वे भी आप जैसे हैं। अंत आपको दिखायी पड़ा है, महावीर के प्रारम्भ का आपको कोई पता नहीं है। प्रारम्भ में सभी के पैर डगमगाते हैं।

छोटा बच्चा चलना शुरू करता है, अगर वह आपको देख ले चलता हुआ, और सोचे कि यह अपने से न होगा। आप भी ऐसे ही चले थे, आपने भी ऐसे ही कदम उठाये थे और गिरे थे, और दो कदम उठाने के बाद बच्चा फिर चारों हाथ पैर से चलते लगता है, सोचकर कि यह अपने वश की बात नहीं। यह अब भूल ही जाता है कि दो कदम से चलना था, फिर

चारों से घिसटने लगता है।

ठीक, प्रमाद को तोड़ने में भी ऐसा ही होगा। दो कदम आप होश में चलेंगे, फिर अचानक चार हाथ-पैर से आप बेहोशी में चलने लगेंगे। जैसे ही होश आ जाये, फिर खड़े हो जायें। चिंता मत लें इसकी कि बीच में होश क्यों खो गया। इस चिंता में समय और शक्ति खराब न करें। तत्काल होश को फिर से साधने लगें। अगर चौबीस घंटे में चौबीस क्षण भी होश सध जाये, तो आप महावीर हो जायेंगे। काफी है, इतना भी बहुत है। इससे ज्यादा की आशा मत रखें, अपेक्षा भी मत करें। चौबीस घंटे में अगर चौबीस क्षणों को भी होश आ जाये तो बहुत है। धीरे-धीरे क्षमता बढ़ती जायेगी। और वह जो बच्चा आज सोच रहा है कि अपने वश के बाहर है दो पैर से चलना, एक दिन वह दो पैर से चलेगा और कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा, कोई प्रयास नहीं रह जायेगा।

तो यह ध्यान रख लें, ध्यान को काम नहीं बना लेना है। नहीं तो बहुत से धार्मिक लोग ध्यान को ऐसा काम बना लेते हैं कि उनके सिर पर पत्थर रखा है। उसकी वजह से उनका क्रोध बढ़ जाता है। क्योंकि फिर जिससे भी उन्हें बाधा पड़ जाती है, उस पर वे क्रोधित हो जाते हैं। जो काम में उनका ध्यान नहीं टिकता, वह उस काम को छोड़कर भागना चाहते हैं। जिनके कारण असुविधा होती है, उनका त्याग करना चाहते हैं। यह सब क्रोध है। इस क्रोध से कोई हल नहीं होगा।

साधक को चाहिए धैर्य, और तब दुकान भी जंगल जैसी सहयोगी हो जाती है। साधक को चाहिए अनंत प्रतीक्षा, और तब घर भी किसी भी आश्रम से महत्वपूर्ण हो जाता है। निर्भर करता है आपके भीतर के धैर्य, प्रतीक्षा और सतत, सहज प्रयास पर। प्रयास तो करना ही होगा, लेकिन उस प्रयास को एक बोझिलता जो बनायेगा, वह हार जायेगा।

जीवन में जो भी महत्वपूर्ण है, वह प्रतीक्षा से, सहजता से, बिना बोझ बनाये प्रयास से उपलब्ध होता है। सच तो यह है कि हम कोई भी चीज आज भी कर सकते हैं, लेकिन अधैर्य ही हमारा बाधा बन जाता है। उससे उदासी आती है, निराशा आती है, हताशा पकड़ती है, और आदमी सोचता है, नहीं, यह अपने से न हो सकेगा। यह जो बार-बार हताशा पकड़ती है, यह अहंकार का लक्षण है।

आप अपने से बहुत अपेक्षा कर लेते हैं पहले, फिर उतनी पूरी नहीं होती। वह अपेक्षा आपका अहंकार है। एक क्षण भी होश सधता है तो बहुत है। एक क्षण जो सधता है, कल दो क्षण भी सध जायेगा। और ध्यान रहे, एक क्षण से ज्यादा तो आदमी के हाथ में कभी होता नहीं। दो क्षण तो किसी को इकट्ठे मिच्ते नहीं। इसलिए दो क्षण की चिन्ता भी क्या? जब भी आप के हाथ में समय आता है, एक ही क्षण आता है। अगर आप एक क्षण में होश साध सकते हैं, तो समस्त जीवन में होश सध सकता है। इसका बीज आपके पास है। एक ही क्षण तो मिलता है हमेशा, और एक क्षण का होश साधने की क्षमता आप में है।

आदमी एक कदम चलता है एक बार में, कोई मीलों की छलांग नहीं लगाता। और एक-एक कदम चलकर आदमी हजारों मील चल लेता है। जो आदमी अपने पैर को देखेगा और देखेगा, एक कदम चलता हूं, एक फीट पूरा नहीं हो पाता; हजार मील कहां पार होने वाले हैं! यहीं बैठ जायेगा। लेकिन जो आदमी यह देखता है कि अगर एक कदम चल लेता हूं, तो एक कदम हजार मील में कम हुआ। और अगर जरा-सा भी कम होता है तो एक दिन सागर को भी चुकाया जा सकता है। फिर कुछ भी अड़चन नहीं है। इतना चल लेता हूं तो एक हजार मील भी चल लूंगा। दस हजार मील भी चल लूंगा। लाओत्से ने कहा है, पहले कदम को उठाने में जो समर्थ हो गया, अंतिम बहुत दूर नहीं है। कितना ही दूर हो।

जिसने पहला उठा लिया है, वह अंतिम भी उठा लेगा। पहले में ही अड़चन है, अंतिम में अड़चन नहीं है। जो पहले पर ही थक कर बैठ गया, निश्चित ही वह अंतिम नहीं उठा पाता है। पहला कदम आधी यात्रा है, चाहे यात्रा कितनी ही बड़ी क्यों न हो। जिसने पहले कदम के रहस्य को समझ लिया, वह चलने की तरकीब समझ गया, विज्ञान समझ गया। एक-एक कदम उठाते जाना है, एक-एक पल को प्रमाद से मुक्त करते जाना है। जो भी करते हों, होशपूर्वक करें। होश अलग काम नहीं है, उस काम को ही ध्यान बना लें। महावीर और बुद्ध इस मामले में अनूठे हैं।

दुनिया में और जो साधन पद्धतियां हैं, वे सब ध्यान को अलग काम बनाती हैं, वे कहती हैं, रास्ते पर चलो तो राम को स्मरण करते रहो। वे कहती हैं कि बैठे हो खाली, तो माला जपते रहो। कोई भी पल ऐसा न जाये जो प्रभु स्मरण से खाली

हो। इसका मतलब हुआ कि जिन्दगी का काम एक तरफ चलता रहेगा और भीतर एक नये काम की धारा शुरू करनी पड़ेगी।

महावीर और बुद्ध इस मामले में बहुत भिन्न हैं। वे कहते हैं कि यह भेद करने से तनाव पैदा होगा, अड़चन होगी।

मेरे पास एक सैनिक को लाया गया था। सैनिक था, सैनिक के ढंग का उसका अनुशासन था मन का। फिर उसने किसी से मंत्र ले लिया। तो जैसा वह अपनी सेना में आज्ञा मानता था, वैसे ही उसने अपने गुरु की भी आज्ञा मानी। और मंत्र को चौबीस घण्टे रटने लगा। अभ्यास हो गया। दो तीन महीने में मंत्र अभ्यस्त हो गया। तब बड़ी अड़चन शुरू हुई, उसकी नींद खो गयी। क्योंकि वह मंत्र तो जपता ही रहता। धीरे-धीरे नींद मुश्किल हो गयी, क्योंकि मंत्र चले तो नींद कैसे चले। फिर धीरे-धीरे रास्ते पर चलते वक्त उसे भ्रम पैदा होने लगे। कार का हार्न बज रहा है, उसे सुनायी न पड़े, क्योंकि वहां भीतर मंत्र चल रहा है। वह इतना एकाग्र होकर मंत्र सुनने लगा कि कार का हार्न कैसे सुनाई पड़े। उसकी मिलिट्री में उसका केप्टिन आज्ञा दे रहा है, बायें घूम जाओ, वह खड़ा ही रहे। भीतर तो वह कुछ और कर रहा है।

उसे मेरे पास लाये। मैंने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? इसमें तुम पागच हो जाओगे। उसने कहा, अब तो कोई उपाय नहीं है। अब तो मैं न भी जपूं राम-राम, भीतर का मंत्र न भी जपूं तो भी चलता रहता है। मैं अगर उसे छोड़ दूं, तो मेरा मामला नहीं अब, उसने मुझे पकड़ लिया है। मैं खाली भी बैठ जाऊं तो कोई फर्क नहीं पड़ता है, मंत्र चलता है।

इस तरह की कोई भी साधना पद्धति जीवन में उपद्रव पैदा कर सकती है। क्योंकि जीवन की एक धारा है, और एक नयी धारा आप पैदा कर लेते हैं। जीवन ही काफी बोझिल है। और एक नयी धारा तनाव पैदा करेगी। और अगर इन दोनों धाराओं में विरोध है, तो आप अड़चन में पड़ जायेंगे।

महावीर और बुद्ध अलग धारा पैदा करने के पक्ष में नहीं हैं। वे कहते हैं, जीवन की जो धारा है, इसी धारा पर ध्यान को लगाओ। इसमें भेद मत पैदा करो, द्वैत मत पैदा करो। ध्यान ही चाहिए न, तो राम-राम पर ध्यान रखते हो, क्या सवाच हुआ? सांस चलती है, इसी पर ध्यान रख लो। ध्यान ही बढ़ाना है तो एक मंत्र पर ध्यान बढ़ाते हो, पैर चल रहे हैं, यह भी मंत्र है। इसी पर ध्यान को कर लो। भीतर कुछ गुनगुनाओगे उस पर ध्यान करना है, बाजार पूरा गुनगुना रहा है, चारों तरफ शोरगुल हो रहा है, इसी पर ध्यान कर लो। ध्यान को अलग क्रिया मत बनाओ, विपरीत क्रिया मत बनाओ। जो चल रहा है, मौजूद है उसको ही ध्यान का आब्जेक्ट, उसको ही ध्यान का विषय बना लो। और तब इस अर्थों में, महावीर की पद्धति जीवन विरोधी नहीं है, और जीवन में कोई भी अड़चन खड़ी नहीं करती।

महावीर ने सीधी सी बात कही है, चलो, तो होशपूर्वक। बैठो, तो होशपूर्वक। उठो, तो होशपूर्वक। भोजन करो, तो होशपूर्वक। जो भी तुम कर रहे हो जीवन की क्षुद्रतम क्रिया, उसको भी होशपूर्वक किये चले जाओ। क्रिया में बाधा न पड़ेगी, क्रिया में कुशलता बढ़ेगी और होश भी साथ-साथ विकसित होता चला जायेगा। एक दिन तुम पाओगे, सारा जीवन होश का एक द्वीप-स्तम्भ बन गया, तुम्हारे भीतर सब होशपूर्ण हो गया है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है कि कल आपने कहा, प्रत्येक व्यक्ति की परम स्वतंत्रता का समादर करना ही अहिंसा है। दूसरे को बदलने का, अनुशासित करने का, उसे भिन्न करने का प्रयास हिंसा है। तो फिर गुरजिएफ और झेन गुरुओं द्वारा अपने शिष्यों के प्रति इतना सख्त अनुशासन और व्यवहार और उन्हें बदलने के तथा नया बनाने के भारी प्रयत्न के संबंध में क्या कहिएगा? क्या उसमें भी हिंसा नहीं छिपी है?

दूसरे को बदलने की चेष्टा हिंसा है। अपने को बदलने की चेष्टा हिंसा नहीं है। दूसरे की जीवन पद्धति पर आरोपित होने की चेष्टा हिंसा है। अपने जीवन को रूपांतरण करना हिंसा नहीं है, और यहीं फर्क शुरू हो जाता है।

जब भी एक व्यक्ति किसी झेन गुरु के पास आकर अपना समर्पण कर देता है तो गुरु और शिष्य दो नहीं रहे। अब यह दूसरे को बदलने की कोशिश नहीं है। झेन गुरु आपको आकर बदलने की कोशिश नहीं करेगा, जब तक कि आप जाकर बदलने के लिए अपने को उसके हाथ में नहीं छोड़ देते हैं। जब आप बदलने के लिए अपने आपको उसके हाथ में छोड़ देते हैं, समग्ररूपेण समर्पण कर देते हैं, यह सरेंडर टोटल, पूरा है, तो अब गुरु आपको अलग नहीं देखता, अब आप उसका ही विस्तार हैं, उसका ही फैलाव हैं। अब वह आपको ऐसे ही बदलने में लग जाता है, जैसे अपने को बदल रहा

हो। इसलिए झेन गुरु सख्त मालूम पड़ सकता है बाहर से, देखनेवालों को। शिष्यों को कभी सख्त मालूम नहीं पड़ा है।
हुई हाई ने कहा है कि जब मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठाकर बाहर फेंक दिया, तो जो भी देखनेवाले थे, सभी ने समझा कि यह गुरु दुष्ट है, यह भी कोई बात हुई। शिष्य को खिड़की से उठाकर बाहर फेंक देना, यह भी कोई बात हुई! और यह भी कोई सदगुरु का लक्षण हुआ!

लेकिन हुई हाई ने कहा है कि सब ठीक चल रहा था मेरे मन में, सब शांत होता जा रहा था, लेकिन मैं का भाव बना हुआ था। मैं शांत हो रहा हूं, यह भाव बना हुआ था। मेरा ध्यान सफल हो रहा है, यह भाव बना ही हुआ था। मैं बना हुआ था। सब टूट गया था, सिर्फ मैं रह गया था, और बड़ा आनन्द मालूम हो रहा था। और उस दिन जब अचानक मेरे गुरु ने मुझे खिड़की से उठाकर बाहर फेंक दिया, तो खिड़की से बाहर जाते और जमीन पर गिरते क्षण में वह घटना घट गयी, जो मैं नहीं कर पा रहा था। वह जो मैं था, उतनी देर को मुझे बिलकुल भूल गया। वह जो खिड़की के बाहर जाकर झटके से गिरना था, वह जो शाक था, समझ में नहीं पड़ा। मेरी बुद्धि एकदम मुश्किल में पड़ गयी। कुछ समझ न रही कि यह क्या हो रहा है। एक क्षण को 'मैं' से मैं चूक गया और उसी क्षण में मैंने उसके दर्शन कर लिए जो मैं के बाहर है।

हुई हाई कहता था कि मेरे गुरु की अनुकंपा अपार थी। कोई साधारण गुरु होता तो खिड़की के बाहर मुझे फेंकता नहीं। और जिस काम में मुझे वर्षों लग जाते वह क्षण में हो गया।

आप जानकर हैरान होंगे कि झेन गुरु के शिष्य जब ध्यान करने बैठते हैं तो गुरु घूमता रहता है, एक डन्डे को लेकर। झेन गुरु का डन्डा बहुत प्रसिद्ध चीज है। वह डन्डे को लेकर घूमता रहता है। जब वह, लगता है कि कोई भीतर प्रमाद में पड़ रहा है, होश खो रहा है, झपकी आ रही है, तभी वह कन्धे पर डन्डा मारता है। और बड़े मजे की बात तो यह है कि जिनको वह डन्डा मारता है, वे झुककर प्रणाम करते हैं, अनुग्रहीत होते हैं। इतना ही नहीं, जिनको ऐसा लगता है कि गुरु उन्हें डन्डा मारने नहीं आया और भीतर प्रमाद आ रहा है तो वे दोनों अपने हाथ छाती के पास कर लेते। वह निमन्त्रण है कि मुझे डन्डा मारें, मैं भीतर सो रहा हूं।

तो साधक बैठे रहते हैं, गुरु घूमता रहता है या बैठा रहता है। जब भी कोई साधक अपने दोनों हाथ छाती के पास ले आता है उठाकर, पैरों से उठाकर छाती के पास ले आता है, वह खबर दे रहा है कि कृपा करें, मुझे मारें, भीतर मैं झपकी खा रहा हूं। जिन लोगों ने झेन गुरुओं के पास काम किया है, उनका अनुभव यह है कि गुरु का डन्डा बाहर के लोगों को दिखायी पड़ता होगा, कैसी हिंसा है! लेकिन गुरु का डन्डा जब कन्धे पर पड़ता है, कन्धे पर हर कहीं नहीं पड़ता, खास केन्चदर हैं जिन पर झेन गुरु डन्डा मारते हैं। उन केन्चदरों पर चोट पड़ते ही भीतर का पूरा स्नायु तन्तु झनझना जाता है। उस स्नायु तन्तु की झनझनाहट में निद्रा मुश्किल हो जाती है, झपकी मुश्किल हो जाती है, होश आ जाता है।

तो हमें बाहर से दिखायी पड़ेगा। बाहर से जो दिखायी पड़ता है, उसको सच मत मान लेना। जल्दी निष्कर्ष मत ले लेना। भीतर एक अलग जगत भी है। और गुरु और शिष्य के बीच जो घटित हो रहा है वह बाहर से नहीं जाना जा सकता। उसे जानने का उपाय भीतरी ही है। उसे शिष्य होकर ही जाना जा सकता है। उसे बाहर से खड़े होकर देखने में आपसे भूल होगी। निर्णय गलत हो जायेंगे, निष्पत्तियां भ्रांत होंगी। क्योंकि बाहर से जो भी आप नतीजे लेंगे— अगर आप एक रास्ते से गुजर रहे हैं और एक मठ के भीतर एक झेन गुरु किसी को बाहर फेंक रहा है खिड़की के, तो आप सोचेंगे, पुलिस में खबर कर देनी चाहिए। आप सोचेंगे, यह आदमी कैसा है। अगर आप इस आदमी से मिलने आये थे तो बाहर से ही लौट जायेंगे। लेकिन, भीतर क्या घटित हो रहा है, वह है सूच्म। और वह केवल हुइ हाई और उसका गुरु जानता है कि भीतर क्या हो रहा है।

पश्चिम में शाक ट्रीटमेंट बहुत बाद में विकसित हुआ है। आज हम जानते हैं, मनसविद, मनोचिकित्सक जानते हैं कि अगर व्यक्ति ऐसी हालत में आ जाये पागलपन की कि कोई दवा काम न करे, तो भी शाक काम करता है। अगर हम उसके स्नायु तंतुओं को इतना झनझना दें कि एक क्षण को भी सातत्य टूट जाये, कन्टीन्युटी टूट जाये।

एक आदमी अपने को नैपोलियन समझ रहा है, या अपने को हिटलर माने हुए है। इसके सब इलाज हो चुके हैं, लेकिन कोई उपाय नहीं होता। जितना इलाज करो वह उतना और मजबूत होता चला जाता है। क्या करो? इसके मन की एक धारा

बंध गयी है, एक सातत्य हो गया है। एक कन्टीन्युटी हो गयी है, यह दुहराये चला जा रहा है कि मैं हिटलर हूं, आप कुछ भी करो, यह उस सबसे यही नतीजा लेगा कि मैं हिटलर हूं। इसे समझाने का कोई उपाय नहीं है। समझाने की सीमा के बाहर चला गया है यह।

मैं निरंतर कहता हूं कि एक आदमी को अब्राहम लिंकन होने का खयाल पैदा हो गया। नाटक में काम मिला था उसको अब्राहम लिंकन का। और अमरीका अब्राहम लिंकन की कोई विशेष जन्मतिथि मना रहा था। इसलिए एक वर्ष तक उसको अमरीका के नगर-नगर में जाकर लिंकन का पार्ट करना पड़ा। उसका चेहरा लिंकन से मिलता-जुलता था। एक वर्ष तक निरंतर अब्राहम का, लिंकन का पार्ट करते-करते उसे यह भ्रांति हो गयी कि वह अब्राहम लिंकन है। फिर नाटक खत्म हो गया, पर उसकी भ्रांति खत्म न हुई। उसकी चाल अब्राहम लिंकन की हो गयी। अब्राहम लिंकन जैसा हकलाता था बोलने में, वैसा वह हकलाने लगा। सालभर लंबा अभ्यास था। मुस्कुराये तो लिंकन के ढंग से, छड़ी उठाये तो लिंकन के ढंग से, बैठे उठे तो लिंकन के ढंग से।

थोड़े दिन घर के लोगों ने मजाक लिया, फिर घबराहट हुई। वह अपना नाम भी अब्राहम लिंकन बताने लगा। घर के लोगों ने बहुत समझाया कि तुम्हें क्या हो गया है, तुम पागल तो नहीं हो गये हो? लेकिन जितना उसे समझाया, उतना ही वह उन पर मुस्कुराता था। लोग उससे पूछते थे कि तुम क्यों मुस्कुरा रहे हो, तो वह कहता, तुम सब पागल हो गये, क्या हुआ? मैं अब्राहम लिंकन हूं। हालत यहां तक पहुंची कि लोग कहने लगे, कि जब तक इसको गोली न मारी जाये, तब तक यह मानेगा नहीं। अब्राहम लिंकन को गोली मारी गयी तब तक यह चैन नहीं लेगा। चिकित्सकों ने समझाया, मनो-विश्लेषण किया, कोई उपाय नहीं था।

अमरीका में एक लाई डिटेक्टर उन्होंने एक छोटी मशीन बनायी है जिसमें झूठ आदमी बोले तो पकड़ जाता है। क्योंकि जब आप झूठ बोलते हैं तो हृदय में सातत्य टूट जाता है। आपसे मैंने पूछा, आपका नाम? आपने कहा, राम। आपकी उम्र? आपने कहा, 45 साल। आज की तारीख? आपने कहा यह, दिन? सब ठीक बोला। तब मैंने अचानक आपसे पूछा, आपने चोरी की? तो आपके भीतर से तो आयेगा, हां। क्योंकि आपने की है। और उसको आप बदलेंगे बीच में। भीतर से—उठेगा हां, गले तक आयेगा, हां। फिर हां को आप नीचे दबायेंगे और कहेंगे—नहीं। यह पूरा का पूरा झटका जो है, नीचे जो मशीन लगी है, उस पर आ जायेगा। जैसे कि अपके हृदय की धड़कन का ग्राफ आता है, वैसे ही ग्राफ में ब्रेक आ जायेगा, झटका आ जायेगा। वह झटका बतायेगा कि किस प्रश्न को आपने झूठा उत्तर दिया है।

तो इन सज्जन को लाई डिटेक्टर पर खड़ा किया गया, कि अगर यह आदमी झूठ बोल रहा है तो पकड़ जायेगा। यह भीतर गहन में तो जानता ही होगा कि मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं। वह आदमी भी परेशान हो गया था, यह सब इलाज, चिकित्सा, समझाने से। उसने आज तय कर लिया था कि ठीक है, आज मान लूंगा। जो कहते हो, वही ठीक है।

पूछे बहुत से प्रश्न। फिर पूछा गया कि तुम्हारा नाम क्या अब्राहम लिंकन है? उसने कहा, नहीं। और मशीन ने नीचे बताया कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। तब तो मनोचिकित्सक ने भी सिर ठोंक लिया। उसने कहा, अब कोई उपाय ही न रहा। आखिरी हद्द हो गयी। वह लाई डिटेक्टर कह रहा है कि यह झूठ बोल रहा है। क्योंकि भीतर तो उसे आया हां, लेकिन कब तक इस उपद्रव में पड़ा रहूं, एक दफा न कहकर झंझट छुड़ाऊं। उसने ऊपर से कहा कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं।

इस आदमी के लिए क्या किया जाये? तो शाक ट्रीटमेंट है, अब कोई उपाय नहीं। ऐसे आदमी के मस्तिष्क को बिजली से धक्का पहुंचाना पड़ेगा। धक्के का एक ही उपयोग है कि वह जो सतत धारा चल रही है कि मैं अब्राहम लिंकन हूं, मैं अब्राहम लिंकन हूं, उस धारा को समझाने से कोई उपाय नहीं है, क्योंकि धारा उससे टूटती नहीं। बिजली के धक्के से वह धारा टूट जायेगी, छिन्न-भिन्न हो जायेगी। एक क्षण को, इस आदमी के भीतर का जो सातत्य है वह खण्डित हो जायेगा, गैप, अंतराल हो जायेगा। शायद उस गैप के कारण दुबारा इसको खयाल न आये कि मैं अब्राहम लिंकन हूं। इसलिए मनोविज्ञान अब शाक ट्रीटमेंट का उपयोग करता है। अंतिम उपाय वही है। धक्का पहुंचाकर स्नायु तंतुओं की धारा को तोड़ देना। झेन गुरु बहुत प्राचीन समय से, हजार साल से, डेढ़ हजार साल से उसका उपयोग कर रहे हैं। यह जो शिष्य के साथ झेन गुरु का इतना तीव्र हिंसात्मक दिखायी पड़नेवाला व्यवहार है, यह तो कुछ भी नहीं है।

एक झेन गुरु बांकेई की आदत थी कि जब भी वह ईश्वर के बाबत कुछ बोलता तो एक उंगली ऊपर उठाकर इशारा करता। जैसा कि अकसर हो जाता है, जहां गुरु और शिष्य, एक दूसरे को प्रेम करते हैं, शिष्य पीठ पीछे गुरु की मजाक भी करते हैं। यह बहुत आत्मीय निकटता होती है, तब ऐसा हो जाता है। इतना परायापन भी नहीं होता कि

तो वह जो उसकी आदत थी उंगली ऊपर उठाकर बात करने की सदा, यह मजाक का विषय बन गयी थी, जब कोई बात कहता शिष्यों में, तो वह उंगली ऊपर उठा देता। उसमें एक छोटा बच्चा भी था, जो आश्रम में झाड़ू-बुहारी लगाने का काम करता था। वह भी बड़े-बड़े साधकों के बीच कभी-कभी ध्यान करने बैठता था, और जो बड़ों से नहीं हो पाता था, वह उससे हो रहा था। क्योंकि छोटे बच्चे अभी सरल हैं, बूढ़े जटिल हैं। बूढ़े काफी बीमारी में आगे जा चुके हैं, बच्चे अभी बीमारी की शुरुआत में हैं। उसे ध्यान भी होने लगा था, और वह अपनी उंगली को उठाकर गुरु जैसी चर्चा भी करने लगा था।

एक दिन सब बैठे थे और बांकेई ने कहा, 'ईश्वर के संबंध में कुछ बोल'—उस बच्चे से। उसने कहा, ईश्वर। उसकी उंगलियां अनजाने ऊपर उठ गयीं। वह भूल गया कि गुरु मौजूद है। मजाक पीछे चलता है, सामने नहीं। जल्दी से उसने उंगली छिपाई, लेकिन गुरु ने कहा, नहीं, पास आ।

चाकू पास में पड़ा था, उठाकर उसकी उंगली काट दी। चीख निकल गयी उस बच्चे के मुंह से। हाथ में खून की धारा निकल गयी। बांकेई ने कहा, अब ईश्वर के संबंध में बोल! उस बच्चे ने अपनी टूटी हुई उंगली वापस उठायी, और बांकेई ने कहा कि तुझे जो पाना था, वह पा लिया है।

वह दर्द खो गया, वह पीड़ा मिट गयी। एक नये लोक का प्रारंभ हो गया। बड़ा गहन शाक ट्रीटमेंट हुआ। आज शरीर व्यर्थ हो गया।

जो उंगली नहीं थी, वह भी उठाने की सामर्थ्य आ गयी। अब उंगली के होने में, न होने में कोई फर्क न रहा। जो उंगली कट गयी थी, हाथ से खून बह रहा था, लेकिन बच्चा मुस्कुराने लगा। क्योंकि जब गुरु ने उंगली कटने पर फिर दुबारा पूछा कि ईश्वर के संबंध में? तो जैसे शरीर की बात भूल ही गया वह। एक क्षण में गुरु की आंखों में झांका, और उसके मुंह पर हंसी फैल गयी। वह बच्चा, जिसको झेन में सतोरी कहते हैं, समाधि, उसको उपलब्ध हो गया। उस बच्चे ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि चमत्कार था उस गुरु का कि उंगली ही उसने नहीं काटी, भीतर मुझे भी काट डाला। लेकिन बाहर जो बैठे थे, बाहर से जो देख रहे होंगे, उनको तो लगा होगा कि यह तो पक्का कसाई मालूम होता है।

तो झेन गुरु की जो हिंसा दिखायी पड़ती है, वह दिखायी ही पड़ती है, उसकी अनुकंपा अपार है। और जिस साधना पद्धति में गुरु की इतनी अनुकंपा न हो, वह साधना पद्धति मर जाती है। हमारे पास भी बहुत साधना पद्धतियां हैं, लेकिन करीब-करीब मर गयी हैं। क्योंकि न गुरु में साहस है, न इतनी करुणा है कि वह रास्ते के बाहर जाकर भी सहायता पहुंचाये। नियम ही रह गये हैं। नियम धीरे-धीरे मुर्दा हो जाते हैं। उनका पालन चलता रहता है, मरी हुई व्यवस्था की तरह। हम उन्हें ढोते रहते हैं। लेकिन उनमें जीवन नहीं है।

दूसरे को बदलने की चेष्टा नहीं है झेन गुरु की, लेकिन जिसने अपने को समर्पित किया है बदलने के लिए, वह दूसरा नहीं है, एक। दूसरे को बदलने में कोई अपने अहंकार की तृप्ति नहीं है। जिसने समर्पित कर दिया है—यह बहुत मजे की बात है, जब कोई व्यक्ति किसी के प्रति पूरा समर्पित हो जाता है तो उन दोनों के बीच जो सीमाएं तोड़ती थीं, अलग करती थीं अहंकार की, वे विलीन हो जाती हैं। यह मिलन इतना गहरा है जितना पति-पत्नी का भी कभी नहीं होता। प्रेमी और प्रेयसी का भी कभी नहीं होता, जितना गुरु और शिष्य का हो सकता है। लेकिन अति कठिन है, क्योंकि पति और पत्नी का मामला तो बायोलाजिकल है, शरीर भी साथ देते हैं। गुरु और शिष्य का संबंध च्सिपरचुअल है, बायोलाजिकल नहीं है। जैविक कोई उपाय नहीं है। तो पति और पत्नी तो पशुओं में भी होते हैं, प्रेमी और प्रेयसी तो पक्षियों में भी होते हैं, कीड़े-मकोड़ों में भी होते हैं। सिर्फ गुरु और शिष्य का एकमात्र संबंध है जो मनुष्यों में होता है। बाकी सब संबंध सब में होते हैं।

इसलिए जो व्यक्ति गुरु-शिष्य के गहन संबंध को उपलब्ध न हुआ हो, एक अर्थ में ठीक से अभी मनुष्य नहीं हो पाया है।

उसके सारे संबंध पाशविक हैं। क्योंकि वे सब संबंध तो पशु होने में भी हो जाते हैं। कोई अड़चन नहीं है। कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन पशुओं में गुरु और शिष्य का कोई संबंध नहीं होता, हो नहीं सकता। यह जो संबंध है, इस संबंध के हो जाने के बाद फासला नहीं है—कि हम दूसरे को बदल रहे हैं, हम अपने को ही बदल रहे हैं। इसलिए बुद्ध का जब कोई शिष्य मुक्त होता है, तो बुद्ध कहते हुए सुने गये कि आज मैं फिर तेरे द्वारा पुनः मुक्त हुआ।

महायान बौद्ध धर्म एक बड़ी मीठी कथा कहता है। वह कथा यह है कि बुद्ध का निर्वाण हुआ, शरीर छूटा, वे मोक्ष के द्वार पर जाकर खड़े हो गये, लेकिन उन्होंने पीठ कर ली। द्वारपाल ने कहा, आप भीतर आयें, युगों-युगों से हम प्रतीक्षा कर रहे हैं आपके आगमन की, और आप पीठ फेरकर क्यों खड़े हो गये हैं! तो बुद्ध ने कहा, 'जिन-जिन ने मेरे प्रति समर्पण किया, जिन-जिन ने मेरा सहारा मांगा, जब तक वे सभी मुक्त नहीं हो जाते, तब तक मेरा मोक्ष में प्रवेश कैसे हो सकता है? तब तक मैं कहीं न कहीं बंधा ही हुआ रहूंगा। इसलिए मैं अकेला नहीं जा सकता हूं।'

इसलिए महायान बौद्ध धर्म कहता है कि जब तक पूरी मनुष्यता मुक्त न हो जाये, तब तक बुद्ध द्वार पर ही खड़े रहेंगे। यह कहानी मीठी है, कहानी सूचक है। यह कहानी बहुत गहरे अर्थ लिए हुए है। कहीं कोई बुद्ध खड़े हुए नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। खड़े होने का कोई उपाय भी नहीं है। मुक्त होते ही तिरोहित हो जाना पड़ता है। कहीं कोई द्वार नहीं है। लेकिन यह एक मीठे सूत्र की खबर देती है कि गुरु शिष्य के द्वारा पुनः-पुनः मुक्त होता है। और यह संबंध इतना आत्मीय और निकट है कि वहां पराया कोई भी नहीं है।

इसी संदर्भ में पूछा है कि यह भी समझायें कि हिंसक वृत्ति के कारण निकले आदेश, और करुणा के कारण निकले उपदेश में साधक कैसे फर्क कर पाये?

साधक फर्क कर ही नहीं पायेगा। करना भी नहीं चाहिए। साधक को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसे ठीक से समझ लें।

गुरु ने चाहे हिंसा भाव से ही साधक को आदेश दिया हो। यह हिंसा अगर होगी तो गुरु के सिर होगी। साधक को तो आदेश का पालन कर लेना चाहिए। वह तो रूपांतरित होगा ही, चाहे आदेश करुणा से दिया गया हो और चाहे आदेश हिंसक भाव से दिया गया हो। चाहे मैं किसी को बदलने में इसलिए मजा ले रहा हूं कि बदलने में तोड़ने का मजा है, मिटाने का मजा है। चाहे मैं इसलिए दूसरे को आदेश दे रहा हूं कि नये के जन्म का आनन्द है, नये के जन्म की करुणा है। पुराने को मिटाने में हिंसा हो सकती है, नये को बनाने में करुणा है। मैं किसी भी कारण से आदेश दे रहा हूं, यह मेरी बात है। लेकिन जिसको आदेश दिया गया है, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता।

एक मकान को गिराना है और नया बनाना है। हो सकता है मुझे गिराने में ही मजा आ रहा हो, इसलिए बनाने की बातें कर रहा हूं। इसलिए उसको तोड़ने में मुझे रस है। या मैं बनाने में इतना उत्सुक हूं कि तोड़ना मजबूरी है, तोड़ना पड़ेगा। लेकिन यह मेरी बात है। मकान के बनने में कोई फर्क नहीं पड़ता है। इसलिए साधक को यह चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि गुरु ने जो खिड़की के बाहर फेंक दिया है, यह तोड़ने का रस था, कोई हिंसा थी या कोई महाकरुणा थी।

और अगर साधक यह फर्क करता है, तो समर्पित नहीं है। शिष्य नहीं है। यह तो उसे पहले ही गुरु के पास आने के पहले सोच लेना चाहिए। यह समर्पण के पहले सोच लेना चाहिए। गुरु के चुनाव की स्वतंत्रता है, गुरु के आदेशों में चुनाव की स्वतंत्रता नहीं है। मैं 'अ' को गुरु चुनूं कि 'ब' को, कि 'स' को, मैं स्वतंत्र हूं। लेकिन 'अ' को चुनने के बाद स्वतंत्र नहीं हूं कि 'अ' का—'अ' आदेश मानूं कि 'ब' आदेश मानूं, कि 'स' आदेश मानूं।

गुरु को चुनने का अर्थ समग्र चुनना है। इसलिए झेन ने, सूफियों ने, जहां बहुत गहन गुरु की परम्परा विकसित हुई है, और बड़े आन्तरिक रहस्य उन्होंने खोले हैं।

सूफी शास्त्र कहते हैं कि गुरु को चुनने के बाद खण्ड-खण्ड विचार नहीं किया जा सकता कि वह क्या ठीक कहता है और क्या गलत कहता है। अगर लगे कि गलत कहता है, तो पूरे ही गुरु को छोड़ देना तत्काल। ऐसा मत सोचना कि यह बात न मानेंगे, यह गलत है। यह बात मानेंगे, यह सही है। इसका तो मतलब हुआ कि गुरु के ऊपर आप हैं, और अन्तिम निर्णय आपका ही चल रहा है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। तो परीक्षा गुरु की चल रही है, आपकी नहीं। और इस

तरह के लोग जब मुसीबत में पड़ते हैं तो जिम्मा गुरु का है।

सूफी कहते हैं कि जब गुरु को चुन लिया तो पूरा चुन लिया। यह टोटल एक्सेप्टेन्स है। अगर किसी दिन छोड़ना हो तो टोटल छोड़ देना, पूरा छोड़ देना। हट जाना वहां से। लेकिन आधा चुनना और आधा छोड़ना मत करना। बहुत कीमती बात है कि यह ठीक लगता है, इसलिए चुनेंगे। तो आखिर में आप ही ठीक हैं। जो ठीक लगता है वह चुनते हैं। जो गलत लगता है, वह नहीं चुनते हैं। तो आपको ठीक और गलत का तो राज मालूम ही है। अब बचा क्या है चुनने को? जब आप यह भी पता लगा लेते हैं कि क्या ठीक है और क्या गलत है, तो आपको बचा ही क्या है? शिष्य होने की कोई जरूरत ही नहीं है। लेकिन अगर शिष्य होने की जरूरत है तो आपको पता नहीं है कि क्या ठीक है और क्या गलत है।

गुरु का चुनाव समग्र है। छोड़ना हो तो सूफी कहते हैं, पूरा छोड़ देना। बड़ी मजे की बात सूफियों ने कही है। बायजीद ने कहा है कि अगर गुरु को छोड़ना हो तो जितने आदर से स्वीकार किया था, जितनी समग्रता से, उतने ही आदर से, उतनी ही समग्रता से छोड़ देना। कठिन है मामला। किसी को आदर से स्वीकार करना तो आसान है, आदर से छोड़ना बहुत मुश्किल है। हम छोड़ते ही तब हैं जब अनादर मन में आ जाता है। लेकिन बायजीद कहता है, जिसको तुम आदर से न छोड़ सको, समझ लेना आदर से चुना ही नहीं था। क्योंकि यह तुमने चुना था। तुम निर्णायक न थे कि गुरु ठीक होगा कि गलत होगा। यह चुनाव तुम्हारा था। आदरपूर्वक तुमने चुना था। अगर तुम मेल नहीं खाते तो बायजीद ने कहा है कि समझना कि यह गुरु मेरे लिए नहीं है। ठीक और गलत तुम कहां जानते हो? तुम इतना ही कहना कि इस गुरु से मैं जैसा हूं, उसका मेल नहीं खा रहा है।

बायजीद का मतलब यह है कि जब भी तुम्हें गुरु छोड़ना पड़े तो तुम समझना कि मैं इस गुरु का शिष्य होने के योग्य नहीं हूं। छोड़ देना। लेकिन हम गुरु को तब छोड़ते हैं, जब हम पाते हैं कि यह गुरु हमारा गुरु होने के योग्य नहीं है।

मैं शिष्य होने के योग्य नहीं हूं, इसका यही भाव हो सकता है, शिष्यत्व का। गुरु के शिखर को नहीं समझा जा सकता है। अब यही, हुई हाई को फेंक दिया है खिड़की के बाहर। यह समग्र स्वीकार है। इसमें भी कुछ हो रहा होगा, इसलिए गुरु ने फेंक दिया है, इसलिए हुई हाई स्वीकार कर लेगा।

गुरजिएफ के पास लोग आते थे, तो गुरजिएफ अपने ही ढंग का आदमी था। सभी गुरु अपने ढंग के आदमी होते हैं, और दो गुरु एक से नहीं होते। हो भी नहीं सकते। क्योंकि गुरु का मतलब यह है कि जिसने अपनी अद्वितीय चेतना को पा लिया—बेजोड़। तो वह अलग तो हो ही जायेगा।

गुरजिएफ के पास कोई आता तो वह क्या करेगा, इसके कोई नियम न थे। हो सकता है वह कहे, एक वर्ष तक रहो आश्रम में, लेकिन मुझे देखना मत। मेरे पास मत आना। यह काम है सालभर का। यह काम करना। कि सड़ँक बनानी है, कि गिट्टी फोड़नी हैं, कि गड्ढा खोदना है, कि वृक्ष काटने हैं, यह काम सालभर करना। और सालभर के बीच एक बार भी मेरे पास मत आना।

एक रूसी साधक हार्टमेन गुरजिएफ के पास आया। एक वर्ष तक—पहले दिन जो पहला सूचन मिला वह यह कि एक वर्ष तक मेरे पास दुबारा मत आना। रहना छाया की तरह। सुबह चार बजे से हार्टमेन को काम दे दिया गया सालभर के लिए। वह करेगा दिन-रात काम। गुरजिएफ के मकान में रात रोज दावत होगी, सारा आश्रम आमंत्रित होगा, सिर्फ हार्टमेन नहीं। रात संगीत चलेगा दो-दो बजे तक। गुरजिएफ के बंगले की रोशनी बाहर पड़ती रहेगी और हार्टमेन अपनी कोठरी में सोया रहेगा। सभाएं होंगी, लोग आयेंगे, भीड़ होगी, अतिथि आयेंगे, चर्चा होगी, प्रश्न होंगे, हार्टमन नहीं होगा। सालभर !

जिस दिन सालभर पूरा हुआ, उस दिन गुरजिएफ हार्टमेन के झोपड़े पर गया और गुरजिएफ ने हार्टमेन से कहा कि अब तुम जब भी आना चाहो, आधी रात भी जब मैं सो रहा हूं तब भी, जिस क्षण, चौबीस घंटे तुम आ सकते हो। अब तुम्हें किसी से पूछने की जरूरत नहीं है, कोई आज्ञा लेने की जरूरत नहीं है।

और हार्टमेन ने उसके चरण छुए और कहा कि अब तो जरूरत भी न रही। यह सालभर दूर रखकर तुमने मुझे बदल दिया। यह कहा नहीं जा सकता, लेकिन यह मुश्किल मामला है। हार्टमेन सोच सकता था, यह भी क्या बात हुई, एक प्रश्न का

उत्तर नहीं मिला, कुछ चर्चा नहीं, कुछ बात नहीं, यह क्या एक साल! दिन दो दिन की बात भी नहीं है। लेकिन गुरु को चुनने का मतलब है, पूरा चुनना, या पूरा छोड़ देना। फिर गुरु क्या करता है, वह तभी कर सकता है जब इतना समर्पण हो, अन्यथा नहीं कर सकता है।

एक मित्र ने पूछा है कि आप महावीर, बुद्ध, लाओत्से पर न बोलकर अपनी निजी और आंतरिक बातें बतायें। और यह भी लिखा है—बिना दस्तखत किये—कि आपको मैं इतना कायर नहीं मानता हूं कि आप अपनी निजी बातें नहीं बतायेंगे।

आप तो नहीं मानते हैं मुझे इतना कायर, लेकिन मैं आपको इतना बहादुर नहीं मानता हूं कि मेरी निजी बातें सुन पायेंगे। और जिस दिन तैयारी हो जाये निजी बातें सुनने की, उस दिन मेरे पास आ जाना। क्योंकि निजी बातें निजता में ही कही जा सकती हैं, पब्लिक में नहीं। मगर उसके पहले कसौटी से गुजरना पड़ेगा। बहादुरी की मैं जांच कर लूंगा। चूंकि क्या मैं आपको दूं, यह आपके पात्र की क्षमता पर निर्भर है।

मेरे निजी जीवन में कुछ भी छिपाने जैसा नहीं है, लेकिन आप देख भी पायेंगे, समझ भी पायेंगे, उसका उपयोग भी कर पायेंगे, आपके जीवन में वह सृजनात्मक भी होगा, सहयोगी भी होगा, यह सोचना जरूरी है। क्योंकि जो भी मैं कह रहा हूं, वह आपके काम पड़ सके, तो ही उसका कोई अर्थ है।

तो जिसकी भी तैयारी हो मेरे निजी जीवन में उतरने की, वह जरूर मेरे पास आ जाये। लेकिन उसे तैयारी से गुजरना पड़ेगा, यह खयाल रखकर आये। अभी तो दस्तखत करने की भी हिम्मत नहीं है।

अब हम सूत्र लें।

'क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारों काले कुत्सित कषाय पुनर्जन्मरूपी संसार वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं।'

'चावच और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समस्त पृथ्वी भी लोभी मनुष्य को तृप्त कर सकने में असमर्थ है, यह जानकर संयम का आचरण करना चाहिये।'

चार कषाय महावीर ने कहे—क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चारों शब्द हमारे बहुत परिचित हैं—शब्द। ये चारों बिलकुल अपरिचित हैं। शब्द के परिचय को हम भूल से सत्य का परिचय समझ लेते हैं। हम सभी को मालूम है, क्रोध का क्या मतलब है? और क्रोध से हमारा मिलना हुआ नहीं। हालांकि क्रोध हम पर हुआ है बहुत बार, हमसे हुआ है। क्रोध में हम डूबे हैं। लेकिन क्रोध इतना डुबा लेता है कि जो देखने की तटस्थता चाहिए, जो क्रोध को समझने की दूरी चाहिए वह नहीं बचती। इसलिए क्रोध हमसे हुआ है लेकिन क्रोध को हमने जाना नहीं। हमारे क्रोध को दूसरों ने जाना होगा, हमने नहीं जाना। इसलिए मजे की घटना घटती है। क्रोधी आदमी भी अपने को क्रोधी नहीं समझता। सारी दुनिया जानती है कि वह क्रोधी है, लेकिन वह भर नहीं जानता है कि मैं क्रोधी हूं। क्या मामला है? सब देख लेते हैं क्रोध को, वह खुद क्यों नहीं देख पाता?

असल में क्रोध की घटना में वह मौजूद ही नहीं रहता। वह जो आब्जर्वर है, निरीक्षक है, वह डूब जाता है। उसका कोई पता ही नहीं रहता। बाकी तो कोई क्रोध में नहीं है इसलिए वे लोग देख लेते हैं कि यह आदमी क्रोध में है। आपको पता नहीं चलता। यह बात इतनी भी दब सकती है गहन, कि कई तथ्य जो वैज्ञानिक हो सकते थे वे भी खो गये हैं।

मैं कल ही एक लियोनल टाइगर की एक किताब देख रहा था। उसने बड़ी महत्वपूर्ण खोज की है। उसने काम किया है स्त्रियों के मासिक-धर्म पर। तो वह कहता है कि जब मासिक-धर्म के चार-पांच दिन होते हैं, तब स्त्रियां ज्यादा क्रोधी होती हैं। ज्यादा चिड़चिड़ी होती हैं, ज्यादा परेशान होती हैं, ज्यादा हिंसक हो जाती हैं। उनकी सारी वृत्तियां निम्न हो जाती हैं। न केवल इतना, बल्कि उन पांच दिनों में उनका बौद्धिक स्तर भी गिर जाता है, उनकी इन्टैलिजेंस भी गिर जाती है। उनका आई-क्यू, उनका जो बुद्धि-माप है वह नीचे गिर जाता है, पंद्रह प्रतिशत।

इसलिए परीक्षा के समय स्त्रियों के लिए विशेष सुविधा होनी चाहिए। मेंसेस में किसी लड़की की परीक्षा नहीं होनी चाहिए, अकारण पिछड़ जायेगी। ठीक पीरिएड के मध्य में, पिछले पीरिएड और दूसरे पीरिएड के ठीक बीच में चौदह दिन के बाद स्त्रियों के पास सबसे ज्यादा प्रसन्न भाव होता है और उस समय वे कम क्रोधी होती हैं, कम चिड़चिड़ी होती हैं। और उस समय उनका बुद्धि-माप पंद्रह प्रतिशत बढ़ जाता है। इसलिए अगर मध्य पीरिएड में लड़की हो और लड़के के साथ परीक्षा

दे तो वह फायदे में रहेगी, पंद्रह प्रतिशत ज्यादा।

अगर मेंसेस में हो तो नुकसान में रहेगी पंद्रह प्रतिशत कम। और दोनों मिलकर तीस प्रतिशत का फर्क हो जाता है। जो कि बड़ा फर्क है।

इस पर जितना काम चलता है उससे धीरे-धीरे यह भी खयाल में आना शुरू हुआ। लेकिन इतने हजार साल लग गये और खयाल में नहीं आया कि स्त्री और पुरुष दोनों एक ही जाति के पशु हैं। तो स्त्रियों में ही मासिक-धर्म हो, यह आवश्यक नहीं है, कहीं न कहीं पुरुष में भी मासिक धर्म जैसी कोई समान घटना होनी चाहिए। लेकिन पुरुषों को अब तक खयाल नहीं आया। होनी चाहिए ही, क्योंकि दोनों की शरीर रचना एक ही ढांचे में होती है। दोनों की सारी व्यवस्था एक जैसी है। जो भेद है वह थोड़ा-सा ही भेद है, और वह भेद इतना है कि स्त्री ग्राहक है और पुरुष दाता है, जीवाणुओं के संबंध में। बाकी तो सारी बात एक है। तो स्त्री में अगर मासिक-धर्म जैसी कोई घटना घटती है तो पुरुष में भी घटनी चाहिए।

सौ वर्ष पहले एक आदमी ने इस संबंध में थोड़ी खोज-बीन की है, एक जर्मन सर्जन ने। और उसे शक हुआ कि पुरुष में भी मासिक-धर्म होता है। लेकिन चूंकि कोई बाच्हय घटना नहीं घटती रक्तस्राव की, इसलिए आदमी भूल गया है। तो उसने आदमी के क्रोध और चिड़चिड़ेपन के रिकार्ड बनाये और पाया कि हर अट्ठाइसवें दिन पुरुष भी चार-पांच दिन के लिए उसी तरह अस्त-व्यस्त होता हैं, जैसे स्त्री अस्त-व्यस्त होती है। और अभी, एक दूसरे विचारक ने एक नये विज्ञान को जन्म दे दिया है—पैट्रिक विनियम्स उसका नाम है, बायो डायनेमिक्स। और उसने समस्त रूप से वैज्ञानिक अर्थों में सिद्ध कर दिया है कि पुरुष का भी मेंसेस होता है। कोई बाहर घटना नहीं घटती, लेकिन भीतर वैसी ही घटना घटती है, जैसी स्त्री को घटती है। और उन चार-पांच दिनों में आप क्रोधी, चिड़चिड़े, परेशान, नीचे गिर जाते हैं चेतना में।

यह हर महीने हो रहा है। जिस दिन आदमी पैदा होता है, उसको पहला दिन समझ लें, तो उसके हिसाब से हर अट्ठाइसवें दिन का पूरा कलेंडर बना सकते हैं जीवन का। वह पहला दिन है, फिर हर अट्ठाइसवें दिन पुरुष का कलेंडर बन सकता है। और जब आपके कलेंडर में आपका मेंसेस आ जाये तो दूसरे को भी बता दें और खुद भी सावधान रहें। और आज नहीं कल, हमें स्त्री-पुरुष का विवाह करते वक्त ध्यान रखना चाहिए कि दोनों का मेंसेस साथ न पड़े। ऐसा लगता है स्त्री-पुरुषों को, पति-पत्नियों को देखकर कि बहुत मात्रा में साथ पड़ता होगा। क्योंकि दोनों का मेंसेस साथ पड़ जाये तो भारी उपद्रव और कलह होने वाली है।

यह इसलिए संभव हो सका कि आज तक खयाल नहीं आया कि पुरुष का भी मासिक-धर्म होता है, क्योंकि हम क्रोध से परिचित ही नहीं हैं, नहीं तो यह खयाल आ जाता। इसलिए मैं कह रहा हूं। अगर हम क्रोध की धारा का निरीक्षण करते तो हमको भी पता चल जायेगा कि हर महीने आपका बंधा हुआ दिन है, बंधा हुआ समय है जब आप ज्यादा क्रोधी होते हैं। और हर महीने आपके बंधे हुए दिन हैं, जब आप कम क्रोधी होते हैं। लेकिन यह तो बड़ी यांत्रिक बात हुई, यह तो आप मशीन की तरह घूम रहे हैं। आपकी मालकियत नहीं मालूम पड़ती।

जैसा क्रोध है, वैसा ही लोभ भी है, वैसी ही माया भी है, वैसा ही मोह भी है। उन सबमें आप बंधे हुए हैं। और यह जो बंधन हैं, यह बड़ा अदभुत है। आपको खयाल, सिर्फ भ्रम रहता है कि आप मालिक हैं।

अभी चूहों पर बहुत वैज्ञानिकों ने प्रयोग किये। छोटा-सा हामाच्न जो पुरुष में होता है, पुरुष चूहे में—जरा-सी मात्रा उसकी अगर मादा चूहे को इन्जेक्ट कर दी जाये, तो बड़ी हैरानी की बात है, मादा चुहिया जो है, वह पुरुष चूहे की तरह व्यवहार करना शुरू कर देती है। वही अकड़, वही चाल, जो पुरुष चूहे की होती है वही झगड़ालू वृत्ति, हमले का भाव, वह सब आ जाता है। इतना ही नहीं, पुरुष हामाच्न के इंजेक्शन के बाद मादा चुहिया जो है, पुरुष चुहिया पर चढ़कर संभोग करने की कोशिश करती है, जो कि वह कर नहीं सकती। पुरुष चूहों को स्त्री हामाच्न के इंजेक्शन देकर देखा गया, वे बिलकुल स्त्रैण हो जाते हैं, दब्बू हो जाते हैं, भागने लगते हैं, भयभीत हो जाते हैं और होने का कोई पता ही नहीं है। समय आपको क्षमा नहीं करता। समय आपको सुविधा नहीं देता। समय लौटकर नहीं आता। समय से आप कितनी ही प्रार्थना करें, कोई प्रार्थना नहीं सुनी जाती। समय और आपके बीच कोई भी संबंध नहीं है। मौत आ जाये द्वार पर और आप कहें कि एक घड़ी भर ठहर जा, अभी मुझे लड़के की शादी करनी है, कि अभी तो कुछ काम पूरा हुआ नहीं, मकान अधूरा

बना है।

एक बूढ़ी महिला संन्यास लेना चाहती थी, दो महीने पहले। उसकी बड़ी आकांक्षा थी संन्यास ले लेने की। मगर उसके बेटे खिलाफ थे कि संन्यास नहीं लेने देंगे। मैंने उसके एक बेटे को बुलाकर पूछा कि ठीक है, संन्यास मत लेने दो, क्योंकि बूढ़ी स्त्री है, तुम पर निर्भर है और इतना साहस भी उसका नहीं है। लेकिन कल अगर इसे मौत आ जाये तो तुम मौत से क्या कहोगे, कि नहीं मरने देंगे।

जैसे कि कोई भी उत्तर देता, बेटे ने उत्तर दिया। कहा कि मौत कब आयेगी, कब नहीं आयेगी, देखा जायेगा। मगर संन्यास नहीं लेने देंगे। और अभी दो महीने भी नहीं हुआ और वह स्त्री मर गयी। जिस दिन वह मर गयी, उसके बेटे की खबर आयी कि क्या आप आज्ञा देंगे, हम उसे गैरिक वस्त्रों में माला पहनाकर संन्यासी की तरह चिता पर चढ़ा दें!

'काल निर्दयी है।' लेकिन अब कोई अर्थ भी नहीं है, क्योंकि संन्यास कोई ऐसी बात नहीं है कि वह ऊपर से डाल दिया जाये। न जिन्दा पर डाला जा सकता है, न मुर्दा पर डाला जा सकता है। संन्यास लिया जाता है, दिया नहीं जा सकता। मरा आदमी कैसे संन्यास लेगा? दिया जा सके तो मरे को भी दिया जा सकता है।

संन्यास दिया जा ही नहीं सकता, लिया जा सकता है। इन्टेंशनल है, भीतर अभिप्राय है। वही कीमती है, बाहर की घटना का तो कोई मूल्य नहीं है। भीतर कोई लेना चाहता था। संसार से ऊबा था, संसार की व्यर्थता दिखायी पड़ी थी, किसी और आयाम में यात्रा करने की अभीप्सा जगी थी, वह थी बात। अब तो कोई अर्थ नहीं है, लेकिन अब ये बेटे अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो न समझा पाये, अपने मन को समझा रहे हैं। मौत को तो नहीं रोक सकते कि रुको, अभी हम न जाने देंगे। मां को रोक सकते थे। मां भी रुक गयी क्योंकि उसे भी मौत का साफ-साफ बोध नहीं था। नहीं तो रुकने का कोई कारण भी नहीं था। मां डरी कि बेटों के बिना कैसे जीयेगी! और अब, अब बेटों के बिना ही जीना पड़ेगा। अब इस लम्बे यात्रापथ पर बेटे दुबारा नहीं मिलेंगे। और मिल भी जायें तो पहचानेंगे नहीं।

हर छोटी चीज से कंपने लगते हैं।

क्या इसका यह अर्थ हुआ कि छोटे-छोटे हार्मोन इतने प्रभावी हैं और आपकी चेतना इतनी दीन है कि एक इंजेक्शन आपको स्त्री और पुरुष बना सकता है! और एक इंजेक्शन आपको बहादुर और कायर बना सकता है! तो फिर जिसको आप कहते हैं कि भयभीत है, कायर है, जिसको आप कहते हैं, बहादुर है, हिम्मतवर है, जिसको आप कहते हैं साहसी है, दुस्साहसी है, इनके बीच जो फर्क है, वह छोटे-से हार्मोन का है।

आमतौर से यही है बात। आपकी कुछ ग्रंथियां निकाल ली जायें, आप क्रोध नहीं कर पायेंगे। कुछ ग्रंथियां निकाल ली जायें, आपकी कामवासना तिरोहित हो जायेगी। तो क्या यह शरीर आप पर इतना हावी है और आपकी आत्मा की कोई स्वतंत्रता नहीं है?

इसीलिए महावीर इनको चार शत्रु कहते हैं, क्योंकि जब तक कोई इन चार के ऊपर न उठ जाये, तब तक उसको आत्मा का कोई अनुभव नहीं होता। जब तक क्रोध के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप क्रोध नहीं करते, और कामवासना के हार्मोन आपके भीतर मौजूद हैं और फिर भी आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हैं, लोभ की सारी की सारी रासायनिक प्रक्रिया भीतर है और फिर भी आप अलोभ को उपलब्ध हो जाते हैं, तभी आपको आत्मा का अनुभव होगा।

आत्मा का अर्थ है—शरीर के पार सत्ता का अनुभव।

लेकिन हम तो शरीर के पार होते ही नहीं, शरीर ही हमें चलाता है। कई बार ऐसा भी होता है कि आप सोचते हैं कि आप पार हो गये। सुबह उठते हैं, पत्नी कुछ बोल रही है कि बच्चे कुछ गड़बड़ कर रहे हैं कि नौकर कुछ उपद्रव कर रहा है और आप हंसते रहते हैं। तो आप सोचते हैं कि मैंने तो क्रोध पर विजय पा ली। यही घटना सांझ को घटती है तो आप विक्षिप्त हो जाते हैं। सुबह हार्मोन ताजे हैं, शरीर थका हुआ नहीं है। आप ज्यादा आश्वस्त हैं। सांझ थक गये हैं, हार्मोन टूट गये हैं, शक्ति क्षीण हो गयी है। सांझ आप वल्नरेबल हैं, ज्यादा खुले हैं। जरा-सी बात आपको पीड़ा और चोट पहुंचा जायेगी। तो सुबह जिसको आपने सह लिया, सांझ को नहीं सह पाते हैं। लेकिन सुबह भी आप आत्मा को नहीं पा गये थे, सुबह भी शरीर ही कारण था। सांझ भी शरीर ही कारण है।

आत्मा को पाने का अर्थ तो यह है कि शरीर कारण न रह जाये। आपके जीवन में ऐसे अनुभव शुरू हो जायें, जिनमें शरीर की रासायनिक प्रक्रियाओं का हाथ नहीं है, उनके पार। इसीलिए इन चार को शत्रु कहा है। और महावीर ने कहा है, इन चारों से ही हम पुनर्जन्म रूपी संसार के वृक्ष की जड़ों को सींचते रहते हैं। इन चारों से ही हम फिर से अपने जन्म को निर्मित करने का उपाय करते रहते हैं। जो इन चार में फंसा है, उसका अगला जन्म उसने बना ही लिया।

लोग मेरे पास आते हैं और कहते हैं, कैसे आवागमन से छुटकारा हो? छुटकारा भी मांगते हैं और जड़ों को अच्छी तरह पानी भी सींचते चले जाते हैं। इस वृक्ष से कैसे छुटकारा हो? सांझ को कहते हैं और सुबह वहीं पानी सींचते पाये जाते हैं। उनको पता ही नहीं कि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलत है। यही पूछें कि कैसे मैं अपने को वृक्ष को पानी देने से रोकूं। वृक्ष कैसे न हो, यह मत पूछें। क्योंकि अगर ध्यान आपने वृक्ष के पत्तों पर रखा और हाथ पानी देते रहे वृक्ष को—वृक्ष के साथ हम ऐसा नहीं करते, क्योंकि हमें पता है कि यह पानी देना और वृक्ष में पत्तों और फूलों का आना, एक ही क्रिया का अंग है।

आपको अपने जीवन वृक्ष का कोई पता नहीं है कि उसके साथ आप क्या कर रहे हैं। इधर कहे चले जाते हैं, दुख मुझे न हो, और सब तरह से दुख को सींचते हैं। हर उपाय करते हैं कि दुख कैसे हो और हर वक्त चिल्लाते रहते हैं कि दुख मुझे न हो। शायद आपको

जीवन वृक्ष आप खुद हैं, इसलिए अपनी जड़ों और अपने पत्तों को जोड़ नहीं पाते। समझ नहीं पाते कि क्या मामला है। जब दुख हो, तब दुख के पत्ते को पकड़कर पीछे उतरना चाहिए जड़ तक, कि कहां से दुख हुआ, और जड़ को काटने की चिंता करनी चाहिए।

इसलिए महावीर कहते हैं, ये चार हैं जड़ें—क्रोध, मान, माया, लोभ। चारों इतने अलग-अलग नहीं हैं, एक ही चीज के चार चेहरे हैं—एक ही चीज के, एक ही घटना के। बुद्ध ने उस घटना को नाम दिया है, जीवेषणा, लस्ट फार लाइफ।

अब यह बड़ी कठिन बात है। लोग कहते हैं, आवागमन हमारा कैसे रुके। पूछो, क्यों? किसलिए, आवागमन से दिक्कत क्या हो रही है आपको? चले जाओ मजे से, पैदा होते जाओ बार-बार, हर्ज क्या है?

नहीं, पैदा होने से उन्हें भी तकलीफ नहीं है। जीवन से उन्हें भी कोई कठिनाई नहीं है, लेकिन जीवन में दुख मिलता है, उससे कठिनाई है। दुख न हो और जीवन हो, दुख कट जाये और जीवन हो। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं जिसमें रातें न हों, दिन ही दिन हों। हम ऐसी दुनिया चाहते हैं, जहां जवानी ही जवानी हो, बुढ़ापा न हो। स्वास्थ्य हो, बीमारी न हो। मित्र ही मित्र हों, शत्रु न हों। प्रेम ही प्रेम हो, घृणा न हो।

इस दुनिया में एक हिस्सा काट देना चाहते हैं और एक को बचा लेना चाहते हैं। और मजा यह है कि वह दूसरा हिस्सा इसीलिए बचा हुआ है कि हम इस एक को बचाना चाहते हैं, हम चाहतें हैं दुनिया में मित्र ही मित्र हों। इसलिए शत्रु ही शत्रु हो जाते हैं। हम चाहते हैं, दुनिया में सुख ही सुख हों, इसलिए दुख ही दुख हो जाता है। सुख को बचाना चाहते हैं, दुख को हटाना चाहते हैं, लेकिन सुख जड़ है और दुख पत्ता है। जिसे हम बचाना चाहते हैं, उसी को बचाने में उसे बचा लेते हैं जिसे हम बचाना नहीं चाहते हैं, जिससे हम छूटना चाहते हैं।

आदमी जब कहता है, कि आवागमन से मुक्ति हो, तो वह यह नहीं कहता कि मैं समाप्त हो जाऊं। वह कहता है, मैं मोक्ष में रहूं, मैं स्वर्ग में रहूं। दुख न हो वहां दुख से छुटकारा हो जाये। तो बुद्ध ने कहा है, जीवेषणा, होने की वासना कि मैं रहूं, यही तुम्हारे समस्त दुखों का मूल है।

महावीर कहते हैं कि ये जो चार शत्रु हैं, ये भी जीवेषणा से पैदा होते हैं।

क्रोध क्यों आता है? जब कोई आपके जीवन में बाधा बनता है, तब। जब कोई आपको मिटाना चाहता है, या आपको लगता है कि कोई मिटाना चाहता है तब, जब आपको कोई बचाना चाहता है, तब आपको क्रोध नहीं आता।

अगर मैं एक छुरा लेकर आपके पास जाऊं तो आप डरेंगे। छुरे से नहीं डर रहे हैं आप, क्योंकि सर्जन उससे भी बड़ा छुरा

लेकर आपके पास आता है। तब आप निश्चिंत टेबलकि वृक्ष की जड़ों में पानी सींचना और वृक्ष के पत्तों का आना एक ही क्रिया के अंग हैं। यह एक ही बात है। कभी मत पूछें कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो, पूछें ही मत, यही पूछें कि क्रोध, माया, मोह और लोभ से कैसे छुटकारा हो। आवागमन से छुटकारा पूछने की बात ही गलएक ही गहरे में भय है, कहीं मैं न मिट जाऊं।

तो जहां लगता है कि कोई मुझे मिटाने आ रहा है, वहां क्रोध खड़ा होता है। जहां लगता है कि कोई मुझे बचाने आ रहा है, वहां मोह खड़ा होता है। जहां लगता है कि मैं बच न सकूंगा, तो बचाने की जो हम चेष्टा करते हैं, वह सब हमारा लोभ है। जब मुझे लगता है कि मैं अच्छी तरह बच गया हूं और अब मुझे कोई नहीं मिटा सकता, तो वह जो अहंकार पैदा होता है, वह हमारा मान है।

लेकिन ये चारों के चारों जीवेषणा के हिस्से हैं। यह चतुर्मूर्ति इनके भीतर जो छिपी है, वह है जीवेषणा। ये चारों चेहरे उसी के हैं। अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग चेहरे दिखायी पड़ते हैं, लेकिन भाव एक है कि मैं बचूं। तो जब तक जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह आदमी आत्मा को न पा सकेगा। इसे थोड़ा और हम समझ लें।

जो आदमी स्वयं को बचाना चाहता है, वह दूसरों को मिटाना चाहेगा। क्योंकि स्वयं को बचाने का दूसरे को मिटाये बिना कोई उपाय नहीं है। महावीर का अहिंसा पर इतना जोर इसीलिए है। वे कहते हैं, दूसरे को मिटाने की बात ही छोड़ दो, और ध्यान रखना, दूसरे को मिटाने की बात वही छोड़ सकता है, जो स्वयं को बचाने की बात छोड़ दे।

जब आप दूसरे को, किसी को भी नहीं मिटाना चाहते, तब एक बात पक्की हो गयी, कि आपको अपने को बचाने का कोई मोह नहीं है। अगर अपने को बचाने का कोई भाव नहीं बचा है, तो फिर कोई क्रोध नहीं है, फिर कोई मोह नहीं, कोई माया नहीं, कोई मान नहीं। इसका यह मतलब नहीं कि जो अपने को बचाने का भाव छोड़ देता है वह नहीं बचता है। मामला उल्टा है। जो नहीं बचाता अपने को, वही बचता है और जो बचाता है, वह बार-बार मरता है।

जीसस ने कहा है, 'जो बचायेगा वह मिटेगा, और जो अपने को खोने को तैयार है, उसको कोई भी मिटा नहीं सकता है।' लेकिन ऐसा मत सोचना कि अगर ऐसा है कि खोने की तैयारी से हम सदा के लिए बच जायेंगे, इसलिए हम खोने को तैयार हैं, तो आप न बचेंगे। आपका मनोभाव बचने के लिए ही है। वही वासना, जन्मों का कारण है।

कोई आपको जन्म देता नहीं, आप ही अपने को जन्म देते हैं। आप ही अपने पिता हैं, आप ही अपने माता हैं, आप ही अपने को जन्म दिये चले जाते हैं। यह जन्म का जो उपद्रव है, इसके कारण आप ही हैं। इसलिए तो मौत से इतनी घबराहट होती है, इतनी बेचैनी होती है। और मरते वक्त भी आदमी कहता है कि जन्म-मरण से छुटकारा हो जाये। लेकिन मतलब उसका इतना ही होता है कि मरण से छुटकारा हो जाये। जन्म तो वह भाषा की भूल से कह रहा है, फिर से सोचेगा तो नहीं कहेगा।

सोचें, जन्म से छुटकारा चाहते हैं? जीवन से छुटकारा चाहते हैं? जिस दिन आप जन्म से छुटकारा चाहते हैं, उस दिन मरण से छुटकारा हो जायेगा। हम सब मरण से छुटकारा चाहते हैं इसलिए नये जन्म का सूत्रपात हो जाता है। हम छोर से बचना चाहते हैं, जड़ से नहीं। मरण है पत्ता आखिरी, जन्म है जड़। तो जड़ ही काटनी होगी।

संन्यास का अर्थ है—जड़ को काटना। संसार का अर्थ है—पत्तों को काटना, काटते दोनों हैं। संन्यासी बुद्धिमान है। वह वहां से काटता है जहां से काटना चाहिए। संसारी मूढ़ है। वह वहां काटता है, जहां काटने का कोई अर्थ नहीं है, बल्कि खतरा है। क्योंकि पत्ते समझते हैं कि कलम की जा रही है। तो एक पत्ता काटो, चार निकल आते हैं।

महावीर कहते हैं कि इन जड़ों को सींचते रहने से तो होगा बार-बार जन्म, बार-बार मृत्यु। और घूमोगे चक्र में, नीचे-ऊपर, सुख में, दुख में, हार में, जीत में, और यह चक्र है अनन्त। और ऐसा मत सोचना कि दुख इसलिए है कि मुझे अभी अभाव है। सब मिल जाये तो दुख न रहेगा।

तो महावीर कहते हैं कि तुम्हें अगर सभी मिल जाये स्वर्ण पृथ्वी का, सभी मिल जाये धन-धान्य, हो जाये समस्त पृथ्वी तुम्हारी दास तो भी तुम्हें तृप्त करने में असमर्थ है।

तृप्ति का संबंध क्या तुम्हारे पास है, इससे नहीं है, क्या तुम हो, इससे है। और जो अतृप्त है उसके पास कुछ भी हो तो

अतृप्त होगा। और जो तृप्त है उसके पास कुछ हो या कुछ भी न हो तो भी तृप्त होगा।

तृप्ति या अतृप्ति अंतर्दशाएं हैं। बाहर की वस्तुओं से उनका कोई भी संबंध नहीं है। इसलिए महावीर कहते हैं, सब तुम्हारे पास हो जाये तो भी तुम तृप्त न होओगे। क्योंकि न हमने सिकन्दर को तृप्त देखा, न हमने नेपोलियन को तृप्त देखा, न राकफेलर तृप्त है, न मार्गन तृप्त है, न कार्नेगी तृप्त है। सब उनके पास है, जो हो सकता है। शायद नेपोलियन के पास भी नहीं था जो राकफेलर के पास है। लेकिन तृप्ति? तृप्ति का कोई पता नहीं।

और महावीर जो कहते हैं, अनुभव से कहते हैं। उनके पास भी सब था। इसलिए यह कोई सड़क पर खड़े भिखारी की बात नहीं है। सड़क पर खड़े भिखारी की बात में तो धोखा भी हो सकता है, सांत्वना भी हो सकती है। अकसर होती है। सड़क का भिखारी कहता है, क्या मिलेगा यदि सारी पृथ्वी भी मिल जाये? उसका यह मतलब नहीं कि वह सारी पृथ्वी नहीं पाना चाहता। वह यह कह रहा है कि हम पाने योग्य ही नहीं मानते। इसलिए नहीं कि पाने योग्य नहीं मानता, इसलिए कि जानता है कि पाने योग्य मानो तो भी कोई सार नहीं है। छाती पीटनी पड़ेगी, रोना पड़ेगा। होनेवाला नहीं है। अंगूर खट्टे हैं, क्योंकि दूर हैं।

भिखारी भी कहता है, अपने मन को समझाने के लिए कहता है। इसलिए अध्यात्म के इतिहास में एक बड़ी विचित्र घटना घटती है। सम्राट भी कहते हैं, भिखारी भी कहते हैं। वचन एक ही हो सकता है, अर्थ एक ही नहीं होते। जब सम्राट कहते हैं, कि नहीं है कोई सार सारी पृथ्वी में, तो यह एक अनुभव का वचन है। और जब भिखारी कहता है तब अकसर, हमेशा नहीं, अकसर अनुभव का वचन नहीं, सांत्वना की चेष्टा है। समझाना है अपने को, बेकार है। कुछ होगा नहीं। तृप्ति होनेवाली नहीं, पूरी पृथ्वी मिल जाये तो भी। यह अपने को संतुष्ट करने की चेष्टा है।

महावीर जो कह रहे हैं, यह संतुष्ट करने की चेष्टा नहीं है, यह असंतोष के गहन अनुभव का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, सब भी तुम्हें मिल जाये, तो भी कुछ न होगा। क्योंकि सबके मिलने से भी तुम, तुमको नहीं मिलोगे। सब भी मिल जाये, पूरी पृथ्वी भी मिल जाये तो अपने से मिलन नहीं होगा।

और तृप्ति है अपने से मिलन का नाम। दूसरे से मिलने में सिवाय अतृप्ति के कुछ भी पैदा नहीं होता। वह धन हो, कि व्यक्ति हो, कि कुछ भी हो, दूसरे से मिलन, अतृप्ति का ही जन्मदाता है। और अतृप्ति होगी, और मिलने की आकांक्षा होगी, और भ्रम पैदा होगा कि और मिल जाये तो शायद सब ठीक हो जाये।

अपने से ही मिलने पर तृप्ति होती है, क्योंकि फिर खोजने को कुछ भी नहीं रह जाता। लेकिन अपने से वह मिलता है, जो जीवेषणा छोड़ देता है। अपने से वह मिलता है जो काम, क्रोध, लोभ, मोह के पागलपन को छोड़ देता है। क्योंकि यह पागलपन दूसरे में ही उलझाये रखते हैं। यह अपने पास आने ही नहीं देते।

क्रोध का मतलब है—दौड़ गये आग में दूसरे की तरफ। अक्रोध का अर्थ है—लौट आये आग से अपनी तरफ। मोह का अर्थ है—जुड़ गये दूसरे से पागल की तरह। अमोह का अर्थ है, लौट आये बुद्धिमान की तरह, अपनी तरफ। अहंकार का अर्थ है—दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। पागलपन है, क्योंकि सब दूसरे भी इसी कोशिश में लगे हैं। मान अहंकार छोड़ देने का अर्थ है, अपनी ही आंख में अपने को देखने की चेष्टा, आत्मदर्शन। अहंकार का अर्थ है—दूसरे की आंखों में दिखने की चेष्टा। निर-अहंकार का अर्थ है—अपना दर्शन। अपनी आंखों में अपने को देखने की चेष्टा। अपने को मैं देख लूं, अपने को मैं पा लूं, अपने साथ मैं हो जाऊं, अपने में मैं जी लूं, तो है परम तृप्ति। दूसरे में मैं दौड़ता रहूं, दौड़ता रहूं, दौड़ है जरूर, पहुंचना बिलकुल नहीं है। यात्रा बहुत होती है, मतलब कुछ नहीं निकलता।

इसलिए महावीर कहते हैं कि इन चार को ठीक से पहचान लेना। और जब ये चार तुम्हें पकड़ें, तो एक बात का ध्यान रखना, स्मरण रखना कि समस्त पृथ्वी को पा लेने पर भी कुछ होता नहीं है।

'जानकर संयम का आचरण करना।'

संयम का क्या अर्थ है? संयम का अर्थ है, यह जो चार पगलपन हैं हमारे बाहर ले जानेवाले, इनसे बचना। संयम का अर्थ है सन्तुलन। क्रोध में सन्तुलन खो जाता है। आप वह करते हैं जो नहीं करना चाहते थे। वह करते हैं जो नहीं कर सकते थे, वह भी कर

लेते हैं। लोभ में संतुलन टूट जाता है। मोह में ऐसी बातें निकल जाती हैं, संतुलन छूट जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था, और उसने कहा, 'अगर तुमने मुझसे विवाह न किया, तो पक्का जान रखो, आत्महत्या कर लूंगा।' उस स्त्री ने पूछा, 'सच?' वह डर गयी, 'सच आत्महत्या कर लोगे?' मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा—दिस हैज बीन माई यूजुअल प्रोसीजर। यह मैं सदा ऐसा ही करता रहा हूं। जब भी किसी स्त्री के प्रेम में पड़ता हूं, तो सदा यही करता हूं, आत्महत्या!'

जब आप भी प्रेम में होते हैं तो आप ऐसी बातें कहते हैं, जो आप न करते हैं, न कर सकते हैं। वह पागलपन है—एक हारमोनल डिसीज। आपके भीतर ऐसे रासायनिक तत्व दौड़ रहे हैं कि अब आप होश में नहीं हैं। जो आप कह रहे हैं, उसका कोई मतलब नहीं है ज्यादा।

मुल्ला नसरुद्दीन अपनी प्रेयसी से कहता है कि कल तो मैं आऊंगा। न पहाड़ मुझे रोक सकते हैं, न आग की वर्षा। भगवान भी बीच में आ जाये, तो मुझे रोक नहीं सकता। फिर जाते वक्त कहता है कि अगर पानी न गिरा तो पक्का आऊंगा।

अपनी एक प्रेयसी से बिदा ले रहा है। बिदा लेते वक्त उससे कहता है, तेरे बिना मैं जी न सकूंगा। तुझ से ज्यादा सुंदर स्त्री इस पृथ्वी पर कोई भी नहीं है। शरीर ही जा रहा है, आत्मा यहीं छोड़े जा रहा हूं। फिर सीढ़ियां उतरते कहता है; लेकिन कुछ ज्यादा इसका खयाल मत करना, ऐसा मैं बहुत स्त्रियों से पहले भी कह चुका हूं, आगे भी कहूंगा।

जब आप मोह में हैं—जिसको आप प्रेम कहते हैं, और प्रेम शब्द को खराब करते हैं—तब आप जो बोल रहे हैं, वह बेहोशी है। जब आप क्रोध में हैं, तब आप जो कह रहे हैं, वह भी बेहोशी है।

संयम का अर्थ है—होश। ये बेहोशियां न पकड़ें, आदमी संतुलित हो जाये, संयमी हो जाये, अपने में खड़ा हो जाये। ऐसी बातें न करे, ऐसा व्यवहार न करे, ऐसा जीवन चेतना का, समय का उपयोग न करे, जिसके लिए वह खुद भी होश में आने पर कहेगा, पागलपन था।

इसलिए सभी बूढ़े जवानों पर नाराज दिखायी पड़ते हैं। इसका और कोई कारण नहीं है, अपनी जवानी का दुख। सभी बूढ़े जवानों को शिक्षा देते दिखायी पड़ते हैं। असल में अगर उनको मौका मिलता अपनी जवानी को शिक्षा देने का, जो किसी को मिलता नहीं, वह दूसरों पर निकाल रहे हैं। लेकिन वे भूल कर रहे हैं। उनके मां-बाप भी उनको ऐसी शिक्षा दिये थे, कोई कभी सुनता नहीं। जवानों को बड़ा गुस्सा आता है कि क्या बकवास लगा रखी है, लेकिन बूढ़े बेचारे अनुभव से कह रहे हैं। उन्होंने ये दुख उठा लिए हैं और ये पागलपन कर लिए हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है एक बगीचे की बेंच पर अपनी पत्नी के साथ। सांझ हो गयी है। वृक्षों की छाया में कोई नया युगल, एक नया युवक और नयी युवती प्रेम की बातें कर रहे हैं। पत्नी बेचैन हो गयी है। आखिर पत्नी ने मुल्ला से कहा कि ऐसा मालूम पड़ता है कि यह लड़का और यह लड़की शादी करने की तैयारी कर रहे हैं। तुम जाकर कुछ रोकने की कोशिश करो। जरा खांसो खंखारो।

मुल्ला ने कहा, 'मुझको किसने रोका था? सब अपने अनुभव से सीखते हैं, बीच में पड़ने की कोई भी जरूरत नहीं है।'

वह जब काम पकड़े, क्रोध पकड़े, मोह पकड़े, मान पकड़े तब खयाल करना, कितने अनुभव से सीखिएगा! काफी अनुभव नहीं हो सका है, नहीं हो चुका है। कितना अनुभव हो चुका है? पुनरुक्ति कर रहे हैं। हां, एक अनुभव जरूरी है, लेकिन पुनरुक्ति मूढ़ता है। एक भूल आवश्यक है, लेकिन उसी को दुबारा दोहराना मूढ़ता है।

मूढ़ वे नहीं हैं, जो भूलें करते हैं, और बुद्धिमान वे नहीं हैं, जो भूलें नहीं करते। बुद्धिमान वे हैं जो एक ही भूल दुबारा नहीं करते। मूढ़ वे हैं जो एक ही भूल को अभ्यास से बार-बार करते हैं।

तो ये चार जब पकड़ें तो थोड़ी बुद्धिमानी बरतना और जरा होश रखना कि बहुत बार यह हो चुका है। क्या है परिणाम? क्या है निष्पत्ति? और अगर कोई परिणाम, कोई निष्पत्ति न दिखायी पड़े तो संयम रखना। ठहराना अपने को, खड़े हो जाना, मत दौड़ पड़ना पागल की तरह। जो इन विक्षिप्तताओं से अपने को रोक लेता है, वह धीरे-धीरे उसको जान लेता

है, जो विक्षिप्तताओं के पार है। उसका नाम ही आत्मा है।

आज इतना ही।
पांच मिनट रुकें, कीर्तन करें और फिर जायें।
अकेले ही है भोगना
छठवां प्रवचन

दिनांक 18 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई
अशरण-सूत्र
जमिणं जगई पूढ़ो जगा,
कम्मेहिं लुप्पन्ति पाणिणो।
सयमेव कडेहि गाहई,
नो तस्स मुच्चेज्ज पुट्ठयं।।
न तस्य दुक्खं विभयन्ति नाइओ,
न भित्तवग्गा न सुया न बंधवा।
एक्को सयं पच्चणुहोई दुक्खं,
कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं।।

संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं हो सकता।
पापी जीव के दुख को न जातिवाले बंटा सकते हैं, न मित्र वर्ग, न पुत्र, और न भाई-बन्धु। जब दुख आ पड़ता है, तब वह अकेला ही उसे भोगता है। क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के ही पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।
पहले कुछ प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है—कल आपने समझाया कि मनुष्य की जीवेषणा ही उसके पुनर्जन्म को, संसार के दुख-चक्र को चलाये रखने का कारण है। लेकिन आप हमेशा कहते हैं कि 'जीवन ही है परमात्मा' और आपकी पूरी देशना जीवन स्वीकार पर केंद्रित है। जीवेषणा का दुख मूल कारण है, ऐसा कहना जीवन-निषेधक लगता है।
जीवेषणा है कल, भविष्य में, और जीवन है अभी और यहीं। जो जीवेषणा से घिरा है वह जीवन से वंचित रह जाता है। और जिसे जीवन को जानना हो उसे जीवेषणा छोड़ देनी पड़ती है। इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
वासना कभी भी वर्तमान में नहीं होती, हमेशा भविष्य में होती है। और अस्तित्व सदा वर्तमान में होता है। आपका होना तो सदा होता है, अभी और यहीं। लेकिन आपकी वासना सदा होती है कहीं और, कहीं दूर। आप हैं अभी और यहीं, और आपका मन है कहीं और। आपकी आकांक्षा, अभीप्सा, वासना सदा भविष्य में है। भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है, सिवाय आपकी वासना को छोड़कर। भविष्य है ही आपकी वासना का विस्तार। अतीत है, आपकी स्मृतियों का संग्रह, भविष्य है आपकी वासनाओं का विस्तार। समय तो सदा वर्तमान है।
हम आमतौर से समय का विभाजन करते हैं—वर्तमान, अतीत, भविष्य—तीन टुकड़ों में तोड़ देते हैं समय को, वह भ्रांत है। अतीत और भविष्य समय के खण्ड नहीं हैं। अतीत है हमारी स्मृति और भविष्य है हमारी वासना। समय तो सदा वर्तमान है। समय तो सदा अभी है। समय के तीन टुकड़े नहीं हैं, समय तो एक अखण्ड धारा है, जो अभी है।
साधारणतः हम कहते हैं, समय बीत जाता है। ज्यादा अच्छा हो कहना कि हम बीत जाते हैं। समय को आपने कभी बीतते

देखा है? कभी अतीत से आपका मिलना हुआ है? कभी भविष्य से आपकी मुलाकात हुई है? जब भी मिलन होता है, वर्तमान से ही होता है। लेकिन कभी आप बच्चे थे, अब आप जवान हैं—आप बीत गये। अभी आप जवान हैं, कल आप बूढ़े हो जायेंगे, और भी बीत जायेंगे। कभी पैदा हुए थे, कभी मर जायेंगे। कभी भरे थे, कभी चुक जायेंगे।

आदमी बीतता है। समय नहीं बीतता। हम खर्च होते हैं, समय खर्च नहीं होता। घड़ी चलकर यह नहीं बताती कि समय चल रहा है। घड़ी चलकर यह बताती है कि आप चूक रहे हैं, आप समाप्त हो रहे हैं। घड़ी आपके संबंध में कुछ बताती है, समय के संबंध में कुछ भी नहीं।

अगर इसे ठीक से समझ लें तो खयाल में आ जायेगा कि जीवेषणा और जीवन में क्या फर्क है। जीवेषणा का मतलब है, कल जीऊंगा। मुझे कल चाहिए जीने के लिए। आज नहीं जी सकता हूं। आज जो भी है, व्यर्थ है। जो भी सार्थक है, वह कल होगा। जो भी सुन्दर है, जो भी सुखद है, वह कल में छिपा है। जो भी दुखद है, अप्रीतिकर है, वह आज में प्रगट हुआ है। लेकिन कल तो कभी आता नहीं, जब भी आता है, आज ही आता है। कल भी आज ही आयेगा। और आज सदा व्यर्थ मालूम पड़ता है, और कल सदा सपनों से भरा मालूम पड़ता है।

तो हम ऐसे जीवन को स्थगित करते हैं। हम कहते हैं, कल जी लेंगे। आज तो जीने में असमर्थ पाते हैं अपने को, आज तो जीवन से जुड़ने की कला नहीं जानते, आज तो जीवन में डूबने और सराबोर होने का रास्ता नहीं जानते, आज तो जीवन ऐसे ही बीत जाता है; कल जी लेंगे, इस आशा में, इस भरोसे में आज को हम बिता देते हैं। लेकिन कल कभी आता नहीं, कल फिर आज आ जाता है। उस आज को भी हम वही करेंगे जो हमने आज किया, आज के साथ। कल फिर हम वही करेंगे। फिर हम आगे, कल पर टाल देंगे।

ऐसे आदमी टालता चला जाता है। मौत जब आती है, तो हमें जो दुख और पीड़ा होती है, वह मृत्यु की नहीं है। जो असली पीड़ा है, वह कल के समाप्त हो जाने की है। मौत जब द्वार पर खड़ी हो जाती है तो आज ही बचता है, कल नहीं बचता। मौत आपको नहीं मारती, भविष्य को मार देती है। मौत आपका अन्त नहीं है, भविष्य की समाप्ति है। अब आप अपनी वासना को आगे नहीं फैला सकते, अब कोई कल नहीं है। वह कल कभी भी नहीं था, लेकिन जो आपको जिन्दगी न बता सकी वह आपको मौत बताती है कि अब कल नहीं है। तब दीवार के किनारे आप अटके खड़े हो गये, अब यही क्षण बचा। अब क्या करें? जीवनभर की आदत है। आज तो जी नहीं सकते, कल ही जी सकते हैं। अब क्या करें?

इसलिए मौत की दीवार से टकराते लोग स्वर्ग की, मोक्ष की, पुनर्जन्म की भाषा में सोचने लगते हैं। उसका मतलब? अब वह कल को फिर फैला रहे हैं। अब वह यह कह रहे हैं, मरने के बाद भी शरीर ही मरेगा, आत्मा तो रहेगी। हम फिर जियेंगे, भविष्य में जियेंगे। उसका यह मतलब नहीं है कि आत्मा मर जाती है। लेकिन जितने लोग यह सोचते हैं कि आत्मा रहेगी, उनमें से शायद ही किसी को पता है, आत्मा के रहने का। उनके लिए यह फिर एक ट्रिक, एक तरकीब है मन की, वे फिर भविष्य को निर्मित कर रहे हैं।

एक बात तय है कि हम आज जीना नहीं जानते। वही अधर्म है। पर हम कैसे आज जीना जानेंगे? एक ही उपाय है कि हम कल की आशा में न जीयें, और आज चेष्टा करें जीने की, अभी। यह जो समय हमारे साथ अभी जुड़ा है, इसमें ही हम प्रवेश कर जायें, इस क्षण में हम उतर जायें।

जो आदमी बुद्धिमान है, वह ऐसा मानकर चलता है कि दूसरे क्षण मौत है। है भी। एक क्षण मेरे हाथ में है, दूसरे क्षण का कोई भरोसा नहीं। इस क्षण का मैं क्या उपयोग करूं, इस क्षण को मैं कैसे उसकी परिपूर्णता में निचोड़ लूं, कैसे इस क्षण को मैं पूरा जी लूं, कैसे यह क्षण व्यर्थ न चला जाये? ऐसी चिंता है बुद्धिमान की।

बुद्धिहीन की चिंता यह है कि इस क्षण को अगले क्षण के विचार में खो दूं, अगले क्षण को और अगले क्षण के विचार में खो दूंगा। ऐसे पूरे जीवन भ्रम होगा कि जीया, और जीऊंगा बिलकुल भी नहीं। हम सिर्फ पोस्टपोन करते हैं, स्थगित करते हैं—कलकलकल। एक दिन पाते हैं, मौत आ गयी। अब आगे कोई कल नहीं। तब छाती पर धक्का लगता है कि पूरा अवसर व्यर्थ खो गया।

जीवेषणा का अर्थ है, जीवन चूकने की तरकीब। इसलिए जीवन तो प्रभु है, जीवेषणा संसार है। जीवन तो धर्म है,

जीवेषणा पाप है। क्या यह नहीं हो सकता कि हम इस क्षण से ही जुड़ जायें, डूब जायें, इसमें ही लीन और एक हो जायें? अगला क्षण भी आयेगा। लेकिन जो व्यक्ति इस क्षण में डुबकी लगाने में समर्थ है, वह अगले क्षण में भी डुबकी लगा लेगा।

जीसस ने अपने शिष्यों को कहा है, देखो! खेतों में खिले हुए लिली के फूलों को, वे कल की चिन्ता नहीं करते। वे अभी और यहीं खिल गये हैं। ऐसे ही तुम भी हो जाओ। डू नाट थिंक आफ टुमारो। कल की मत सोचो। लिली का फूल भी अगर कल की सोच सके, अगर किसी तरकीब से हम उसमें भी जीवेषणा पैदा कर दें, तो अभी कुम्हला जायेगा। आदमी का कुम्हलाना कल की चिन्ता का परिणाम है। बच्चे फूल की तरह खिले मालूम पड़ते हैं। क्या है कारण, क्या है राज! बच्चों के लिए अभी जीवेषणा नहीं है, जीवन ही है। अभी वे खेल रहे हैं, तो जैसे यहीं सब समाप्त हो गया, इसी खेल में सब पूरा है। इस खेल में वे अपनी समग्र आत्मा से उतर गये हैं, कल नहीं है। जिस दिन बच्चा कल की सोचने लगता है, समझना कि वह बूढ़ा होना शुरू हो गया।

जब तक बच्चा आज में जीता है, अभी में जीता है, तब तक समझना, अभी वह बचपन का सौंदर्य है। जिस दिन वह कल की सोचने लगे, समझो कि बुढ़ापे ने उसे पकड़ लिया। अब दुबारा बचपन बहुत मुश्किल हो जायेगा।

जीसस ने कहा है, वही मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करेंगे, जो बच्चों की भांति हैं। बच्चों की भांति होने का एक ही अर्थ है कि जो अभी और यहीं जीने में समर्थ हैं, वे स्वर्ग में प्रवेश कर जायेंगे। स्वर्ग कहीं और नहीं है, इसी क्षण में है। नरक कहीं और नहीं है, स्थगित जीवन में है, कल में है। अस्तित्व पास खड़ा है।

स्वामी राम एक कहानी कहा करते थे, वे कहते कि एक प्रेमी दूर चला गया। जो समय दिया था, नहीं लौट सका। पत्र उसके आते रहे, आऊंगा, जल्दी आता हूं, जल्दी आता हूं। वह टालता रहा आना। फिर प्रेयसी थक गयी प्रतीक्षा करते-करते और एक दिन उसके द्वार पर पहुंच गयी। सांझ हो गयी थी, अंधेरा उतर रहा था, छोटा सा दीया जलाकर वह अपने कमरे में बैठकर कुछ लिख रहा था। प्रेयसी ने बाधा न डालनी उचित समझी। वह सामने बैठ गयी। वह पत्र लिखता रहा—वह पत्र ही लिख रहा था। इसी प्रेयसी को लिख रहा था!

प्रेमियों के पत्र, उनका अंत नहीं आता। वह लम्बा होता चला गया। रात आगे बढ़ती चली गयी। उसने आंख भी न उठायी, आंख से आंसू बह रहे हैं। और वह पत्र लिख रहा है, और फिर समझा रहा है कि आऊंगा, जल्दी आऊंगा। अब ज्यादा देर नहीं है। और जिसके लिए पत्र लिख रहा है, वह सामने बैठी है। पर आंसुओं से धूमिल आंखें, पत्र में लीन उसका मन, भविष्य में डूबी हुई उसकी वासना, जो मौजूद है उसे नहीं देख पा रहा है।

फिर आधी रात गये उसका पत्र पूरा हुआ। आंखें उसने ऊपर उठायीं, भरोसा न आया। जिस दिन आप भी आंखें उठायेंगे भरोसा न आयेगा कि जीवन सामने ही बैठा है। वह घबरा गया। घबराकर उसने पूछा। अभी यही सोच रहा था कि कब देखूंगा अपनी प्रेयसी को, कब होंगे दर्शन? और अब दर्शन सामने हो गये हैं तो वह घबरा गया। समझा कि कोई भूत है, प्रेत है। घबराकर जोर से पूछा, कौन है तू?

उसकी प्रेयसी ने कहा, 'क्या मुझे भूल ही गये? मैं बड़ी देर से आकर बैठी हूं। तुम लिखने में लीन थे, सोचा, बाधा न डालूं।'

उसने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, 'मैं तुझे ही पत्र लिखता था।'

हम सब भी, जिसे पत्र लिख रहे हैं जिस जीवन को, वह अभी और यहीं मौजूद है। जिसकी हम कामना कर रहे हैं, वह यहीं बिलकुल हाथ के पास निकट ही खड़ा है, लेकिन आंखें हमारी दूर भटक गयी हैं, कल्पना हमारी दूर चली गयी है, इसलिए पास नहीं देख पाती।

हम पास के लिए सभी अंधे हो गये हैं। दूर का हमें दिखायी पड़ता है, पास का हमें बिलकुल दिखायी नहीं पड़ता। पास देखने की क्षमता ही हमारी खो गयी है। अभ्यास ही हमारा दूर के देखने का है। जितना दूर हो, उतना साफ दिखायी पड़ता है। जितना पास हो उतना धुंधला हो जाता है।

जीवन है अभी और जीवेषणा है कल। जो अपने प्राणों को कल पर लगाये हुए है, उस विक्षिप्त चेतना का नाम जीवेषणा

है। जो जीवेषणा को छोड़ देता है और अभी जीता है, यहीं, कल जैसे मिट ही गया। समय समाप्त हुआ। यह क्षण ही सारा जीवन हो गया। वह व्यक्ति उस द्वार को खोल लेता है जो जीवन का द्वार है।

जीवेषणा का विरोध जीवन का विरोध नहीं है, जीवेषणा का विरोध जीवन का स्वीकार है। यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। क्योंकि पश्चिम के विचारकों को भी ऐसा लगा कि महावीर, बुद्ध, ये सब जीवन विरोधी हैं। इन सबकी चिन्तना लाइफ निगेटिव है। अलबर्ट श्वाइत्जर ने बहुत गहरी आलोचना की है, भारतीय चिंतन की, चिंतना की; समस्त भारतीय विचारधारा की। और कहा है, कि कितनी ही सुन्दर बातें उन्होंने कही हों, लेकिन जीवन निषेधक, लाइफ निगेटिव हैं। जीवन के दुश्मन हैं ये लोग।

और श्वाइत्जर विचारशील मनुष्यों में से एक है। उसके कहने में अर्थ है। वह भी यही समझा कि सब छोड़ दो। जीवन की कामना ही छोड़ दो, तब तो जीवन की दुश्मनी हो गयी, शत्रुता हो गयी। तो धर्म फिर जीवन का साथी न रहा। फिर तो ऐसा लगता है कि अधर्म ही जीवन का साथी है और धर्म मृत्यु का।

इसलिए श्वाइत्जर ने कहा है, बुद्ध और महावीर और इस तरह के सारे चिंतक मृत्युवादी हैं। और कहीं न कहीं शत्रु हैं वे जीवन के, और जीवन को उजाड़ डालना चाहते हैं, नष्ट कर देना चाहते हैं।

फिर फ्रायड ने एक बहुत महत्वपूर्ण खोज की है इस सदी की। इस सदी में मनुष्य के मन के संबंध में जो महत्वपूर्ण जानकारियां मिली हैं, उनमें बड़ी से बड़ी जानकारी फ्रायड की यह खोज है। फ्रायड ने पूरे जीवन, जीवन की कामना पर श्रम किया है। लिबिडो वह नाम देता था, वासना को, कामना को—यौन, सेक्स, लेकिन इनसे भी बेहतर शब्द उसने खोज रखा था, लिबिडो। उसे हम जीवेषणा कह सकते हैं।

सब आदमी जीवेषणा से चल रहे हैं, और जिस दिन जीवेषणा बुझ जायेगी, उसी दिन आदमी बुझ जायेगा। लेकिन जीवन के अन्त-अन्त में फ्रायड को लगा कि यह आधी ही बात है। आदमी में जीवन की इच्छा तो है ही, यह बड़ी प्रबल कामना है। लेकिन उसे लगा कि यह अधूरी बात है, इसका दूसरा छोर भी है, क्योंकि इस जगत में कोई भी सत्य बिना द्वंद्व के नहीं होता, डायलेक्टिकल होता है। जब जन्म होता है तो मृत्यु भी होती है। तो अगर जीवन की वासना गहरे में है तो कहीं न कहीं मृत्यु की वासना भी होनी चाहिए, अन्यथा आदमी मरेगा कैसे? अगर जीवन की वासना से जन्म होता है तो फिर मृत्यु की भी कोई गहरी छिपी कामना होनी चाहिए।

तो जीवन की वासना को फ्रायड ने कहा, लिबिडो, और मृत्यु की वासना को उसने एक नया नाम दिया, थानाटोस—मृत्यु की आकांक्षा। क्योंकि एक आदमी आत्महत्या भी कर लेता है। एक आदमी बूढ़ा होकर सोचने लगता है, जीवन व्यर्थ है, नहीं जीना है। सिकोड़ लेता है अपने को। एक घड़ी आ जाती है जब लगता है, अब नहीं जीना है। ऐसा नहीं कि किसी विषाद से आ जाती हो, किसी फ्रसट्रेशन से। नहीं, सारे जीवन को देखकर ही ऊब हो जाती है और आदमी सोच लेता है, बस ठीक है, देख लिया, जान लिया। पुनरुक्ति है, वही-वही है, बार-बार वही-वही है। उठो सुबह, सांझ सो जाओ। खाओ-पियो, लेकिन अर्थ क्या है?

एक दिन आदमी को लगता है कि वह सब बचपना था, जिसमें मैंने अर्थ समझा, अभिप्राय देखा, कुछ भी न था वहां, राख सब हो जाती है। नहीं, कि असफल हो गया आदमी, हार गया, इसलिए मरने की सोच रहा है, कुछ ऐसे लोग भी हैं, जो इसलिए मरने की सोचते हैं कि उनके जीवन की कामना बहुत प्रबल है।

आप एक स्त्री को चाहते थे, वह नहीं मिल सकी, आप कहते हैं कि हम नहीं जीयेंगे। इसका मतलब यह नहीं कि आप जीवन से उदास हो गये। आपका जीवन सशर्त जीवन था, एक कन्डीशन थी कि यह स्त्री मिलेगी तो ही जीयेंगे। यह मकान बनेगा तो ही जीयेंगे, यह धन मिलेगा तो ही जीयेंगे, नहीं तो नहीं जीयेंगे।

आप जीवन के प्रति बड़े मोह-ग्रस्त थे। आपने शर्त बना रखी थी। शर्त पूरी नहीं हुई, इसलिए मर रहे हैं। आप जीवन के विरोधी नहीं हैं, आप जीवन के बड़े मोही थे। और मोह ऐसा भारी था कि ऐसा होगा तो ही जीयेंगे। यह लगाव इतना गहरा हो गया था, यह विक्षिप्तता इतनी तीव्र थी, इसलिए आप मरने की तैयारी कर रहे हैं।

यह नहीं है थानाटोस। यह मृत्यु-एषणा नहीं है। मृत्यु-एषणा तो तब है जब कि जीवन में न कोई असफलता है, न जीवन

में कोई विषाद है, लेकिन सब चीजें पूरी हो गयीं और सूर्यास्त हो रहा है। शरीर भी डूब रहा है, और मन भी अब जीने की बात से ऊब गया और मन भी डूब रहा है। ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, ध्यान रखना। आत्महत्या तो वही करता है जो अभी जीवन की आकांक्षा से भरा था। यह उल्टा मालूम पड़ेगा। लेकिन जितने आत्महत्यारे हैं, बड़े जीवन-एषणा से भरे हुए लोग होते हैं।

ऐसा आदमी आत्महत्या नहीं करता, आत्महत्या भी व्यर्थ मालूम पड़ती है। जिसे जीवन ही व्यर्थ मालूम पड़ रहा है, उसे आत्महत्या सार्थक नहीं मालूम पड़ती। वह कहता है, न जीवन में कुछ रखा है, न जीवन के मिटाने में कुछ रखा है। ऐसा आदमी चुपचाप डूबता है, जैसे सूरज डूबता है। झटके से छलांग नहीं लगाता, डूबता चला जाता है। लेकिन डूबने का कोई विरोध नहीं करता।

अगर ऐसा आदमी पानी में डूब रहा हो तो हाथ-पैर भी नहीं चलायेगा। न बचने में कोई अर्थ है, न ही वह अपने हाथ से डुबकी लगाकर मरना चाहेगा, गला घोटेंगा। न घोंटने में कोई अर्थ है। पानी के साथ हो जायेगा कि डुबाये तो डुबाये, न डुबाये तो न डुबाये। जो हो जाये। सब बेकार है, इसलिए कुछ करने का भाव नहीं रह जाता।

इसको फ्रायड ने थानाटोस कहा है। बूढ़ी उम्र के, ज्यादा उम्र के लोगों को अकसर यह आकांक्षा पकड़ लेती है। यह आकांक्षा बूढ़ी उम्र के लोगों को भी पकड़ती है, और फ्रायड का कहना है, बूढ़ी सभ्यताओं को भी पकड़ती है। जब कोई सभ्यता बूढ़ी हो जाती है, जैसे, भारत। बूढ़ी से बूढ़ी सभ्यता है इस जमीन पर। हम इसमें गौरव भी मानते हैं।

सीरिया अब कहां है? मिस्र की पुरानी सभ्यता अब कहां है? यूनान कहां रहा? सब खो गये। बेबीलोन कहां है अब? खंडहरों में, सब खो गये। पुरानी सभ्यताओं में एक ही सभ्यता बाकी है—भारत। बाकी सब सभ्यताएं जवान हैं। कुछ तो बिलकुल अभी दुधमुंही, दूध पीती हुई बच्चियां हैं—जैसे अमेरिका। अभी उम्र ही तीन सौ साल की है। तीन सौ साल की कुल सभ्यता है। तीन सौ साल हमारे लिए कोई हिसाब ही नहीं होता। दस हजार साल से तो हम अपना स्मरण और अपना इतिहास भी सम्भालते रहे हैं। लेकिन तिलक ने कहा है कि कम से कम भारत की सभ्यता नब्बे हजार वर्ष पुरानी है। और बड़े प्रामाणिक आधारों पर कहा है। सम्भावना है कि इतनी पुरानी है।

तो फ्रायड कहता है, जैसे आदमी बूढ़ा होता है, ऐसे सभ्यताएं भी बच्ची होती हैं, जवान होती हैं, बूढ़ी होती हैं। जब सभ्यताएं बचपन में होती हैं तब खेल-कूद में उनकी उत्सुकता होती है, जैसे अमेरिका है। अमेरिका की सारी उत्सुकता मनोरंजन है, खेल-कूद है, नाच-गान है। हमें बहुत हैरानी होती है, उनका जाज, उनके बीटल, उनके हिप्पी, हमें देखकर बड़ी हैरानी होती है, लेकिन हमको समझ में नहीं आता। छोटे-छोटे बच्चे जैसे होते हैं, ऐसे छोटी सभ्यताएं होती हैं।

आज हिप्पी लड़के और लड़कियों को देखें ! उनके रंगीन कपड़े, उनके घूंघर, उनके गले में लटकी हुई मालाएं, यह सब छोटे बच्चों का खेल है। सभ्यता अभी ताजी है। बूढ़ी सभ्यताएं बहुत हिकारत से देखती हैं। जैसे बूढ़े बच्चों को देखते हैं—नासमझ।

फिर जवान सभ्यताएं होती हैं। जवान सभ्यताएं जब होती हैं, तब वे युद्धखोर हो जाती हैं, क्योंकि जवान लड़ना चाहता है, जीतना चाहता है। जैसे अभी चीन जवान हो रहा है, वह लड़ेगा, जीतेगा। अभी भाव विजय-यात्रा का है। फिर बूढ़ी सभ्यताएं होती हैं।

तो फ्रायड ने कहा है, जैसे व्यक्ति के जीवन में बचपन, जवानी, बुढ़ापा होता है, ऐसे सभ्यताओं के जीवन में भी होता है। अगर हम श्वाइत्जर और फ्रायड दोनों के खयालों को ध्यान में ले लें तो ऐसा लगेगा कि महावीर और बुद्ध की बातें एक बूढ़ी सभ्यता की बातें है जो अब मरने के लिए उत्सुक हो गयी हैं। जो कहती हैं, कुछ सार नहीं है जीवन में, कुछ अर्थ नहीं जीवन में। जीवन असार है। छोड़ो आशा, छोड़ो सपने, मरने के लिए तैयार हो जाओ।

और निर्वाण शब्द ने और भी सहारा दे दिया। बुद्ध का निर्वाण शब्द मृत्युसूचक है। निर्वाण का अर्थ होता है, बुझ जाना, मिट जाना, समाप्त हो जाना। निर्वाण का अर्थ होता है, दीये का बुझना। जब दीया बुझता है, तब हम कहते हैं, दीया निर्वाण को उपलब्ध हो गया। ऐसे ही जब अदमी के भीतर जीवेषणा की ललक, जीवेषणा की आकांक्षा, जीवेषणा की ज्योति बुझ जाती है, खो जाती है; उसको बुद्ध ने कहा है निर्वाण।

तो स्वभावतः श्वाइत्जर और फ्रायड को लगे कि यह कौम बूढ़ी हो गयी है। और केवल बूढ़ी नहीं हो गयी है, इतनी बूढ़ी हो गयी है कि जीने की कोई आकांक्षा नहीं रह गयी। फिर महावीर की, संथारा की धारणा ने और भी खयाल दे दिया। अकेले महावीर ही ऐसे व्यक्ति हैं पूरी पृथ्वी पर, जिन्होंने संन्यासी को मरने की सुविधा दी है और जिन्होंने कहा है कि अगर कोई संन्यासी मरना चाहे, तो हकदार है मरने का। इतनी हिम्मत की बात किसी और ने नहीं कही।

महावीर कहते हैं कि अगर कोई मरना चाहे, तो यह उसका हक है, अधिकार है। हम न मानना चाहेंगे, हम कहेंगे, पुलिस पकड़ेगी, अदालत में मुकदमा चलेगा। अगर पकड़ लिए गये, अगर असफल हो गये, और हम असफल करने का सारा उपाय करेंगे। इसका तो मतलब हुआ, महावीर ने स्युसाइड की, आत्महत्या की आज्ञा दी, कि कोई संन्यासी मरना चाहे तो मर सकता है। किसी को हक नहीं है उसे जबर्दस्ती रोकने का।

इससे और भी खयाल साफ हो गया कि यह धारणा मृत्युवादी है, डेथ ओरिएंटेड है। जीवन से इसका संबंध कम और मृत्यु से संबंध ज्यादा है। तो यह लिबिडो के खिलाफ है। इसलिए ब्रह्मचर्य के पक्ष में है, काम के खिलाफ है। सिकोड़ने के पक्ष में है, फैलने के खिलाफ है। प्रेम के खिलाफ है, विरक्ति के पक्ष में है और अन्ततः मृत्यु के पक्ष में है, और जीवन के खिलाफ है। और महावीर से तो सहारा पूरा मिल गया, क्योंकि महावीर कहते हैं, आदमी को हक है मरने का।

लेकिन भूल हो गयी है। महावीर और बुद्ध जैसे व्यक्तियों को समझना सिर्फ ऊपर से, आसान नहीं है, भीतर उतरना बहुत जरूरी है। महावीर ने आत्महत्या की आज्ञा नहीं दी है, क्योंकि महावीर की शर्तें हैं। महावीर कहते हैं, वह आदमी मरने का हकदार है जिसको जीवन की कोई भी आकांक्षा शेष नहीं रह गयी, कोई भी।

इसलिए महावीर ने नहीं कहा कि जहर लेकर मर जाना। क्योंकि धोखा हो सकता है। एक क्षण में कभी ऐसा लग सकता है कि सब आकांक्षा खत्म हो गयी और आदमी मर सकता है। इसलिए महावीर ने कहा है कि जहर लेकर मत मर जाना। क्योंकि क्षण में धोखा हो सकता है। महावीर ने कहा, उपवास कर लेना। उपवास करके कोई मरेगा तो कम से कम नब्बे दिन लग जाते हैं। नब्बे दिन सोच विचार के लिए लम्बा अवसर है।

दुनिया में कोई आदमी नब्बे दिन तक आत्महत्या के विचार पर थिर नहीं रह सकता, और अगर रह जाये तो अपूर्व ध्यान को उपलब्ध हो गया। नब्बे दिन की बात अलग, वैज्ञानिक कहते हैं कि एक सैकेंड भी आत्महत्या में चूके कि चूक गये। उसी वक्त कर लो तो कर लो। क्योंकि वह भावावेश में होती हैं, तीव्र भावावेश में। कोई दुख लगा और एक आदमी छलांग लगाकर छत से कूद गया। फिर अब बीच में समझ में भी पड़े तो कोई उपाय नहीं है। अब कूद ही गये, अब मरना ही पड़ेगा।

जितने लोग आत्महत्या करके मरते हैं, अगर हम उनको जिला सकें तो वे सभी कहेंगे कि हमसे गलती हो गयी। क्षण के आवेश

अकेले ही है भोगना

में आदमी कुछ भी कर लेता है। इसलिए महावीर ने कहा, आवेश नहीं चलेगा, नब्बे दिन का वक्त चाहिए। भोजन त्याग कर दो, पानी का त्याग कर दो।

जिस आदमी को जीवन का सब रंग चला गया है, उसको प्यास की पीड़ा भी अखरेगी नहीं। अगर अखरती है, तो अभी जीवन को जीने का रस बाकी है। जिस आदमी को जीवन का ही अर्थ चला गया, वह अब यह नहीं कहेगा कि मुझे भूख लगी है और पेट में बड़ी तकलीफ होती है, क्योंकि पेट की तकलीफ जीवन का अंग थी। वे सारी चीजें कि तकलीफ हो रही है, पीड़ा हो रही है, वह जीवेषणा को ही हो रही थी। अगर जीवेषणा नहीं रही तो ठीक है; भूख भी ठीक है, भोजन भी ठीक है, प्यास भी ठीक है, पानी भी ठीक है। न मिला तो भी ठीक है। मिला तो भी ठीक है। ऐसी विरक्ति आ जायेगी।

तो महावीर ने कहा है, नब्बे दिन तक जो शांतिपूर्वक मृत्यु की प्रतीक्षा कर सके, अशांत न हो जाये, इसमें भी जल्दबाजी न करे, उसे आज्ञा है कि वह मर सकता है।

यह आत्महत्या नहीं है। यह जीवन से मुक्त होना है, जीवन की मृत्यु नहीं है। और जीवन से मुक्त होना कहना भी ठीक नहीं है, यह जीवेषणा से मुक्त होना है। लेकिन समझना कठिन है। और उन्होंने जो जो बातें कही हैं, जिनमें हमें लगता है

कि निषेधक हैं, वे कोई भी निषेधक नहीं हैं। महावीर तो कहते ही यह हैं कि जब कोई व्यक्ति अपने ही मन से मृत्यु को अंगीकार करता है, तभी परिपूर्ण जीवन को समझ पाता है।

इसे थोड़ा हम समझ लें। है भी यही बात। जब हमें सफेद लकीर खींचनी होती है तो हम काले ब्लैकबोर्ड पर खींचते हैं, सफेद दीवार पर नहीं। सफेद दीवार पर खींची गयी सफेद लकीर दिखायी भी नहीं पड़ेगी। जितना होगा काला तख्ता, उतनी उभरकर दिखायी पड़ेगी। जब बिजली चमकती है पूर्णिमा की रात में, तो पता भी नहीं चलती। और जब बिजली चमकती है अमावस को, तभी पता चलती है।

महावीर की समझ यह है कि जब कोई व्यक्ति मृत्यु को अपने हाथ से वरण कर लेता है, मृत्यु को स्वीकार कर लेता है, तो मृत्यु का जो दंश है, दुख है, पीड़ा है वह तो खो गयी। मृत्यु एक काली रात्रि की तरह चारों तरफ घिर जाती है। और जब कोई व्यक्ति इसका कोई निषेध नहीं करता, कोई इनकार नहीं करता; तो मृत्यु पृष्ठभूमि बन जाती है, बैकग्राउंड बन जाती है। और पहली दफे जीवन की जो आभा है, जीवन की जो चमक है, बिजली है, जीवन की जो ज्योति है, इस चारों तरफ घिरी हुई मृत्यु के बीच में दिखायी पड़ती है।

जो जीवेषणा से घिरा है, वह जीवन को कभी नहीं देख पाता, क्योंकि वह सफेद दीवार पर लकीरें खींच रहा है। जो मृत्यु से घिरकर जीवन को देखने में समर्थ हो जाता है, वही जान पाता है कि मैं अमृत हूं, मेरी कोई मृत्यु नहीं है। यह जरा उल्टा मालूम पड़ता है, लेकिन जीवन के नियम के अनुकूल है।

मृत्यु की सघनता में घिरकर ही जीवन भी सघन हो जाता है। मृत्यु जब चारों तरफ से घेर लेती है तो जीवन भी अखण्ड होकर बीच में खड़ा हो जाता है। और जब हम मृत्यु में भी जानते हैं कि 'मैं हूं', जब हम मृत्यु में डूबते हुए भी जानते हैं कि 'मैं हूं', जब मृत्यु सब तरफ से हमें घेर लेती है, तब भी हम जानते हैं कि 'मैं हूं', जब मृत्यु हमें शरीर के बाहर भी ले जाती है, तब भी हम जानते हैं कि 'मैं हूं', तभी कोई जानता है कि मैं के होने का क्या अर्थ है। क्या है जीवन? वह हम मृत्यु में ही जानते हैं।

मरते हम सब हैं, लेकिन हमारी मृत्यु बेहोश है। मरते हम सब हैं, लेकिन नहीं मरने की आकांक्षा इतनी प्रबल होती है कि मृत्यु को हम दुश्मन की तरह लेते हैं। और जब दुश्मन की तरह लेते हैं तो हम मृत्यु से लड़ते हैं। हम मरते नहीं, हम लड़ते हुए मरते हैं। हम मरते नहीं—शांत, मौन, ध्यानपूर्वक देखते हुए। हम इतना लड़ते हैं, इतना उपद्रव मचाते हैं, इतना बचना चाहते हैं कि उस चेष्टा में बेहोश हो जाते हैं।

मृत्यु की एक व्यवस्थित प्रक्रिया है। जैसे कि सर्जन आपकी कोई हड्डी काट रहा हो तो अनस्थिसिया दे देता है, बेहोशी की दवा दे देता है। क्योंकि डर है कि जब वह हड्डी काटेगा तो आप लड़ेंगे काटने से कि न काटी जाये। घबरायेंगे, पीड़ित होंगे, परेशान होंगे । रेसिस्टेंस खड़ा होगा। तो आपके शरीर में दो तरह की धाराएं हो जायेंगी, एक तरफ काटने की बात है, और एक तरफ आप बचाने की चेष्टा करेंगे। अगर आपको सुई भी चुभाई जाये तो आप बचाने की चेष्टा करेंगे अपने को। स्वाभाविक है। तो बेहोश करना जरूरी है, ताकि आप उपद्रव खड़ा न करें।

मृत्यु सबसे बड़ी सर्जरी है। एक हड्डी नहीं कटती, सारी हड्डियों से संबंध कटता है। एक मांस-पेशी नहीं कटती, सारे मांस से संबंध टूट जाता है। जिस शरीर के साथ आप सत्तर वर्ष तक एक होकर जीये थे, और जिसके खून-खून और रोयें-रोयें में आपकी चेतना समाविष्ट हो गयी थी, और जिसमें समाविष्ट ही नहीं हो गयी थी, आपने एकात्म बना लिया था कि मैं शरीर हूं, उससे अलग होना बड़ी से बड़ी सर्जरी है।

आप होश में तभी रह सकते हैं, जब आपका मृत्यु से विरोध न हो। अगर विरोध न हो, आप मौन और शांति स्वीकारपूर्वक अगर मृत्यु में डूबें—उसी को महावीर ने संथारा कहा है, आत्म-मरण कहा है—तो आप बेहोशी में नहीं होंगे, तो मृत्यु को अनस्थिसिया की जरूरत नहीं पड़ेगी।

लेकिन हम इतने घबरा जाते हैं और इतने तनाव से भर जाते हैं और इतना बचना चाहते हैं और अपनी खाट को इतने जोर से पकड़ लेते हैं कि कहीं मृत्यु छीनकर न ले जाये। इतने तनाव में भर जाते हैं कि वह तनाव एक सीमा पर आ जाता है। उस सीमा के आगे जाना असम्भव है। तत्काल शरीर अनस्थिसिया को छोड़ देता है और हम बेहोश हो जाते हैं। अधिक

लोगअधिकतम लोग बेहोशी में मरते हैं, इसलिए हमें मृत्यु की फिर नये जन्म में कोई याद नहीं रह जाती। जो लोग होश में मरते हैं, उनको दूसरे जन्म में याद रह जाती है। क्योंकि याद हमेशा होश की रह सकती है, बेहोशी की याद नहीं रह सकती।

यह जो बेहोशी की घटना घटती है मृत्यु में, यह हमारी ही जीवेषणा का परिणाम है। तो महावीर कहते हैं, जीवेषणा छोड़ दो, जीयो। और जो जीवन को जीता है, अभी और कल की फिक्र नहीं करता, वह मृत्यु को भी जी लेगा, जब मृत्यु आयेगी, और कल की फिक्र नहीं करेगा। मृत्यु भी उसे जीवन की परिपूर्णता बन जायेगी, विरोध नहीं। वह मृत्यु को भी देख लेगा, पहचान लेगा। और जिसने होश से मृत्यु को देख लिया, उसने जीवन को भी देख लिया, क्योंकि वह होश, जो मृत्यु के मुकाबले भी टिक गया, वही है जीवन। वह जागृति जो मृत्यु भी न बुझा सकी, वह समझ जो मृत्यु भी मिटा न सकी, वह बोध जो मृत्यु भी धुंधला न कर सकी, वही बोध है जीवन।

महावीर जीवन विरोधी नहीं हैं, जीवेषणा विरोधी हैं। और जीवेषणा मिटे, तो ही जीवन का अनुभव सम्भव है।

अब हम उनके सूत्र को लें।

'संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं। अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।'

'पापी जीव के दुख को न जातिवाले बंटा सकते हैं, न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। जब दुख आ पड़ता है तब अकेला ही उसे भोगना है, क्योंकि कर्म अपने कर्त्ता के पीछे लगते हैं, अन्य किसी के नहीं।'

इसमें कुछ क्रमिक रूप से हम बिन्दु समझ लें।

संसार में जितने प्राणी हैं, सब अपने कृतकर्मों के कारण ही दुखी होते हैं— पहली बात। यह आधारभूत है। अगर आप दुखी होते हैं तो अपने ही कारण। लेकिन हम सभी सोचते हैं कि दूसरे के कारण। कभी आपने ऐसा समझा है कि दुखी आप हो रहे हैं, अपने कारण?

कभी भी नहीं। क्योंकि जिस दिन आप ऐसा समझ लेंगे, उस दिन आपके जीवन में क्रांति घटनी शुरू हो गयी, उस दिन आपने धर्म के मन्दिर में प्रवेश करना शुरू कर दिया।

हम सदा सोचते हैं, दुखी हो रहे हैं दूसरे के कारण। कभी ऐसा नहीं लगता कि अपने कारण दुखी हो रहे हैं। न वह गाली देता, न हम दुखी होते। न उस आदमी ने हमारी चोरी की होती, न हम दुखी होते। न वह आदमी पत्थर मारता, न हम दुखी होते। साफ ही है बात कि दूसरे हमें दुख दे रहे हैं इसलिए हम दुखी हो रहे हैं। अगर कोई हमें दुख न दे तो हम दुखी न होंगे।

यह बात इतनी तर्कपूर्ण लगती है हमारे मन को कि दूसरी बात का खयाल ही नहीं आता कि हम अपने कारण दुखी हो रहे हैं। पति पत्नी के कारण, बेटा मां के कारण, भाई भाई के कारण, हिन्दुस्तान पाकिस्तान के कारण, पाकिस्तान हिन्दुस्तान के कारण, हिन्दू मुसलमान के कारण, मुसलमान हिन्दुओं के कारण; सब किसी और की वजह से दुखी हो रहे हैं।

राजनीति का मौलिक आधार यह सूत्र है, कि दुख दूसरे के कारण है। और धर्म का यह मौलिक सूत्र है, कि दुख अपने कारण है। सारी राजनीति इस पर खड़ी है कि दुख दूसरे के कारण है। इसलिए दूसरे को मिटा दो, दुख का कारण मिट जायेगा। या दूसरे को बदल डालो, दुख का कारण मिट जायेगा। या परिस्थिति को दूसरा कर लो, दुख मिट जायेगा।

दुनिया में दो तरह की बुद्धियां हैं—राजनीतिक और धार्मिक। और ये दो सूत्र हैं उनके आधार में, अगर आप सोचते हैं कि दूसरे के कारण दुखी हैं तो आप राजनीतिक चित्तवाले व्यक्ति हैं।

आपको कभी खयाल भी न आया होगा, कि पत्नी सोच रही है, पति के कारण दुख है। इसमें कोई राजनीति है। पूरी राजनीति है। इसलिए राजनीति में जो होगा, वह यहां भी होगा। कलह खड़ी होगी। संघर्ष खड़ा होगा, एक दूसरे को बदलने की चेष्टा होगी, एक दूसरे को अपने ढंग पर लाने का प्रयास होगा, एक दूसरे को मिटाने की चेष्टा होगी।

हम इस भाषा में कभी सोचते नहीं। क्योंकि भाषा अगर सख्त हो तो हमारे भ्रम तोड़ सकती है। इसलिए हम ऐसा कभी नहीं कहते कि हम एक दूसरे को मिटाने की चेष्टा में लगे हैं, हम कहते हैं, एक दूसरे को बदल रहे हैं।

बदलने का मतलब क्या है?

तुम जैसे हो, वैसे मेरे दुख के कारण हो। तुमको मैं बदलूंगा। जब तुम अनुकूल हो जाओगे मेरे, तो मेरे सुख के कारण हो जाओगे।

दूसरी बात ध्यान में ले लें। चूंकि हम सोचते हैं कि दूसरा दुख का कारण है, इसलिए हम यह भी सोचते हैं कि दूसरा सुख का कारण है। न दूसरा दुख का कारण है, न दूसरा सुख का कारण है। सदा कारण हम हैं। जिस दिन आदमी इस सत्य को समझना शुरू कर देता है, उस दिन धार्मिक होना शुरू हो जाता है।

क्यों? यह जोर इतना क्यों है महावीर का कि दुख या सुख के कारण हम हैं। इसके जोर के गहरे अवलोकन पर निर्भर यह बात है। और यह कोई महावीर अकेले का कहना नहीं है। इस पृथ्वी पर जिन लोगों ने भी मनुष्य के सुख-दुख के संबंध में गहरी खोज की है, निरपवाद रूप से वे इस सूत्र से राजी हैं। इसलिए मैं नहीं कहता कि ईश्वर का मानना धर्म का मूल सूत्र है। क्योंकि बहुत धर्म ईश्वर को नहीं मानते खुद महावीर नहीं मानते। बुद्ध नहीं मानते। ईश्वर मूल आधार नहीं है धर्म का। कोई सोचता हो, वेद मूल आधार है तो गलती में है, कोई सोचता हो बाइबिल मूल आधार है तो गलती में है। कोई सोचता हो कि यह है मूल आधार धर्म का कि दुख और सुख का कारण मैं हूं, तो गलती में नहीं। तो धर्म की मौलिक पकड़ उसकी समझ में आ गयी। यह निरपवाद सत्य है।

वेद माने, कोई कुरान, कोई बाइबिल, महावीर, बुद्ध, जीसस, मुहम्मद, किसी को माने, अगर इस सूत्र पर उसकी समझ आ गयी है तो कहीं से भी रास्ता मिल जायेगा। अगर यह सूत्र उसके खयाल में नहीं आया तो वह किसी को भी मानता रहे, कोई रास्ता मिल नहीं सकता।

क्यों? मैं ही क्यों जिम्मेदार हूं अपने सुख और दुख का? जब कोई मुझे गाली देता है, स्वभावतः दिखायी पड़ता है कि वह गाली दे रहा है और मैं दुखी हो रहा हूं। लेकिन यह पूरी श्रृंखला नहीं है। आप आधी श्रृंखला देख रहे हैं।

मेरा कोई अपमान करता है, गाली देता है, मुझे दुख होता है। लेकिन यह श्रृंखला अधूरी है। यह दुख असली में इसलिए होता है कि मैं मान चाहता था, सम्मान चाहता था और कोई गाली देता है, अपमान करता है। जो मैं चाहता था, वह नहीं होता। दुखी होता हूं। मेरे दुख का कारण आपका अपमान करना नहीं है, मेरी मान की आकांक्षा है। मान की आकांक्षा जितनी ज्यादा होगी, उतना ही अपमान का दुख बढ़ता जायेगा। मान की आकांक्षा न होगी, अपमान का दुख कम होता जायेगा। मान की आकांक्षा शून्य हो जायेगी, अपमान में कोई भी दुख नहीं रह जाता।

तो दुख अपमान में नहीं है, मान की आकांक्षा में है। और ध्यान रहे, अपमान तो कोई बाद में करता है, पहले मान की आकांक्षा मेरे पास होनी चाहिये। मेरे पास मान की आकांक्षा हो तो ही कोई अपमान कर सकता है। जो मैंने चाहा ही नहीं है, उसके न मिलने पर कैसा दुख?

अगर चोर आपको दुख देता है, आपकी चीज छीन ले जाता है, तो ऊपर से साफ दिखता है कि चोर की वजह से दुख हो रहा है। लेकिन चीज को पकड़ने का मोह, परिग्रह का जो भाव था, उसके कारण दुख हो रहा है, वह खयाल में नहीं आता। मूल में चोर नहीं है, मूल में आप ही हैं। मूल में पकड़ना चाहते थे, यह चीज मेरी है। इसे कोई न छीने। और फिर कोई छीन लेता है तो दुख होता है। अपना ही लोभ, अपना ही परिग्रह चोर को दुख देने के लिए अवसर बनता है।

इसे हम खोजें ठीक से तो जहां भी हम दुख पायेंगे, वहां श्रृंखला की एक कड़ी हम देखते नहीं। उसे हम छोड़ जाते हैं। हम अपने को बचाकर सोचते हैं सदा। दूसरे से शुरू करते हैं, जहां से कड़ी की शुरुआत नहीं है। वहां से शुरू नहीं करते जहां से कड़ी की असली शुरुआत है।

कौन-सी चीज आपकी है? प्रूधो ने कहा है, सब सम्पत्ति चोरी है। इस अर्थ में कहा है कि आप नहीं थे तब भी वह सम्पत्ति थी, आप नहीं होंगे तब भी होगी। कोई सम्पत्ति आपकी नहीं है। आपने नहीं चुरायी होगी, आपके पिता ने चुरायी होगी। पिता ने नहीं चुरायी होगी, उनके पिता ने चुरायी होगी। लेकिन सब सम्पत्ति चोरी है, छीना-झपटी है। फिर कोई दूसरा चोर आपसे छीन ले जाता है। आप दुखी हो रहे हैं। चोरों का समाज है, उसमें एक चोर दूसरे चोर को सुखी कर रहा है, दुखी कर रहा है।

इसे अगर कोई ठीक से देखेगा कि जिसको भी मैं कहता हूं, मेरा, वहीं मैंने दुख की शुरुआत कर दी, क्योंकि मेरा कुछ भी नहीं है। मैं आता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए और जाता हूं खाली हाथ, बिना कुछ लिए। इन दोनों के बीच में बहुत कुछ मेरे हाथ में होता है। इसमें कुछ भी मेरा नहीं है। जब मेरा कुछ भी नहीं है, ऐसा जिसको दिखायी पड़ जाये, चोर उसे दुखी नहीं करेगा।

रिन्झाई के बाबत सुना है मैंने, एक रात चोर उसके घर में घुस गया। कुछ भी न था घर में। रिन्झाई बहुत दुखी होने लगा। अकेला एक कम्बल था, जिसे वह ओढ़कर सो रहा था। वह बड़ा चिन्तित हुआ कि चोर आया, खाली हाथ लौटेगा। रात ठंडी है, इतनी दूर आया, गांव से पांच मील का फासला है। और फकीर के घर में कहां चोर आते हैं! और जो चोर फकीर के घर में आया, उसकी हालत कैसी बुरी न होगी। तो वह बड़ा चिन्तित होने लगा, और कैसे इसकी सहायता करूं, एक कम्बल है, वह मैं ओढ़े हूं। तो जो मैं ओढ़े हूं, वह तो यह ले न जा सकेगा। तो कम्बल को दूर रखकर सरककर सो गया। चोर बड़ा हैरान हुआ कि आदमी कैसा है ! घर में कुछ है भी नहीं, एक कम्बल ही दिखायी पड़ता है, वह भी अलग रखकर अलग क्यों सो गया मुझे देखकर। वह लौटने लगा तो रिन्झाई ने कहा, ऐसे खाली हाथ मत जाओ। मन में पीड़ा रह जायेगी। कभी तो कोई चोरी करने आया। ऐसा अपना सौभाग्य कहां कि कोई चोरी करने आये ! है ही नहीं कुछ, यह कम्बल लेते जाओ। और अब जब दुबारा आओ तो जरा पहले से खबर करना। गरीब आदमी हूं, कुछ इंतजाम कर लूंगा। चोर तो घबराहट में कम्बल लेकर भागा कि कहां के आदमी के चक्कर में पड़ गया हूं। लेकिन रास्ते में जाकर उसे खयाल आया कि भागने की कोई जरूरत न थी। पुरानी आदत से भाग आया हूं। इस आदमी से भागने की क्या जरूरत थी? वापस लौटा। वापस लौटा तो नग्न रिन्झाई लंगोटी लगाये खिड़की पर बैठा था, चांद को देख रहा था और उसने एक गीत लिखा था। चोर वापस आया तो वह गीत गुनगुना रहा था। उसका गीत बहुत प्रसिद्ध हो गया। उस गीत में वह चांद से कह रहा है कि मेरा वश चले तो चांद को आकाश से तोड़कर उस चोर को भेंट कर दूं।

चोर ने गीत सुना। वह चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, 'तुम कह क्या रहे हो? मैं चोर हूं, मुझे तुम चांद भेंट करना चाहते हो? मैं गलती से भाग गया, मुझे पास ले लो। कब ऐसा दिन आयेगा कि मैं भी तुम जैसा हो जाऊंगा ! अब तक जिनके घर में मैं गया, वे भी सब चोर थे। मालिक, मुझे पहली दफा मिला।'

कोई बड़े चोर हैं, कोई छोटे चोर हैं। कोई कुशल चोर हैं, कोई अकुशल चोर हैं। कुछ न्यायसंगत चोरी करते हैं, कुछ न्याय-विपरीत चोरी करते हैं।

पर उस चोर ने कहा, जिनके घर में भी गया, सब चोर थे। एक दफा पहला आदमी मिला है जो कि चोर नहीं है। और वे सब भी मुझे शिक्षा देते रहे हैं कि चोरी मत करो, लेकिन उनकी बात मुझे जंची नहीं, क्योंकि वह चोरों की ही बात थी। तुमने कुछ भी न कहा, लेकिन मेरी चोरी छूट गयी। मुझे अपने जैसा बना लो कि मैं भी चोर न रह जाऊं।

क्या हम अनुभव करते हैं, वह हम पर निर्भर है। यह रिन्झाई की करुणा चोर के प्रति, रिन्झाई की ही बात है। चोर के प्रति आपमें दुख पैदा होता, क्रोध पैदा होता, घृणा पैदा होती, लेकिन करुणा पैदा नहीं हो सकती थी। जो हममें पैदा होता है वह हमारे भीतर है। दूसरा तो सिर्फ बहाना है, दूसरा है सिर्फ बहाना। जो निकलता है वह हमारा है, लेकिन हमें अपना कोई पता नहीं; इसलिए जब बाहर आता है तब हम समझते हैं कि दूसरे का दिया हुआ है।

अगर आपके बाहर दुख आता है तो दूसरा केवल बहाना है। दुख आपके भीतर है। दूसरा तो सिर्फ सहारा बन जाता है बाहर लाने का। इसलिए जो आपके दुख को बाहर ले आता है, उसका अनुग्रह मानना। क्योंकि वह बाहर न लाता तो शायद आपको अपने भीतर छिपे हुए दुख के कुओं का पता ही न चलता। सुख भी दूसरा बाहर लाता है, दुख भी दूसरा बाहर लाता है, सिर्फ निमित्त है।

निमित्त शब्द का महावीर ने बहुत उपयोग किया है। यह शब्द बड़ा अदभुत है। ऐसा कोई शब्द दुनिया की दूसरी भाषा में खोजना मुश्किल है, निमित्त। निमित्त का मतलब है, जो कारण नहीं है और कारण जैसा मालूम पड़ता है।

आपने मुझे गाली दी, दुख हो गया, तो महावीर नहीं कहते कि गाली देने से दुख हुआ। वे कहते हैं निमित्त, गाली निमित्त बनी, दुख तैयार था, वह प्रगट हो गया। गाली कारण नहीं है, कारण तो सम्मान की आकांक्षा है। गाली निमित्त है। निमित्त

का मतलब—सूडो कॉज, झूठा कारण, मिथ्या कारण। दिखायी पड़ता है यही कारण है, और यह कारण नहीं है। निमित्त का मतलब—कारण को छिपाने की तरकीब। असली कारण छिप जाये भीतर, और झूठा कारण बना लेने का उपाय।

इसलिए महावीर कहते हैं, संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब अपने ही कारण दुखी होते हैं। और यह कारण क्यों उनके भीतर इकट्ठा हुआ है? कृतकर्मों के कारण। जो-जो उन्होंने पीछे किया है, उससे उनकी आदतें निर्मित हो गयी हैं। जो-जो उन्होंने पीछे किया है उससे उनके संस्कार निर्मित हो गये हैं, उनकी कंडीशनिंग हो गयी है। जो उन्होंने किया है, वही उनका चित्त है। जो-जो वे करते रहे हैं वही उनका चित्त है। उस चित्त के कारण वे दुखी होते हैं। चित्त है हमारे अनंत-अनंत कर्मों का संस्कार।

समझें—कल भी आपने कुछ किया, परसों भी आपने कुछ किया, इस जन्म में भी, पिछले जन्म में भी, वह जो सब आपने किया है उसने आपको ढांचा दे दिया है, एक पैटर्न। एक सोचने, समझने, व्याख्या करने की एक व्यवस्था आपके मन में दे दी। आप उसी व्याख्या से चलते हैं और सोचते हैं। उसी व्याख्या के कारण आप सुखी और दुखी होते रहते हैं और उस व्याख्या को आप कभी नहीं बदलते। सुख-दुख को बदलने की बाहर कोशिश करते हैं और भीतर की व्याख्या को पकड़कर रखते हैं। और आपकी हर कोशिश उस व्याख्या को मजबूत करती है। आपके चित्त को मजबूत करती है, आपके माइंड को और ताकत देती चली जाती है। जिसके कारण दुख होता है, उसको आप मजबूत करते जाते हैं और निमित्त को बदलने की चेष्टा में लगे रहते हैं। कारण छिपा रहता है, निमित्त हम बदलते चले जाते हैं। फिर बड़े मजे की घटनाएं घटती हैं—कितना ही निमित्त बदलो, कारण नहीं बदलता।

एक मित्र परसों मेरे पास आये। अमरीका में उन्होंने शादी की। काफी पैसा कमाया शादी के बाद। वह सारा का सारा पैसा अमरीका के बैंकों में अपनी पत्नी के नाम से जमा किया। खुद के नाम से कर नहीं सकते जमा, पत्नी के नाम से वह सारा पैसा जमा किया। अचानक पत्नी चली गयी और उसने वहां से जाकर खबर दी कि मुझे तलाक करना है। अब बड़ी मुश्किल में पड़ गये। पत्नी भी हाथ से जाती है, वह जो चार लाख रुपया जमा किया है, वह भी हाथ से जाता है। अब किसी को कह भी नहीं सकते कि चार लाख जमा किया है, क्योंकि उसमें पहले यहां फंसेंगे कि वह चार लाख वहां ले कैसे गये। वह जमा कैसे किया?

मेरे पास वे आये। वे कहने लगे कि मैं पत्नी को इतना प्रेम करता हूं कि उसके बिना बिलकुल नहीं जी सकता। तो कोई योग में ऐसा चमत्कार नहीं है कि मेरी पत्नी का मन बदल जाये? वह खिंची चली आये? लोग योग वगैरह में तभी उत्सुक होते हैं जब उनको कोई चमत्कारखिंची चली आये, ऐसा कुछ कर दें।

मैंने उनसे कहा कि पहले तुम सच-सच मुझे बताओ कि पत्नी से मतलब है कि चार लाख से? क्योंकि योग में अगर पत्नी को खींचने का चमत्कार है तो चार लाख खींचने का भी चमत्कार हो सकता है। तुम सच-सच बताओ।

उन्होंने कहा, क्या कह रहे हैं, रुपया अकेला आ सकता है? तो पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। भाड़ में जाये, रुपया निकल आये। कहने लगे कि मैं तो उससे बहुत प्रेम करता था, क्यों मुझे छोड़कर चली गयी, समझ में नहीं आता। क्यों मुझे इतना दुख दे रही है? समझ में नहीं आता।

मैंने कहा, बिलकुल साफ समझ में आ रहा है, पत्नी को कभी तुमने भूलकर भी प्रेम नहीं किया होगा। तुमने भी पत्नी को शायद यह रुपया जमा करने के लिए ही चुना होगा। और पत्नी भी इन रुपयों के कारण ही तुम्हारे पास आयी होगी। मामला बिलकुल साफ है। वे कहने लगे, एक अवसर मुझे मिल जाये, पत्नी वापस आ जाये। तो मैंने, जो-जो भूलें आप बताते हैं, अब दुबारा नहीं करूंगा। आप मुझे समझा दें, कैसा व्यवहार करूं, क्या प्रेम करूं; लेकिन एक अवसर तो मुझे मिल जाये सुधरने का।

यह जो आदमी कह रहा है, एक अवसर मुझे मिल जाये सुधरने का, इसे अवसर मिले, यह सुधरेगा? यह हो सकता है पत्नी की हत्या कर दे। इसके सुधरने का आसार नहीं है कोई, सुधरना यह चाहता भी नहीं है। यह मान भी नहीं रहा है कि यह गलत है।

वह जो हमारे भीतर मन है, उसको तो हम मजबूत किये चले जाते हैं। मैंने उनसे कहा कि दूसरी शादी कर लो, छोड़ो भी।

दूसरी शादी कर लो, इस बात को छोड़ो। पैसा फिर कमा लोगे। लेकिन अब दुबारा जमा मत करना अमेरिका में। तुम भी चोर थे, पत्नी भी चोर साबित हुई, चोर चोरों को खोज लेते हैं। लेकिन यह मत सोचो कि इसमें दुख का कारण पत्नी है। वे बड़े दुखी हैं, आंसू निकल-निकल आते हैं। ये वह चार लाख पर निकल रहे हैं, पत्नी से कोई लेना-देना नहीं है। बड़े दुखी हैं, लेकिन दुख का कारण वे सोच रहे हैं, पत्नी का दगा है। और दगा यह आदमी पत्नी को पहले से ही दे रहा है। इसका कोई लेना-देना नहीं है पत्नी से। वह रुपया ही सारा—सारा हिसाब-किताब है। यह मन तो भीतर वही का वही है। अगर यह कल फिर शादी कर ले तो फिर यही करेगा।

पश्चिम में मनसविद जिन लोगों के तलाकों का अध्ययन करते हैं, वे कहते हैं, बड़ी हैरानी की बात है, आदमी एक स्त्री से शादी करता है, तलाक देकर दूसरी से शादी करता है। फिर दूसरी बार भी वैसी ही स्त्री चुन लेता है जैसी पहली बार चुनी थी। एक आदमी ने आठ बार तलाक किया। सॉल्टर ने उसकी पूरी जिन्दगी का विवरण दिया है, और हर बार उसने सोचा कि अब दुबारा ऐसी पत्नी नहीं चुनूंगा। और हर बार फिर वैसी ही पत्नी चुन ले। छह महीने बाद उसे पता चला कि वह फिर वैसी ही पत्नी चुन लाया है।

भारतीय इसलिए कुशल थे कि नाहक परेशान क्यों करना! एक ही पत्नी चुननी है बार-बार, तो एक से निपटा लेने में हर्जा क्या है? कम से कम इतनी राहत तो रहेगी कि मौका मिलता तो दूसरी भी चुन सकते थे। चुन नहीं सकते हैं आप। और इसलिए भारतीय बड़े अदभुत थे कि वे पत्नी के चुनाव का काम खुद को नहीं देते थे, मां-बाप से करवा लेते थे, जो ज्यादा अनुभवी थे। जो जिन्दगी देख चुके थे और जिन्दगी की नासमझियां समझ चुके थे। इसलिए हमने व्यक्तियों के ऊपर नहीं छोड़ा था चुनाव।

अमरीका में सॉल्टर ने कहा कि इस आदमी ने आठ दफा शादी की और हर बार वैसी ही पत्नी फिर चुन लाया। कारण क्या है? चुनाव जिस मन से होता है वह तो वही है। इसलिए मैं दूसरा चुन भी कैसे सकता हूं? मुझे एक स्त्री की आवाज अच्छी लगती है, आंख अच्छी लगती है, चलने का ढंग अच्छा लगता है, शरीर की बनावट अच्छी लगती है, अनुपात पसन्द पड़ता है, उठना-बैठना पसन्द पड़ता है, व्यवहार पसंद पड़ता है, इसलिए मैं चुनता हूं।

जब मैं एक स्त्री को चुनता हूं तो मैं अपने मन को ही चुनता हूं, उसको नहीं चुनता, मेरी पसन्दगी को चुनता हूं। फिर यह स्त्री उपद्रवी मालूम पड़ती है, झगड़ालू मालूम पड़ती है। फिर इसमें दूसरे गुण दिखायी पड़ने शुरू होते हैं, तब मैं इसे तलाक देता हूं। फिर दुबारा मैं एक स्त्री चुनता हूं। मैं फिर वही गुण खोजूंगा जो मैंने पहली स्त्री में खोजे थे, और हर गुण के साथ जुड़ा हुआ दुर्गुण है। जो स्त्री एक खास ढंग से चलती है उसमें खास तरह का दुर्गुण होगा, और जो स्त्री एक खास तरह से मुझे पसन्द पड़ती है, उसका दूसरा पहलू भी खास ढंग का होगा, जो मुझे दिक्कत देगा। पहली स्त्री में मैंने उसका चेहरा चुन लिया, मैंने पूर्णिमा चुन ली, लेकिन अमावस भी है। और वह अमावस भी आयेगी। और जब अमावस आयेगी तब मुझे तकलीफ होगी। तब मैं कहूंगा, यह मैंने फिर भूल कर ली। लेकिन फिर तीसरी बार मैं चुनूंगा, लेकिन फिर मैं पूर्णिमा चुनूंगा। फिर अमावस होगी।

हर व्यक्तित्व के कैरेक्टर हैं। जो मुझे पसन्द पड़ता है उसके साथ जुड़ी हुई बात भी है। वह बात मुझे दिखायी नहीं पड़ रही है। वह जब दिखायी पड़ेगी, तब समझ में आयेगा। वह आदमी आठ दफा हर बार एक-सी स्त्रियां चुन लेता है।

इसे समझें। एक आदमी को ऐसी स्त्री पसन्द है जो बिलकुल दब्बू हो। हर बात में उसकी मानकर चले। लेकिन दब्बूपन भी एक तरकीब है दूसरे को दबाने की। दब्बू भी बिलकुल दब्बू नहीं होते। वह अपने दब्बूपन से भी दबाते हैं।

तो एक स्त्री आपने चुन ली कि दब्बू है, मानकर चलेगी, सब ठीक है। लेकिन यह पहला चेहरा है। यह सिर्फ शुरुआत है, यह खेल का प्रारंभ है, नियम हैं खेल के। आपको दब्बू स्त्री पसन्द है तो पसन्द पड़ गयी, लेकिन कोई आदमी दब्बू नहीं है भीतर से। कोई हो ही नहीं सकता दब्बू। तो जैसे ही काम पूरा हो गया, शादी हो गयी, रजिस्सटरी हो गयी, अब वह दब्बूपन खिसकना शुरू हो जायेगा। वह तो सिर्फ तरकीब थी। वह उस व्यक्ति की तरकीब थी आपको पकड़ने की। वह तो मछली के लिए कांटे पर जो आटा लगा था, वही था।

लेकिन कोई आटा खिलाने के लिए नहीं बैठा रहता जाकर मछलियों को। वह कांटा खिलाने के लिए बैठा रहता है। जरूरी

नहीं कि उसको भी पता हो, वह भी शायद सोचता हो कि आटा खिला रहे हैं मछलियों को। लेकिन आटा जब मुंह में चला जायेगा तो कांटा अटक

जायेगा। वह जो दब्बू मालूम पड़ रही थी, वह धीरे-धीरे शेर होने लगेगी। हालांकि उसके शेर होने के ढंग में भी दब्बूपन होगा। जैसे, अगर दब्बू स्त्री आपको सताना चाहे तो रोयेगी, चिल्लायेगी नहीं, क्रोध नहीं करेगी; लेकिन रोना भी जानखाऊ हो जाता है। और कभी-कभी तो क्रोधी स्त्री कम जानखाऊ मालूम पड़ेगी, निपट जायेगी। रोनेवाली स्त्री ज्यादा कुशलता से सताती है। आप यह भी नहीं कह सकते कि वह गलत है, क्योंकि रोनेवाले को क्या गलत कहो। वह आपको दोहरी तरह से मारती है। नैतिक रूप से भी आपको लगता है कि आप गलती कर रहे हैं। वह आपको अपराधी सिद्ध कर देगी। लेकिन तब, तब लगेगा कि फिर वही चुन लाये।

दुबारा फिर चुनने जायेंगे, फिर आपकी पसन्द, आपका जो मन है वह भीतर बैठा है। वह फिर दब्बू स्त्री पसन्द करता है। अब की दफा वह और भी ज्यादा दब्बू खोजेगा, क्योंकि पहली दफा भूल हो गयी, उतनी दब्बू साबित नहीं हुई। ध्यान रखना, और बड़ी दब्बू खोजेंगे तो और बड़ी उपद्रवी स्त्री मिल जायेगी। मगर यह चलेगा। क्योंकि हम जो मूल कारण है, उसे नहीं देखते, बाहर के निमित्त देखते हैं। और बाहर के निमित्त काम नहीं पड़ते।

महावीर कहते हैं, 'अपने ही कृतकर्मों के कारण हम दुखी होते हैं।' अब अगर मैं दब्बू स्त्री पसन्द करता हूं तो यह मेरे लम्बे कर्मों, विचारों, भावों का जोड़ है। लेकिन मैं पसन्द क्यों करता हूं दब्बू स्त्री? मैं किसी को दबाना पसन्द करता हूं, इसलिए जब कोई मुझसे नहीं दबेगा तो मैं दुखी हो जाऊंगा। असल में दबाना पसन्द करना ही पाप है। किसी को दबाना पसन्द करना ही हिंसा है। यह मैं गलत कर रहा हूं कि मैं किसी को दबाया हुआ पसन्द करूं।

स्वभावतः मैं भी दबाना चाहता हूं, दूसरे भी दबाना चाहते हैं। फिर कलह होगी, फिर दुख होगा और दुख मैं दूसरे पर थोपने चला जाऊंगा।

'अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसके फल को भोगे बिना छुटकारा नहीं है।'

कैसा भी कर्म हो, कर्म का फल होकर ही रहता है। उसका कोई उपाय ही नहीं। उसका कारण? क्योंकि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं, नहीं तो बचना हो सकता है। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं एक रुपये को उठाकर मुट्ठी में रख लूं और मैं कहूं कि मैं तो सिर्फ सीधे पहलू को ही मुट्ठी में रखूंगा, और वह जो उल्टा हिस्सा है वह मुट्ठी में नहीं रखूंगा, तो मैं पागल हूं। क्योंकि सिक्के में दो पहलू हैं। और कितना ही बारीक सिक्का बनाया जाये, कितना ही पतला सिक्का बनाया जाये, दूसरा पहलू रहेगा ही। कोई उपाय नहीं है एक पहलू के सिक्के को बनाने का। कोई उपाय नहीं है कर्म को फल से अलग करने का। कर्म और फल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कर्म एक बाजू, फल दूसरी बाजू छिपा है, पीछे ही खड़ा है। हम सब इसी कोशिश में लगे हैं कि फल से बच जायें। और कभी-कभी जिन्दगी की व्यवस्था में हम बचते हुए मालूम पड़ते हैं।

एक आदमी चोरी कर लेता है, अदालत से बच जाता है तो वह सोचता है कि वह फल से बच गया। वह फल से नहीं बचा, समाज के दण्ड से बच गया। फल से नहीं बचा। फल तो आत्मिक घटना है। अदालतों से उसका कोई लेना-देना नहीं है। कानून से उसका कोई संबंध नहीं है। फल से कोई नहीं बच सकता। सामाजिक व्यवस्था से बच सकता है, छूट सकता है। लेकिन बचने और छूटने का जो कर्म कर रहा है, उसके फल से भी नहीं बच सकता। भीतर तो बचाव का कोई उपाय ही नहीं है। मैंने किया क्रोध और मैंने भोगा फल, मैंने किया मोह और मैंने भोगा फल। मैंने किया ध्यान और मैंने भोगा फल। उससे बचने का कोई उपाय ही नहीं है। नहीं है उपाय इसलिए कि कर्म और फल दो चीजें नहीं हैं। नहीं तो हम एक को अलग कर सकते हैं, दूसरे को अलग कर सकते हैं। वे पहलू हैं।

इस संबंध में एक बात और खयाल में ले लेनी जरूरी है। कुछ लोग सोचते हैं कि मैंने एक बुरा कर्म किया। फिर एक अच्छा कर्म कर दिया तो बुरे को काट देगा। वे गलत सोचते हैं। कोई अच्छा कर्म किसी बुरे कर्म को नहीं काट सकता है। इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म हो, उसका फल भोगना पड़ेगा। ऐसी काट-पीट नहीं चलती। यह कोई लेन-देन नहीं है कि मैंने आपको—आपने मुझे पांच रुपये उधार दिये, मैंने आपको पांच रुपये लौटा दिये,

हिसाब-किताब साफ हो गया। इधर मैंने चोरी की, उधर दान कर दिया, मामला खत्म हो गया। इधर मैंने किसी की हत्या की, वहां एक बेटे को जन्म दे दिया, मामला खत्म हो गया।

आपके अच्छे और बुरे कर्म एक दूसरे को काट नहीं सकते, क्योंकि अच्छा कर्म अपने में पूरा है, बुरा कर्म अपने में पूरा है। बुरे कर्म का आपको दुखद फल और अच्छे कर्म का सुखद फल मिलता रहेगा। आप यह नहीं कह सकते कि हमने एक आम का बीज बो दिया, पहले एक नीम का बीज बोया तो नीम का कड़वा वृक्ष लग गया, फिर हमने एक आम का वृक्ष बो दिया तो आम का मीठा वृक्ष लग गया तो अब नीम का फल कड़वा नहीं होगा।

दोनों अलग-अलग हैं। नीम का फल अब भी कड़वा होगा। आम का फल अब भी मीठा होगा। आम की मिठास नीम की कड़वाहट को नहीं काटेगी। नीम की कड़वाहट आम की मिठास को नहीं काटेगी। बल्कि यह भी होगा कि जिसने नीम को भी चखा—अकेला नीम को चखा, शायद नीम उतनी कड़वी न मालूम पड़े, जिसने आम को भी चखा, नीम ज्यादा कड़वी मालूम पड़ेगी। जिसने नीम को भी चखा, आम ज्यादा मीठा मालूम पड़ेगा। कंट्रास्ट होगा, लेकिन कटाव नहीं होगा। दोनों साथ-साथ होंगे।

इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे का फल अच्छा है, बुरे का फल बुरा है। अच्छा बुरे को नहीं काटता, बुरा अच्छे को नष्ट नहीं करता। इसलिए हमें मिश्रित व्यक्ति मिलते हैं जिनको देखकर मुसीबत होती है। एक आदमी में हम देखते हैं कि वह चोर भी है, बेईमान भी है, फिर भी सफल हो रहा है। तो हमें बड़ी अड़चन होती है कि क्या मामला है? क्या भगवान चोरों और बेईमानों को सफल करता है? और एक आदमी को हम देखते हैं कि ईमानदार है, चोर भी नहीं है और असफल हो रहा है और जहां जाता है, तो ऐसे आदमी कहते हैं, सोना छुओ तो मिट्टी हो जाता है; कहीं भी हाथ लगाओ, असफलता हाथ लगती है। क्या मामला है?

मामला इस वजह से है, क्योंकि प्रत्येक आदमी अच्छे और बुरे का जोड़ है। जो आदमी चोर है, बेईमान है वह सफल हो रहा है, क्योंकि सफलता के लिए जिन अच्छे कर्मों का होना आवश्यक है साहस, दांव, असुरक्षा में उतरना, जोखिम—वे उसमें हैं; जिसको हम कहते हैं, ईमानदार आदमी और अच्छा आदमी असफल हो रहा है। न जोखिम, न दांव, न साहस, वह घर बैठकर सिर्फ अच्छे रहकर सफल होने की कोशिश कर रहे हैं। वह बुरा आदमी दौड़ रहा है। अच्छा आदमी बैठा है। वह बुरा आदमी पहुंच जायेगा। दौड़ रहा है, कुछ कर रहा है, और ये दोनों मिश्रित हैं।

हर आदमी एक मिश्रण है, इसलिए इस जगत में इतने विरोधाभास दिखायी पड़ते हैं। अगर कोई बुरा आदमी भी सफल हो रहा है और किसी तरह का सुख पा रहा है तो उसका अर्थ है कि उसके पास कुछ अच्छे कर्मों की सम्पदा है। और अगर कोई अच्छा आदमी भी दुख पा रहा है तो जान लेना, उसके पास बुरे कर्मों की सम्पदा है। और एक दूसरे का कटाव नहीं होता।

इसलिए महावीर कहते हैं, अच्छे कर्म कर करके कोई मुक्त नहीं हो सकता, क्योंकि अच्छे कर्म का फलबुरे कर्म केवल छोड़ देने से कोई मुक्त नहीं हो सकता। अच्छा और बुरा जब दोनों छूट जाते हैं तब कोई मुक्त होता है। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य से मुक्ति नहीं होती, पुण्य से सुख मिलता है। पाप के छोड़ने से मुक्ति नहीं होती, केवल दुख नहीं मिलता। लेकिन पाप और पुण्य जब दोनों छूट जाते हैं—न अच्छा, न बुरा—तब आदमी मुक्त होता है।

मुक्ति, अच्छे और बुरे से मुक्ति है। मुक्ति, द्वंद्व से मुक्ति है। मुक्ति, विरोध से मुक्ति है। मोक्ष का अर्थ—अच्छे कर्मों का फल नहीं है। मोक्ष फल नहीं है।

महावीर की भाषा में स्वर्ग फल है, अच्छे कर्मों का। नरक फल है बुरे कर्मों का। और हर आदमी स्वर्ग और नरक में एक-एक पैर रखे हुए खड़ा है, क्योंकि हर आदमी मिश्रण है बुरे और अच्छे कर्मों का। आदमी की एक टांग नरक तक पहुंचती है और एक टांग स्वर्ग तक पहुंचती है। और निश्चित ही स्वर्ग और नरक के फासले पर जो आदमी खड़ा है उसको बड़ी बेचैनी, खिंचावआज नरक, कल स्वर्ग, सुबह नरक, सांझ स्वर्ग, इसमें तनाव, चिंता पैदा होगी।

महावीर कहते हैं, ये दोनों पैर हट जाते हैं स्वर्ग और नरक से, जब आदमी के सारे कर्म शून्य हो जाते हैं। कर्म की शून्यता मोक्ष है, कर्म का फल नहीं; शून्यता, जब सब कर्म क्षीण हो जाते हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं, पापी जीव के दुख को न जातिवाले बंटा सकते हैं, न मित्र, न पुत्र, न भाई, न बंधु। दुख आता है, तब अकेले ही भोगना है। क्योंकि कर्म कर्त्ता के पीछे लगते हैं, अन्य के नहीं। कर्म का फल आपको ही भोगना पड़ेगा, क्योंकि कर्म आपका है। कर्म दूसरे का नहीं है। मेरी पत्नी का कर्म नहीं है, मेरा कर्म मेरा है, मुझे भोगना पड़ेगा।

इस अर्थ में महावीर मानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति परम स्वतच्नतर है, दूसरे से बंधा नहीं है। और इसलिए कोई लेन-देन का उपाय नहीं है कि मैं दुख आपको दे दूं। हालांकि हम कहते हैंहम कहते हैं किसी को प्रेम करते हैं तो हम कहते हैं कि सब दुख मुझे दे दो। कोई उपाय नहीं है। और शायद इसीलिए आसानी से कहते हैं, क्योंकि कोई उपाय नहीं है। अगर ऐसा हो सके तो मैं नहीं मानता कि कोई किसी से कहेगा कि सब दुख मुझे दे दो। तब प्रेमी ऐसा सोचेंगे कि कब दूसरा मांग ले सब दुख। अभी हम बड़े मजे से कहते हैं कि तुम्हारी पीड़ा मुझे लग जाये, मेरी उम्र तुम्हें लग जाये। वह लगती-वगती नहीं है, इसलिए। लगने लगे तो फिर कोई कहनेवाला नहीं मिलेगा।

असल में प्रत्येक व्यक्ति अकेला है। भीड़ में भी अकेला है। कितने ही संगसाथ में हो, अकेला है। वह जो चैतन्य की भीतर धारा है उसकी अपनी निजता है, इंडिविजुएलिटी है। और जो भी उस चेतना की धारा ने किया है, उसी धारा को भोगना पड़ेगा।

गंगा बहती है एक रास्ते से, नर्मदा बहती है दूसरे रास्ते से। तो गंगा जिन पत्थरों से बहती है, जिस मिट्टी से बहती है उसका रंग गंगा को मिलेगा। और नर्मदा जिस मिट्टी से बहती है, जिन पत्थरों से बहती है, उनका रंग नर्मदा को मिलेगा। और कोई उपाय नहीं है, कोई उपाय नहीं है। हम सब धाराएं हैं, हम सब के जीवन पथ अलग-अलग हैं। कितने ही पास-पास और कितने ही एक दूसरे को हम काटते मालूम पड़े, और कितने ही चौरस्तों पर मुलाकात हो जाये, हमारा अकेलापन नहीं कटता। हम अकेले हैं और दूसरे पर बांटने का कोई उपाय नहीं है।

इस पर बहुत जोर है महावीर का, क्योंकि यह बहुत महत्वपूर्ण है। अगर यह खयाल में आ जाये तो व्यक्ति अपनी पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेता है। और जिस व्यक्ति ने समझा कि सारी जिम्मेदारी मेरी है, वह पहली दफे मेच्योर, प्रौढ़ होता है। नहीं तो हम बच्चे बने रहते हैं।

प्रौढ़ता का एक ही अर्थ हैबच्चा सोचता है, मां की जिम्मेदारी, बाप की जिम्मेदारी—पढ़ाओ-लिखाओ, बड़ा करो। प्रौढ़ आदमी सोचता है, अपने पैरों पर खड़ा होऊं। एक आध्यात्मिक प्रौढ़ता है। उस प्रौढ़ता का अर्थ है कि कोई के लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूं, कोई मेरे लिए जिम्मेदार नहीं है। मैं बिलकुल अकेला हूं। और कोई उपाय नहीं है कि हम बांट सकें, साझा कर सकें। तो जो भी मैं हूं, उसे मुझे स्वीकार कर लेना है और जो भी मैं हूं उसको ही मुझे रूपांतरित करना है, और जो भी परिणाम आयें, किसी की शिकायत का कोई कारण नहीं है। जो भी फल आयें, उनका बोझ मुझे ही ढो लेना है।

यह जोर इसलिए है कि अगर दूसरे हमारे लिए जिम्मेदार हैं तो फिर हम कभी मुक्त न हो सकेंगे। जब तक सारा जगत मुक्त न हो जाये, तब तक मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है।

अगर मैं ही जिम्मेवार हूं तो मैं मुक्त भी हो सकता हूं। अगर दूसरे भी जिम्मेवार हैंअगर आप मुझे दुख दे सकते हैं, सुख दे सकते हैं, अगर आप मुझे आनंदित कर सकते हैं और पीड़ित कर सकते हैं तो फिर मेरी मुक्ति का कोई उपाय नहीं है। फिर आपके ऊपर मैं निर्भर हूं। आप मेरी मज□ पर निर्भर हैं, मैं आपकी मज□ पर निर्भर हूं। तब तो सारा संसार एक जाल है। उस जाल में से कोई हिस्सा नहीं छूट सकता।

महावीर कहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति कितने ही संसार के बीच में खड़ा हो, अकेला है, टोटली अलोन, एकांतरूपेण, अकेला है। इस अकेलेपन को समझ ले तो संन्यास फलित हो जाता है, वह जहां भी है। इस अकेलेपन के भाव को समझ ले तो संन्यास फलित होता है, चाहे वह कहीं भी हो। अपने को अकेला जानना संन्यास है, अपने को साथियों में जानना संसार है। मित्रों में, परिवार में, समाज में, देश में, बंधा हुआ अंश की तरह जानना संसार है। मुक्त, अलग, टूटा हुआ, अकेला, आणविक, एटामिक, अकेला अपने को जानना संन्यास है।

आज इतना ही।

पांच मिनट कीर्तन करें।

115

□

यह निःश्रेयस का मार्ग है
सातवां प्रवचन

दिनांक 19 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई
पण्डित-सूत्र
जे य कंते पिए भोए,
लद्धे विपिट्ठीकुव्वई।
साहीणे चयइ भोए,
से हु चाइ त्ति वुच्चई।।
वत्थगंधमलंकारं,
इत्थियो सयणाणि य।
अच्छन्दा जे न भुंजंति,
न से चाइ ति वुच्चई।।
तस्सेस मग्गो गुरु विद्धसेवा,
विवज्जणा बालजणस्स दूरा।
सज्झायएगन्तनिसेवणा य,
सुत्तत्थसंचिन्तणया धिई य।।

जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग करता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है।
जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।
सद्‌गुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत् शास्त्रों का अभ्यास करना और उनके गम्भीर अर्थ का चिंतन करना, और चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।

118

□
पहले एक-दो प्रश्न।
एक मित्र ने पूछा है—कल आपने कहा कि महावीर की चिन्तना में प्रत्येक कृत्य और कर्म के लिए मनुष्य अकेला पूरा खुद

ही जिम्मेवार है। जबकि दूसरी चिन्तनाएं कहती हैं कि इतने बड़े संचालित विराट में मनुष्य की बिसात ही क्या? परमात्मा की मज□ के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। इस चिन्तना में कर्म को कहां रखिएगा? एक ओर स्वतंत्रता की घोषणा और दूसरी ओर परतंत्रता की बात है। या यों कहें कि डूइंग एण्ड हैपनिंग में ताल-मेल कैसे बैठेगा?

ताल-मेल बिठाने की बात से ही परेशानी शुरू हो जाती है। ताल-मेल बिठाना ही मत। दो मार्गों में ताल-मेल कभी भी नहीं बैठता। दोनों की मंजिल एक हो सकती है, लेकिन मार्गों में ताल-मेल कभी भी नहीं बैठता। और जो बिठाने की कोशिश करता है, वह मंजिल तक कभी भी नहीं पहुंच पाता।

यह हो सकता है कि पहाड़ पर चलनेवाले बहुत से रास्ते एक ही शिखर पर पहुंच जाते हों, लेकिन दो रास्ते दो ही रास्ते हैं और उनको एक करने की कोशिश व्यर्थ है। और जो व्यक्ति दो रास्तों पर ताल-मेल बिठाकर चलने की कोशिश करेगा, वह चल ही नहीं पायेगा।

मंजिल में समन्वय है, मार्गों में कोई समन्वय नहीं है। लेकिन हम सब मार्गों में समन्वय बिठाने की कोशिश करते हैं और उससे बड़ी कठिनाई होती है।

महावीर का मार्ग है संकल्प का मार्ग, मीरा का मार्ग है समर्पण का मार्ग। ये बिलकुल विपरीत मार्ग हैं, और मंजिल एक है। मीरा कहती है : 'तू' ही सब कुछ है, 'मैं' कुछ भी नहीं। मेरा कोई होना ही नहीं है, तेरा ही होना है। इसमें 'मैं' को पूरी तरह मिटा देना है। इतना मिटा देना है कि कुछ शेष न रह जाये, शून्य हो जाये। 'तू' ही एक मात्र सत्ता बचे, 'मैं' बिलकुल खो जाये। जिस दिन 'तू' की ही सत्ता बचेगी, उस दिन 'तू' का भी कोई अर्थ न रह जायेगा। क्योंकि 'तू' में जो भी अर्थ है वह 'मैं' के कारण है। अगर मैं अपने 'मैं' को बिलकुल मिटा दूं, तो 'तू' में क्या अर्थ होगा? यह कहना भी व्यर्थ होगा कि 'तू' ही है। यह कौन कहेगा, यह कौन अनुभव करेगा? अगर मैं 'मैं' को पूरी तरह मिटा दूं तो 'तू' में 'तू' का अर्थ ही न रह जायेगा। एक मिट जाये तो दूसरा भी मिट जायेगा।

मीरा कहती है, 'मैं' को हम मिटा दें। चैतन्य कहते हैं, 'मैं' को हम मिटा दें। कबीर कहते हैं, 'मैं' को हम मिटा दें। ये समर्पण के मार्ग हैं। महावीर कहते हैं, 'तू' को हम मिटा दें, 'मैं' ही बच रहे। यह बिलकुल उल्टा है, लेकिन गहरे में उल्टा नहीं भी है, क्योंकि मंजिल एक है। महावीर कहते हैं, 'तू' को भूल ही जाओ, उससे कुछ लेना-देना नहीं है, उससे कोई संबंध नहीं है। जैसे 'तू' है ही नहीं। आपके

लिए बस 'मैं' ही है। इस 'मैं' को ही अकेला बचा लेना है। जिस दिन 'मैं' अकेला बचता है, 'तू' बिलकुल नहीं होता, उस दिन 'मैं' का अर्थ खो जाता है। क्योंकि 'मैं' में सारा अर्थ 'तू' के द्वारा डाला गया है।

'मैं' ओर 'तू', साथ-साथ ही हो सकते हैं, अलग-अलग नहीं हो सकते। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। कोई कहता है, सिक्के का सीधा पहलू फेंक दो, तो उल्टा भी उसके साथ फिंक जायेगा। कोई कहता है, सिक्के का उल्टा पहलू फेंक दो, सीधा भी उसके साथ फिंक जायेगा।

महावीर कहते हैं, 'मैं' ही है अकेला अस्तित्व। जिस दिन 'तू' बिलकुल मिट जायेगा, न कोई परमात्मा, इसलिए महावीर परमात्मा को कोई जगह नहीं देते। परमात्मा का मतलब है 'तू' को जगह देना। कोई 'तू' नहीं 'मैं' ही हूं। तो सारा जिम्मा मेरा है, सारा फल मेरा है, सारे परिणाम मेरे हैं। जो भी भोग रहा हूं, वह 'मैं' हूं, जो भी हो सकूंगा, वह भी 'मैं' हूं। इस भांति अकेला 'मैं' ही बचे एक दिन, और सब 'तू' विलीन हो जायें, उन दिन 'मैं' में कोई अर्थ न रह जायेगा, 'मैं' भी गिर जायेगा।

चाहे 'तू' को बचायें, चाहे 'मैं' को बचायें, दो में से एक को बचाना मार्ग है। और अंत में जब एक बचता है तो एक भी गिर जाता है, क्योंकि वह दूसरे के सहारे के बिना बच नहीं सकता। कहां से आप शुरू करते हैं, यह अपनी वृत्ति, अपने व्यक्तित्व, अपनी रुझान की बात है, टाइप की बात है। लेकिन दोनों में मेल मत करना। दोनों में कोई मेल नहीं हो सकता, अन्यथा उनका जो नियोजित प्रयोजन है, वही समाप्त हो जाता है। इन दोनों में कोई मेल नहीं है।

महावीर और मीरा को कभी भूलकर मत मिलाना। वे बिलकुल एक दूसरे की तरफ पीठ करके खड़े हैं। जहां से वे चलते हैं, वहां उनकी पीठ है। जहां वे मिलते हैं, वहां वे दोनों ही खो जाते हैं।

मीरा नहीं बचती, क्योंकि 'मैं' को खोकर चलती है। और जब 'मैं' खो जाता है तो 'तू' भी खो जाता है। महावीर भी नहीं बचते, क्योंकि 'तू' को खोकर चलते हैं, और जब 'तू' बिलकुल खो जाता है, तो 'मैं' में कोई अर्थ नहीं रह जाता, वह गिर जाता है। दोनों पहुंच जाते हैं परम शून्य पर, परम मुक्ति पर, लेकिन मार्ग बड़े विपरीत हैं।

और हमारी सबकी तकलीफ यह है कि हम सोचते हैं सदा द्वंद्व की भाषा में, कि या तो महावीर ठीक होंगे, या मीरा ठीक होगी। दोनों में से कोई एक ठीक होगा। ऐसा हमारी समझ में पड़ता है। क्योंकि दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं! वहीं गलती शुरू हो जाती है। दोनों ठीक हैं। अगर हम यह भी समझ लेते हैं कि दोनों ठीक हैं, तो फिर हम ताल-मेल बिठाते हैं। हम सोचते हैं, दोनों ठीक हैं, तो दोनों का मार्ग एक होगा। फिर भूल हो जायेगी। दोनों ठीक हैं और दोनों का मार्ग एक नहीं है।

इस दुनिया में समन्वयवादियों ने जितना नुकसान किया है, उतना और किन्हीं ने भी नहीं किया है। जो हर चीज को मिलाने की कोशिश में लगे रहते हैं वे खिचड़ियां बना देते हैं। सारा अर्थ खो जाता है। भले मन से ही करते हैं वे, कि कोई कलह न हो, कोई झगड़ा न हो, कोई विरोध न हो, लेकिन विरोध है ही नहीं। जिसको वे मिटाने चलते हैं, वह है ही नहीं।

महावीर और मीरा में विरोध नहीं है, मंजिल की दृष्टि से। मार्ग की दृष्टि से भिन्नता है। अलग-अलग छोर से उनकी यात्रा शुरू होती है। और यात्रा हमेशा वहां से शुरू होती है, जहां आप हैं।

ध्यान रखें, मंजिल से उसका कम संबंध है, आपसे ज्यादा संबंध है, कहां आप हैं; मैं पूरब में खड़ा हूं, आप पश्चिम में खड़े हैं। हम दोनों के मार्ग एक से कैसे हो सकते हैं। मैं जहां खड़ा हूं, वहीं से मेरी यात्रा शुरू होगी। आप जहां खड़े हैं, वहीं से आपकी यात्रा शुरू होगी। मीरा जहां खड़ी है, वहीं से चलेगी। महावीर जहां खड़े हैं, वहीं से चलेंगे।

मीरा है स्त्रैण चित्त की प्रतीक। महावीर हैं पुरुष चित्त के प्रतीक। स्त्रैण चित्त से मतलब स्त्रियों का नहीं है और पुरुष चित्त से मतलब

120

यह निःश्रेयस का मार्ग है

पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ है—समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाये।

स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ है—मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाये। इतनी एक हो जाये प्रेम करनेवाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाये। यह है स्त्रैण चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर!

पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता है कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती,

प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पायेगी। क्योंकि समर्पण करनेवाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।
पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भावदशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है। यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करूं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाये तो तू—विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाये, तू बचाये, तू मोक्ष में ले जाये, तू नरक में डाल दे, तेरी मज मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जायेगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जायेगा, यही मेरी खुशी है। कहां ले जायेगा, यह तू जान।
इतने समग्र से अपने को छोड़ सके कोई, फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। क्योंकि कर्ता ही न रहा।
ठीक से समझ लें, जब तक करनेवाले का भाव है तभी तक कर्म का बंधन है। मैं करनेवाला ही नहीं हूं, वही करनेवाला है। यह विराट जो अस्तिव है, वही कर रहा है। फिर कोई कर्म का बंधन नहीं है। कर्म बनता है कर्ता के भाव को, अहंकार को। इसलिए मीरा स्त्रैण चित्त की परिपूर्ण अभिव्यक्ति में अपने को खो देती है। मीरा ही ऐसा करती है, ऐसा नहीं। चैतन्य भी यही करते हैं। इसलिए पुरुष स्त्री का सवाल नहीं है, प्रतीक हैं।
महावीर बिलकुल भिन्न हैं। महावीर कहते हैं, समर्पण कैसा? किसके प्रति समर्पण? और महावीर कहते हैं कि समर्पण भी मैं ही करूंगा। वह भी मेरा ही कृत्य है। महावीर सोच ही नहीं सकते समर्पण की भाषा, वे पुरुष चित्त के शिखर हैं। इसलिए ईश्वर को उन्होंने इनकार ही कर दिया, क्योंकि ईश्वर होगा तो समर्पण करना ही पड़ेगा।
कोई और नहीं है, मैं ही हूं। इसलिए सारी जिम्मेवारी का बोझ मेरे ही ऊपर है। वह मुझे ही खींचना है। मुझे ही तय करना है, कि क्या करूं और क्या न करूं। और जो भी परिणाम हो, वह मुझे जानना है कि मेरे ही द्वारा हुआ है। इसलिए 'मैं' छोड़ने का कोई उपाय नहीं है। मुझे अपने को बदलना है और शुद्धतर, और शुद्धतर , और शून्यतर; इतना शुद्ध हो जाना है, इतना ट्रांसपेरेंट, पारदश हो जाना है कि कुछ बुरा मुझमें न रह जाये।
इस शुद्ध करने की प्रक्रिया में ही 'मैं' विलीन होगा, लेकिन समर्पित नहीं होगा। इसका फर्क समझ लें।

121

महावीर-वाणी भाग : 2

पुरुषों का नहीं है। अनेक स्त्रियों के पास पुरुष चित्त होता है। अनेक पुरुषों के पास स्त्री चित्त होता है। चित्त बड़ी और बात है। स्त्रैण चित्त का अर्थ है—समर्पण का भाव, अपने को किसी की शरण में खो देने की क्षमता; अपने को मिटा देने की। इतनी ग्राहकता कि मैं न रहूं और दूसरा ही रह जाये।
स्त्री जब प्रेम करती है तो उसका प्रेम बनता है समर्पण। प्रेम का अर्थ है—मिट जाना। वह जिसे प्रेम करती है, वही रह जाये। इतनी एक हो जाये प्रेम करनेवाले के साथ कि कोई भिन्नता न रह जाये। यह स्त्रैण चित्त, रिसेप्टिविटी, ग्राहकता, समर्पण, सरेंडर।
पुरुष प्रेम करता है तो समर्पण नहीं है। पुरुष के प्रेम का अर्थ यह होता कि वह समर्पण को पूरी तरह स्वीकार कर लेता है। जब प्रेमी उसे समर्पित होता है तो वह पूरी तरह स्वीकारकर लेता है। वह इतना आत्मसात कर लेता है अपने में अपनी प्रेयसी को कि प्रेयसी नहीं बचती, वही बचता है। और प्रेयसी इतनी आत्मसात हो जाती है प्रेमी में कि खुद नहीं बचती,

प्रेमी ही बचता है। लेकिन पुरुष समर्पण नहीं करता है, इसलिए अगर कोई पुरुष किसी स्त्री को प्रेम करे और समर्पण कर दे उसके चरणों में, तो वह स्त्री उसे प्रेम ही न कर पायेगी। क्योंकि समर्पण करने वाला पुरुष स्त्री जैसा मालूम पड़ेगा।
पुरुष है शिखर जैसा, स्त्री है खाई जैसी। वे दोनों की भावदशाएं भिन्न हैं। तो मीरा मिट जाती है और कृष्ण को अपने में समा लेती है। समर्पण उसका रास्ता है। वह कहती है, मैं नहीं हूं, तू ही है, और तेरी इच्छा के बिना कुछ भी नहीं होता। बुरा हो मुझ से, तो तेरा। भला हो मुझ से, तो तेरा। पाप हो मुझसे, तो तेरा, पुण्य हो मुझसे तो तेरा। मेरा कुछ भी नहीं है। यह मत सोचना कि मीरा यह कह रही है कि भला हो तो मेरा, और बुरा हो तो तेरा। भला करुं तो मैं, और पाप और बुरा हो जाये तो तू, विधि। न, मीरा कह रही है, तू ही है, मैं हूं ही नहीं। इसलिए कुछ भी हो, अब मेरी कोई भी जिम्मेवारी नहीं है। क्योंकि जब मैं नहीं हूं तो मेरी जिम्मेवारी का कोई सवाल ही नहीं है। तू डुबाये, तू बचाये, तू मोक्ष में ले जाये, तू नरक में डाल दे, तेरी मज मेरी खुशी है। अब यह भी नहीं है कि तू मुझे मोक्ष में ले जायेगा तो ही मेरी खुशी होगी। तू ले जायेगा यही मेरी खुशी है। कहां ले जायेगा, यह तू जान।

डबल फाईल आह्वे

महावीर वाणी भाग : 2

मीरा समर्पण करेगी, 'मैं' खो जायेगा। महावीर शुद्ध करेंगे, शून्य करेंगे और 'मैं' खो जायेगा। लेकिन महावीर श्रम करेंगे, मीरा समर्पण करेगी। इसलिए महावीर और बुद्ध संस्कृति को हम कहते हैं, 'श्रमण संस्कृति'।
श्रम पर उनका जोर है, पुरुषार्थ पर उनका बल है, कुछ करो। इसलिए महावीर कहते हैं, मैं श्रम करूंगा अपने साथ और जो भी परिणाम होगा — नरक होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा, और मोक्ष होगा तो भी जानूंगा कि मेरे द्वारा। लेकिन किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखूंगा।
यह पुरुष चित्त का लक्षण है कि वह किसी और पर जिम्मेवारी नहीं रखेगा। आप कहां हैं, इसे सोच लेना चाहिए। क्या आप पुरुष हैं, क्या आप स्त्री हैं? चित्त की दृष्टि से, शरीर की दृष्टि से नहीं।
आपका भाव भीतर समर्पण करने का है या संकल्प को सम्भाले रखने का है? तो एक बात तय कर लें, दोनों के बीच मत दौड़ना। क्योंकि नपुंसक के लिए कोई भी जगह नहीं है। वे जो समझौतेवाले हैं, वे अकसर नपुंसक पैदा कर देते हैं। वे जो समन्वयवादी हैं, जो कहते हैं, दोनों में थोड़ा ताल-मेल कर लो, थोड़ा मीरा का भी लो, थोड़ा महावीर का भी लो, थोड़ा कुरान का भी, थोड़ा गीता का भी—अल्ला ईश्वर तेरे नाम, दोनों को जोड़ो, फिर उनको मिलाकर चलो—इस तरह के लोग सारे मार्गों को भ्रष्ट कर देते हैं।
हर मार्ग की अपनी शुद्धता है, प्योरिटी है। और बड़े से बड़ा अन्याय जो हम कर सकते हैं, वह किसी मार्ग की शुद्धता को नष्ट करना है। हर मार्ग पूरा है। पूरे का अर्थ यह है कि उससे मंजिल तक पहुंचा जा सकता है। दूसरे मार्ग की कोई भी जरूरत नहीं है। इसका यह मतलब नहीं कि दूसरे मार्ग से नहीं पहुंचा जा सकता। दूसरा मार्ग भी इतना ही पूरा है, उससे भी पहुंचा जा सकता है। आप मार्गों को मिलाने की बजाय यही सोचना कि आप कहां खड़े हैं। कहां से आपके लिए निकटतम मार्ग मिल सकता है। फिर दूसरे की भूलकर मत सुनना।
क्योंकि हम बड़े अजीब लोग हैं। हम इसकी फिक्र ही नहीं करते कि कौन कहां खड़ा है।
एक मित्र हैं। उनकी पत्नी का भाव है भक्ति का, समर्पित होने का, छोड़ देने का, परमात्मा के चरणों में। मित्र का भाव नहीं है। उनका भाव है अपने को शुद्ध करने का, रूपांतरित करने का, बदलने का, ठीक है। लेकिन वह मित्र अपनी पत्नी को भी भक्ति में नहीं जाने देते। क्योंकि वे मानते हैं, कि वे जो कहते हैं, वही ठीक है। वह उनके लिए ठीक है, उनकी पत्नी के लिए ठीक नहीं है। लेकिन जो पति के लिए ठीक है वह पत्नी के लिए भी ठीक होना चाहिए, ऐसी उनकी धारणा

है। अगर कल पत्नी भी उनकी उन पर जोर देने लगे कि तुम भी चलो मंदिर में, और नाचो और कीर्तन करो, और गाओ। तो मैं कहूंगा, वह भी गलती कर रही है। क्योंकि जो उसके लिए ठीक है, वह उसके पति के लिए ठीक है, ऐसा मानने का कोई भी कारण नहीं है।

असल में दूसरे पर कभी मत थोपना अपना ठीक होना। क्योंकि आपको पता नहीं, दूसरा कहां खड़ा है। आप जहां खड़े हैं, अपना रास्ता आप चुन लेना। दूसरा जहां चल रहा है, उसे चलने देना। अकसर बहुत लोग दूसरों के रास्ते पर बड़ी बाधाएं उपस्थित करते हैं। उसका कारण है, कि वह समझ ही नहीं पाते कि दूसरा रास्ता भी हो सकता है।

हम सबको ऐसा खयाल है कि सत्य एक है, बिलकुल ठीक है। लेकिन उसके कारण हमको एक खयाल और पैदा हो गया कि सत्य का मार्ग भी एक है, वह बिल्कुल गलत है। सत्य एक है, सौ प्रतिशत ठीक। सत्य का मार्ग एक है, सौ प्रतिशत गलत।

सत्य के मार्ग अनन्त हैं, अनेक हैं। असल में जितने पहुंचने और चलनेवाले लोग हैं, उतने मार्ग हैं। हर आदमी पगडंडी से चलता है, अपनी ही पगडंडी से चलता है। और अस्तित्व की यात्रा में हम अलग-अलग जगह खड़े हैं, और अस्तित्व की यात्रा में हमने अलग-अलग चित्त निर्मित कर लिया है, जन्मों-जन्मों में हम सबके पास अलग-अलग भाव-दशा निर्मित हो गयी है। हम उससे ही चल

122

यह निःश्रेयस का मार्ग है

सकते हैं। कोई उपाय नहीं है दूसरे के मार्ग पर चलने का, कोई उपाय नहीं है। जैसे दूसरे के पैरों से चलने का कोई उपाय नहीं है। दूसरे के मार्ग पर भी चलने का कोई उपाय नहीं है। और जब एक दूसरे को लोग अपने मार्गों पर घसीटते हैं तो पंगु कर देते हैं, उनके पैर काट डालते हैं। बहुत हिंसा होती है ऐसे, लेकिन हमारे खयाल में नहीं आती।

ताल-मेल बिठाना मत। अगर यह बात ठीक लगती हो कि परमात्मा की मज के बिना पत्ता भी नहीं हिलता तो फिर पूरे के पूरे इसमें डूब जाना, ताकि मैं मिट जाये। लेकिन यह समग्रफिर एक आदमी आकर पत्थर मार जाये सिर में तो यह मत सोचना कि इस आदमी ने पत्थर मारा। फिर सोचना कि परमात्मा की इच्छा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता।

लेकिन हम जिनको बहुत विचारशील लोग कहते हैं, वे भी भ्रांतियां करते हैं, और हम भी उन भ्रांतियों को समझ नहीं पाते, क्योंकि अगर हमें रुचिकर लगती हैं, तो समझने की हम फिक्र ही नहीं करते।

महात्मा गांधी की हत्या की बात चलती थी, हत्या के पहले। तो सरदार वल्लभ भाई पटेल ने उनसे जाकर कहा कि मैं सुरक्षा का इन्तजाम करूं? तो गांधीजी ने जो कहा वह पूरे मुल्क को प्रीतिकर लगा, लेकिन बिलकुल नासमझी से भरी हुई बात है।

गांधीजी ने कहा कि उसकी मज के बिना मुझे कोई हटा भी कैसे सकेगा। यह बात बिलकुल ठीक है। अगर ईश्वर चाहता है तो मुझे उठा लेगा, तुम मुझे कैसे बचाओगे। यह उसकी मज के बिना पत्ता नहीं हिलता, इस विचार का अनुषंग है। अगर वह मुझे बचाना चाहता है तो कोई मुझे उठा नहीं सकता, और वह मुझे उठाना चाहता है तो कोई मुझे बचा नहीं सकता।

सरदार वल्लभ भाई को भी लगा, तर्क करने का कोई उपाय न रहा। मैं उनकी जगह होता तो गांधीजी को कहता कि वह खुद तो हत्या करने आयेगा नहीं, नाथूराम गोडसे का उपयोग करेगा, और अगर उसको बचाना है तो भी खुद बचाने नहीं आयेगा, वल्लभ भाई पटेल का उपयोग करेगा।

तो आधी बात कह रहे हैं आप। आप कहते हैं कि अगर वह उठाना चाहेगा तो कोई बचा नहीं सकेगा। और जो उठानेवाले

हैं वे चारों तरफ घूम रहे हैं। और जिनके द्वारा वह बचा सकता है, वे इसलिए रुक जायेंगे कि हम क्या बचा सकते हैं। अगर मैं गांधीजी की जगह होता तो मैं कहता कि तुम अपनी कोशिश करो, नाथूराम गोडसे को अपनी कोशिश करने दो। आखिर उसकी मज जो होगी, लेकिन तुम दोनों अपनी कोशिश करो, क्योंकि उसकी मज भी तो किसी के द्वारा।
गांधी जी ने आधी बात कही। उसमें उन्होंने एक पत्ते को तो हिलने दिया, दूसरे पत्ते को रोकने की कोशिश की। तो सब उसकी मज से हो रहा है, उन्होंने कहा जरूर, लेकिन उनको भी साफ नहीं है, नहीं तो वल्लभ भाई को भी रोकने का कोई अर्थ नहीं है। अगर उसकी ही मज से यह सरदार भी हिल रहे हैं तो इनको भी हिलने दो। लेकिन गोडसे हिलता रहेगा उसकी मज से और सरदार गांधीजी की मज से रुक रहे हैं।
जीवन जटिल है, इसलिए मैं मानता हूं कि गांधीजी का पूरा भरोसा नहीं है उसकी मज पर, नहीं तो वे कहते कि ठीक है। किसी को वह इशारा कर रहा होगा मुझे मारने का, तुम्हें इशारा करता है मुझे बचाने का; जो उसकी मज, वह हो। मैं बीच में नहीं आऊंगा। लेकिन वे बीच में आये और उन्होंने सरदार को रोका। नाथूराम को तो नहीं रोक सकते, सरदार को रोक सकते हैं।
उसकी मज पर पूरा भरोसा नहीं है। हालांकि ऐसी आलोचना किसी ने भी नहीं की। किसी ने भी यह नहीं कहा कि गांधीजी को उसकी मज पर पूरा भरोसा नहीं है। पूरा भरोसा नहीं है। बायें हाथ को तो मानते हैं उसका हाथ और दायें हाथ को नहीं मानते हैं उसका हाथ।
हम भी ऊपर से देखेंगे तो हमें भी खयाल में नहीं आयेगा। लेकिन जिंदगी ज्यादा गहरी है, जैसा हम ऊपर से देखते हैं, उतनी उथली नहीं है।

123

महावीर-वाणी भाग : 2

अगर सच में ही इस बात का भरोसा है कि उसकी मज, तो फिर ठीक है। फिर आपके लिए कुछ भी अपनी तरफ से जोड़ने का कोई सवाल नहीं है। फिर आप बहते हैं, फिर आप पूरे ही बहें और जो भी हो, ठीक है। अगर इसमें आपको अड़चन मालूम पड़ती हो कि ऐसे हम अपने को कैसे छोड़ सकते हैं, नदी कहीं भी बहा ले जाये, पता नहीं कहां; तो फिर नदी के बाहर निकलकर खड़े हो जायें। फिर यह बात ही छोड़ दें कि उसकी मज के बिना पत्ता नहीं हिलता। फिर तो एक ही बात स्मरण रखें कि पत्ता हिलेगा तो मेरी मज से, नहीं हिलेगा तो मेरी मज से। हिलता है तो मैंने चाहा होगा, इसलिए हिलता है, चाहे मुझे पता न हो; और नहीं हिलता है तो मैंने चाहा होगा कि न हिले, चाहे मुझे पता न हो। मैंने जो किया है, उसके कारण हिलता है और मैं जो किया हूं, उसके कारण रुकता है। फिर सारी जिम्मेवारी अपने पर ले लेना।
दोनों तरह से लोग पहुंच गये हैं, लेकिन दोनों को मिलाकर अब तक सुना नहीं कि कोई पहुंचा हो। दोनों को मिलानेवाला वही आदमी है, जो चलना ही नहीं चाहता। असल में दोनों को मिलाना एक तरकीब है, एक डिसेप्शन, एक वंचना है, खुद को धोखा है। उसका मतलब यह कि जब जैसा मतलब होगा, जब जैसा अपने अनुकूल होगा, उसको कह लेंगे। जब कोई बुरी बात घटेगी तो कहेंगे, उसकी मज और जब कुछ ठीक हो जायेगा तो कहेंगे, अपना संकल्प।
मिलाने का मतलब यह होता है कि हम दोनों नावों पर पैर रखेंगे। इसमें होशियारी तो है, चालाकी तो है, लेकिन बहुत बुद्धिमानी नहीं है।
चालाक आदमी दोनों नाव पर पैर रखता है, पता नहीं किसकी कब जरूरत पड़ जाये। चालाकी उनकी ठीक है, लेकिन मूढ़तापूर्ण है, क्योंकि दो नाव पर कोई भी सवार होकर चल नहीं सकता। दो नावों पर जो सवार होता है, वह डूबेगा। और अगर नहीं डूबना है तो नावों को खड़ा रखना पड़ेगा, चलाना नहीं पड़ेगा। फिर वहीं खड़ा रहेगा। वह भी डूबना ही है।

महावीर को समझते वक्त मीरा को बीच में मत लायें। महावीर के रास्ते पर मीरा से कहीं भी मिलन नहीं होगा। और मीरा के रास्ते पर महावीर से कोई मुलाकात नहीं होगी। आखिर में जहां महावीर भी खो जाते हैं और मीरा भी खो जाती है, वहां मिलन है।

जब तक महावीर हैं, तब तक संकल्प रहेगा। जब तक मीरा है, तब तक समर्पण रहेगा। और जहां समर्पण भी समाप्त हो जाता है, संकल्प भी समाप्त हो जाता है। मंजिल जब आती है तो रास्ते समाप्त हो जाते हैं।

मंजिल का मतलब क्या है? मंजिल का मतलब है, रास्ते का समाप्त हो जाना, रास्ते से मुक्त हो जाना। मंजिल का मतलब है, रास्ता खत्म हुआ। मंजिल रास्ते की पूर्णता है। और जो भी चीज पूर्ण हो जाती है वह मर जाती है, मृत्यु हो जाती है। फल पक जाता है, गिर जाता है। रास्ता पक जाता है, खो जाता है। फिर मंजिल रह जाती है।

मंजिल पर मिलन है। सागर में नदियां मिल जाती हैं। जो नदी पूरब की तरफ बही, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में । जो पश्चिम की तरफ बही है, वह भी जाकर गिर जाती है हिंद महासागर में। अगर रास्ते में उन दोनों का कहीं मिलना हो तो वे नहीं मान सकतीं कि हम दोनों सागर में जा रहे हैं। पूरब चलनेवाली नदी कहेगी पागल हो गयी हो, पश्चिम जा रही हो, सागर पूरब है। पश्चिम जाने वाली नदी कहेगी, पागल तू है, सागर पश्चिम है। सदा से हम गिरते रहे हैं और जानते रहे हैं कि सागर पश्चिम है।

सागर सब ओर है। सागर का मतलब ही है जो सब ओर है। कहीं से भी जाओ, पहुंचना हो सकता है। एक ही बात ध्यान रखना, जाना, रुक मत जाना। तालाब भर नहीं पहुंचते, नदियां तो सब पहुंच जाती हैं। और समझौतावादी तालाब की तरह हो जाते हैं। ठहर जाते हैं, थोड़ा पूरब भी चलते हैं, थोड़ा पश्चिम भी चलते हैं। फिर चारों दिशाओं में चलने की वजह से चक्कर लगाने लगते हैं, फिर अपनी जगह पर ही घूमते रहते हैं। वहीं सूखते हैं, सड़ते हैं।

124

□

यह निःश्रेयस का मार्ग है

समझौता नहीं है मार्ग धर्म में, दर्शन में भला हो, विचार में भला हो। जिनको चलना है उनके लिए समझौता मार्ग नहीं है, उनके लिए तो स्पष्ट चुनाव। और वह चुनाव करना अपनी आंतरिक भाव-दशा के अवलोकन से, दूसरे की बातों से नहीं। अपने को सोचना कि मैं क्या कर सकता हूं, समर्पण या संकल्प।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं तो हूं बहुत पापी। आकांक्षा होती है प्रभु तक पहुंचने की; क्या मुझ जैसे पापी के लिए प्रभु का द्वार खुला होगा? मैं बहना ही चाहूं, बहता ही रहूं, तो भी क्या परमात्मा के सागर को पा सकूंगा?

यह महत्वपूर्ण है भाव, क्योंकि जो जान लेता है कि मैं पापी हूं, उसके जीवन में पुण्य का प्रारंभ हो जाता है। यह एक पण्डित का प्रश्न नहीं है, एक धार्मिक व्यक्ति का प्रश्न है। पण्डित ज्ञान की बातों में से प्रश्न उठाता है, धार्मिक व्यक्ति अपनी अंतर्दशा में से प्रश्न उठाता है। पण्डित के प्रश्न शास्त्रों से आते हैं, धार्मिक व्यक्ति के प्रश्न अपनी स्थिति से आते हैं।

यह भाव, कि मैं पापी हूं, धार्मिक भाव है। यह जानना कि मेरा पहुंचना मुश्किल है, पहुंचने के लिए पहला कदम है। यह मानना कि क्या मेरे लिए भी प्रभु के द्वार खुले होंगे, द्वार पर पहली दस्तक है।

वे ही पहुंच पाते हैं जो इतने विनम्र हैं। जो बहुत अकड़ से चलते हैं, जो सोचते हैं कि दरवाजे का क्या सवाल, परमात्मा बीच में स्वागत के लिए खड़ा होगा वंदनवार बनाकर, वे कभी नहीं पहुंच पाते। क्योंकि उस परम सत्ता में लीन होना है। लीनता यहीं से शुरू होगी, आपकी तरफ से शुरू होगी। परम सत्ता के कोई द्वार नहीं हैं कि बंद हों।

समझ लें।

उसके कोई दरवाजे नहीं हैं, उसके महल के, कि बंद हों। परम सत्ता खुलापन है। परम सत्ता का अर्थ है, खुला हुआ होना। खुली ही हुई है परम सत्ता। सवाल उसकी तरफ से नहीं है कि वह आपको रोके, बुलाये, खींचे। सवाल सब आपकी तरफ से है कि अब आप भी उस खुलेपन में उतरने को तैयार हैं? आप कहीं बंद तो नहीं हैं? परमात्मा बंद नहीं है। बंद आप तो नहीं हैं?

सूरज निकला है और मैं अपने द्वार दरवाजे बंद करके घर में आंख बंद किये बैठा हूं और सोच रहा हूं कि अगर मैं द्वार के बाहर जाऊं तो सूरज से मेरा मिलन होगा? मैं आंख खोलूं तो सूरज मुझ पर कृपा करेगा?

सूरज की कृपा बरस ही रही है। अकृपा कभी होती ही नहीं। वह सदा मौजूद ही है द्वार पर, आप द्वार खोलें। और द्वार आपने बंद किये हैं, उसने बंद नहीं किये हैं। आंख आपकी है, आप आंख खोलें। आंख आपने बंद की है।

परमात्मा है सदा खुला हुआ, हम हैं बंद। और हमारे बंद होने में सबसे बड़ा कारण क्या है? सबसे बड़ा कारण यह है हम यह मानकर चलते हैं कि हम तो खुले हुए हैं। अंधे को अगर यह खयाल हो कि मेरी आंखें तो खुली हुई हैं, तब बहुत अड़चन हो जाती है। हम सब मानते हैं, हम तो खुले ही हुए हैं।

हम खुले हुए नहीं हैं, हम बिलकुल बंद हैं। और अगर परमात्मा हमारे द्वार पर भी आ जाये तो शायद ही सम्भावना है कि हम उसे भीतर आने दें। बहुत मुश्किल है कि हम उसके लिए दरवाजा खोलें, क्योंकि वह इतना अजनबी होगा, हमने उसे कभी देखा नहीं । उससे ज्यादा अजनबी कोई भी न होगा।

हम पहले पूछेंगे, कहां के रहनेवाले हो? हिंदू हो कि मुसलमान कि जैन? कोई केरेक्टर सर्टिफिकेट साथ लाये हो? परमात्मा तो इतना च्सटरेंजर होगा, अगर हमारे द्वार पर आ जाये, अगर परम सत्य हमारे पास आ जाये तो हम भाग खड़े होंगे। क्योंकि हम उसे बिलकुल न पहचान पायेंगे। हम पहचानते उसे हैं जिसे हम पहले से जानते हैं। जिसे हमने कभी जाना नहीं, हम उसे पहचानेंगे कैसे! हम उससे ऐसे सवाल पूछेंगे, हम उसकी इच्नकवायरी करेंगे। हम जाकर पुलिस दच्फतर में पूछताछ करेंगे कि यह आदमी कैसा है? घर में ठहरना चाहता

है। और हम द्वार बंद कर लेंगे।

अजनबियों के लिए हमारे द्वार खुले हुए नहीं हैं। और परमात्मा से ज्यादा अजनबी कौन होगा? और हमारी नीति, हमारे चरित्र के नियम सब छोटे पड़ जायेंगे। उनसे हम उसे नाप न पायेंगे। बड़ी अड़चन होगी। हमने बहुत बार यह किया है। हम, महावीर मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। बुद्ध मौजूद हों तो नाप नहीं पाते। जीसस मौजूद हों, तो नाप नहीं पाते। हम ऐसे बेहूदे सवाल पूछते हैं बुद्ध से, महावीर से, जीसस से, वह असल में हम अजनबीपन के कारण पूछते हैं।

जीसस एक वेश्या के घर में ठहर गये। आपने क्या पूछा होता सुबह? जीसस को घेरकर आप क्या सवाल उठाते?

हम वही सवाल उठा सकते हैं, जो हम वेश्या के घर ठहरे होते तो जो हमने किया होता, वही सवाल हम उठायेंगे। हम यह सोच ही नहीं सकते कि जीसस के होने का कोई और अर्थ हो सकता है।

जीसस को कोई बुद्ध समझ सकता था।

बुद्ध का एक शिष्य एक वेश्या के घर ठहर गया। सारे भिक्षु परेशान हो गये और उन्होंने आकर बुद्ध को शिकायत की कि यह तो बहुत अशोभन बात है कि हमारा एक भिक्षु और वेश्या के घर ठहर जाये!

ये जो भिक्षु थे, ये ठहरना चाहते होंगे वेश्या के घर। यह ईर्ष्या से उठा हुआ सवाल था। बुद्ध ने कहा कि अगर तुम ठहर जाते तो चिंता होती। जो ठहर गया उसे मैं जानता हूं। लेकिन शिष्यों ने कहा कि आप यह अन्याय कर रहे हैं। इससे तो

रास्ता खुल जायेगा। इससे तो और लोग भी ठहरने लगेंगे। और लोग —मतलब वे अपने को सोच रहे हैं कि क्या गुजरेगी उन पर अगर वे वेश्या के घर ठहर जायें।

हम हमेशा अपने से सोचते हैं। और तो कोई उपाय भी नहीं है, हम अपने से ही सोचते हैं।

और वेश्या सुंदरी है, उन भिक्षुओं ने कहा, बहुत सुंदरी है। और उसके आकर्षण से बचना बहुत मुश्किल है। रातभर भिक्षु वहीं ठहर गया। और हमने तो यह भी सुना है कि रात, आधी रात तक गीत भी चलता रहा, नाच भी चलता रहा, यह क्या हो रहा है?

बुद्ध ने कहा, मैं उस भिक्षु को भलीभांति जानता हूं। और अगर मेरा भिक्षु वेश्या के घर ठहरता है, तो मेरा भिक्षु वेश्या को बदलेगा, न कि वेश्या मेरे भिक्षु को। और अगर मेरे भिक्षु को वेश्या बदल लेती है तो वह भिक्षु इस योग्य ही न था कि अपने को भिक्षु कहे। वह ठीक ही हुआ। इसमें बिगड़ा क्या? जो बदला जा सकता था वही बदला जायेगा। और सुबह ऐसा हुआ कि भिक्षु वापस आया और पीछे उसके वेश्या आयी। और बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को कहा, इस वेश्या को देखो।

उस वेश्या ने कहा कि मैं आपके चरणों में आना चाहती हूं, क्योंकि पहली दफे मुझे एक पुरुष मिला, जिसको मैं डांवाडोल न कर सकी। अब मेरे मन में भी यह भाव उठा कि कब ऐसा क्षण मुझे भी आयेगा कि कोई मुझे डांवाडोल न कर सके। जो इस भिक्षु के भीतर घटा है, वही मेरे भीतर भी घट जाये, अब इसके सिवाय और कोई आकांक्षा नहीं है। तो बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा कि तुम देखो।

लेकिन कठिन है। हम जो हैं, वही हम सोच पाते हैं। इसलिए बुद्ध हों, महावीर हों, हम अपनी तरफ से सोचते हैं। हम अपने ढंग से सोचते हैं। कोई उपाय भी नहीं है। हमारी भी मजबूरी है। हम वही ढंग जानते हैं, हम वही दृष्टि जानते हैं, हम अपनी आंख से ही तो देखेंगे! किसी और की आंख से कैसे देख सकते हैं?

परमात्मा अगर आपके द्वार पर भी आ जाये तो आप नहीं पहचानेंगे, यह पक्का है। और आप उसको ठहरने भी नहीं देंगे, यह पक्का है। नहीं, लेकिन परमात्मा आपके द्वार पर आता भी नहीं। वह सदा खुला हुआ आकाश है चारों तरफ।

परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा है खुला हुआ आकाश। परमात्मा है स्पेस, चारों तरफ। आप कूद जायें, वह आकाश आपको लीन करने में सदा तत्पर है। आप खड़ें रहें, तो वह आकाश आपको खींचकर जबर्दस्ती लीन नहीं करना चाहता है। क्योंकि उतनी हिंसा

भी अस्तित्व को स्वीकार नहीं है। आप स्वतंत्र हैं रुकने को, कूद जाने को। सागर मौजूद है, नदियों को निमंत्रण भी नहीं देता, बुलाता भी नहीं। नदियां स्वतंत्र हैं, रुक जायें, तालाब बन जायें, छलांग ले लें, सागर में खो जायें।

जिस व्यक्ति को यह खयाल हो रहा हो कि मैं पापी हूं, यह खयाल महत्वपूर्ण है। क्योंकि इस खयाल में ही अहंकार गलता है। जिसको यह खयाल हो रहा हो कि मेरे लिए उसके द्वार न खुले होंगे, वह निश्चिंत रहे, उसके लिए द्वार बिलकुल ही खुले हुए हैं। और बहता रहे और धीरे-धीरे अपने को डुबाता रहे। एक न एक दिन वह घड़ी घटती है, जब भीतर वह जो अहंकार की छोटी-सी टिमटिमाती ज्योति है, वह बुझ जाती है। और जिस दिन वह टिमटिमाती ज्योति बुझती है, उसी दिन हमें पता चलता है उस सूर्य का, जो हमेशा मौजूद था; लेकिन हम अपनी टिमटिमाती ज्योति में इतने लीन थे कि सूर्य की तरफ आंख भी नहीं जाती थी। जब तक मैं न बुझ जाऊं, तब तक मुझे उसका पता नहीं चलता जो चारों तरफ मौजूद है; क्योंकि मैं अपने में ही संलग्न हूं, अपने में ही लगा हुआ हूं। टू मच आक्युपाइड विद मायसेल्फ, सारी व्यस्तता अपने में

लगी है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई, उस दिन गांव में एक आदमी की दाढ़ में दर्द था। सारा गांव जीसस को सूली देने जा रहा है। जीसस कंधे पर अपना क्रास लेकर उस मकान के सामने से निकल रहे हैं, और वह आदमी बैठा है, और जो भी रास्ते से निकलता है वह अपने दाढ़ के दर्द की उससे चर्चा करता है। वह कहता है, आज बड़ी तकलीफ है दांत में। लोग कहते हैं, छोड़ो भी। पता है कुछ? आज मरियम के बेटे जीसस को सूली दी जा रही है। वह आदमी सुनता है, लेकिन सुनता नहीं। वह कहता है, होगा। लेकिन दांत में बहुत दर्द है।

जिस दिन जीसस को सूली हुई उस दिन वह आदमी अपने दांत में ही उलझा था। उस दिन इस पृथ्वी का बड़े से बड़ा चमत्कार घट रहा था, लेकिन वह आदमी अपने दांत के दर्द में उलझा था। और हम सब ऐसे ही लोग हैं जिनकी दाढ़ में दर्द है। अपनी अपनी दाढ़ का दर्द लिये बैठे हैं। चारों तरफ विराट घटना घट रही है, हर पल। वह मौजूद है सब तरफ, लेकिन हमारी दाढ़ दुख रही है। हम उसी में लीन हैं।

और अहंकार बड़ी पीड़ा का घाव है। दाढ़ भी वैसा दर्द नहीं देती, जैसा अहंकार देता है। खयाल है आपको, दाढ़ के दर्द में थोड़ी मिठास भी होती है, दर्द भी होता है, मिठास भी होती है। अहंकार के दर्द में बड़ी मिठास होती है। दर्द होता है, तब हम सोचते हैं छोड़ दें, लेकिन मिठास इतनी होती है कि छोड़ भी नहीं पाते। उस मिठास के कारण हम दर्द को भी झेलते हैं। जब कोई गाली देता है तब चोट लगती है, दर्द होता है। जब कोई फूलमाला गले में डालता है, तब मिठास भर जाती है। सारे शरीर में रोयां-रोयां पुलकित हो जाता है।

ये दोनों बातें एक साथ छोड़नी पड़ेंगी। अगर गाली का दुख छोड़ना है तो फिर फूलमाला का सुख भी छोड़ देना पड़ेगा। वह सुख इतना मीठा है कि हम कितने ही दुख उसके लिए झेल लेते हैं। हजार कांटे हम झेल लेते हैं, एक फूल के लिए। हजार निन्दा झेल लेते हैं, एक प्रशंसा के लिए। मिठास है बहुत। इस मिठास को और पीड़ा को एक साथ देखना होगा और धीरे-धीरे इस 'मैं' के घाव को छोड़ते जाना होगा। एक दिन, जिस दिन 'मैं' नहीं रहता, उस दिन मिलन हो जाता है।

इस 'मैं' के न रहने के दो रास्ते हैं—एक रास्ता है महावीर का, एक है मीरा का। एक रास्ता है कि इस 'मैं' को इतना शुद्ध करो, इतना परिशुद्ध करो कि उसकी शुद्धता के कारण ही वह शून्य होकर तिरोहित हो जाये। एक रास्ता है, यह जैसा है, वैसा ही परमात्मा के चरणों में रख दो। क्योंकि उसके चरण में रख देना आग में रख देना है। वह आग जला लेगी, निखार लेगी। दोनों कठिन हैं, ध्यान रखना।

आमतौर से लोग सोचते हैं कि दूसरी बात सरल मालूम पड़ती है। समर्पण कर दिया, खत्म हुआ मामला। लेकिन समर्पण कर दिया,

समर्पण आसान नहीं है। न तो संकल्प आसान है, न समर्पण आसान है, दोनों एक से कठिन हैं या एक से आसान हैं। कभी भूलकर भी यह मत सोचना कि यह सरल है। सरल का मतलब यह कि जिसमें आपको धोखा देने की सुविधा हो, उसको आप सरल समझते हैं। कहा कि कर दिया समर्पण। लेकिन समर्पण आसान है!

कोई आकर मेरे पास कहते हैं कि मैं सब समर्पण आपको करता हूं। अब आप जो चाहें करें। उनसे मैं कहता हूं, कूद जाओ वुडलैंड के ऊपर से। वे कूदनेवाले नहीं हैं। कह रहे थे कि समर्पण कर दिया। मैं भी कुदानेवाला नहीं हूं, लेकिन क्या भरोसा! कूदनेवाले वे नहीं हैं। जैसे ही मैं यह कहूंगा, वैसे ही वे कहेंगे कि क्या कह रहे हैं आप! वे भूल गये समर्पण।

समर्पण का अर्थ क्या होता है?

बोधिधर्म भारत से चीन गया तो नौ साल तक दीवार की तरफ मुंह रखता था और पीठ लोगों की तरफ रखता था। बोलता था तो मेरे जैसा नहीं। आपकी तरफ पीठ, मुंह दीवार की तरफ। हालांकि बहुत फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि जब मैं बोल रहा हूं, तब आप पीठ मेरी तरफ किये हुए हैं, फिर कोई फर्क नहीं पड़ता। मुंह आपका दीवार की तरफ है।

बोधिधर्म से लोग पूछते हैं, यह क्या करते हो? तो बोधिधर्म कहता कि जब ठीक आदमी आ जायेगा, जो समर्पण करने को तैयार है, तो मुंह उस तरफ कर लूंगा। अभी व्यर्थ के लोगों की शक्ल देखने से फायदा भी क्या है? क्या तुम हो, वह आदमी जो समर्पण करेगा? वह आदमी कहते कि अभी लड़की की शादी करनी है, अभी लड़के बड़े हो रहे हैं, जरा व्यवस्था कर लें, पिता बूढ़े हैं, उनकी सेवा करनी है। फिर कभी आयेंगे।

फिर आया हुई-नेंग नाम का आदमी। उसने आकर कुछ कहा नहीं। उसने अपना एक हाथ काटा और बोधिधर्म के सामने कर दिया, और कहा कि तत्काल इस तरफ मुंह करो, नहीं तो गर्दन काटकर रख दूंगा। बोधिधर्म तत्काल लौटा, क्योंकि अभी यह आदमीबोधिधर्म ने कहा, तुम्हारी ही प्रतीक्षा थी, हुई-नेंग। तुम आ गये वक्त पर, तो जो मुझे कहना है, तुमसे कह दूं और अब मैं मर जाऊं। मर मुझे जाना चाहिए बहुत पहले। वक्त मेरा बहुत पहले पूरा हो चुका है। सिर्फ उस आदमी की तलाश में था जिसे मैं जो जान गया हूं, वह दे दूं। क्योंकि हजारों-हजारों वर्षों में कभी कोई आदमी यह जान पाता है। अगर मैं इसे बिना बताये मर जाऊं तो हजारों वर्ष तक अंतराल पड़ जायेगा। तो उस आदमी की तलाश में था, लेकिन मैं यह उससे ही कह सकता हूं जो मरने को तैयार हो। क्योंकि यह एक बहुत गहरी भीतरी मौत है।

हुई-नेंग को शिष्य की तरह स्वीकार किया बोधिधर्म ने और हुई-नेंग को सारी बात कह दी, जो उसे कहनी थी।

क्या है वह बात? अपने को मिटाने की तैयारी का एक मार्ग है समर्पण। लेकिन लोग सोचते हैं, सरल है। बहुत कठिन है। धोखा देने में आपको लगता है, लेकिन बहुत कठिन है। दूसरा भी कोई सरल नहीं है। कोई सोचता है कि ठीक है, अपने को शुद्ध कर लेंगे। चोरी न करेंगे, बेईमानी न करेंगे, यह न करेंगे, वह न करेंगे, शुद्ध कर लेंगे। वह भी इतना आसान नहीं है, क्योंकि चोरी बहुत गहरी है। चोरी आपका कृत्य नहीं है, आप चोर हो। हजारों-हजारों जन्मों तक चोरी की है, वह चोरी का जो जहर है, वह धीरे-धीरे प्राण की तलहटी तक पहुंच गया है। झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वचन होता तो छूट जाता। आपकी आत्मा झूठ हो गयी है। यह कोई कपड़े उतार कर रख देने जैसा मामला नहीं है। चमड़ी खींचकर रखने जैसा मामला है। इतना सब जुड़ गया है।

एक आदमी कहता है, झूठ छोड़ देंगे। झूठ अगर कोई वक्तव्य होते तो हम छोड़ देते; हम झूठ हो गये हैं बोलते-बोलते, करते-करते हम झूठ हो गये हैं।

हमें पता ही नहीं हैं कि हम कब झूठ बोल रहे हैं और कब सच बोल रहे हैं। छोड़ेंगे कैसे? पता भी नहीं चलता कि कब झूठ बोल

128

□

यह निःश्रेयस का मार्ग है

रहे हैं। होश ही नहीं रहता और झूठ निकल जाता है। झूठ हमारी आत्मा हो गयी है।

कहते हैं, हिंसा छोड़ देंगे, इसको नहीं मारेंगे, उसको नहीं मारेंगे। लेकिन हिंसा भीतर है। ऊपर से छोड़ना बहुत कठिन नहीं मालूम पड़ता, लेकिन भीतर गहरे में दबा हुआ है।

बहुत मजेदार घटनाएं घटती हैं। अभी मैं एक हिंदी के विचारक प्रभाकर माचवे का एक लेख पढ़ता था। बहुत मजा आया। क्षमा पर लेख लिखा है। उदाहरण जो दिया है, वह दिया है कि चर्चिल ने महात्मा गांधी के लिए कुछ अपशब्द कहे हैं,

अपशब्द है कि गांधी भी क्या है, एक नंगा फकीर।

तो माचवे ने अपने लेख में लिखा है कि गांधीजी ने चर्चिल को उत्तर दिया—क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं—गांधीजी ने उत्तर दिया कि आपने आधी बात तो ठीक कही कि मैं फकीर हूं। गरीब मुल्क का आदमी हूं और पूरा मुल्क मेरा फकीर है, उनका मैं प्रतिनिधि हूं इसलिए मैं फकीर हूं। लेकिन दूसरी बात आपने जरा ज्यादा कह दी। नंगा होना जरा मुश्किल है। और बाइबिल का एक वचन उद्धृत किया अपने पत्र में, जिसमें जीसस ने कहा है कि परमात्मा के सामने जो पूर्णतया नग्न है, वही नग्न है। तो गांधी ने लिखा है कि परमात्मा के सामने पूर्णतया नग्न होने की हिम्मत मेरी अभी भी नहीं है, लेकिन कभी यह आकांक्षा है कि उसके सामने परिपूर्ण नग्न हो सकूं ताकि आपका वचन पूरा हो जाये।

प्रभाकर माचवे ने लिखा है कि गांधीजी ने ऐसा जवाब देकर चर्चिल को खूब नीचा दिखाया। क्षमा का उदाहरण दे रहे हैं, क्षमा की चर्चा कर रहे हैं, लेकिन नीचा दिखाना नीचा दिखाने का मजा ले रहे हैं।

पता नहीं, गांधी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया या नहीं दिया, लेकिन माचवे को खयाल में भी नहीं आ रहा है कि नीचा दिखाने में क्षमा हो कैसे सकती है! और नीचा दिखाना ही तो क्रोध है। कोई आदमी गाली देकर नीचा दिखा देता है और कोई आदमी क्षमा करके नीचा दिखा दे, तो भी वही बात है। क्योंकि नीचा दिखाना, वही तो हिंसा है।

अब यह तरकीब की बात है कि आप किस तरह नीचा दिखाते हैं। अगर आप किसी को क्षमा करके नीचा दिखा रहे हैं तो खयाल रखना कि यह क्षमा नहीं है। आप ज्यादा चालाक हैं, उस आदमी से ज्यादा बेईमान हैं जो गाली देकर नीचा दिखाता है। वह जरा अकुशल है। उसके ढंग नीचा दिखाने के सीधे-साफ हैं, आपके ढंग चालबाजी के हैं। घूम फिर के हैं।

मुझे पता नहीं कि गांधीजी ने नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया होगा। लेकिन, जैसा माचवे कहते हैं, अगर नीचा दिखाया है तो फिर यह क्षमा नहीं है। तब चर्चिल ज्यादा ईमानदार और गांधी ज्यादा बेईमान हो जाते हैं। क्योंकि चर्चिल को लगता है कि नंगा फकीर, तो वह कहता है कि नंगा फकीर। इसमें ज्यादा ऑनेस्टी है , ज्यादा सच्चाई मालूम पड़ती है। लेकिन, अगर यह नीचा दिखाने के लिए जवाब दिया गया है तो ज्यादा बेईमानी दिखायी पड़ती है।

लेकिन हमें खयाल नहीं आता कि हिंसा बहुत गहरी है, हिंसा बड़ी गहरी है। और अहिंसक होने की चेष्टा में भी प्रगट हो सकती है। और क्रोध बहुत गहरा है और अक्रोध में भी उसकी झलक आ जाती है। अपने को संकल्प से बदलना भी इतना आसान नहीं है।

मार्ग तो दोनों कठिन हैं, फिर भी अगर आप वह मार्ग चुन लें जो आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाता तो असम्भव हो जायेगा; कठिन नहीं, असम्भव। अगर मीरा महावीर का मार्ग चुन ले तो असम्भव है। अपने ही मार्ग पर चले तो कठिन है, सरल नहीं। अगर महावीर मीरा का मार्ग चुन लें तो असभ्मव है, अपने ही मार्ग पर चलें तो कठिन है, सरल नहीं।

सरल तो कुछ भी नहीं हो सकता। इसलिए नहीं कि सत्य कठिन है, बल्कि इसलिए कि लाखों-लाखों जन्मों की हमारी आदतें कठिन हैं, उनको तोड़ना कठिन है। सत्य तो सरल है। सागर में गिरते समय नदी को क्या कठिनाई है? लेकिन नदी को आना पड़ता है हिमालय

की कंदराओं को, पहाड़ों को पार करके, पत्थरों को काटकर। वह जो मार्ग है, वह कठिन है।

हम कठिन हैं। हमें अपने से ही गुजरकर तो सत्य तक पहुंचना है। सत्य है सरल, हम हैं कठिन। अगर हम अपने विपरीत मार्ग चुन लें तो यात्रा है असभ्मव।

अब हम सूत्र को लें।

'जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी पीठ फेर लेता है, सब प्रकार से स्वाधीन भोगों का परित्याग कर देता है, वही सच्चा त्यागी है।'

भोग मौजूद न हो, भोग का उपाय न हो, भोग को भोगने की क्षमता न हो, असहाय हो आदमी, तब भी त्याग कर सकता है। लेकिन महावीर कहते हैं, तब त्याग का कोई भी अर्थ नहीं है। जो भोग ही नहीं सकता, उसके त्याग का क्या अर्थ है? जिसके पास भोगने की सुविधा नहीं, उसके त्याग का क्या अर्थ है? उसका त्याग कोई भी अर्थ नहीं रखता।

त्याग का सभी अर्थ भोग के संदर्भ में है। इसलिए जब बूढ़ा ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है तो उसका कोई भी अर्थ नहीं है। बूढ़ा अपने को धोखा दे रहा है। जवान जब ब्रह्मचर्य का व्रत ले लेता है, तब उसकी कोई सार्थकता है। जब मरता हुआ आदमी अन्न-जल का त्याग कर देता है, जब डाक्टर बता देते हैं कि घड़ी दो घड़ी से ज्यादा नहीं, जब बिलकुल पक्का हो जाता है कि मर ही रहे हैं, तो अन्न-जल का त्याग कर देता है। उसका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन जो जीवन को पूरी तरह अभी स्वस्थ मानकर अन्न-जल का त्याग कर देता है और मृत्यु की प्रतीक्षा करता है आनंदपूर्वक, तो उसका कोई अर्थ है।

आप अपनी बेबसी में जब त्याग करते हैं तो अपने को धोखा दे रहे हैं। अपने को दे सकते हैं, जगत की व्यवस्था को धोखा आप न दे सकेंगे। इसलिए, दो बातें ठीक से समझ लें। एक, बेबसी का नाम त्याग नहीं है, सामर्थ्य का नाम त्याग है। इसलिए त्याग के पहले समर्थ हो जाना अत्यंत जरूरी है और त्याग के क्षण में सामर्थ्य हो तो ही त्याग में त्वरा, तेजी, चमक, ओज उत्पन्न होता है। इसलिए महावीर ने हिंदू व्यवस्था की, जो वर्ण की कल्पना थी, आश्रम की कल्पना थी, वह बिलकुल तोड़ दी। और उन्होंने कहा कि जब प्रखर हो ऊर्जा जीवन को भोगने की, तभी रूपांतरण है। जब सारा जीवन बहता हो कामवासना की तरफ, तभी लौट पड़ना।

जब रिक्त हो जाती हो—जैसे, बंदूक की गोली चल चुकती हो, और फिर अहिंसक हो जाये। चली चलायी बंदूक की कारतूस कहे कि अब मैंने अहिंसा का व्रत ले लिया, उसमें कोई भी सार्थकता नहीं है। लेकिन हम यही करते हैं। या तो हमारे पास सुविधा नहीं होती, तो हम त्याग कर देते हैं, या हम असमर्थ हो जाते हैं, सुविधा भोगने में, तो हम त्याग करते हैं।

त्याग का बिंदु वही है जो भोग का बिंदु। क्षण एक है, क्षण दो नहीं हैं। दिशा अलग है। त्याग अलग दिशा में जाता है, भोग अलग दिशा में, लेकिन है। त्याग और भोग एक ही क्षण की घटनाएं हैं, रुख अलग है, दिशा अलग है; लेकिन जहां से यात्रा होती है, वह बिंदु एक है।

इसलिए महावीर कहते हैं, सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी जो पीठ फेर लेता है। सब प्रकार से स्वाधीन, किसी परतंत्रता में नहीं, किसी परवशता में नहीं, स्वतंत्र रूप से परित्याग कर देता है। परित्याग करना नहीं पड़ता, कर देता है। यह उसका संकल्प है। संकल्प से त्याग फलित होना चाहिए तो सामर्थ्य बढ़ती है, शक्ति बढ़ती है। असमर्थता से त्याग होता है तो दीनता बढ़ जाती है।

'जो मनुष्य किसी परतंत्रता के कारण वस्त्र, गंध, अलंकार, स्त्री और शयन आदि का उपभोग नहीं कर पाता, वह सच्चा त्यागी नहीं कहलाता।'

'सदगुरु तथा अनुभवी वृद्धों की सेवा करना, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत् शास्त्रों का अभ्यास, उनके गम्भीर अर्थ

यह निःश्रेयस का मार्ग है

का चिंतन, चित्त में धृतिरूप अटल शांति प्राप्त करना, यह निःश्रेयस का मार्ग है।'

इस सूत्र के दो हिस्से हैं—एक त्याग क्या है, और त्याग के बाद क्या करने योग्य है। क्योंकि त्याग सिर्फ एक निषेध नहीं है कि छोड़ दिया, बात खत्म हो गयी। छोड़ने से कुछ मिलता नहीं। छोड़ने से सिर्फ बाधाएं कटती हैं। छोड़ने से कुछ उपलब्धि नहीं होती, छोड़ने से भटकाव बचता है। छोड़ने से गलत यात्रा रुकती है, सही यात्रा शुरू नहीं होती। लेकिन

बहुत लोग इस भ्रांति में रहते हैं। बहुत लोग यह सोचते हैं कि अरे मैंने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, धन छोड़ दिया, अब और क्या करना है? हमारे अनेक साधु इसी निषेध में जीते हैं, और हम भी इसी निषेध को बड़ा मूल्य देते हैं कि बेचारे ने पत्नी छोड़ दी, घर छोड़ दिया, बच्चे छोड़ दिये, महात्यागी है।

फिर पाया क्या? यह तो छोड़ दिया, बहुत अच्छा किया, फिर पाया क्या? फिर कुछ मिला भी? और अगर पत्नी छोड़ दी और पत्नी से श्रेष्ठतर कुछ न मिला, तो क्या अर्थ हुआ छोड़ने का? और जिसने पत्नी छोड़ दी, और कुछ मिला नहीं, उसके मन में पत्नी की तरफ दौड़ जारी रहेगी। क्योंकि इस अस्तित्व में खाली जगह को बर्दाश्त करने का उपाय नहीं है। प्रकृति खाली जगह को बर्दाश्त नहीं करती। अंतस जीवन में भी खाली जगह बर्दाश्त नहीं होती। अगर पत्नी की जगह परमात्मा न आ जाये तो पत्नी झांकती ही रहेगी उस खाली जगह में। झांकने की तरकीबें बहुत हो सकती हैं।

अगर धन छोड़ दिया और धर्म भीतर न उठा, तो यह इस छोड़े हुए आदमी की स्थिति त्रिशंकु की हो जायेगी। इसलिए हमारे साधु छोड़ तो देते हैं, पा कुछ नहीं पाते। फिर परेशान होते हैं। और वह इसी आशा में छोड़ देते हैं कि छोड़ने से ही पाना हो जायेगा।

छोड़ना आवश्यक है, पर्याप्त नहीं।

मैंने कुछ छोड़ दिया, इससे जो अगर मैं पकड़े रहता उसे तो जो-जो भूलें मुझसे होतीं, वे नहीं होंगी—यह निषेधक है। लेकिन अब मुझे कुछ करना होगा। तो क्या करना होगा।

महावीर कहते हैं, 'सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा करना।'

महावीर बहुत ही सशर्त बोलते हैं, क्योंकि उन्हें पक्का पता है कि जो सुननेवाले लोग हैं, उन्हें जरा-सा भी छिद्र मिल जाये तो वे इस छिद्र में से अपना बचाव खोज लेते हैं।

तो महावीर वृद्ध की सेवा नहीं बोलते, क्योंकि वृद्ध होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होने से कोई ज्ञानी नहीं होता। सिर्फ बूढ़े होते जाना तो प्राकृतिक घटना है, उसमें आपका काम ही क्या है? लेकिन बूढ़े बूढ़े होकर समझते हैं कि कुछ पा लिया।

सिर्फ खोया है, कुछ पाया नहीं। जिंदगी खोई है। मगर वे समझते हैं कि बूढ़े हो गये तो कुछ पा लिया। सिर्फ बूढ़े हुए हैं, और इस होने में उनका हाथ ही क्या है? उन्होंने तो पूरा चाहा था कि न हों, फिर भी हो गये। अपनी सब कोशिश की थी, फिर भी हो गये। अब इसको ही वे गुण मान रहे हैं, यह भी कोई योग्यता है!

तो महावीर कहते हैं, अनुभवी वृद्धों की सेवा।

बड़ा मुश्किल है! वृद्ध और अनुभवी, बड़ी कठिन बात है। बूढ़े तो सभी हो जाते हैं, अनुभवी सभी नहीं होते। अनुभव का मतलब है—वह जो-जो जीवन में हुआ, वह सिर्फ हुआ नहीं, उससे कुछ सीखा भी गया।

अब एक बूढ़ा आदमी भी अगर क्रोध करता है तो समझना, अनुभवी नहीं है। क्योंकि जिंदगीभर क्रोध करके अगर इतना भी नहीं सीख पाया कि क्रोध व्यर्थ है, तो यह जिंदगी बेकार गयी। एक बूढ़ा आदमी भी अगर उन्हीं क्षुद्र बातों में उलझा है, जिनमें बच्चे उलझे होते हैं, तो समझना कि यह आदमी बूढ़ा तो हो गया, वृद्ध नहीं हुआ। सिर्फ बुढ़ा गया, सिर्फ उमर पक गयी, लेकिन धूप में पक गये, अनुभव में नहीं। लेकिन आप हैरान होंगे कि बूढ़े भी वही करते रहते हैं जो बच्चे करते हैं। हालांकि निश्चित ही बूढ़े करते हैं तो ज्यादा सोफिस्टिकेटेड, ज्यादा ढंग से करते हैं। बच्चे उतने ढंग से नहीं करते। अब बच्चे हैं छोटे, गुड्डा-गुड्डी का विवाह कर रहे हैं। बूढ़े हैं, राम सीता का जुलूस निकाल रहे हैं। बच्चे गुड्डा-गुड्डी के श्रृंगार में लगे हैं, बूढ़े महावीर स्वामी का श्रृंगार कर रहे हैं। लेकिन गुड्डियां बड़ी हो गयी हैं, बदलीं नहीं। विवाह है, बच्चे भी मजा ले रहे थे, गुड्डों का कर रहे थे, अब ये राम-सीता की बारात निकाल रहे हैं। यह बूढ़ों का बचपना है।

बच्चे इतने गम्भीर भी नहीं थे, ये भारी गम्भीर हैं । बस इतना ही फर्क पड़ा है। और बच्चे के गुड्डा-गुड्डी के मामले में कभी कोई हिंदू-मुस्लिम दंगा नहीं होता, इनमें हो जायेगा। बूढ़े ज्यादा उपद्रवी हैं। क्योंकि वे जो भी करते हैं, उसको खेल नहीं मान सकते, क्योंकि उनको उम्र का अनुभव है। लेकिन सीखा उन्होंने कुछ भी नहीं। वहीं के वहीं खड़े हैं। कहीं कोई अंतर न पड़ा। वे वहीं खड़े हैं, उनकी चेतना वहीं खड़ी है, शरीर सिर्फ बूढ़ा हो गया।

इसलिए महावीर ने कहा, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु।

सिर्फ गुरु नहीं कहा, साथ में जोड़ा सदगुरु।

क्या फर्क है गुरु और सदगुरु में?

गुरु से मतलब तो सिर्फ इतना ही है कि जो आपको खबर दे दे, सूचना दे दे, शास्त्र समझा दे। उसके स्वयं के अस्तित्व से इसका कोई जरूरी संबंध नहीं है—शिक्षक। सदगुरु से मतलब है, जो स्वयं शास्त्र है। जो-जो कह रहा है, वह किसी से सुनकर नहीं कह रहा है, यह उसका अपना अनुभव, अपनी प्रतीति है। वेद में ऐसा कहा है, ऐसा नहीं। गीता में ऐसा कहा है इसलिए ठीक होना चाहिए, ऐसा नहीं। महावीर ने ऐसा कहा है, इसलिए ठीक होगा; क्योंकि महावीर ने कहा है, ऐसा नहीं। ऐसा जो कहता है, वह शिक्षक है साधारण। लेकिन जो अपने अनुभव में परखता है और जो अपने अनुभव में देखता है और अगर कभी कहता भी है कि वेद में ठीक कहा है, तो इसलिए कहता है, कि मेरा अनुभव भी कहता है। वेद कहता है, इसलिए ठीक नहीं, मेरा अनुभव कहता है, इसलिए वेद ठीक।

इस फर्क को आप समझ लें।

वेद ठीक कहता है, इसलिए मेरा अनुभव ठीक, यह उधार है आदमी। मेरा अनुभव कहता है इसलिए वेद ठीक या वेद गलत। वह आदमी वहीं खड़ा है ज्ञान के स्त्रोत पर, जहां खुद अपनी आंख से देखता है। किताब नम्बर दो हो जाती है, शास्त्र नम्बर दो हो जाते हैं। गुरु के लिए शास्त्र होता है नम्बर एक, सदगुरु के लिए शास्त्र होता है नम्बर दो। शास्त्र भी प्रामाणिक होता है इसलिए कि मेरा अनुभव शास्त्र की गवाही देता है। मैं हूं गवाह।

जीसस से कोई पूछता है कि पुराने शास्त्रों के संबंध में तुम्हारा क्या कहना है? जीसस कहते हैं, 'आई एम द विटनेस।' बड़ी मजे की बात कहते हैं। मैं हूं गवाह। जो मैं कहता हूं, उससे मिलान कर लेना। मेरे अनुभव से जो बात मेल खा जाये, समझना कि ठीक है। नहीं तो गलत है।

सदगुरु का मतलब है—जो सत् हो गया। जो अब शिक्षाएं नहीं दे रहा है, स्वयं शिक्षा है। गुरु एक श्रृंखला है, एक परम्परा है। गुरु एक काम कर रहा है। सदगुरु एक जीवन है।

इसलिये महावीर ने कहा है, 'सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा।'

बड़े मजे की बात है कि महावीर कहते हैं, सेवा के अतिरिक्त सत्संग नहीं है। क्योंकि सेवा से ही निकट आना होगा। सेवा से ही विनम्रता होगी । सेवा से ही चरणों में झुकना होगा। सेवा से आंतरिकता होगी। सेवा से धीरे-धीरे अहंकार गलेगा। और सदगुरु की उपस्थिति और शिष्य में अगर सेवा की वृत्ति हो, तो वह घटना घट जायेगी, जिसको हम आंतरिक जोड़ कहते हैं। सिर्फ बैठकर सुनने से नहीं हो जायेगा।

महावीर कहते हैं, जिससे सीखो, जिसके जीवन को अपने भीतर ले लेना हो, उसकी सेवा में डूब जाना पड़ेगा।

इसलिए महावीर ने सेवा को बड़ा मूल्य दिया है। लेकिन यह सेवा, जिसको हम आज सर्विस कहते हैं, जिसको हम सेवा कहते हैं, उससे बहुत भिन्न है। अभी हम भी सेवा की बात करते हैं। रोटरी क्लब अपने सिम्बल में लिखता है, सर्विस, सेवा। क्रिश्चियन मिशनरी सेवा कर रही है, सवाच्दयवादी सेवा कर रहे हैं। गरीब की सेवा करो, दुखी की सेवा करो, यह सेवा सामाजिक घटना है। महावीर की सेवा एक साधना का अंग है। महावीर दुखी की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं, गरीब की सेवा के लिए नहीं कह रहे हैं।

महावीर कह रहे हैं, अनुभवी वृद्ध, सदगुरु की सेवा। इस सेवा में और रोटरी क्लब वाली सेवा में □र्क है। दूसरी सेवा केवल एक सामाजिक बात है। अच्छी है, कोई करे, हर्जा नहीं है। लेकिन महावीर की सेवा का अर्थ दूसरा है। वह सेवा एक साधन का अंग है। उसकी सेवा, जो तुमसे सत्य की दिशा में आगे जा चुका है। क्योंकि जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे—और सेवा में झुकना पड़ता है—जब तुम उसकी सेवा के लिए झुकोगे तो उसकी ऊंचाईयों से जो वर्षा हो रही है, वह तुममें प्रवेश कर जायेगी। जब तुम उसके चरणों में सिर रखोगे तो जो उसमें प्रवाहित हो रहा है ओज, वह तुम्हें भी छुएगा और तुम्हारे रोयें-रोयें को स्नान करा जायेगा।

यह बड़ा सोचने जैसा मामला है। इस पर तो बहुत चिंतन करने जैसी बात है। क्योंकि जब भी आप किसी की सेवा कर रहे

हैं तो आपको झुकना पड़ता है। और जिसकी आप सेवा कर रहे हैं, वह आपमें प्रवाहित हो सकता है।

यह खतरनाक भी है। क्योंकि अगर आप ऐसे आदमी की सेवा कर रहे हैं, जो आपसे चेतना की दृष्टि से नीचे है, तो आपको नुकसान होगा। अगर आपसे ऊंची चेतना के व्यक्ति से आपको लाभ होगा तो आपसे नीची चेतना के व्यक्ति से आपको नुकसान होगा। इसलिए हमने कहा है, वृद्ध जवानों की सेवा न करें। इसलिए हमने कहा है कि मां-बाप बेटे के पैर न छुएं। और बेटा छुए। इसके पीछे कुल एक ही कारण है कि श्रेष्ठतर प्रवाहित हो, कहीं निकृष्ट श्रेष्ठ के साथ संयुक्त न हो, उसे विकृत और अशुद्ध न करे।

इसलिए एक बहुत महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में आपको कहूं। यही कारण है कि भारत ने ईसाइयत जैसी सेवा की धारणा विकसित नहीं की, क्योंकि भारत को सेवा के संबंध में आंतरिक गहरे अनुभव हैं। इसलिए पश्चिम में बहुत लोग हैरान होते हैं कि भारत के धर्म कैसे हैं; गरीब की सेवा की कोई बात ही नहीं है, बीमार की सेवा की कोई बात नहीं है; रुग्ण की, कोढ़ी की सेवा की कोई बात नहीं है। यह सेवा के लिए, इनके बाबत कोई नहीं इनके पास मामला, ये धर्म कैसे हैं?

गांधीजी बहुत प्रभावित थे ईसाइयत से, इसलिए उन्होंने कहा कि सेवा धर्म है। हमने कभी नहीं कहा इस मुल्क में, न महावीर ने, न बुद्ध ने; और ये सब सेवा को धर्म कहनेवाले लोग महावीर के ऐसे वचनों को उठाकर गलत अर्थ निकालते हैं। महावीर जब सेवा शब्द का उपयोग कर रहे हैं तो उनका प्रयोजन ही अलग है। हमने जानकर यह बात नहीं कही है।

शूद्र को हमने नीचे रखा है, ब्राह्मण को ऊपर रखा है, इस आशा में कि शूद्र ब्राह्मण की सेवा करे, ब्राह्मण शूद्र की नहीं। बहुत अजीब लगता है, आज की चिंतन की हवा में बहुत अजीब लगता है कि यह क्या बात हुई? अगर ब्राह्मण सच्चा ब्राह्मण है, तो शूद्र की सेवा करे, क्योंकि सेवा से ही वह ब्राह्मण होगा। लेकिन हमारे लिए मूल्य शूद्र और ब्राह्मण का सामाजिक नहीं है, आत्मिक है। हम शूद्र उसको कहते हैं जो शरीर में जी रहा है, जिसका और कोई जीवन नहीं है। और ब्राह्मण हम उसको कहते हैं जो ब्रह्म में जी रहा है। जिसका और कोई जीवन नहीं है। तो जो ब्रह्म में जी रहा है, उसकी कोई भी सेवा करे तो उसे लाभ होगा।

सेवा का अर्थ है— झुक जाना। और जो झुकता है, वह गड्ढा बन जाता हैं। और जो गड्ढा बन जाता है, उसमें वर्षा संगृहीत हो जाती है।

तो महावीर कहते हैं, सदगुरु अनुभवी वृद्धों की सेवा। मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।

मगर मूर्खों का संसर्ग बड़ा प्रीतिकर होता है। एक तो फायदा होता है कि मूर्खों के बीच आप बुद्धिमान मालूम पड़ते हैं, इसलिए हर आदमी मूर्खों की तलाश करता है। जब तक आपको दो-चार मूर्ख न मिल जायें, आप बुद्धिमान नहीं। और कोई उपाय भी तो नहीं बुद्धिमानी का, एक ही उपाय है कि दो चार मूर्ख इकट्ठे कर लो।

इसलिए कोई पति अपने से बुद्धिमान पत्नी पसंद नहीं करता। अपने से ज्यादा पढ़ी लिखी हो, ज्यादा समझदार हो तो पसंद नहीं करता। क्योंकि फिर पति को मजा नहीं आयेगा बुद्धिमान होने का। मूर्ख पत्नी पसंद की जाती है। फिर निश्चित, मूर्ख जो कर सकती है, वह करती है। वह सहा जा सकता है, लेकिन अहंकार को रस आता है।

हम सब ऐसी कोशिश करते हैं कि अपने से छोटे तल के लोग हमारे आसपास इकट्ठे हो जायें। उसमें रस आता है। मजा आता है।

क्या मजा है उनके बीच? वह जो अकबर के सामने बीरबल ने किया था, एक लकीर खींच दी थी, छोटी लकीर के सामने एक बड़ी लकीर खींच दी थी। और अकबर ने कहा था कि इस लकीर को बिना छुए छोटा कर दो। तो बीरबल ने एक बड़ी लकीर नीचे खींच दी थी। दरबार में कोई भी उसे छोटा न कर सका, क्योंकि सभी ने कहा, बिना छुए कैसे छोटा कर दें? जब छोटा करना है तो छूना पड़ेगा। बीरबल ने कहा, छूने की कोई जरूरत नहीं। एक बड़ी लकीर खींच दी। लकीर छोटी हो गयी।

हम सब होशियार हैं उतने, जितना बीरबल था।

अपने को बुद्धिमान कैसे करना, सीधा रास्ता है। अपने से छोटी लकीरें आसपास इकट्ठी कर लो, आप बड़ी लकीर हो गये।

महावीर कहते हैं, मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना। क्योंकि वह संसर्ग मंहगा है। आपकी लकीर बड़ी भला दिखायी पड़े, लेकिन वह जो छोटी लकीरें इकट्ठी हो गयी हैं, वे धीरे-धीरे आपकी लकीर को और छोटा करती जायेंगी। क्योंकि जिनके साथ आप रहते हैं, आप धीरे-धीरे उन जैसे होने लगते हैं। साथ संक्रामक है। जिनके साथ आप रहते हैं, धीरे-धीरे वे आपको बदलने लगते हैं। उनसे बचना मुश्किल है। इतना मुश्किल है बचना कि साथ जिनके रहते हैं, उनसे तो बचना मुश्किल है ही, जिनके आप दुश्मन हो जाते हैं उन तक से बचना मुश्किल है, क्योंकि उनका भी संग-साथ हो जाता है भीतर।

मुहम्मद अली जिन्ना गवर्नर जनरल हुए। तो उन्होंने, जैसा कि गवर्नर जनरल्स को करना चाहिए, एक अंग्रेज एडीसी रखा। वह अंग्रेज एडीसी जिन्ना को बहुत समझाया कि आपकी सुरक्षा का ठीक इंतजाम होना चाहिए, और आपके बंगले के चारों तरफ बड़ी दीवार होनी चाहिए। जिन्ना ने कहा कि मैं कोई तुम्हारे गवर्नर जनरल जैसा गवर्नर जनरल नहीं हूं। मैं एक लोकप्रिय नेता हूं। मुझे कौन मारनेवाला है? कोई जरूरत नहीं है बड़ी दीवार की और सुरक्षा की। मेरा कोई दुश्मन नहीं है। मैं पाकिस्तान का जन्मदाता हूं। तुम्हारे गवर्नर जनरल को दीवार की जरूरत थी, क्योंकि तुम हमारे दुश्मन थे, लेकिन मुझे कोई जरूरत नहीं है।

एडीसी बहुत समझाता रहा, लेकिन जिन्ना नहीं माना। जिस दिन गांधी की हत्या हुई और खबर पहुंची—जिन्ना अपने बगीचे में बैठा था। जैसे ही खबर मिली, जिन्ना चिंतित हो गये, परेशान हो गये। उठकर उसने अपने एडीसी से कहा कि पूरी खबर का पता लगाओ, क्या हुआ है? और सीढ़ियां चढ़ते वक्त उसने लौटकर एडीसी से कहा, और ठीक है, वह जो दीवार के संबंध में तुम कहते थे, उसका इन्तजाम कर लो।

जिन्ना जीवनभर गांधी जो करें, उससे ही बंधा हुआ चलते रहे। चाहे हां करें, चाहे न। जिन्ना तब तक कोई उत्तर न देगा, जब तक गांधी क्या कहते हैं, यह पता न चल जाये। सारी पालिटिक्स इतनी थी जिन्ना की। वह गांधी की दुश्मनी से तय होती थी।

यह बड़े मजे की बात है, जिंदगीभर भी जिन्ना गांधी की दुश्मनी से तय हुआ। और गांधी की मौत से भी जिन्ना तय हुआ। उस दिन के बाद फिर जिन्ना कभी भी नहीं समझा कि मैं लोकप्रिय नेता हूं, सुरक्षा की कोई जरूरत नहीं। फिर दीवार खड़ी हो गयी और सारा इंतजाम कर लिया गया।

यह बड़ी हैरानी की बात है कि गांधी और जिन्ना में इतनी दुश्मनी! लेकिन यह दुश्मनी भी एक दूसरे को तय करती है। मित्रता तो एक दूसरे को बनाती है, दुश्मनी तक बनाती होगी, दुश्मनी भी एक तरह की मित्रता है। जिनके साथ हम हैं, या जिनके विरोध में हम हैं, वे हमें निर्मित करते हैं।

इसलिए महावीर कहते हैं, 'मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना, एकाग्र चित्त से सत् शास्त्रों का अभ्यास करना।

मूर्ख कौन है? क्या वे जो कुछ नहीं जानते? वे मूर्ख नहीं हैं, वे अज्ञानी हैं। उनको मूर्ख कहना उचित नहीं है। मूर्ख वे हैं, जो बहुत कुछ जानते हैं बिना कुछ जाने। उनसे बचना।

अब एक आदमी आपको बता रहा है कि ईश्वर है, और उसे कोई पता नहीं। उससे पहले पूछना कि तुझे पता है? उसे कुछ पता नहीं है। वह आपको बता रहा है कि ईश्वर है। एक आदमी बता रहा है, ईश्वर नहीं है। उससे पूछना, तूने पूरी-पूरी खोज कर ली है?

एक ईसाई पादरी अभी मुझे मिलने आये थे। उन्होंने कहा कि गाड इज इनडिफाइनेबल, ईश्वर अपरिभाष्य, अनंत, असीम, उसकी कोई थाह नहीं ले सकता। मैंने उनसे पूछा, यह तुम थाह लेकर कह रहे हो, कि बिना थाह लिए ही कह रहे हो? वह जरा मुश्किल में पड़ गये। मैंने कहा कि अगर तुमने पूरी थाह ले ली है, तब तुम कह रहे हो कि अथाह है, तब तुम्हारा वचन बिलकुल गलत है। क्योंकि थाह तुम ले चुके। अगर तुम कहते हो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया तो तुम इतना ही कहो कि मैं पूरी थाह नहीं ले पाया। पता नहीं, एक कदम आगे थाह हो! तुम अथाह कैसे कह रहे हो?

और तुम कहते हो कि ईश्वर की कोई परिभाषा नहीं हो सकती, यह परिभाषा हो गयी। तुमने परिभाषा कर दी। तुमने ईश्वर का एक गुण बता दिया कि उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती। यह तुम क्या कह रहे हो? तो वह फौरन उन्होंने कहा कि

बाइबिल में ऐसा लिखा है। मैंने कहा, बाइबिल में लिखा होगा। तुम्हें पता है?

वहीं सारी बात अटकती है। दुनिया ज्ञानी मूर्खों से भरी है, लनच्ड इडियट्स से। उनका कोई अंत ही नहीं है। पढ़े-लिखे गंवार, उनका कोई अंत ही नहीं है, उनसे दुनिया भरी है। और ध्यान रखना, गैर पढ़े-लिखे गंवार तो अपने आप कम होते जा रहे हैं, क्योंकि सब शिक्षित होते जा रहे हैं। अब गैर पढ़े-लिखे गंवार खोजना जरा मुश्किल मामला है। अब तो पढ़े-लिखे गंवार ही मिलेंगे। और एक खोजो, हजार मिलते हैं।

महावीर कहते हैं, 'मूर्खों के संसर्ग से दूर रहना।'

जिनको कुछ पता नहीं है और जिनको यह वहम है कि पता है, वह तुम्हें नुकसान पहुंचा सकते हैं।

'एकाग्र चित्त से सत् शास्त्रों का अभ्यास करना।'

शास्त्र, वह भी सत् हो। सत् का अर्थ इतना है— शास्त्र जिसका रस पांडित्य में न हो, सत्य में हो, जिसका रस विवाद में न हो, साधना में हो। शास्त्र, जो आपको कोई सिद्धांत, कोई संप्रदाय देने में उत्सुक न हो, जीवन रूपांतरित करने का विज्ञान देने में उत्सुक हो। तो ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको सिद्धांत मिल सकते हैं, और ऐसे शास्त्र हैं जिनसे आपको जीवन-रूपांतरण की विधि मिल सकती है। सत शास्त्र वही है जिससे आपको विधि मिलती है। असत शास्त्र वही है जिससे आपको बकवास मिलती है। और बकवास लोग सीखकर बैठ जाते हैं। और जब बकवास बिलकुल मजबूत हो जाती है तो वह भूल ही जाते हैं कि हम क्या कर रहे हैं। यह जो खोपड़ी में भर लिया, यह कोई आत्मा का रूपांतरण नहीं होनेवाला है।

महावीर का जोर है, सत् शास्त्रों का अभ्यास करना एकाग्र चित्त से, क्यों? क्योंकि अगर कोई आदमी एक सत् शास्त्र को पढ़ते वक्त पच्चीस सत् शास्त्रों को सोचता रहे, तो चित्त एकाग्र नहीं होगा। जब पतंजलि को पढ़ना तो सारे जगत को भूल जाना। पतंजलि को ही पढ़ना। और जब महावीर को पढ़ना तो महावीर को ही पढ़ना फिर सारे जगत को, पतंजलि को बिलकुल भूल जाना। लेकिन हमारी तकलीफ यही है कि जो हमने और जान लिया है, वह हमेशा बीच में खड़ा हो जाता है। चित्त कभी एकाग्र नहीं हो पाता, और शास्त्र से कोई संबंध न जुड़ेगा, अगर चित्त पूरी तरह एकाग्र न हो।

सारे जगत को भूल जाना। फिर यही समझना कि पतंजलि तो पतंजलि, बुद्ध तो बुद्ध और महावीर तो महावीर । फिर सब कुछ भी नहीं है और। फिर इसमें ही पूरे डूब जाना। इस डुबकी से ही सम्भव होगा कि जीवन बदले।

'गंभीर अर्थ का चिंतन करना।'

हम अर्थों का चिंतन नहीं करते। हम केवल अर्थों के साथ विवाद करते हैं। आपने अगर मुझे सुना तो आप इसकी फिक्र नहीं करते कि जो मैंने कहा है, उसके क्या गम्भीर से गम्भीर अर्थ हो सकते हैं। आप इसकी फिक्र नहीं करते। आप तो अर्थ अभी समझ गये। गम्भीर का और कोई सवाल नहीं है। अब यह अर्थ ठीक है या गलत, इसका आप विचार करते हैं। सत्य के संबंध में ठीक और गलत का विचार करने से कोई हल होनेवाला नहीं है। क्या कहा है, उसमें कितने और गम्भीर उतरा जा सकता है, कितने गहरे जाया जा सकता है।

महावीर जैसे व्यक्तियों की वाणी एक पर्त नहीं होती, उसमें हजार पर्तें होती हैं। इसलिए हमने पाठ पर बहुत जोर दिया है। हम नहीं कहते कि पढ़ लेना और किताब रख देना। हम कहते हैं, फिर-फिर पढ़ना। फिर-फिर पढ़ने का क्या मतलब है? फिर-फिर पढ़ने का मतलब है कि कल मैंने एक अर्थ देखा था, आज फिर से पढूंगा। फिर खोजूंगा कि क्या और भी कोई अर्थ हो सकता है, और भी कोई गहरा अर्थ हो सकता है? और महावीर जैसे लोगों की वाणी में जीवनभर अर्थ निकलते आयेंगे। आप जितने गहरे होते जायेंगे, उतने गहरे अर्थ आपको मिलते जायेंगे। जिस दिन आपको अपने भीतर आखिरी गहराई मिलेगी, उस दिन महावीर का आखिरी अर्थ आपको पता चलेगा। इसलिए भाषा कोश में अर्थ मत खोजना, अपने भीतर की गहराई में, एकाग्र ध्यान की गहराई में अर्थ को खोजना।

'चित्त में धृतिरूप अटल शांति और धैर्य रखना।'

जल्दी मत करना, क्योंकि यात्रा है लम्बी। इसमें ऐसा मत करना कि आज पढ़ लिया और बात खत्म हो गयी, आज सुन लिया और सब हो गया। यह यात्रा लम्बी, अनंत है यात्रा। तो बहुत धैर्यपूर्वक गति करना। प्रतीक्षा करना, शांति रखना।

'यही निःश्रेयस का मार्ग है।'

मोक्ष का मार्ग यही है। छोड़ना, जो गलत है। खोजना, जो सही है और धैर्य रखना अनंत। श्रम, साधना, पर अत्यंत धैर्य से, अत्यंत शांति से।

यह मत सोचना कि अभी मिल जायेगा सत्य। अभी भी मिल सकता है। लेकिन अभी उन्हें मिल सकता है जो अनंत तक प्रतीक्षा करने को तैयार हैं। उन्हें अभी इसी क्षण भी मिल सकता है, क्योंकि उतने धैर्य की क्षमता अगर हो, कि अनंत काल तक रुका रहूंगा, तो अभी भी मिल सकता है। वही धैर्य मिलने का कारण बन जाता है। लेकिन हम जल्दी में होते हैं।

मेरे पास लोग आते हैं और कहते हैं, दो दिन हो गये, ध्यान करते। अभी तक कुछ दर्शन हुआ नहीं। इनक्योरेबल। इनका कोई इलाज भी करना मुश्किल है। दो दिन! काफी समय हो गया! अगर बहुत उन्हें समझा ओ बुझाओ तो वे चार दिन कर लेंगे! कितने जन्मों की बीमारी है? कितना कचरा है इकट्ठा?

अभी म्युनिसिपल के कर्मचारी हड़ताल पर चले गये थे, तो दो-चार दिन में कितना कचरा इकट्ठा हो गया था? और आप कितने दिन से हड़ताल पर हैं, आपको पता है?

थोड़ा उसका ध्यान करें कि कितने दिन से हड़ताल पर हैं! आत्मा कचरा ही कचरा हो गयी है।

थोड़ा धैर्य! थोड़ी शांति! लेकिन, जो भी गलत को छोड़ने को तैयार है और ठीक को पकड़ने के लिए साहस रखता है; धैर्य, श्रम, प्रतीक्षा कर सकता है; उसकी प्रार्थना एक दिन निश्चित ही पूरी हो जाती है।

आज इतना ही।

पांच मिनट कीर्तन करेंगे।

आप ही हैं अपने परम मित्र

आठवां प्रवचन

दिनांक 20 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

139

आत्म-सूत्र : 1

अप्पा कत्ता विकात्त य,
दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च,
दुप्पट्ठि सुपट्ठिओ।।
पंचिन्दियाणि कोहं,
माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं,
सव्वमप्पे जिए जियं।।

आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख का नाशक है। अच्छे मार्ग पर चलनेवाला

आत्मा मित्र है और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु।

पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया, और लोभ तथा सबसे अधिक दुजच्य अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

पहले कुछ प्रश्न।

एक मित्र ने पूछा है कि संकल्प और समर्पण के मार्गों को न मिलाया जाये, ताल-मेल न बिठाया जाये, ऐसा आपने कहा। लेकिन, महावीर-वाणी की चर्चा जिससे शुरू हुई उस नमोकार मन्त्र के शरण-सूत्र में समर्पण का स्थान है। और आप भी जिस भांति ध्यान के प्रयोग करवाते हैं, उसमें संकल्प से शुरुआत होती है और चौथे चरण में समर्पण पर समाप्ति। तो इन दोनों में कोई ताल-मेल है या नहीं?

संकल्प और समर्पण में तो कोई ताल-मेल नहीं है साधना की पद्धतियों में; समर्पण की अपनी पूरी पद्धति है, संकल्प की अपनी पूरी पद्धति है। लेकिन मनुष्य के भीतर ताल-मेल है। इसे थोड़ा समझना पड़े।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो पूरा संकल्पवान हो। ऐसा मनुष्य भी खोजना मुश्किल है, जो पूरा समर्पण की तैयारी में हो। मनुष्य तो दोनों का जोड़ है। एम्फेसिस का फर्क हो सकता है। एक व्यक्ति में संकल्प ज्यादा है, समर्पण कम, एक व्यक्ति में समर्पण ज्यादा, संकल्प कम!

इसे हम ऐसा समझें।

जैसा मैंने कहा कि समर्पण स्त्रैण चित्त का लक्षण है, संकल्प पुरुष चित्त का। लेकिन मनसविद कहते हैं कि कोई पुरुष पूरा पुरुष नहीं, कोई स्त्री पूरी स्त्री नहीं। आधुनिकतम खोजें कहती हैं कि हर मनुष्य के भीतर दोनों हैं। पुरुष के भीतर छिपी हुई स्त्री है, स्त्री के भीतर छिपा हुआ पुरुष है। जो फर्क है स्त्री और पुरुष में, वह प्रबलता का फर्क है, एम्फैसिस का फर्क है। इसलिए पुरुष स्त्री में आकर्षित होता है, स्त्री पुरुष में आकर्षित होती है।

कार्ल गुस्ताव जुंग का महत्वपूर्ण दान इस सदी के विचार को है। उनकी अन्यतम खोजों में जो महत्वपूर्ण खोज है, वह है कि प्रत्येक पुरुष उस स्त्री को खोज रहा है, जो उसके भीतर ही छिपी है, और प्रत्येक स्त्री उस पुरुष को खोज रही है, जो उसके भीतर ही छिपा है। और इसलिए यह खोज कभी पूरी नहीं हो पाती।

जब आप किसी को पसन्द करते हैं तो आपको पता नहीं कि पसंदगी का एक ही अर्थ होता है कि आपके भीतर जो स्त्री छिपी है या पुरुष छिपा है, उससे कोई पुरुष या स्त्री बाहर मेल खा रही है; इसलिए आप पसन्द करते हैं। लेकिन वह मेल पूरा कभी नहीं हो पाता, क्योंकि आपके भीतर जो प्रतिमा छिपी है, वैसी प्रतिमा बाहर खोजनी असम्भव है। इसलिए कभी थोड़ा मेच बैठता है, लेकिन फिर मेल टूट जाता है। या कभी थोड़ा मेल बैठता है, थोड़ा नहीं भी बैठता है। इसी के बीच बाहर सब चुनाव है। लेकिन चुनाव की विधि क्या है? हमारे भीतर एक प्रतिमा है, एक चित्र है, उसे हम खोज रहे हैं कि वह कहीं बाहर मिल जाये।

तो एक तो उपाय यह है कि हम उसे बाहर खोज लें, जो कि असफल ही होनेवाला है। और एक सुख है, जो मेरे भीतर की स्त्री से बाहर की स्त्री का मेल हो जाये तो मुझे मिलता है। वह क्षणभंगुर है। फिर एक और मिलन भी है कि मेरे भीतर का पुरुष मेरे भीतर की स्त्री से मिल जाये। वह मिलन शाश्वत है।

सांसारिक आदमी बाहर खोज रहा है, योगी उस मिलन को भीतर खोजने लगता है। और जिस दिन भीतर की दोनों शक्तियां मिल जाती हैं, उस दिन पुरुष-पुरुष नहीं रह जाता, स्त्री-स्त्री नहीं रह जाती। उस दिन दोनों के पार चेतना हो जाती है। उस दिन व्यक्ति खण्डित न होकर अखण्ड आत्मा हो जाता है।

तो जब हम कहते हैं कि संकल्प का मार्ग, तो इसका मतलब हुआ कि जो व्यक्ति बहुलता से पुरुष है, गौण रूप से स्त्रैण है, उसका मार्ग है। लेकिन उसके मार्ग पर भी थोड़ा-सा संकल्प, संकल्प के पीछे थोड़ा-सा समर्पण होगा, क्योंकि वह जो छाया की तरह उसकी स्त्री है, उसका भी अनुदान होगा। और जो व्यक्ति समर्पण के मार्ग पर चल रहा है, उसके भी भीतर छिपा हुआ पुरुष है, और छाया की तरह संकल्प भी होगा। इसका क्या—व्यक्ति के भीतर क्या ताल-मेल है? साधनाओं में कोई ताल-मेल नहीं है। इसे ऐसा समझें।

जब कोई व्यक्ति समर्पण के लिए तय करता है, तब यह तय करना तो संकल्प है। अगर आप तय करते हैं कि किसी के लिए सब कुछ समर्पित कर दें, तो अभी समर्पण का यह जो निर्णय आप ले रहे हैं, यह तो संकल्प है। इतने संकल्प के बिना तो समर्पण नहीं होगा। जो व्यक्ति तय करता है कि मैं संकल्प से ही जीऊंगा, जो निर्णय करता हूं, उसको ही श्रम से पूरा करूंगा, यह संकल्प से शुरुआत हो रही है। लेकिन जो निर्णय किया है वह निर्णय कुछ भी हो सकता है। उस निर्णय के प्रति पूरा समर्पण करना पड़ेगा।

जो संकल्प से शुरू करता है उसे भी समर्पण की जरूरत पड़ेगी। जो समर्पण से शुरू करता है उसे भी संकल्प की जरूरत पड़ेगी, लेकिन वे गौण होंगे, छाया की तरह होंगे। व्यक्ति तो दोनों का जोड़ है, स्त्री-पुरुष का। इसलिए क्या महत्वपूर्ण है आपके भीतर, वह आपकी साधना-पद्धति होगी। लेकिन दोनों साधना पद्धतियां अलग होंगी। दोनों के मार्ग, व्यवस्थाएं, विधियां अलग होंगी।

मैं जिस साधना पद्धति का प्रयोग करता हूं, वह संकल्प से शुरू होती है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है। लेकिन कोई भी समर्पण संकल्प से ही शुरू हो सकता है, लेकिन संकल्प सिर्फ शुरुआत का काम करता है। और धीरे-धीरे समर्पण में विलीन हो जाना होता है। लेकिन पद्धति वह समर्पण की है।

पूछा जा सकता है कि फिर जो लोग संकल्प की ही पद्धति पर जानेवाले हैं, उनका इस पद्धति में क्या होगा? संकल्प की पद्धति पर जानेवाले लोग कभी लाख में एकाध होता है, करोड़ में एकाध होता है। क्योंकि संकल्प की पद्धति में जाने का अर्थ है, अब किसी का कोई भी सहारा न लेना। संकल्प के मार्ग पर वस्तुतः गुरु की भी कोई आवश्यकता नहीं है, शास्त्र की भी कोई आवश्यकता नहीं है, विधि की भी कोई आवश्यकता नहीं है, इसलिए कभी करोड़ में एक आदमीऔर यह आदमी भी इसलिए संकल्प पर जा सकता है कि अनेक-अनेक जीवन में उसने समर्पण के मार्ग पर इतना काम कर लिया है कि अब बिना गुरु के, बिना विधि के, वह स्वयं ही आगे बढ़ सकता है।

इस सदी में कृष्णमूर्ति ने संकल्प के मार्ग की प्रबलता से बात की है। इसलिए वे गुरु को इनकार करते हैं, शास्त्र को इनकार करते हैं, विधि को इनकार करते हैं। कृष्णमूर्ति जो कहते हैं, बिलकुल ही ठीक है, लेकिन जिन लोगों से कहते हैं, उनके बिलकुल काम का नहीं है। और इसलिए खतरनाक है।

कृष्णमूर्ति शायद ही किसी व्यक्ति को मार्ग दे सके हों। हां, बहुत लोग जो मार्ग पर थे, उनको वे विचलित जरूर कर सके हैं। होगा

142

ही, अगर करोड़ में एक व्यक्ति संकल्प के मार्ग पर चल सकता है तो संकल्प की चर्चा खतरनाक है। क्योंकि वह जो करोड़ हैं, जो नहीं चल सकते, वे भी सुन लेंगे। और संकल्प के मार्ग का जो बड़ा खतरा यह है कि अहंकारियों को बड़ा प्रीतिकर लगता है कि ठीक है—न गुरु की जरूरत, न विधि की, न शास्त्र की—मैं काफी हूं। यह अहंकार को बहुत प्रीतिकर लगता है।

तो करोड़ लोग अगर सुनेंगे, उनमें से एक चल सकता है। और बड़े मजे की बात यह है कि वह एक जो चल सकता है, शायद ही कृष्णमूर्ति को सुनने जायेगा। वह जायेगा ही क्यों? वह जो चल सकता है, वह जायेगा नहीं क्योंकि वह चल ही सकता है। और जो नहीं चल सकते हैं, वे ही जायेंगे। और सुनकर उन सबको यह भ्रम पैदा होगा कि हम अकेले ही चल सकते हैं। न किसी गुरु की जरूरत, न किसी शास्त्र की, न विधि की। वे केवल भटकेंगे और परेशान होंगे। क्योंकि अगर उन्हें गुरु की जरूरत न होती तो वे कृष्णमूर्ति के पास भी न आये होते। यह किसी की तलाश में उनका आना ही बताता है कि वे अपनी तलाश में अकेले नहीं जा सकते। लेकिन उनके अहंकार को भी तृप्ति मिलेगी क्योंकि गुरु बनाने में विनम्र होना जरूरी है। गुरु इनकार करने में कोई विनम्रता की आवश्यकता नहीं।

विधि स्वीकार करने में कुछ करना पड़ेगा। कोई विधि नहीं है तो कुछ करने का सवाल ही समाप्त हो गया। काहिल, सुस्त, अहंकारी, कृष्णमूर्ति से प्रभावित हो जायेंगे। और वे बिलकुल गलत लोग हैं। उनसे तो यह बात की ही नहीं जानी चाहिए।

और बड़ा मजा यह है कि कृष्णमूर्ति भी जहां पहुंचे हैं, बिना गुरु के नहीं पहुंचे हैं। इस सदी में किसी व्यक्ति को अधिकतम गुरु मिले हों तो वह कृष्णमूर्ति हैं। ऐनीबिसेंट जैसा गुरु, लीडबीटर जैसा गुरु खोजना बहुत मुश्किल है। लेकिन एक उपद्रव हुआ, और वह उपद्रव यह था कि कृष्णमूर्ति ने इन गुरुओं को नहीं खोजा था, इन गुरुओं ने कृष्णमूर्ति को खोजा, यही उपद्र व हो गया। और ये गुरु इतनी तीव्रता में थे, इतनी जल्दी में थे किन्हीं कारणों से—एक बहुत उपद्रवी सदी की शुरुआत हो रही थी और धर्म का कोई निशान भी न बचे, इसका भी डर था। और लीडबीटर और ऐनीबिसेन्ट और उनके साथी इस कोशिश में थे कि धर्म की जो शुभ्रतम ज्योति है, वह कहीं से प्रगट हो सके। तो वे किसी की तलाश में थे कि कोई व्यक्ति पकड़ लिया जाये, जो इस काम के लिए आधार बन जाये, मीडियम बन जाये।

कृष्णमूर्ति को उन्होंने चुना। कृष्णमूर्ति पर वर्षों मेहनत की; कृष्णमूर्ति को निर्मित किया, कृष्णमूर्ति को बनाया, खड़ा किया। कृष्णमूर्ति जो कुछ भी हैं, उसमें निन्यानबे प्रतिशत उनका दान है। लेकिन खतरा यह हुआ कि कृष्णमूर्ति ने स्वयं चुना नहीं था, वे चुने गये थे। और अगर हम अच्छा भी किसी को बनाने की चेष्टा करें, और यह उसकी मज न रही हो, यह स्वेच्छा से न चुना गया हो, तो वह आज नहीं कल अच्छे बनानेवालों के भी विपरीत हो जायेगा। उन्होंने इतनी चेष्टा की कृष्णमूर्ति को निर्मित करने की कि यही चेष्टा कृष्णमूर्ति के मन में प्रतिक्रिया बन गयी। गुरु उनको बोझ की तरह मालूम पड़े, जिन्होंने जबर्दस्ती उन्हें बदलने की कोशिश की, ऐसा उन्हें लगा। वह प्रतिक्रिया बन गयी। वह आज भी उसका सूखा संस्कार उनके ऊपर रह गया। वह आज भी उन्हीं के खिलाफ बोले जाते हैं।

जब कृष्णमूर्ति गुरु के खिलाफ बोलते हैं तो आपको खयाल में भी नहीं आता होगा कि वह लीडबीटर के खिलाफ बोल रहे हैं, ऐनीबिसेंट के खिलाफ बोल रहे हैं। बहुत देर हो गयी उस बात को हुए। लेकिन वह बात जो गुरुओं ने उनके साथ की है, उनको बदलने की जो सतत अनुशासन देने की चेष्टा वह उनको गुलामी जैसी लगी, क्योंकि वह स्वेच्छा से चुनी नहीं गयी थी। उसके खिलाफ उनका मन बना रहा।

वे कहते चले गये हैं। उनको सुननेवाला वर्ग है, और वह वर्ग चालीस साल में कहीं नहीं पहुंच रहा है। वह सिर्फ शब्दों में भटकता रहता है। क्योंकि जो सुनने आता है, वह गुरु की तलाश में है। और जो वह सुनता है वह यह है कि गुरु की कोई जरूरत नहीं है। वह मान लेता है कि गुरु की जरूरत नहीं है और फिर भी कृष्णमूर्ति को सुनने आता चला जाता है। वर्षों तक फिर सुनने की कोई जरूरत नहीं है, अगर गुरु की कोई भी जरूरत नहीं। और यह भी बड़े मजे की बात है कि यह भी एक गुरु से सीखी हुई बात है कि गुरु की कोई भी

जरूरत नहीं है। यह भी खुद की बुद्धि से आयी हुई बात नहीं है। यह भी एक गुरु की शिक्षा है कि गुरु की कोई भी जरूरत नहीं है। इसको भी जो स्वीकार कर रहा है, उसने गुरु को स्वीकार कर लिया।

लेकिन करोड़ों में कभी एकाध आदमी जरूर ऐसा होता है, वह भी अनंत जन्मों की यात्रा के बाद। उसे पता हो या न हो।

कल ही एक मित्र मलाया से मुझे मिलने आये। तो मलाया में एक महत्वपूर्ण घटना घटी है, सुबुह। और मुहम्मद सुबुह नाम के एक व्यक्ति पर अचानक, अनायास प्रभु की ऊर्जा का अवतरण हुआ। लेकिन मुसलमान मानते हैं कि एक ही जन्म है। इसलिए मुहम्मद सुबुह को भी लगा कि मुझ साधारण आदमी पर परमात्मा की कृपा हुई है। उनके माननेवाले भी यही मानते हैं कि यह सिर्फ एक संयोग की बात है कि मुहम्मद सुबुह चुना गया। मैंने उनसे कहा, हम ऐसा नहीं मान सकते। कोई आकस्मिक घटना नहीं होती। सिर्फ मुसलमान थियोलाजी के कारण पाक सुबुह को लगता है कि अचानक मुझ पर प्रभु की कृपा हुई। लेकिन यह जन्मों-जन्मों की साधना का परिणाम है, नहीं तो यह हो नहीं सकता।

तो जब कभी कोई व्यक्ति अचानक भी संकल्प की स्थिति में आ जाता है, तब भी वह यह न सोचे कि गुरुओं का हाथ नहीं है। हजारों-हजारों गुरुओं का हजारों-हजारों जन्मों में हाथ है।

पानी को कोई गरम करता है, सौ डिग्री पर भाप बनता है, निन्यानबे डिग्री तक तो भाप नहीं बनता। लेकिन जिस अंगार ने निन्यानबे तक पहुंचाया है, उसके बिना सौवीं डिग्री भी नहीं आती। सौवीं डिग्री पर भाप बनकर उड़ता हुआ पानी सोच सकता है कि निन्यानबे डिग्री तक तो मैं कुछ भी नहीं था, सिर्फ पानी था। यह जो घटना घट रही है, अचानक घट रही है, लेकिन शून्य डिग्री से सौ डिग्री तक की जो लम्बी यात्रा है, उस यात्रा में न मालूम कितने इच्धन ने साथ दिया है। आखिरी

घटना आकस्मिक घटती मालूम होती है; लेकिन इस जगत में कुछ आकस्मिक नहीं है। नहीं तो विज्ञान का कोई उपाय न रह जायेगा।

हिन्दू चिन्तन इसलिए बहुत गहरा गया है और उसने कहा कि इस जगत में कुछ भी आकस्मिक नहीं है। अगर कृष्णमूर्ति अचानक ज्ञान को उपलब्ध होते हैं तो यह भी अचानक हमें लगता है। या पाक सुबुह पर अचानक प्रभु की अनुकम्पा मालूम होती है, तो यह भी हमें लगता है, अचानक हुआ। जन्मों-जन्मों की तैयारी है।

निन्यानबे प्वाइंट नौ तक भी पानी, पानी ही होता है। फिर एक प्वाइंट और भाप हो जाता है। तो पाक सुबुह को निन्यानबे प्वाइंट नौ तक भी पता नहीं है कि भाप बनने का क्षण करीब आ गया। जब भाप बनेंगे, तभी पता चलेगा। तब एकदम आकस्मिक लगेगा, कि क्षणभर पहले मैं एक साधारण दुकानदार था, कि साधारण कर्मचारी था, एक साधारण आदमी था, बाल-बच्चेवाला, पत्नीवाला, कुछ पता नहीं था, अचानक यह क्या हो गया? यह भी अचानक नहीं है। पीछे कार्य-कारण की लम्बी श्रृंखला है, और वह लम्बी है श्रृंखला, बहुत लम्बी है।

तो हजारों जन्मों के बाद कभी कोई व्यक्ति इस हालत में भी आ जाता है कि स्वयं ही खोज ले। क्योंकि अब एक ही बिन्दु की बात रह जाती है। सब तैयारी पूरी होती है। जरा-सा संकल्प, और यात्रा शुरू हो जाती है। लेकिन यह पहुंचने में भी न मालूम कितने समर्पणों का हाथ है। जो व्यक्ति कभी-कभी अचानक समर्पण को उपलब्ध हो जाता है, उसके पीछे भी न मालूम कितने संकल्पों का हाथ है। जीवन दोनों का गहरे में जोड़ है। पद्धतियां अलग-अलग हैं, व्यक्ति अलग नहीं है।

आज एक व्यक्ति मेरे पास आता है, कहता है कि सब समर्पण करता हूं। लेकिन सब समर्पण करना कितना बड़ा संकल्प है, इसका आपको पता है? इससे बड़ा कोई संकल्प क्या होगा? और यह इतना बड़ा संकल्प कर पाता है, इसका अर्थ हुआ है कि इसने बहुत छोटे-छोटे संकल्प साधे हैं, तभी इस योग्य हुआ है कि इस परम संकल्प को भी करने की तैयारी कर लेता है। पद्धतियों में कोई मेल नहीं है, लेकिन व्यक्ति तो एक है। बल का, एम्फैसिस का फर्क हो सकता है। तो आपको जो खोजना है वह पद्धतियों में मेल नहीं खोजना है। आपको जो खोजना है वह अपनी दशा खोजनी है कि मेरे लिए संकल्प ज्यादा या समर्पण ज्यादा उपयोगी है, और मेरे प्राण किसमें ज्यादा सहजता से लीन हो सकेंगे।

मगर यह भी थोड़ा कठिन है, क्योंकि हम अपने को धोखा देने में कुशल हैं, इसलिए यह कठिन है। पर अगर कोई व्यक्ति आत्म-निरीक्षण में लगे, तो शीघ्र ही खोज लेगा कि क्या उसका मार्ग है। अब जो व्यक्ति चालीस साल से कृष्णमूर्ति को सुनने बार-बार जा रहा हो और फिर भी कहता हो, मुझे गुरु की जरूरत नहीं, वह खुद को धोखा दे रहा है। वह सिर्फ शब्दों का खेल कर रहा है। चुकता बातें कृष्णमूर्ति की दोहरा रहा है और कहता है कि गुरु की मुझे कोई जरूरत नहीं है। गुरु की कोई जरूरत नहीं है तो यह सीखने कृष्णमूर्ति के पास जाने का कोई प्रयोजन नहीं है। अपने तइच एक पल खड़ा नहीं हो सकता। साफ है कि समर्पण इसका मार्ग होगा, मगर अपने को आत्मवंचना कर रहा है।

एक आदमी कहता है कि मैं तो समर्पण में उत्सुक हूं। एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि मैंने तो मेहरबाबा को समर्पण कर दिया था, मगर अभी तक कुछ हुआ नहीं। तो यह समर्पण नहीं है, क्योंकि आखिर में तो यह अभी सोच ही रहा है, कि कुछ हुआ नहीं। अगर समर्पण कर ही दिया था, तो हो ही गया होता। क्योंकि समर्पण से होता है, मेहरबाबा से नहीं होता। इसमें मेहरबाबा से कुछ लेना-देना नहीं है। मेहरबाबा तो सिर्फ प्रतीक हैं। वह कोई भी प्रतीक काम देगा, राम, कृष्ण कोई भी काम दे देगा। उससे कोई मतलब नहीं है। राम न भी हुए हों, न भी हों तो भी काम दे देगा। महत्वपूर्ण प्रतीक नहीं है, महत्वपूर्ण समर्पण है।

यह आदमी कहता है, मैंने सब उन पर छोड़ दिया, लेकिन अभी कुछ हुआ नहीं। लेकिन की गुंजाइश समर्पण में नहीं है। छोड़ दिया, बात खत्म हो गयी। हो, न हो, अब आप बीच में आनेवाले नहीं हैं। तो यह धोखा दे रहा है अपने को। यह समर्पण किया नहीं है। लेकिन सोचता है कि समर्पण कर दिया और अभी हिसाब-किताब लगाने में लगा हुआ है। समर्पण में कोई हिसाब-किताब नहीं है।

अगर हिसाब-किताब ही करना है तो संकल्प; अगर हिसाब-किताब नहीं ही करना है, तो समर्पण।

और जब एक दिशा में आप लीन हो जायें, तो वह जो दूसरा हिस्सा आपके भीतर रह जायेगा छाया की तरह, उसे भी उसी

के उपयोग में लगा दें। इसे उसके विपरीत खड़ा न रखें।

इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।

आपके भीतर थोड़ा-सा संकल्प भी है, बड़ा समर्पण है। आप समर्पण में जा रहे हैं तो अपने संकल्प को समर्पण की सेवा में लगा दें। उसको विपरीत न रखें; नहीं तो वह कष्ट देगा। और आपकी सारी साधना को नष्ट कर देगा। अगर आप संकल्प की साधना में जा रहे हैं और समर्पण की वृत्ति भी भीतर है, जो कि होगी ही, क्योंकि अभी आप अखण्ड नहीं हैं, एक नहीं हैं, बंटे हुए हैं, टूटे हुए हैं। दूसरी बात भी भीतर होगी ही। तो आपके भीतर जो समर्पण है, उसको भी संकल्प की सेवा में लगा दें।

इसलिए महावीर ने शब्द प्रयोग किया है, आत्मशरण। महावीर कहते हैं; दूसरे की शरण मत जाओ, अपनी ही शरण आ जाओ। संकल्प का अर्थ हुआ कि मेरे भीतर जो समर्पण का भाव है, वह भी मैं अपने ही प्रति लगा दूं, अपने को ही समर्पित हो जाऊं। वह भी बचना नहीं चाहिए, वह सक्रिय काम में आ जाना चाहिए।

ध्यान रहे, हमारे भीतर जो बच रहता है बिना उपयोग का, वह घातक हो जाता है, डिस्ट्रक्टिव हो जाता है। हमारे भीतर अगर कोई शक्ति ऐसी बच रहती है जिसका हम कोई उपयोग नहीं कर पाते, तो वह विपरीत चली जाती है। इसके पहले कि हमारी कोई शक्ति विपरीत जाये, उसे नियोजित कर लेना जरूरी है। नियोजित शक्तियां सृजनात्मक हैं, क्रिएटिव हैं। अनियोजित शक्तियां घातक हैं, डिस्ट्रक्टिव हैं,

विध्वंसक हैं।

तो जो संकल्प कर रहा है, उसे समर्पण को भी संकल्प के कार्य में लगा देना चाहिए। हजार मौके आयेंगे जब संकल्प का उपयोग समर्पण के साथ हो सकता है। जैसे एक आदमी ने संकल्प किया कि मैं चौबीस घंटे खड़ा रहूंगा। तो अब संकल्प के प्रति पूरा समर्पित हो जाना चाहिए, अब चौबीस घंटे में एक बार भी सवाल नहीं उठाना चाहिए कि मैंने यह क्या किया, करना था कि नहीं करना था। अब पूरा समर्पित हो जाना चाहिए। अपने ही संकल्प के प्रति अपना पूरा समर्पण कर देना चाहिए। अब चौबीस घंटे यह सवाल नहीं है।

एक आदमी ने संकल्प किया कि किसी के चरण पकड़ लिये, यही आसरा है, तो फिर अब बीच-बीच में सवाल नहीं उठाने चाहिए संकल्प से कि मैंने ठीक किया कि नहीं ठीक किया, कि यह मैं क्या कर रहा हूं। अब सारे संकल्प को इसी समर्पण में डुबा देना चाहिए। तो मेरे भीतर कोई अनियोजित हिस्सा नहीं बचे, तो मैं साधक हूं। अगर अनियोजित हिस्सा बच जाये तो मैं संदेह से घिरा रहूंगा, और अपने को ही अपने ही हाथ से काटता रहूंगा। खुद की विपरीत जाती शक्ति व्यक्ति को दीन कर देती है। खुद की सारी शक्तियां समाहित हो जायें तो व्यक्ति को शक्तिशाली बना देती हैं।

तो जब मैंने कहा, संकल्प और समर्पण के मार्गों का ताल-मेल मत करना, तो मेरा मतलब यह नहीं है कि आप अपने भीतर की शक्तियों का ताल-मेल मत करना। संकल्प के मार्ग पर चलें तो समर्पण के मार्ग की जो विधियां हैं, उनका उपयोग मत करना। आपके भीतर जो समर्पण की क्षमता है, उसका तो जरूर उपयोग करना। जब समर्पण के मार्ग पर चलें तो संकल्प की जो विधियां हैं, वे फिर आपके लिए नहीं रहीं। लेकिन आपके भीतर जो संकल्प की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।

मैं समझता हूं, मेरी बात आपको साफ हुई होगी।

जैसे कि एक आदमी एलोपैथिक दवाएं लेता है, एक आदमी होम्योपैथिक दवाएं लेता है या एक आदमी नेचरोपैथी का इलाज करता है। पैथीज को मिलाना मत। ऐसा मत करना कि एलोपैथी की भी दवा ले रहे हैं, होम्योपैथी की भी दवा ले रहे हैं और नेचरोपैथी भी चला रहे हैं। इसमें बीमारी से शायद ही मरें, पैथीज से मर जायेंगे। बीमारी से बचना आसान है, लेकिन अगर कई पैथी का उपयोग कर रहे हैं तो मरना सुनिश्चित है। जब एलोपैथी ले रहे हों, तो फिर शुद्ध एलोपैथी लेना, फिर बीच में दूसरी चीजों को बाधा मत डालना। जब होम्योपैथी ले रहे हों तो पूरी होम्योपैथी लेना, दूसरी चीज को बाधा मत डालना।

लेकिन चाहे एलोपैथी लें, चाहे होम्योपैथी लें, चाहे नेचरोपैथी लें, भीतर वह जो क्षमता है ठीक होने की, उसका पूरा

उपयोग करना। वह एलोपैथी के साथ जुड़े कि होम्योपैथी के साथ, कि नेचरोपैथी के साथ, यह अलग बात है, लेकिन भीतर वह जो ठीक होने की क्षमता है, उसका पूरा उपयोग करना।

आप कहेंगे, वह तो हम करते ही हैं। जरूरी नहीं है। कुछ लोग ऊपर से दवा लेते रहते हैं और भीतर बीमार रहना चाहते हैं, तब बड़ी मुश्किल हो जाती है। अगर बीमारी आपकी तरकीब है, तो दवा आपको ठीक नहीं कर पायेगी। आप कहेंगे, कौन आदमी बीमार रहना चाहता है? आप गलती में हैं। फिर आपको मनुष्य के मन का कोई भी पता नहीं है।

मनसविद कहते हैं कि सौ में से पचास प्रतिशत बीमारियां बीमारों के आक्रान हैं, वे उन्होंने बुलायी हैं। बचपन से बीमारी का सिखावन हो जाता है। बच्चा अगर स्वस्थ है, घर में कोई ध्यान नहीं देता है। बच्चा अगर बीमार है, सारे घर का केन्नदर हो जाता है। बच्चा समझ लेता है एक बात कि जब भी केन्नदर होना हो, बीमार हो जाना जरूरी है। और बच्चा ही नहीं सीख लेता, आपके भीतर छिपा है वह बच्चा। आपको भी खयाल होगा, पत्नी पति को देखकर कूल्हने लगती है, पहले नहीं कूल्ह रही थी। पति पत्नी को देखकर एकदम सिर पर हाथ रखकर लेट जाता है। अभी बिलकुल ठीक बैठा हुआ था।

क्या, मामला क्या है?

अगर सिर में दर्द था, तो कमरे में जब कोई नहीं था तब भी कूल्हना चाहिए था। अगर कूल्हना बीमारी से आ रहा है, तो किसी से क्या लेना-देना! लेकिन दूसरे को देखकर बीमारी एकदम कम-बढ़ क्यों होती है? रस है बीमारी में।

और मनसविद कहते हैं कि स्त्रियों की तो अधिक बीमारियां उस रस से पैदा होती हैं, क्योंकि उनको और कोई उपाय दिखायी नहीं पड़ता कि कैसे वह पति का आकर्षण कायम रखें। पहले तो उन्होंने सौंदर्य से रख लिया, सजावट से रख लिया। थोड़े दिन में वह बासा हो जाता है, परिचित हो जाता है। तो अब पति का ध्यान किस तरह आकर्षित करना! तो स्त्रियां बीमार रहना शुरू कर देती हैं। उनको भी पता नहीं है कि वह क्यों बीमार हैं? तो वह दवा भी लेंगी, लेकिन बीमारी में रस भी जारी रहेगा। तो दवा भी जारी रहेगी और भीतर से उनका दवा के लिए सहयोग भी नहीं है। वह ठीक होना नहीं चाहतीं। क्योंकि ठीक होते ही, वह जो ध्यान पति दे रहा था, वह विलीन हो जायेगा। जब पत्नी बीमार है तो पति खाट के पास आकर बैठता भी है, सिर पर हाथ भी रखता है। जब वह ठीक है तब कोई हाथ नहीं रखता, कोई ध्यान भी नहीं देता।

अगर दुनिया में बीमारी कम करनी है तो बच्चों के साथ जब वे बीमार हों तब बहुत ज्यादा प्रेम मत दिखाना। क्योंकि वह खतरनाक है। बीमारी और प्रेम का जुड़ना बहुत खतरनाक है। बीमारी से ज्यादा बड़ी बीमारी आप पैदा कर रहे हैं। बच्चे जब स्वस्थ हों, तब उनके प्रति प्रेम प्रकट करना और ज्यादा ध्यान देना। जब बीमार हों, तब थोड़ी तटस्थता रखना। तब उतना प्रेम, उतना शोरगुल मत मचाना। लेकिन जब कोई बीमार होता है। तब हम एकदम वर्षा कर देते हैं। जब कोई ठीक होता है, तो हमें कोई मतलब नहीं।

हम भी सोचते हैं कि जब ठीक है, तब मतलब की बात क्या? लेकिन आपको पता नहीं, आपका यह ध्यान बीमारी का भोजन है। इसलिये बच्चा जब भी चाहेगा कि कोई ध्यान दे, चाहे वह कितना ही बड़ा हो जाये, तब वह बीमारी को निमंत्रण देगा। यह निमंत्रण भीतरी होगा। दवा ऊपर से लेगा और भीतर ठीक नहीं होना चाहेगा। तब उपद्रव हो जायेगा। तो चाहे एलोपैथी लें, चाहे कोई पैथी लें, एक काम सब में जरूरी होगा कि अपना पूरा भाव ठीक होने का जोड़ दें।

चाहे संकल्प के मार्ग पर चलें, चाहे समर्पण के मार्ग पर, जो भी आपकी ऊर्जा है वह सारी की सारी उस मार्ग पर जोड़ दें। दो मार्गों को नहीं जोड़ना है, साधक को भीतर अपनी दो ऊर्जाओं को जोड़ना है। ये दोनों ऊर्जाएं जुड़कर किसी भी मार्ग पर चली जायें तो यात्रा अन्त तक पहुंच जायेगी। भीतर तो ऊर्जाएं बंटी रहें और आदमी मार्गों को जोड़ने में लगा रहे तो कभी भी नहीं पहुंच पायेगा। पैथीज जुड़कर जहर हो जाती हैं। अलग-अलग अमृत हैं। दो मार्ग जुड़कर भटकानेवाले हो जाते हैं। अलग-अलग पहुंचानेवाले हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि परमात्मा शब्द में नहीं, सत्य में है, ऐसा आपसे जाना। मैं भी इन शब्दों के जाल से छूटना चाहता हूं। लेकिन डर लगता है। डूबते को तिनके का सहारा है। गीता के पाठ से लगता है, सब ठीक चल रहा है। अगर छोड़ दूं तो आध्यात्मिक पतन न हो जाये। कहीं पापी न हो जाऊं।

यह भय स्वाभाविक है। लेकिन इसे समझ लें।

अगर मुझे सुनकर ही जाना कि शब्द में सत्य नहीं, अगर मुझे सुनकर ही जाना तो मुझसे तो शब्द ही सुने होंगे। तब खतरा है। तब गीता छूट सकती है, मैं पकड़ जाऊं। और गीता छोड़कर मुझे पकड़ने में कोई सार नहीं है। फिर तो पुराने को ही पकड़े रहना बेहतर है। क्योंकि पकड़ का अभ्यास है। नाहक बदलने से क्या सार होगा।

मुझे सुनकर ही न जाना हो, मुझे सुनकर भीतर यह बोध जगा हो, मेरा सुनना केवल निमित्त रहा हो, मेरे सुनने से ही यह बात भीतर पैदा न हुई हो, मेरे सुनने का ही कुल जमा परिणाम न हो, मेरा सुनना केवल बाहर से निमित्त बना हो और भीतर एक बोध का जन्म हुआ

हो कि शब्द में कोई सत्य नहीं है। तब मेरे शब्द में भी सत्य नहीं है और गीता के शब्द में भी सत्य नहीं है। तब सत्य साधना में है, स्वयं के अनुभव में है। अगर ऐसा हुआ हो तो गीता को छोड़ने में कोई भी भय न लगेगा। क्या भय है? अगर भीतर ही यह बोध हो गया तो छोड़ने में जरा भी भय न लगेगा। बोध के लिए कोई भय नहीं है। भय का कारण यह है कि मेरा शब्द लग रहा है प्रीतिकर। तो अब गीता के शब्द को छोड़ना है। जगह खाली करनी है, तब मेरे शब्द को भीतर रख पायेंगे। इससे भय लग रहा है कि इतना पुराना शब्द, इसको छोड़ना और नये शब्द को पकड़ना।

पुराना तिनका छोड़ना और नये तिनके को पकड़ने में भय लगेगा। क्योंकि पुराना तिनका, तिनका नहीं मालूम पड़ता, नाव मालूम पड़ता है, इतने दिन से पकड़ा हुआ है। जब उसको छोड़ेंगे और नये तिनके को पकड़ेंगे तो नया तिनका अभी तिनका दिखायी पड़ेगा। धीरे-धीरे वह भी नाव बन जायेगा। जैसे-जैसे आंख बन्द होने लगेगी, वह भी नाव मालूम पड़ने लगेगा। इसलिए पुराने को नये से बदलने में भय लगता है। क्योंकि पुराने के साथ तो सम्मोहन जुड़ जाता है। नये के साथ सम्मोहित होना पड़ेगा, वक्त लगेगा, समय लगेगा। जितनी देर समय लगेगा उतने दिन भीतर एक भय और घबराहट रहेगी।

नहीं, कोई गीता के शब्द को मेरे शब्द से बदलने की जरूरत नहीं है। सब शब्द एक जैसे हैं। अगर बदलना ही है तो सत्य से शब्द को बदलना। लेकिन सत्य है आपके भीतर, न मेरे शब्द में है, न गीता के शब्द में है, न महावीर के शब्द में है। इनके शब्द भी आपके भीतर की तरफ इशारा हैं। वह जो मील का पत्थर कह रहा है, मंजिल आगे है, तीर बना हुआ है; उस मील के पत्थर में कोई मंजिल नहीं है। वह सिर्फ इशारा है। और सब इशारे छोड़ देने पड़ते हैं तो ही यात्रा होती है। मील के पत्थर को छाती से लगाकर कोई बैठ जाये तो हम उसे पागल कहेंगे। लेकिन गीता को कोई छाती से लगाकर बैठा हो तो हम उसको धार्मिक आदमी कहते हैं।

गीता मील का पत्थर है, कृष्ण के द्वारा लगाया गया पत्थर है, इशारा है। मैं भी एक पत्थर लगा सकता हूं, वह भी इशारा बनेगा। आप एक पत्थर छोड़कर दूसरा पत्थर पकड़ लें, इससे कोई हल नहीं है। थोड़ी राहत भी मिल सकती है। जैसा कि मरघट लोग ले जाते हैं अथ□ को, तो एक कंधे से दूसरे पर रख लेते हैं। थोड़ी देर राहत मिलती है क्योंकि एक कंधा थक गया, दूसरे पर रख लिया। अगर कृष्ण से आप थक गये हैं तो मुझे रख सकते हैं। लेकिन थोड़ी देर में मुझसे थक जायेंगे। जब कृष्ण से ही थक गये तो मुझसे कितनी देर बचेंगे बिना थके। मुझसे भी थक जायेंगे, फिर कंधा बदलना पड़ेगा। कंधे तो बदलते-बदलते जन्म बीत गये। कितने कंधे आप बदल नहीं चुके। कंधे बदलने से कोई सार नहीं है।

इशारा! इशारा क्या है? इशारा इतना ही है कि जो कहा जाता है, वह केवल प्रतीक है। जो अनुभव किया जाता है, वही सत्य है। आपने प्रेम का अनुभव किया और कहा कि मैंने प्रेम जाना। लेकिन जो सुन रहा है आपके शब्द, वह आपके शब्द सुनकर प्रेम नहीं जान लेगा।

मैंने कहा, पानी मैंने पिया और प्यास बुझ गयी। अब मेरे वचन को पकड़कर आपकी प्यास नहीं बुझ जायेगी। पानी पीएंगे तो प्यास बुझ जायेगी। पानी शब्द में पानी बिलकुल भी नहीं है। तो कितना ही पानी शब्द को पीते रहें, प्यास न बुझेगी। धोखा हो भी सकता है कि आदमी अपने को समझा ले कि इतना तो पानी पी रहे हैं—पानी शब्द, पानी शब्द सुबह से शाम तक दोहरा रहे हैं। कहां की प्यास? यह भी हो सकता है कि पानी शब्द में इतनी तल्लीनता बढ़ा लें कि प्यास का पता न चले, लेकिन प्यास बुझेगी नहीं। और जब भी पानी शब्द की रटन छोड़ेंगे, भीतर की प्यास का पता चलेगा, कि प्यास

मौजूद है। पानी पीना पड़ेगा, पानी शब्द से कुछ हल नहीं है।

इसलिए भय लगेगा, अगर शब्द से शब्द को बदलना है। लेकिन कोई भय की जरूरत नहीं, अगर शब्द को सत्य से बदलना है। लेकिन सत्य कहीं बाहर से मिलनेवाला नहीं है—न कृष्ण से, न महावीर से, न बुद्ध से। सत्य है छिपा आपके भीतर। ये सारे कृष्ण,बुद्ध, महावीर, एक ही काम कर रहे हैं कि जो भीतर छिपा है, उसकी तरफ इशारा कर रहे हैं। वे कह रहे हैं कि तुम हो सत्य।

रिन्झाई से किसी ने आकर पूछा,बुद्ध क्या हैं? रिन्झाई ने कहा, तुम कौन हो? कोई संगति नहीं मालूम पड़ती। बेचारा पूछ रहा है कि बुद्ध कौन हैं? बुद्ध क्या हैं? बुद्धत्व का क्या अर्थ है? और रिन्झाई जो उत्तर दे रहा है, हमें भी लगेगा, क्या उत्तर दे रहा है। वह उत्तर नहीं दे रहा है, वह एक दूसरा सवाल पूछ रहा है। वह कह रहा है कि तुम कौन हो? लेकिन जवाब उसने दे दिया। वह यह कह रहा है कि बुद्ध कौन हैं, इसे तुम सब तक न जान पाओगे, जब तक तुम यह न जान लो कि तुम कौन हो। वह यह कह रहा है, तुम ही हो बुद्ध, और तुम्हीं पूछ रहे हो! तो रिन्झाई ने कह रखा था कि अगर कोई पूछेगा बुद्ध के बाबत तो ठीक नहीं होगा। क्योंकि बुद्ध ही बुद्ध के बाबत पूछे, यह उचित नहीं है।

रिन्झाई ने तो बड़ी हिम्मत की बात कही। सारी दुनिया में उसके वचन का कोई मुकाबला नहीं है। और कई धर्मशास्त्री और पण्डित तो उसका वचन सुनकर बिलकुल घबरा जाते हैं। ऐसा लगता है कि इससे ज्यादा अपवित्र बात और क्या होगी। खुद बुद्ध को मानने वाले लाखों लोग रिन्झाई का वचन सुनने में समर्थ नहीं हैं। लेकिन अगर बुद्ध ने सुना होता तो बुद्ध नाच उठे होते।

रिन्झाई अपने शिष्यों से कहता था, इफ ऐनी व्हेयर यू मीट द बुद्धा, किल हिम इमीजिएटली—अगर कहीं बुद्ध मिल भी जायें तो फौरन सफाया कर देना, खात्मा कर देना, एक मिनट बचने मत देना।

किसी ने रिन्झाई से कहा कि क्या कह रहे हैं आप, खात्मा कर देना! तो रिन्झाई ने कहा, जब तक तुम बाहर के बुद्ध का खात्मा न करोगे, तुम्हें अपने बुद्ध का पता नहीं चलेगा। और जब तक तुम्हें बाहर बुद्ध दिखायी पड़ रहा है, तब तक तुम भ्रांति में हो। जिस दिन तुम्हें भीतर दिखायी पड़ेगा उसी दिन। तो मिल जायें अगर बुद्ध, तो तुम खात्मा कर देना, और मैं तुमसे कहता हूं।

रिन्झाई ने कहा, मेरे वचन को याद रखना और खत्म करते वक्त बुद्ध से भी कह देना कि रिन्झाई ने ऐसा कहा है, और बुद्ध भी इसको पसंद करेंगे। रिन्झाई बड़े अधिकार से कह रहा है क्योंकि रिन्झाई ठीक वहीं खड़ा है, जहां गौतम बुद्ध खड़े हैं। कोई फर्क नहीं है।

रिन्झाई अपने शिष्यों से कहता था कि तुम्हारे मुंह में बुद्ध का नाम आ जाये तो कुल्ला कर लेना, सफा कर लेना, मुंह गंदा हो गया। शिष्य घबरा जाते थे, वे कहते थे, आपसे ऐसी बातें सुनकर मन बड़ा बेचैन है, यह आप क्या कहते हैं! वह कहता, जब तक तुम्हें लगता है कि बुद्ध के नाम-स्मरण से कुछ हो जायेगा, तब तक भीतर के बुद्ध की तुम खोज कैसे करोगे? और जब बुद्ध ही बुद्ध का नाम ले रहा है, तो इससे ज्यादा बुद्धूपन और क्या है?

नहीं, बुद्ध हों, कृष्ण हों, महावीर हों, उनके इशारे—पर हम हैं पागल। हम इशारे पकड़ लेते हैं। और जिस तरफ इशारा है, वह जो भीतर छिपा है, उसकी कोई फिक्र नहीं करते।

कोई भय नहीं है, और जब पता ही चल गया कि तिनके को पकड़े हुए हैं, तो छोड़ने में डर क्या है? तिनके को पकड़े रहो, तो भी डूबोगे। शायद अकेले बच भी जाओ, क्योंकि आदमी को अगर कोई भी सहारा न हो तो तैर भी सके। और सोच रहा है कि तिनका सहारा है, तब पक्का डूबेगा। कोई तिनका तो बचा नहीं सकता। लेकिन तिनके की वजह से तैरेगा भी नहीं।

छोड़ो, जब पता चल गया कि तिनका है, तो अब पकड़ने में कोई सार नहीं है। जब तक नाव मालूम होती थी, तभी तक पकड़ने में कोई सार था। छोड़ो, तैरो। बेसहारा होना एक लिहाज से अच्छा है। झूठे सहारे किसी काम के नहीं हैं।

लेकिन एक बहुत मजे की बात है, जो आदमी परमरूप से बेसहारा हो जाता है उसे परम सहारा मिल जाता है। वह तो भीतर ही छिपा है आपके, जिसके सहारे की जरूरत है। तिनके की कोई जरूरत नहीं है, वह जो भीतर छिपा है वही सहारा

है। शब्द को छोड़ो, शास्त्र को छोड़ो। इसलिए नहीं कि शास्त्र कुछ बुरी बात है, बल्कि इसीलिए कि उसको पकड़कर कहीं ऐसा न हो कि सच्बसटीट्यूट जो है, परिपूरकजो है, उससे ही तृप्ति हो जाये। कहीं ऐसा न हो कि शब्द से ही राजी हो जायें।

खतरा है बड़ा शब्द के साथ। सत्य के साथ कोई खतरा नहीं है। लेकिन हमें सत्य के साथ खतरा मालूम होता है, शब्द के साथ कोई खतरा नहीं मालूम होता। क्या कारण है? एक ही कारण है कि शब्द के साथ चुपचाप जीने में सुविधा रहती है—कोई उपद्रव नहीं, कोई परिवर्तन नहीं, कोई क्रांति नहीं। पढ़ते रहो गीता रोज और करते रहो जो करना है। और मजे से करो, क्योंकि हम तो गीता पढ़नेवाले हैं। दिल खोलकर पाप करो, क्योंकि आखिर तीर्थ किसलिए हैं? नहीं तो तीर्थ क्या करेंगे, अगर आप पाप न करोगे। मंदिर किसलिए हैं, अगर पाप न करोगे, तो पूजा का क्या सार है, और फिर परमात्मा किसलिए है? दया के लिए ही, रहमान, दयालु। तो अगर आप पाप ही न करोगे तो परमात्मा का, वह रहमान होने का क्या होगा? रहीम होने का क्या होगा? वह दया किस पर करेगा? किस पर रहम खायेगा? उस पर कुछ दया करो और पाप करो, ताकि वह आप पर रहम खा सके!

इसलिए आदमी शब्दों में जीता रहता है। और जिन्दगी? जिन्दगी वृत्तियों में, वासनाओं में विक्षिप्त दौड़ती रहती है। शब्द को छोड़ने का अर्थ केवल इतना ही है कि जिन्दगी को देखो, शब्दों में मत उलझे रहो और अगर चाहिए है किसी दिन स्वतंत्रता, मुक्ति, आनन्द, तो जिन्दगी को बदलो। शब्दों को बदलने से कुछ भी होनेवाला नहीं है।

अब सूत्र।

'आत्मा ही अपने सुख और दुख का कर्ता है तथा आत्मा ही अपने सुख और दुख का नाशक भी। अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा मित्र है, और बुरे मार्ग पर चलनेवाला आत्मा शत्रु है।'

महत्वपूर्ण बात महावीर ने कही है कि आप ही अपने शत्रु हो, आप ही अपने मित्र। कोई दूसरा शत्रु नहीं है, और कोई दूसरा मित्र भी नहीं। दूसरे से छुटकारा हमारा हो जाये, इसकी चिन्ता ही महावीर को है। दूसरे पर हम जिम्मेवारियां रखना छोड़ दें, यह सारे उनके वचनों का सार है, और सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर ले लें।

महावीर कहते हैं कि जब तुम ठीक मार्ग पर चलते हो , तो तुम अपने ही मित्र हो, और जब तुम गलत मार्ग पर चलते हो तो तुम अपने ही शत्रु हो।

इसे हम थोड़ा समझें।

अगर मैं किसी पर क्रोध करता हूं तो पता नहीं, उसे दुख पहुंचता है या नहीं। यह कोई पक्का नहीं है, लेकिन मुझे दुख मैं देता हूं, यह पक्का है। अगर मैं महावीर को गाली दूं तो महावीर को कोई दुख नहीं पहुंचता। लेकिन गाली देने में मैं तो पीड़ित होता ही हूं। क्योंकि गाली शांति से नहीं दी जा सकती। उसके लिए उबलना और जलना जरूरी है, रातें खराब करना जरूरी है, आगे पीछे दोनों तरफ चिन्ता, बेचैनी, जलन, क्योंकि तभी वह जलन और बेचैनी ही तो गाली बनेगी। वह जो मेरे भीतर पीड़ा होगी, वही जब इतनी भारी हो जायेगी कि उसे सम्भालना मुश्किल हो जायेगा, तभी तो मैं किसी को चोट पहुंचाऊंगा।

ध्यान रहे, जब मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं तो खुद को चोट पहुंचाये बिना नहीं पहुंचा सकता। असल में जब भी मैं किसी को चोट पहुंचाता हूं, उसके पहले ही मैं अपने को चोट पहुंचा लेता हूं। मेरा घाव भीतर न हो तो मैं दूसरे को घाव करने जा नहीं सकता। घाव ही घाव करवाता है।

कभी सोचें कि आप बिलकुल शांत, आनंदित, और अचानक किसी को गाली देने लगें तो आपको खुद हंसी आ जायेगी कि यह क्या हो रहा है, और दूसरे को भी गाली मजाक मालूम पड़ेगी, गाली नहीं मालूम पड़ेगी। गाली की तैयारी चाहिए, उसकी बड़ी साधना है। पहले साधना पड़ता है, पहले मन ही मन उसमें काफी पागलपन पैदा करना पड़ता है। पहले मन ही मन सारी योजना बनानी पड़ती है।

और जब आप इतने तैयार हो जाते हैं भीतर कि अब विस्फोट हो सकता है, तभी। कोई बम ऐसे ही नहीं फूटता, पीछे भीतर बारूद चाहिए। असल में बम फूटता ही इसलिए है कि भीतर विक्षिप्त बारूद मौजूद है। और जब आप भी फूटते हैं

तो भीतर बारूद आपको निर्मित करनी पड़ती है।

जब एक आदमी किसी पर क्रोध करता है, तो अपने को दुख देता है, पीड़ा देता है, वह अपना शत्रु है। बुद्ध ने भी ठीक यही बात कही है कि बड़े पागल हैं लोग, दूसरों की भूलों के लिए अपने को सजा देते हैं। आपने गाली दी मुझे, यह भूल आपकी रही, और मैं अपने को सजा देता हूं क्रोधित होकर। क्रोधित होकर आपको सजा दे सकता हूं, यह कोई जरूरी नहीं है। अपने को सजा देता हूं। गलती थी आपकी, चोट अपने को पहुंचाता हूं—तब मैं अपना ही शत्रु हूं। अगर हम अपना जीवन खोजें तो हमें पता लगेगा कि हम चौबीस घण्टे अपनी शत्रुता कर रहे हैं।

दो तरह के शत्रु हैं जगत में। एक, वे जो भोग की दिशा में भूल करते हैं, वे अपने को सजा दिये जा रहे हैं, अपने को सताये चले जा रहे हैं, अपने को काटे जा रहे हैं, मारे जा रहे हैं। फिर तो वे इतने आदी हो जाते हैं कि वे समझते भी हैं कि अब यह नहीं करना, फिर भी रुक नहीं पाते।

अभी मेरे पास एक युवक को लाया गया। एल्सएस्डी और मारीजुआना और सब तरह के ड्रग्ज ले लेकर उसने ऐसी हालत कर ली है, अब तो वह दिन में दो दफा इंजेक्शन अपने हाथ से लगा ले, तभी जी पाता है, नहीं तो जिन्दगी बेकार मालूम पड़ती है। सारे हाथों में छेद हो गये हैं, सारा खून खराब हो गया है, सारे शरीर पर फोड़े-फुंसियां, रोग फैल गये हैं। अब वह कहता है कि मैं रुकना चाहता हूं, लेकिन कोई उपाय नहीं। जब सुबह होती है तो जिन्दगी बेकार मालूम पड़ती है, जब तक कि मैं एक इंजेक्शन और न लगा लूं।

आज यूरोप और अमरीका के अनेक-अनेक अस्पताल भरे हुए हैं ऐसे युवक-युवतियों से जो बिलकुल पागल हो गये हैं, अपनी हत्या कर रहे हैं, रोज जहर डाल रहे हैं। लेकिन अब वे यह भी जानते हैं कि अब हम जो कर रहे हैं, यह करने योग्य नहीं है। अब हम मरेंगे इसमें, यह भी जानते हैं। लेकिन रुक भी नहीं सकते। जब सुबह आती है तो बस, नहीं लगाये बिना जिन्दगी बेकार मालूम पड़ती है, लगाओ तो लगता है, अपनी हत्या कर रहे हैं।

क्या हो गया इनको?

लेकिन, यह जरा अतिशय रूप है। कर हम भी यही रहे हैं। जरा हमारे डो□ हल्के हैं, छोटे हैं। इनके डो□ मजबूत हैं। हम भी रोज-रोज जहर लेते हैं, लेकिन होम्योपैथिक डो□ हैं हमारे, इसलिए पता नहीं चलता। रोज लेते रहते हैं। उसके बिना हमारा भी नहीं चलता। कभी एक महिना बिना क्रोध किये देखें, तब पता चलेगा कि चलता है इसके बिना कि नहीं। वह भी डो□ है, क्योंकि क्रोध होने से शरीर में विषाक्त द्रव्य छूट जाते हैं और खून पागल हो जाता है। यह आपको करना पड़ता है बार-बार। यह आदमी बाहर से इंजेक्शन लेकर भीतर जहर डाल रहा है और आप भीतर की ग्रंथियों से जहर को ले रहे हैं, लेकिन फर्क कुछ भी नहीं है। दस-पांच दिन कामवासना से बच जाते हैं तो बुखार मालूम होने लगता है, भारी हो जाती है वासना ऊपर। किसी तरह शरीर की शक्ति को बाहर फेंका जाये तो ही हल्कापन लगेगा, नहीं तो नहीं लगेगा। फेंककर अनुभव होता है, कुछ सार पाया नहीं। लेकिन दो-चार दिन बाद फिर फेंके बिना कोई रास्ता नहीं मालूम पड़ता। क्या कर रहे हैं हम जिन्दगी के साथ?

महावीर कहते हैं, हम अपने शत्रु हैं। भोग में भी हम शत्रुता कर रहे हैं, क्योंकि भोग से कभी आनन्द पाया नहीं। एक बात को सूत्र समझ लें कि जहां से दुख ही मिलता हो, उस मार्ग का अर्थ है कि हम अपने साथ शत्रुता कर रहे हैं। जहां से आनन्द कभी मिलता ही न हो, वहां से मित्रता का क्या अर्थ? जिन्दगी में आपने दुख ही पाया है। सारी जिन्दगी दुख से भरी हुई है। इस दुख से भरी जिन्दगी का अर्थ क्या है? कि हम जिन भी रास्तों पर चल रहे हैं, जो भी कर रहे हैं जीवन में, वह सब अपने साथ शत्रुता है। लेकिन हम अपने को बचा लेते हैं। हम कहते हैं, दूसरे शत्रु हैं, इसलिए तकलीफ पा रहे हैं। यह बचाव है, यह पलायन है, यह होशियारी है आदमी की कि वह कहता है कि दूसरों की वजह से। इस तरह वह टाल देता है, असली कारण को छिपा लेता है और दुख भोगता चला जाता है।

अगर मैं यह मानता हूं कि दूसरे मेरे शत्रु हैं, इसलिए मैं दुख पा रहा हूं, तो फिर मेरे दुख से छुटकारे का कोई उपाय नहीं है, किसी जगत में, किसी व्यवस्था में मुझे रहना हो, मैं दुखी रहूंगा। क्योंकि मैंने मौलिक कारण ही छोड़ दिया और एक झूठे कारण पर अपनी नजर बांध ली। लेकिन, एक और भी शत्रुता है, जो इस तरह के शत्रु कभी-कभी इससे ऊब जाते हैं तो

करते हैं।

आदमी भोग में अपने को सताता है, यह सुनकर हैरानी होगी। हम तो सोचते हैं, भोग में आदमी बड़ा सुख पाता है। भोग में आदमी अपने को सताता है, फिर इससे ऊब जाता है तो फिर त्याग में अपने को सताता है। पहले खूब खा-खाकर अपने को सताया। आदमी ज्यादा खा-खाकर अपने को सता रहा है। फिर इससे ऊब गया, परेशान हो गया, तो फिर उपवास कर-कर के अपने को सताना शुरू कर देता है, लेकिन सताना जारी रखता है। पहले क्रोध कर-कर के अपने को सताया, दूसरों पर क्रोध कर-कर के, फिर अपने पर क्रोध करना शुरू कर देता है, फिर अपने को सताता है।

तो जिनको हम त्यागी कहते हैं, अकसर वे शीर्षासन करते हुए भोगी होते हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं होता है, सिर्फ खोपड़ी वे नीचे कर लेते हैं, पैर ऊपर कर लेते हैं। वे भी आप ही जैसे लोग हैं, लेकिन खड़े होने का ढंग उन्होंने उल्टा चुना है। पहले एक आदमी स्त्रियों के पीछे दौड़-दौड़कर अपने को सताता है, फिर स्त्रियों से दूर भाग-भाग कर सताना शुरू कर देता है। लेकिन अपने को सताना जारी रखता है। और दोनों से दुख पाता है।

मैं ऐसे संन्यासी को नहीं मिल पाया खोज-खोजकर, जो कहे कि संन्यास लेकर मैं आनंदित हो गया हूं। इसका क्या मतलब हुआ फिर? संसारी दुखी हैं, यह समझ में आनेवाली बात है। ये संन्यासी क्यों दुखी हैं? एक बड़े जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। बड़े आचार्य हैं, आनंद की कोई उन्हें खबर नहीं है। दुख ही दुख का पता है। तो संसारी दुखी है, छोड़ो, क्षमा योग्य है। सब छोड़कर जो त्यागी खड़ा हो गया, यह भी दुखी है। संसारी की तरकीब है कि वह कहता है, मैं दुखी हूं दूसरों के कारण। और त्यागी की तरकीब यह है कि वह कहता है, दुखी हूं मैं पिछले जन्मों के कारण। मगर दोनों कुशल हैं, कहीं और टाल देते हैं। संसारी टाल देता है दूसरे लोगों पर, संन्यासी टाल देता है दूसरे जन्मों पर। संसारी भी मानता है, मैं जैसा हूं बिलकुल ठीक हूं, दूसरे गलत हैं। यह त्यागी भी मानता है कि मैं तो अब बिलकुल ठीक हूं, लेकिन पिछले जन्मों में जो किया है, वह दुख भोगना पड़ रहा है। दोनों का तर्क एक ही है, ये कहीं टाल रहे हैं।

यह बड़े मजे की बात है कि कोई अगर आपसे कहे कि आप अभी पापी हो, तो दुख होता है। और कहे कि पिछले जन्मों का पाप है, तो दुख नहीं होता। क्या मामला है? पिछले जन्म अपने मालूम ही कहां पड़ते हैं! इतना डिस्टेंस है, इतना फासला है कि जैसे किसी और के हों। होगा, इसको तो छोड़ दें, आदमी का मन कैसा है, उसे समझें।

अगर मैं आपसे कहूं, आपने कल भी मुझे गीत सुनाया और आज भी मुझे गीत सुनाया और मैं कहूं कि कल का गीत बढ़िया था, तो आपको दुख होता है। क्योंकि कल से भी संबंध टूट गया। आज मैं आपका अपमान कर रहा हूं, मैं कह रहा हूं कि आज का गीत बढ़िया नहीं था, कल का गीत बढ़िया था। कल तो दूर हो गया। अगर मैं आपसे यह कहूं कि आज का गीत कल से भी बढ़िया है तो खुशी होती है, दोनों गीत आपके हैं। आज का गीत कल से बढ़िया है, खुशी होती है, और मैं कहता हूं, कल का गीत आज से बढ़िया था तो दुख होता है। क्यों? क्योंकि आप अभी के क्षण से अपने को जोड़ते हैं। कल के क्षण से अपने को तोड़ चुके हैं। वह तो जा चुका है।

तो जब कल इतना दूर हो जाता है, तो पिछला जन्म तो बहुर दूर है। हुआ कि नहीं हुआ, बराबर है; किसी और का। बड़े मजे से कह सकते हैं कि पिछले जन्म में पापी था। पाप किये, इसलिए दुख भोग रहा हूं। लेकिन अभी? अभी बिलकुल ठीक हूं। फिर भी दुख भोग रहा हूं, दूसरों के कारण, दूसरे जन्मों के कारण; लेकिन दूसरा शब्द महत्वपूर्ण है। चाहे वह जन्म हों, चाहे लोग हों।

जो व्यक्ति इस भाषा में सोच रहा है वह महावीर के सूत्र को नहीं समझा अभी। महावीर कहते हैं, दुख भोग रहे हो तो तुम अभी अपने शत्रु हो। उसी शत्रुता के कारण हम दुख भोग रहे हैं। दुख लाक्षणिक है, तुम्हारी शत्रुता का अपने साथ।

कल एक मित्र आये थे, वे जैन संन्यासी साधुओं की तरफ से खबर लाये थे, कुछ साधुओं की तरफ से कि वह वहां से छूटना चाहते हैं, उस जंजाल से। मैंने कहा, जंजाल! वे छूटना चाहते हैं, लेकिन हिम्मत भी नहीं है छूटने की। क्योंकि जब संन्यास लिया था तो बड़ा स्वागत समारंभ हुआ था, और जब छोड़ेंगे तो अपमान होगा, निंदा होगी। लोग कहेंगे, पतन हो गया। इसलिए हिम्मत भी नहीं है, लेकिन वहां बड़ा दुख पा रहे हैं। तो उन्होंने आपके पास खबर भेजी है कि अगर आप

कोई उनका इंतजाम करवा दें तो वहां से निकल आयें।

मैंने कहा, क्या इन्तजाम चाहते हैं? इन्तजाम के लिए ही वहां भी गये थे। अगर साधुता के लिए गये होते तो वहां भी साधुता खिल जाती। इन्तजाम के लिए वहां भी गये थे। और इन्तजाम साधु का बढ़िया है। संन्यासी का संसारी से ज्यादा अच्छा इन्तजाम है। कुछ शर्तें उसको पूरी करना पड़ती हैं। तो हजार शर्तें, संसारी को भी पूरी करनी पड़ती हैं। लेकिन उसका इन्तजाम बढ़िया है। और संसारी को तो हजार तरह की योग्यताएं होनी चाहिए, तब थोड़ा बहुत इन्तजाम कर पाता है। साधु के लिए एक ही योग्यता काफी है कि उन्होंने संसार छोड़ दिया। बाकी सब तरह की अयोग्यता चलेगी।

मुझे साधु मिलते हैं, वे कहते हैं कि आपकी बात ठीक लगती है और हम इस उपद्रव को छोड़ना चाहते हैं; लेकिन अभी जो हमारे पैर छूते हैं, कल वे हमें चपरासी की भी नौकरी देने को तैयार न होंगे। और वे ठीक कहते हैं, ईमानदारी की बात है। देखें अपने साधुओं की तरफ, अगर कल ये साधारण कपड़े पहनकर आपके द्वार पर आ जायें और कहें कि कोई काम वगैरह दे दें, तो आप उनको काम देनेवाले नहीं हैं। पूछेंगे कि सर्टिफिकेट लाओ। पिछली जगह कहां काम करते थे, वहां से कैसे छोड़ा? पुलिस स्टेशन में तो नाम नहीं है! लेकिन इन्हीं साधु के चरण छूने जाते हैं तब इन सबकी इन्क्वायरी की कोई जरूरत नहीं, क्योंकि चरण छूने का खर्चा ही नहीं, न कुछ आपको झंझट, न कुछ। पांव छूये, अपने रास्ते पर गये। कुछ लेना-देना नहीं है।

जो लोग संसार से भागते हैं बिना संसार को समझे वे भोग के विपरीत त्याग में पड़ जाते हैं। भोग के विपरीत जो त्याग है, वह त्याग नहीं है, वह भी शत्रुता है। भोग के ऊपर जो त्याग है—भोग के विपरीत नहीं, भोग के पार जो त्याग है, भोग को छोड़ना नहीं पड़ता और त्याग को ग्रहण नहीं करना पड़ता। भोग समझपूर्वक गिरता जाता है और त्याग खिलता जाता है—भोग के पार, बियान्ड। भोग के विपरीत, अपोजिट नहीं। उसी तल पर नहीं, उस तल के पार। भोग की समझ से जो त्याग निकलता है, भोग के दुख से जो त्याग निकलता है, इनमें फर्क है।

भोग के दुख से जो त्याग निकलता है वह फिर दुख हो जाता है। दुख से दुख ही निकल सकता है। भोग की समझ—और भोग में क्यों दुख पाया? भोग के कारण नहीं, दूसरे के कारण दुख पाया, यह जब खयाल आता है तो आदमी भोग के पार हो जाता है।

महावीर कहते हैं, जो इस तरह का आदमी है वह अपना मित्र है। साधु को महावीर अपना मित्र कहते हैं, असाधु को शत्रु। लेकिन परीक्षण क्या है कि आप अपने मित्र हैं? मित्र का क्या परीक्षण है?

जिससे सुख मिले, वह मित्र है और जिससे दुख मिले वह शत्रु है। अगर आपको अपने से ही सुख नहीं मिल रहा है तो आप शत्रु हैं। अपने से ही आपको सुख मिलने लगे तो आप मित्र हैं। लेकिन आपको कोई ऐसी बात पता है, जब आपको अपने से सुख मिला

हो? एकाध ऐसा क्षण आपको खयाल है? जब आप अचानक अपने से सुखी हो गये हों?

नहीं, कभी कोई मकान सुख दिया, कभी कोई लाटरी सुख दी, कभी कोई स्त्री सुख दी, पुरुष सुख दिया, कभी कोई हीरा सुख दिया, कभी कोई आभूषण सुख दिया, कभी कोई कपड़ा सुख दिया।

कभी आपको ऐसा खयाल है कि आपने भी अपने को सुख दिया हो? ऐसी कोई याद है? बड़ी हैरानी की बात है, हमने कभी अपने को आज तब सुख नहीं दिया। हमें पता ही नहीं कि खुद को सुख देने का क्या मतलब होता है। सुख का मतलब ही दूसरे से जुड़ा हुआ है। तब एक बड़ी मजेदार दुनिया बनती है। जिस दुनिया में कोई आदमी अपने को सुख नहीं दे पा रहा है, उस दुनिया में सब एक दूसरे को सुख दे रहे हैं। पत्नी पति को सुख दे रही है, पति पत्नी को सुख दे रहा है। न पति अपने को सुख दे पा रहे हैं, न पत्नी अपने को सुख दे पा रही है और जो आपके पास है ही नहीं, वह आप कैसे दूसरे को दे रहे हैं, बड़ा मजा है।

जो है ही नहीं, वह आप दूसरे को दे रहे हैं। इसलिए आप सोचते हैं, दे रहे हैं। दूसरे तक पहुंचता ही नहीं। पहुंचेगा कैसे? इसलिए पत्नी कहे चली जाती है कि तुम मुझे सुख नहीं दे रहे हो, पति कहे चला जाता है कि तू मुझे सुख नहीं दे रही है। मैं तुझे सुख दे रहा हूं, और तू मुझे सुख नहीं दे रही है। हम सब एक दूसरे से कह रहे हैं कि हम सुख दे रहे हैं और तुम सुख

नहीं दे रहे हो। सारी शिकायत यही है जिन्दगी की, सारा शिकवा यही तो है कि कोई सुख नहीं दे रहा है और हम इतना बांट रहे हैं। और आप अपने तक को दे नहीं पाते, और दूसरों को बांट रहे हैं।

थोड़ा अपने को दें। और ध्यान रहे, जो अपने को दे सकता है, उसे दूसरों को देना नहीं पड़ता। उसके आसपास की हवा में दूसरे सुखी हो सकते हैं, हो सकते हैं, हो नहीं जाते। वह भी उनकी मज है। नहीं तो महावीर के पास खड़े होकर भी आप दुखी ही होंगे। लोग इतने कुशल है दुख पाने में, कहीं से भी दुख खोज लेंगे। उनको मोक्ष भी भेज दो तो घड़ी दो घड़ी में वे सब पता लगा लेंगे कि क्या-क्या दुख है। मोक्ष भी उनसे बच नहीं सकता। यह जो महावीर वगैरह कहते हैं मोक्ष में आनन्द ही आनन्द है, इनको पता नहीं आदमियों का। असली आदमी पहुंच जायें तब पता चलेगा कि वहां दुख ही दुख बता देंगे कि इसमें क्या आनन्द है।

महावीर ने मोक्ष की बात कही है कि 'सिद्ध शिला' पर शाश्वत आनन्द है। बट्रन्ड रसल को इससे बहुत दुख हुआ। बट्रन्ड रसल ने लिखा है कि 'शाश्वत'! सदा रहेगा! फिर कभी उससे छुटकारा न होगा! फिर बस आनन्द ही आनन्द में रहना पड़ेगा! फिर बदलाहट नहीं होगी! इससे मन बहुत घबराता है।

बट्रन्ड रसल ने कहा है कि इससे तो नरक बेहतर। कम से कम अदल-बदल तो कर सकते हैं। और यह क्या कि सिद्ध शिला पर बैठे हैं, न हिल सकते, न डुल सकते, और आनन्द ही आनन्द बरस रहा है। कब तक? कितनी देर बर्दाश्त करिएगा? थोड़ा सोचें आप भी, आपको भी लगेगा कि प्रास्पेक्ट्स बहुत अच्छे नहीं हैं। इसमें से भी दुख दिखायी पड़ने लगेगा कि नहीं—कभी तो 'जस्ट फार ए चेंज', कभी तो कुछ और उपद्रव भी होना चाहिए, बस आनन्द ही आनन्द! मिठास ज्यादा हो जायेगी। इतनी हम न झेल पायेंगे। हमें थोड़ा तिक्त, नमकीन भी चाहिए। थोड़ा कड़वा, तो उससे थोड़ा जीभ सुधर जाती है। और फिर स्वाद लेने के लिए तैयार हो जाती है।

हमें दुख भी चाहिए तो ही हम सुख को अनुभव कर पायेंगे। तो महावीर का जो परम आनन्द है, वह बट्रन्ड रसल को भयदायी मालूम पड़ा, पड़ेगा। हमको भी पड़ेगा। वह तो हम बिना समझे कहते रहते हैं कि हे भगवान, कब मोक्ष होगा? अभी पता नहीं कि मोक्ष का मतलब क्या है? अगर हो जाये मोक्ष तो बस एक ही प्रार्थना रहेगी, हे भगवान, मोक्ष के बाहर जाना कब हो?

आदमी अपना दुश्मन है, और जब तक उसकी यह दुश्मनी अपने से नहीं टूटती, उसके लिए कोई आनन्द नहीं है। आदमी अपना मित्र हो सकता है। बड़ी स्वार्थ की बात मालूम पड़ेगी कि महावीर कहते हैं अपने मित्र हो जाओ। लेकिन, स्वार्थ की बात है नहीं, क्योंकि

जो अपना ही मित्र नहीं है, वह किसी का भी मित्र नहीं हो सकता।

महावीर कहते हैं, खुद पहले आनन्द को उपलब्ध हो जाओ, यह काफी है। खुद ज्योतिर्मय हो जाओ, प्रकाशित हो जाओ, तभी सोचना कि किसी दूसरे के घर में भी प्रकाश डाल दें। खुद का दीया बुझा हुआ, दूसरों के दीये जलाने चल पड़ते हैं। उस झगड़े में अकसर ऐसा होता है कि दूसरे का भी जल रहा हो थोड़ा बहुत तो बुझा आते हैं। क्योंकि अपने बुझे दीये को जो जला हुआ मानता है, जब तक आपका न बुझा दे, तब तक उसको भी जला हुआ नहीं मानेगा। जब बुझ जाता है, तब वह कहता है, जला दिया। अब निश्चिंत हुए। हम सब एक दूसरे को बुझाने की कोशिश में लगे हैं। खुद बुझे हुए हैं। यही होगा, और कुछ हो भी नहीं सकता।

'पांच इन्द्रियां, क्रोध, मान, माया और लोभ तथा सबसे अधिक दुजच्य अपनी आत्मा को जीतना चाहिए। एक आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।'

यह एक मित्र हो जाये, जो भीतर छिपा है मेरे। इस एक से ही ताल-मेल बन जाये, इस एक से ही प्रेम हो जाये, यह एक ही मैं जीत लूं, तो महावीर कहते हैं; सब जीत लिया। इस एक को जीत लेने को महावीर कहते हैं—सब जीत लिया। सारा संसार जीत लिया मगर दुजच्य है बहुत।

कहते हैं, क्रोध, मान, मोह, लोभ—ये कठिन हैं, इनको जीतना। लेकिन और भी कठिन है स्वयं को जीतना।

क्या कठिनाई होगी स्वयं को जीतने की?

स्वयं को जीतने की कठिनाई सूक्ष्म है। क्रोध को जीतने की कठिनाई स्थूल है, ग्रास है। हम भी समझते हैं कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो क्रोधी है, वह भी मानता है कि क्रोध को जीतना चाहिए। जो लोभी है, वह भी मानता है कि लोभ को जीतना चाहिए, क्योंकि लोभ से दुख मिलता है, इसलिए कोई भी जीतना चाहता है। क्रोध से दुख मिलता है—क्रोधी को भी मिलता है। वह भी मानता है कि गलती है हमारी, कष्ट पाते हैं, और जीतना चाहिए, और महावीर ठीक कहते हैं।

महावीर ठीक कहते हैं कि इसका कुल कारण इतना है कि वह क्रोध से दुख पाता है। क्रोध को जीतने में उसका जो रस है वह दुख को जीतने में है। लोभ से भी दुख पाता है, इसलिए कहता है कि ठीक कहते हैं महावीर। दुख जीतना चाहिए। लोभ में दुख है, लेकिन रस उसका दुख जीतने में है।

फिर यह स्वयं को जीतना अति कठिन क्यों है? महावीर कहते हैं, दुजच्य। क्योंकि आपको खयाल ही नहीं है कि आपने स्वयं से कभी दुख पाया, यही सूक्ष्मता है। जिस-जिस से दुख पाया, उसको तो हम जीतना चाहते हैं। न जीत पाते हों, कमजोरी है। लेकिन आपको यह खयाल में ही नहीं है, स्मरण ही नहीं है कि आपने अपने से दुख पाया है। हालांकि सब दुख आपने अपने से पाया।

इसलिए स्वयं को जीतने का कोई सवाल ही नहीं उठता। हम सोचते हैं, स्वयं से तो हमने कभी दुख पाया नहीं, दूसरे से दुख पाया है। दुश्मन को जीतना चाहिए; जो दुख देता हो, उसको सफाया कर देना चाहिए।

अपने से हमने कभी दुख पाया नहीं, यद्यपि पाया सदा अपने से है। तो फिर तरकीब है हमारे मन की एक कि दुख पाते हैं अपने से, आरोपित करते हैं सदा दूसरों पर। दूसरे को सदा शत्रु बना लेते हैं, ताकि खुद को शत्रु न बनाना पड़े। और दूसरे को मिटाने में लग जाते हैं। यह सारी दृष्टि बदले, तो ही व्यक्ति धार्मिक होता है। हटा लें दूसरों पर, जहां-जहां आपने फैलाव किया है, जहां-जहां आपने अड्डे बना रखे हैं दुखों के—हटा लें वहां से।

दुख का घाव भीतर है। वह आप ही हैं दुख। वहां लौट आयें। और जब भी दुख मिले, तो जिसने दुख दिया है उसको भूल जायें। जिसको दुख मिलता है, उसी को देखें। जिसको दुख मिलता है, वही दुख का कारण है। जो दुख देता है, वह दुख का कारण नहीं है।

यह फैलेसी है, यह भ्रांति है। सदा भीतर लौट आयें। कोई गाली दे, तो हमारा ध्यान, पता है कहां जाता है? देनेवाले पर जाता है। सदा जब कोई गाली दे तो ध्यान वहां जाये, जिसको गाली दी गयी है। जब कोई क्रोध में आग-बबूला हो, तो उस पर ध्यान न दें, उस क्रोध का जो परिणाम आप पर हो रहा है, भीतर जो क्रोध उबल रहा है, उस पर ध्यान दें।

जब भी कहीं कोई आपको लगे कि ध्यान का कारण बाहर है, तत्काल आंख बन्द कर लें और ध्यान को भीतर ले जायें, तो आपको अपने परम शत्रु से मिलन हो जायेगा। वह आप ही हैं। और जिस दिन आपको अपने परम शत्रु से मिलन होगा, उसी दिन आप जीतने की यात्रा पर निकलेंगे।

और मजा यह है कि स्वयं को न जानने से ही वह शत्रु है। और जैसे-जैसे ध्यान भीतर बढ़ने लगेगा, वैसे-वैसे स्वयं का जानना बढ़ने लगेगा। और जो शत्रु था, वह एक दिन मित्र हो जायेगा। जो जहर है, वह अमृत हो जाता है, सिर्फ ध्यान के जोड़ को बदलने की बात है। सारी कीमिया, सारी अल्केमी एक है। ट्रांसफर आफ अटेंशन, ध्यान का हटाना। गलत जगह ध्यान दे रहे हैं, और जहां देना चाहिए, वहां नहीं दे रहे हैं।

बस, इतना ही हो पाये कि मैं ध्यान आब्जेक्ट से हटाकर सब्जेक्ट पर बदल दूं, विषय से हटा लूं, विषयी पर चला जाऊं। जो कुछ भी हो रहा है, मेरा जगत मैं हूं, और सारे कारण मेरे भीतर हैं। अपमान हो, सुख हो, दुख हो, प्रीति हो, सम्मान हो, जो कुछ भी हो, तत्काल मौके को मत चूकें। फौरन ध्यान को भीतर ले जायें और देखें, भीतर क्या हो रहा है। जल्दी ही भीतर का शत्रु मिल जायेगा। फिर ध्यान को बढ़ाये चले जायें। उसी शत्रु के भीतर छिपा हुआ परम मित्र भी मिल जायेगा। उस परम मित्र को महावीर ने आत्मा कहा है। वह परम मित्र सबके भीतर छिपा है, लेकिन हमने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया है।

आज इतना ही।

कीर्तन करें, और फिर जायें।

साधना का सूत्र ः संयम

नौंवा प्रवचन

दिनांक 21 सितम्बर, 1972; द्वितीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

आत्म-सूत्र ः 2

जस्सेवमप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ,
चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं।।
तं तारिसं नो पइलेन्ति इन्दिया,
उविंतिवाया व सुदंसणं गिरिं।।
सरीरमाहु नाव त्ति,
जीवो वुच्चई नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो,
जं तरन्ति महेसिणो।।

जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़-निश्चयी हो कि देह भले ही चली जाये, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इच्निदरयां कभी भी विचलित नहीं कर सकतीं। जैसे भीषण बवंडर सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता। शरीर को नाव कहा गया है और जीव को नाविक तथा संसार को समुद्र। इसी संसार समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं।

एक मित्र ने पूछा है कि सदगुरु की खोज हम अज्ञानी जन कर ही कैसे सकते हैं?

यह थोड़ा जटिल सवाल है और समझने योग्य। निश्चय ही, शिष्य सदगुरु की खोज नहीं कर सकता है। कोई उपाय नहीं है आपके पास जांचने का कि कौन सदगुरु है। और संभावना इसकी है कि जिन बातों से प्रभावित होकर आप सदगुरु को खोजें, वे बातें ही गलत हों।

आप जिन बातों से आंदोलित होते हैं, आकर्षित होते हैं, सम्मोहित होते हैं, वे बातें आपके संबंध में बताती हैं, जिससे आप प्रभावित होते हैं उसके संबंध में कुछ भी नहीं बतातीं। यह भी हो सकता है, अकसर होता है कि जो दावा करता हो कि मैं सदगुरु हूं, वह आपको प्रभावित कर ले। हम दावों से प्रभावित होते हैं और बड़ी कठिनाई निर्मित हो जाती है कि शायद ही जो सदगुरु है, वह दावा करे। और बिना दावे के तो हमारे पास कोई उपाय नहीं है पहचानने का।

हम चरित्र की सामान्य नैतिक धारणाओं से प्रभावित होते हैं, लेकिन सदगुरु हमारी चरित्र की सामान्य धारणाओं के पार होता है। और अकसर ऐसा होता है कि समाज की बंधी हुई धारणा जिसे नीति मानती है, सदगुरु उसे तोड़ देता है। क्योंकि समाज मानकर चलता है अतीत को और सदगुरु का अतीत से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानकर चलता है सुविधाओं को और सदगुरु का सुविधाओं से कोई संबंध नहीं होता। समाज मानता है औपचारिकताओं को, फामर्चलिटीज को और सदगुरु का औपचारिकताओं से कोई संबंध नहीं।

तो यह भी हो जाता है कि जो आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठ जाता है, उसे आप सदगुरु मान लेते हैं। संभावना बहुत कम है कि सदगुरु आपकी नैतिक मान्यताओं में बैठे। क्योंकि महावीर नैतिक मान्यताओं में नहीं बैठ सके, उस जमाने की। बुद्ध नहीं बैठ सके, कृष्ण नहीं बैठ सके, क्राइस्ट नहीं बैठ सके। जो छोटे-छोटे तथाकथित साधु थे, वे बैठ सके। अब तक इस पृथ्वी पर जो भी श्रेष्ठजन पैदा हुए हैं, वे अपनी समाज भी मान्यताओं के अनुकूल नहीं बैठ सके। क्राइस्ट नहीं बैठ सके अनुकूल, लेकिन उस जमाने में बहुत से महात्मा थे, जो अनुकूल थे। लोगों ने महात्माओं को चुना, क्राइस्ट को

नहीं। क्योंकि लोग जिन धारणाओं में पले हैं, उन्हीं धारणाओं के अनुसार चुन सकते हैं।

सदगुरु का संबंध होता है सनातन सत्य से। साधुओं, तथाकथित साधुओं का संबंध होता है सामयिक सत्य से। समय का जो सत्य है, उससे एक बात है संबंधित होना; शाश्वत जो सत्य है उससे संबंधित होना बिलकुल दूसरी बात है। समय के सत्य रोज बदल जाते हैं, रूढ़ियां रोज बदल जाती हैं, व्यवस्थाएं रोज बदल जाती हैं। दस मील पर नीति में फर्क पड़ जाता है, लेकिन धर्म में कभी भी कोई फर्क नहीं पड़ता।

इसलिए अति कठिन है पहचान लेना कि कौन है सदगुरु। फिर हम सबकी अपने मन में बैठी व्याख्याएं हैं। जैसे अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो आप कृष्ण को सदगुरु कभी भी न मान सकेंगे। इसका यह कारण नहीं है कि कृष्ण सदगुरु नहीं हैं। इसका कारण यह है कि आप जिन मान्यताओं में पैदा हुए हैं, उन मान्यताओं से कृष्ण का कोई ताल-मेल नहीं बैठेगा। अगर आप जैन घर में पैदा हुए हैं तो राम को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। अगर आप कृष्ण की मान्यता में पैदा हुए हैं तो महावीर को सदगुरु मानने में कठिनाई होगी। और जिसने महावीर को सदगुरु माना है, वह मुहम्मद को सदगुरु कभी भी नहीं मान सकता।

धारणाएं हमारी हैं, और कोई सदगुरु धारणाओं में बंधता नहीं। बंध नहीं सकता। फिर हम एक सदगुरु के आधार पर निर्णय कर लेते हैं कि सदगुरु कैसा होगा। सभी सदगुरु बेजोड़ होते हैं, अद्वितीय होते हैं, कोई दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं होता। मुहम्मद के हाथ में तलवार है, महावीर के हाथ में तलवार हम सोच भी नहीं सकते। महावीर नग्न खड़े हैं, कृष्ण आभूषणों से लदे बांसुरी बजा रहे हैं। इनमें कहीं कोई मेल नहीं हो सकता। राम सीता के साथ पूजे जाते हैं। एक दम्पति का रूप है। कोई जैन तीथच्कर पत्नी के साथ नहीं पूजा जा सकता। क्योंकि जब तक पत्नी है, तब तक वह तीथच्कर कैसे हो सकेगा! तब तक वह गृही है, तब तक तो वह संन्यासी भी नहीं है। हम तो राम का नाम भी लेते हैं तो सीता-राम लेते हैं, पहले सीता को रख न डाले। तब डर लगेगा कि फिर कहीं ऐसे न असदगुरु हमें चुन लें। यहां जरा और बारीक बात है। जिस तरह मैंने कहा कि शिष्य का अहंकार होता है और इसलिए उसे ऐसा भास होना चाहिए कि मैंने चुना। उसी तरह असदगुरु का अहंकार होता है, उसे इसी में मजा आता है कि शिष्य ने उसे चुना। थोड़ा समझ लें।

असदगुरु को तभी मजा आता है, जब आपने उसे चुना हो। असदगुरु आपको नहीं चुनता। सदगुरु आपको चुनता है। असदगुरु कभी आपको नहीं चुनता। उसका तो रस ही यह है कि आपने उसे माना, आपने उसे चुना। इसलिए आप चुनने की बहुत फिक्र न करें, खुलेपन की फिक्र करें। सम्पर्क में आते रहें, लेकिन बाधा न डालें, खुले रहें।

इजिप्शियन साधक कहते हैं, व्हेन द डिसाइपल इ रेडी, द मास्टर एपीयर्स। और आपकी रेडीनेस, आपकी तैयारी का एक ही मतलब है कि जब आप पूरे खुले हैं, तब आपके द्वार पर वह आदमी आ जायेगा, जिसकी जरूरत है। क्योंकि आपको पता नहीं है कि जीवन एक बहुत बड़ा संयोजन है। आपको पता नहीं है कि जीवन के भीतर बहुत कुछ चल रहा है पदच की ओट में। आपके भीतर बहुत कुछ चल रहा है पदच की ओट में।

जीसस को जिस व्यक्ति ने दीक्षा दी, वह था जान द बैप्टिस्ट, बप्तिस्मा वाला जान। बप्तिस्मा वाला जान एक बूढ़ा सदगुरु था, जो जोर्डन नदी के किनारे चालीस साल से निरन्तर लोगों को दीक्षा दे रहा था। बहुत बूढ़ा और जर्जर हो गया था, और अनेक बार उसके शिष्यों ने कहा कि अब बस, अब आप श्रम न लें। लाखों लोग इकट्ठे होते थे उसके पास। हजारों लोग उससे दीक्षा लेते थे। जीसस के पूर्व बड़े से बड़े गुरुओं में वह एक था। लेकिन बप्तिस्मा वाला जान कहता है कि मैं उस आदमी के लिए रुका हूं, जिसे दीक्षा देकर मैं अपने काम से मुक्त हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जायेगा, उस दिन मैं विलीन हो जाऊंगा। जिस दिन वह आदमी आ जायेगा, उसके दूसरे दिन तुम मुझे नहीं पाओगे, और फिर एक दिन आकर जीसस ने दीक्षा ली, और उस दिन के बाद बप्तिस्मा वाला जान फिर कभी नहीं देखा गया। शिष्यों ने उसकी बहुत खोज की, उसका कोई पता न चला कि वह कहां गया। उसका क्या हुआ।

वह जीसस के लिए रुका हुआ था। इस आदमी को सौंप देना था। लेकिन इसकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, जब यह आदमी आये। और इस आदमी के पास जान जा सकता था। जीसस का गांव जोर्डन से बहुत दूर न था। वह जाकर भी दीक्षा दे सकता था, लेकिन तब भूल हो जाती। तब शायद जीसस उस दीक्षा को ऐसे ही न झेल पाते, जैसा कृष्णमूर्ति को मुसीबत

हो गयी।

पास ही था गांव, लेकिन जान वहां नहीं गया उसने प्रतीक्षा की कि जीसस आ जाये। जीसस को यह खयाल तो होना चाहिए कि मैंने चुना है। बुनियादी अंतर पड़ जाते हैं। इतना खयाल देने के लिए बूढ़ा आदमी श्रम करता रहा और प्रतीक्षा करता रहा। जीसस के आने पर तिरोहित हो गया।

एक आयोजन है जो भीतर चल रहा है, उसका आपको पता नहीं है। आपको पता हो भी नहीं सकता। आप सतह पर जीते हैं। कभी अपने भीतर नहीं गये तो जीवन के भीतरी तलों का आपको कोई अनुभव नहीं है। जब आप खिंचे चले जाते हैं; किसी आदमी की तरफ, तो आप इतना ही मत सोचना कि आप ही जा रहे हैं। कोई खींच भी रहा है। सच तो यह है कि जब चुम्बक खींचता होगा लोहे के टुकड़े को तो लोहे का टुकड़ा नहीं जानता है कि चुम्बक ने खींचा। चुम्बक का उसे पता भी नहीं है। लोहे का टुकड़ा अपने मन में कहता होगा, मैं जा रहा हूं। लोहा जाता है। चुम्बक खींचता है, ऐसा लोहे के टुकड़े को पता नहीं चलता।

सदगुरु एक चुम्बक है, आप खिंचे चले जायेंगे। आप अपने को खुला रखना। फिर यह भी जरूरी नहीं है कि सब सदगुरु आपके काम के हों। असदगुरु तो काम का है ही नहीं। सभी सदगुरु भी काम के नहीं हैं, जिससे आपका ताल-मेल बैठ जाये, जिसके साथ आपकी भीतरी रुझान ताल-मेल खा जाये। तो आप खुले रहना।

जापान में झेन गुरु अपने शिष्यों को एक दूसरे के पास भी भेज देते हैं। यहां तक भी हो जाता है कभी कि एक सदगुरु जो दूसरे सदगुरु के बिलकुल सैद्धान्तिक रूप से विपरीत है, विरोध में है, जो उसका खण्डन करता रहता है, वह भी कभी अपने किसी शिष्य को उसके पास भेज देता है। और कहता है कि अब तू वहां जा।

बोकोजू के गुरु ने उसे अपने विरोधी सदगुरु के पास भेज दिया। बोकोजू ने कहा कि आप अपने शत्रु के पास भेज रहे हैं। और अब तक तो मैं यही सोचता था, कि वह आदमी गलत है। तो बोकोजू के गुरु ने कहा, हमारी पद्धतियां विपरीत हैं। कभी मैंने कहा नहीं कि वह गलत है। इतना ही कहा कि उसकी पद्धति गलत है। पद्धति उसकी भी गलत नहीं है, लेकिन मेरी पद्धति समझने के लिए उसकी पद्धति को जब मैं गलत कहता हूं तो तुम्हें आसानी होती है। और मेरी पद्धति जब वह गलत कहता है तो उसके पास जो लोग बैठे हैं, उन्हें समझने में आसानी होती है; कंट्रास्ट, विरोध से आसानी हो जाती है। जब हम कहते हैं, फलां चीज सही है और फलां चीज गलत है तो काले और सफेद की तरह दोनों चीजें साफ हो जाती हैं। लेकिन बोकोजू, तू वहां जा, क्योंकि तेरे लिए वही गुरु है। मेरी पद्धति तेरे काम की नहीं। लेकिन किसी को यह बताना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं, और भीतरी दुनिया में हमारा भी एक सहयोग है।

बोकोजू दुश्मन गुरु के पास जाकर दीक्षित हुआ, ज्ञान को उपलब्ध हुआ। जिस दिन ज्ञान को उपलब्ध हुआ, उसके गुरु ने कहा, अपने पहले गुरु को जाकर धन्यवाद दे आ, क्योंकि उसने ही तुझे मार्ग दिखाया। मैं तो निमित्त हूं। उसने ही तुझे भेजा है। असली गुरु तेरा वही है। अगर वह असदगुरु होता तो तुझे रोक लेता। सदगुरु था इसलिए तुझे मेरे पास भेजा है। लेकिन किसी को कहना मत। जाहिर दुनिया में हम दुश्मन हैं। पर वह दुश्मनी भी हमारा षड्यंत्र है। उसके भीतर एक गहरी मैत्री है। मैं भी वहीं पहुंचा रहा हूं लोगों को, जहां वह पहुंचा रहा है। मगर यह किसी को बताने की बात नहीं है। हमारा जो खेल चल रहा है, उसको बिगाड़ने की कोई जरूरत नहीं है।

एक अन्तर्जगत है रहस्यों का, उसका आपको पता नहीं है। इतना ही आप कर सकते हैं कि आप खुले रहें। आपकी आंख बन्द न हो। और आप इतने ग्राहक रहें कि जब कोई आपको चुनना चाहे, और कोई चुम्बक आपको खींचना चाहे तो आपसे कोई प्रतिरोध न पड़े। एक दिन आप सदगुरु के पास पहुंच जायेंगे। यह तैयारी अगर हुई तो आप पहुंच जायेंगे। थोड़ी बहुत भटकन बुरी नहीं है। और ऐसा मत सोचें कि भटकना बुरा ही है। भटकना भी एक अनुभव है। और भटकने से भी एक प्रौढ़ता, एक मेच्योरिटी आती है। जिन गुरुओं को आप व्यर्थ समझकर छोड़कर चले जाते हैं, उनसे भी आप बहुत कुछ सीखते हैं। जिनसे आप कुछ भी नहीं सीखते, उनसे भी कुछ सीखते हैं। जिनको आप व्यर्थ पाते हैं, अपने काम का नहीं पाते और हट जाते हैं, वे भी आपको निर्मित करते हैं।

जिन्दगी बड़ी जटिल व्यवस्था है, और उसका सृजन का जो काम है, उसके बहु आयाम हैं। भूल भी ठीक की तरफ ले

जाने का मार्ग है। इसलिए भूल करने से डरना नहीं चाहिए, नहीं तो कोई आदमी ठीक तक कभी पहुंचता नहीं। भूल करने से जो डरता है वह भूल में ही रह जाता है। वह कभी सही तक नहीं पहुंच पाता। खूब दिल खोलकर भूल करनी चाहिए। एक ही बात ध्यान रखनी चाहिए कि एक ही भूल दुबारा न हो। हर भूल इतना अनुभव दे जाये कि उस भूल को हम दुबारा नहीं करेंगे, तो फिर हम धन्यवाद दे सकते हैं उसको भी, जिससे भूल हुई, जिसके द्वारा हुई, जिसके कारण हुई, जिसके साथ हुई, जहां हुई; उसको भी हम धन्यवाद दे सकते हैं। लेकिन कुछ लोग जीवन की, सृजन की, जो बड़ी प्रक्रिया है उसको नहीं समझते। वे कहते हैं, आप तो सीधा-साधा ऐसा बता दें कि कौन है सदगुरु? हम वहां चले जायें। आपको जाना पड़ेगा।

भूल, भटकन अनिवार्य हिस्सा है। थोड़ी-सी भूलें कर लेने से आपकी गहराई बढ़ती है। और भूलें करके ही आपको पता चलता है कि ठीक क्या होगा। इसलिए असदगुरु का भी थोड़ा-सा उपयोग है। वह भी बिलकुल व्यर्थ नहीं है।

एक बात ध्यान रखें कि परमात्मा के इस विराट आयोजन में कुछ भी व्यर्थ नहीं है। यहां जो आपको व्यर्थ दिखायी पड़ता है, वह भी सार्थक की ओर इशारा है। और यहां अगर असदगुरु हैं, तो वे भी पृष्ठभूमि का काम करते हैं, जिनमें सदगुरु चमककर दिखायी पड़ जाते हैं, नहीं तो वह भी दिखायी नहीं पड़े। जिन्दगी विरोध से निर्मित है। सत्य की खोज असत्य के मार्ग से भी होती है। सही की खोज भूल के द्वार से भी होती है। इसलिए भयभीत न हों, अभय रखें और खुले रहें। भय की वजह से आदमी बन्द हो जाता है। वह डरा ही रहता है कि ऐसा न हो कि किसी गलत आदमी से जोड़ हो जाये। इस भय से वह बन्द ही रह जाते हैं। बन्द आदमी का, गलत आदमी से तो जोड़ नहीं होता, सही आदमी से भी कभी जोड़ नहीं होता। खुले आदमी का गलत आदमी से जोड़ होता है, लेकिन जो खुला है, वह जल्दी ही गलत आदमी के पार चला जाता है। और खुले होने के कारण और गलत के पार होने के अनुभव से जल्दी ही सही के निकट होने लगता है।

इतना स्मरण रखें, सदगुरु आपको चुन ही लेगा। वह सदा मौजूद है। शायद आपके ठीक पड़ोस में हो।

एक दिन हसन ने परमात्मा से प्रार्थना की कि दुनिया में सबसे बुरा आदमी कौन है, बड़े से बड़ा पापी? रात उसे स्वप्न में संदेश आया, तेरा पड़ोसी इस समय दुनिया में सबसे बड़ा पापी है।

हसन बहुत हैरान हुआ। पड़ोसी बहुत सीधा-सच्चा आदमी था। साधारण आदमी था। कोई पापऐसी कोई खबर नहीं थी, कोई अफवाह भी न थी। बड़ा चकित हुआ कि पापी पास में है जगत का सबसे बड़ा, और मुझे अब तक कोई पता न चला।

उसने उस रात दूसरी प्रार्थना की कि एक प्रार्थना और मेरी पूरी कर। इस जगत में सबसे बड़ा पुण्यात्मा, सबसे बड़ा ज्ञानी, सबसे बड़ा सन्त पुरुष कौन है? एक तो तूने बता दिया, अब दूसरा भी बता दें। रात संदेश आया कि तेरा दूसरा पड़ोसी। एक तरफ बाइच तरफवाला कल था, दाइच तरफवाला आज है। वह दुनिया में सबसे बड़ा ज्ञानी और सबसे बड़ा रहस्यदश है।

हसन तो हैरान हो गया। यह भी एक साधारण आदमी था। एक चमार था जो जूते बेचता था। यह पहलेवाले आदमी से भी साधारण था। हसन ने तीसरी रात फिर प्रार्थना की कि परमात्मा, तू मुझे और उलझनों में डाल रहा है। पहले हम ज्यादा सुलझे हुए थे, तेरे इन उत्तरों से हम और मुसीबत में पड़ गये। कैसे पता लगे कि कौन अच्छा है, कौन बुरा है?

तो तीसरे दिन संदेश आया कि जो बन्द हैं, उन्हें कुछ भी पता नहीं चलता। जो खुले हैं, उन्हें सब पता चल जाता है। तू एक बन्द आदमी है, इसलिए दोनों तरफ तेरे पड़ोस में लोग मौजूद हैं, नरक और स्वर्ग तेरे पड़ोस में मौजूद हैं और तुझे पता नहीं चला। तू बन्द आदमी है। तू खुला हो, तो तुझे पता चल जायेगा।

खुला होना खोज है। आपका मस्तिष्क एक खुला मस्तिष्क हो, जिसमें कहीं कोई दरवाजे बन्द नहीं, ताले नहीं डाल रखे हैं आपने, जहां से हवाएं गुजरती हैं ताजी, रोज। जहां सूरज की किरणें प्रवेश करती हैं, जहां चांद की चांदनी भी आती है। जहां वर्षा हो तो उसकी बूंदें भी पड़ती हैं। जहां धूप निकले तो भीतर रोशनी पहुंचती है। बाहर अंधेरा हो तो अंधेरा भी भीतर प्रवेश करता है। मन आपका एक खुला आकाश हो, तो सदगुरु आपको चुन लेगा।

सदगुरु ही चुनता है।

एक दूसरे मित्र ने पूछा है—जागृति की, होश की साधना में भय का जन्म हो जाता है, और हर समय डर लगता रहता है कि जीवन-चर्या अस्त-व्यस्त न हो जाये। फिर ऐसा भी लगता है कि क्रोध, काम आदि उठते हैं, तो कर लेने से पांच-सात मिनट में निपट जाते हैं। उनसे मुक्ति हो जाती मालूम पड़ती है। न करो तो दिनों तक उनकी प्रतिध्वनि, उनकी तरंगें भीतर गूंजती रहती हैं। और तब ऐसा लगता है कि इससे तो कर ही लिया होता तो निपट गये होते। तो क्या करें? ऐसी जागृति दमन नहीं है?

दो बातें हैं—एक तो, अगर, जागृति से क्रोध—जो पांच मिनट में निपट जाता है, दो दिन चल जाता है, तो समझना कि वह जागृति नहीं है, दमन ही है। क्योंकि दमन से ही चीजें फैल जाती हैं। भोग से भी ज्यादा उपद्रव खड़ा हो जाता है। अगर कामवासना उठती है और क्षणभर में निपट जाती है। और जागृति से दिनों सरकती है और सघन होने लगती है और मन पर बोझ बन जाती है, तो समझना कि जागृति नहीं है, दमन ही है।

हममें से बहुत से लोग ठीक से समझ नहीं पाते कि जागृति और दमन में क्या फर्क है? उसे समझ लें।

दमन का मतलब है, जो भीतर उठा है, उसे भीतर ही दबा देना, बाहर न निकलने देना। भोग का अर्थ है; उसे बाहर निकलने देना किसी पर। फर्क समझ लें—दमन का अर्थ है, अपने पर दबा देना; भोग का अर्थ है, दूसरे पर निकाल लेना। जागृति तीसरी बात है—शून्य में निकाल लेना, न अपने पर दबाना, न दूसरे पर निकालना। शून्य में निकाल लेना।

समझें—क्रोध उठा, द्वार बन्द कर लें, एक तकिया अपने सामने रख लें और तकिये पर पूरी तरह क्रोध निकाल लें। जितनी आग उबल रही हो, जो-जो करने का मन हो रहा हो, घूंसा मारना हो, पीटना हो तकिये को, पीटें। उसके ऊपर गिरना हो, गिरें, चीड़ना-फाड़ना हो, चीड़ें-फाड़ें। काटना हो, काटें। जो भी करना हो, पूरी तरह कर लें। और यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मैं क्या कर रहा हूं, मुझसे क्या-क्या हो रहा है।

इसको ठीक से समझ लें।

यह करते वक्त पूरा होश रखें कि मेरे दांत काटना चाह रहे हैं और मैं काट रहा हूं। मन कहेगा कि यह क्या बचकानी बात कर रहे हो, इसमें क्या सार है? यह वह मन बोल रहा है, जो कह रहा है, असली आदमी को काटो तो सार है, असली आदमी को मारो तो सार है। लेकिन आपको पता है कि घूंसा चाहे आप तकिये में मारें और चाहे असली आदमी में, भीतर की जो प्रक्रिया है, वह बराबर एकसी हो जाती है, उसमें कोई फर्क नहीं है।

शरीर में जो क्रोध के अणु फैल गये खून में, वह तकिये में मारने से भी उसी तरह निकल जाते हैं जैसा असली आदमी में मारने से निकलते हैं। हां असली आदमी में मारने से शृंखला शुरू होती है, क्योंकि अब उसका भी क्रोध जगेगा। अब वह भी आप पर निकालना चाहेगा। तकिया बड़ा ही संत है। वह आप पर कभी नहीं निकालेगा। वह पी जायेगा। अगर आप महावीर को मारने पहुंच जाते तो जिस तरह वे पी जाते, उसी तरह यह तकिया पी जायेगा। आपको दबाना भी न पड़ेगा, रोकना भी नहीं पड़ेगा और निकालने भी किसी पर नहीं जाना पड़ेगा।

इसको ठीक से समझ लें, तो कैथार्सिस, रेचन की प्रक्रिया समझ में आ जायेगी, रेचन में ही जागरण आसान है। यह है रेचन, निकालना। और आप सोचते होंगे कि हमसे नहीं निकलेगा तो आप गलत सोचते हैं। मैं सैकड़ों लोगों पर प्रयोग करके कह रहा हूं—आप ही जैसे लोगों पर, बहुत दिल खोलकर निकलता है। सच तो यह है कि दूसरे पर निकालने में थोड़ा दमन तो हो ही जाता है। पूरा नहीं निकल पाता। तो वह जो थोड़ा दमन हो जाता है, वह जहर की तरह घूमता रहता है। दूसरे पर दिल खोलकर कभी निकाला ही नहीं जा सकता, क्योंकि कितना ही बुरा आदमी हो, फिर भी दूसरे आदमी के साथ कितना निकाल सकता है।

एक युवक पर मैं प्रयोग कर रहा था, तो वह पहले तो हंसा। उसने कहा कि आप भी कैसी मजाक करते हैं, तकिये पर ! मैंने उससे कहा, मजाक ही सही, तुम शुरू तो करो। पहले तो वह हंसा, थोड़ा उसने कहा कि यह तो एक्टिंग हो जायेगी, अभिनय हो जायेगा। मैंने कहा, होने दो। दो मिनट बाद गति आनी शुरू हो गयी। पांच मिनट बाद वह पूरी तरह तल्लीन था।

पांच दिन के भीतर तो वह इतना आनंदित था उस तकिये के साथ, और उसने मुझे तीसरे दिन बताया कि यह चकित

होनेवाली बात है। अब मेरा क्रोध मेरे पिता पर है, सारा क्रोध। और अब मैं तकिये में तकिये को नहीं देख पाता, मुझे पिता पूरी तरह अनुभव होने लगे। सातवें दिन वह एक छुरा लेकर आ गया। मैंने कहा, यह छुरा किसलिए ले आये हो? उसने कहा कि अब रोकें मत। जब कर ही रहा हूं तो अब पूरा ही कर लेने दें। जब इतना निकला है, और मैं इतना हल्का हो गया हूं, तो पिता की हत्या करने का मेरे मन में न मालूम कितनी दफे खयाल आया। अपने को दबा लिया हूं कि यह तो बड़ी गलत बात है, पिता और हत्या !

वह लड़का अमरीका से हिन्दुस्तान आया सिर्फ इसलिए कि पिता से इतनी दूर चला जाये कि कहीं हत्या न कर दे। फिर उसने पिता की हत्या कर दी सिंबालिक। छुरा लेकर उसने तकिये को चीर फाड़ डाला, हत्या कर डाली। उस युवक का चेहरा देखने लायक था। जब वह पिता की हत्या कर रहा था और जब मैंने उसे आवाज दी कि अब तू होशपूर्वक कर, तो वह दूसरा ही आदमी हो गया, तत्काल। इधर हत्या चलती रही बाहर, उधर भीतर एक होश का दीया भी जलने लगा। वह अपने को देख पाया। अपनी पूरी नग्नता में, अपनी पूरी पशुता में। और सात दिन के इस प्रयोग के बाद अब वह होश रख सकता है क्रोध में, अब तकिये पर मारने की जरूरत नहीं है। अब क्रोध आता है तो आंख बन्द कर लेता है। अब वह क्रोध को देख सकता है सीधा। अब तकिये के माध्यम की कोई जरूरत न रही। क्योंकि असली माध्यम से नकली माध्यम चुन लिया। अब नकली माध्यम से गैर-माध्यम पर उतरा जा सकता है।

तो जिनको भी क्रोध का दमन करना हो, अगर वे जागृति का उपयोग कर रहे हों तो उनको जागृति से कोई संबंध नहीं है। वह सिर्फ क्रोध को दबाना चाह रहे हैं। जिन्हें क्रोध का विसर्जन करना हो, उन्हें क्रोध का प्रयोग करना चाहिए, क्रोध पर ध्यान करना चाहिए। अकेले महावीर ने सारे जगत में दो ध्यानों की बात की है, जिसको किसी और ने कभी ध्यान नहीं कहा। महावीर ने चार ध्यान कहे हैं। दो ध्यान, जिनसे ऊपर उठना है, और दो ध्यान, जिनमें जाना है। दुनिया में ध्यान की बात करनेवाले लाखों लोग हुए हैं, लेकिन महावीर ने जो बात कही है वह बिलकुल उनकी है, वह किसी ने भी नहीं कही। महावीर ने कहा है, दो ध्यान ऐसे, जिनके ऊपर जाना है, और दो ध्यान ऐसे, जिनमें जाना है। तो हम सोचते हैं, ध्यान हमेशा अच्छा होता है। महावीर ने कहा, दो बुरे ध्यान भी हैं। उनको महावीर कहते हैं, आर्त ध्यान और रौद्र ध्यान, दो बुरे ध्यान, यह ठीक सन्तुलन हो जाता है दो भले ध्यान का। भले ध्यान को महावीर कहते हैं—धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान। चार ध्यान हैं। रौद्र ध्यान का अर्थ है क्रोध, आर्त ध्यान का अर्थ है दुख।

जब आप दुख में होते हैं तब आपको पता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। कोई मर गया, उस वक्त आपका चित्त बिलकुल एकाग्र हो जाता है। आपका प्रेमी मर गया। जितना जिन्दे थे वे, तब उन पर कभी एकाग्र नहीं हुआ। अब मर गये तो उन पर चित्त एकाग्र हो जाता है। अगर जिन्दे थे, तभी इतना चित्त एकाग्र कर लेते तो शायद उन्हें मरना भी न पड़ता इतनी जल्दी ! लेकिन जिन्दे में चित्त कहीं कोई एकाग्र होता है? मर गये, इतना धक्का लगता है कि सारा चित्त एकाग्र हो जाता है।

दुख में आदमी चित्त एकाग्र कर लेता है। क्रोध में भी आदमी का चित्त एकाग्र हो जाता है। क्रोधी आदमी को देखो, क्रोधी आदमी बड़े ध्यानी होते हैं। जिस पर उनका क्रोध है, सारी दुनिया मिट जाती है, बस वही एक बिन्दु रह जाता है। और सारी शक्ति उसी एक बिन्दु की तरफ दौड़ने लगती है। क्रोध में एकाग्रता आ जाती है। महावीर ने कहा है, ये भी दोनों ध्यान हैं। बुरे ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। अशुभ ध्यान हैं, पर ध्यान हैं। इनसे ऊपर उठना हो तो इनको करके इनमें जागकर ही ऊपर उठा जा सकता है।

जब दुख हो, द्वार बन्द कर लें। दिल खोलकर रोयें, पीटें, छाती पीटें, जो भी करना हो करें। किसी दूसरे पर न निकालें। हम दुख भी दूसरे पर निकालते हैं। इसलिए अगर लोगों की चर्चा सुनो तो लोग अपने दुख एक दूसरे को सुनाते रहते हैं। यह निकालना है। लोगों की चर्चा का नब्बे प्रतिशत दुखों की कहानी है। अपनी बीमारियां, अपने दुख, अपनी तकलीफें, दूसरे पर निकाल रहे हैं।

मन—लोग कहते हैं, कह देने से हल्का हो जाता है। आपका हो जाता होगा, दूसरे का क्या होता है, इसका भी तो सोचें। आप हल्के

होकर घर आ गये और उनको जिनको फंसा आये आप? इसलिए लोग दूसरे के दुख की बातें सुनकर भी अनसुनी करते

हैं, क्योंकि वे अपना बचाव करते हैं। आप सुना रहे हैं, वे सुन रहे हैं, लेकिन सुनना नहीं चाहते।

जब आपको लगता है कि कोई आदमी बोर कर रहा है तो उसका कुल मतलब इतना ही होता है कि वह कुछ सुनाना चाह रहा है, निकालना चाह रहा है, हल्का होना चाह रहा है और आप भारी नहीं होना चाह रहे हैं। आप कह रहे हैं, क्षमा करो। या यह हो सकता है कि आप खुद ही उसको बोर करने का इंतजाम किये बैठे थे, वह आपको कर रहा है।

दुख भी दूसरे पर मत निकालें। दुख को भी एकांत ध्यान बना लें। क्रोध भी दूसरे पर मत निकालें, एकांत ध्यान बना लें। शून्य में होने दें विसर्जन और जागरूक रहें—होशपूर्वक। आप थोड़े ही दिन में पायेंगे कि एक नयी जीवन दिशा मिलनी शुरू हो गयी, एक नया आयाम खुल गया। दो आयाम थे अब तक—दबाओ, या निकालो। अब एक तीसरा आयाम मिला, विसर्जन। यह तीसरा आयाम मिल जाये तो ही आपका होश सधेगा, और होश से अस्त-व्यस्तता न आयेगी। और जीवन ज्यादा शांत, ज्यादा मौन, ज्यादा मधुर हो जायेगा।

अगर आपने दमन कर लिया होश के नाम पर, तो जीवन ज्यादा कड़वा, ज्यादा विषाक्त हो जायेगा। अगर मुझसे पूछते हो कि अगर भोग और दमन में ही चुनना हो तो मैं कहूंगा, भोग चुनना, दमन मत चुनना। क्योंकि दमन ज्यादा खतरनाक हैं। उससे तो भोग बेहतर। लेकिन मैं यह नहीं कह रहा हूं कि भोग चुनना। इन दोनों से भी बेहतर एक है विसर्जन। अगर विसर्जन चुन सकें, तो ही भोग छोड़ना। अगर विसर्जन न चुन सकें तो भोग ही कर लेना बेहतर है। तब वह मित्र ठीक कहते हैं कि पांच मिनट में क्रोध निकल जाता है। फिर देखेंगे जब दुबारा, जब दूसरा आदमी निकालेगा, देखा जायेगा। फिलहाल शांति हुई। लेकिन अगर दबा लें तो वह चौबीस घण्टे चलता है।

और ध्यान रखें, कोई भी दबायी हुई चीज की मात्रा उतनी ही नहीं रहती जितनी आप दबाते हैं। वह बढ़ती है, भीतर बढ़ती चली जाती है। जैसे आप पत्नी पर नाराज हो गये। अब आपने क्रोध दबा लिया। अब आप दफ्तर गये, अब चपरासी जरा सी भी बात कहेगा, जो कल बिलकुल चोट नहीं खाती, आज चोट दे देगी। उसको भी दबा गये। आपने मात्रा बढ़ा ली। अब आपका मालिक बुलाता है और कुछ कहता है। वह कल आपको बिलकुल नहीं अखरती थी उसकी बात, आज उसकी आंख अखरती है, उसका ढंग अखरता है। वह आपके भीतर जो इकट्ठा है, वह कलर दे रहा है आपकी आंखों को। रंग दे रहा है। अब उस रंग में सब उपद्रव दिखाई पड़ता है। यह आदमी दुश्मन मालूम पड़ता है। वह जो भी कहता है, उससे क्रोध और बढ़ता है। वह भी आपने इकट्ठा कर लिया।

वह सुबह आप लेकर पत्नी से चले गये थे दफ्तर, सांझ जब आप लौटते हैं तो जो बीज था, वह वृक्ष हो गया। सुबह ही निकाल लिया होता तो मात्रा कम होती, सांझ निकलेगा अब मात्रा काफी होगी। और यह अन्याययुक्त होगा। सुबह तो हो सकता था, न्यायपूर्ण भी होता। इसमें दूसरों पर भी जो क्रोध होता है, वह भी संयुक्त हो गया।

दबायें मत, उससे तो भोग लेना बेहतर है। इसलिए जो लोग भोग लेते हैं, वे सरल लोग होते हैं। बच्चों को देखें, उनकी सरलता यही है। क्रोध आया, क्रोध कर लिया। खुशी आयी खुशी कर ली, लेकिन खींचते नहीं। इसलिए जो बच्चा अभी नाराज हो रहा था कि दुनिया को मिटा देगा, ऐसा लग रहा था, थोड़ी देर बाद गीत गुनगुना रहा है। निकाल दिया जो था, अब गीत गुनगुनाना ही बचा। आप न दुनिया को मिटाने लायक उछल कूद करते हैं और न कभी तितलियों जैसा उड़ सकते हैं और न पक्षियों जैसा गीत गा सकते हैं। आप अटके रहते हैं बीच में। धीरे-धीरे आप मिक्सचर, एक खिचड़ी हो जाते हैं सब चीजों की। जिसमें न कभी क्रोध निकलता शुद्ध, न कभी प्रेम निकलता शुद्ध, क्योंकि शुद्ध कुछ बचता ही नहीं। सब चीजें मिश्रित हो जाती हैं। और यह जो मिश्रित आदमी है, यह रुग्ण और बीमार आदमी है, पैथोलाजिकल है। इसके प्रेम में भी क्रोध होता है। इसके क्रोध में भी प्रेम भर जाता है। यह अपने दुश्मन से भी प्रेम करने
लगता है, अपने मित्र से भी घृणा करने लगता है। इसका सब एक दूसरे में घोल-मेल हो जाता है, इसमें कोई चीजें साफ नहीं होतीं। बच्चे साफ होते हैं। जो करते हैं, उसी वक्त कर लेते हैं। फिर दूसरी चीज में गति कर जाते हैं, फिर पीछे नहीं ले जाते। हम साफ नहीं होते। और जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होने लगता है वैसे-वैसे सब गड्ड-मड्ड हो जाता है। आत्मा नाम की कोई चीज उनके भीतर नहीं रहती है—एक गड्ड-मड्ड, कन्फयूजन।

भोग चुन लें, अगर दमन करना हो तो। दमन तो कतई बेहतर नहीं है। लेकिन भोग दुख देगा। दमन दुख देगा। भोग कम

देगा शायद, लम्बे असच में देगा शायद, टुकड़े-टुकड़े में, खण्ड-खण्ड में, अलग-अलग मात्रा में देगा शायद। दमन इकट्ठा दे देगा, भारी कर देगा, लेकिन दोनों दुखदायी हैं। मार्ग तो तीसरा है, विसर्जन—न भोग, न दमन। यह जो विसर्जन है, यह है शून्य में वृत्तियों का रेचन, और जब आप शून्य में करते हैं तो जागना आसान है, जब आप किसी पर करते हैं तो जागना आसान नहीं है। जब आप किसी को घूंसा मारते हैं, तो आपको दूसरे पर ध्यान रखना पड़ता है, क्योंकि घूंसे का उत्तर आयेगा। जब आप तकिये को घूंसा मारते हैं तो अपने पर पूरा ध्यान रख सकते हैं, क्योंकि तकिये से कोई घूंसा नहीं आ रहा।

अपने पर ध्यान रखें और रेचन हो जाने दें। धीरे-धीरे ध्यान बढ़ता जायेगा और रेचन की कोई जरूरत न रह जायेगी। एक दिन आप पायेंगे, भीतर क्रोध उठता है, होश भी साथ में उठता है। होश के उठते ही क्रोध विसर्जित हो जाता है। अभी जिसे आप होश समझ रहे हैं वह होश नहीं है, दमन की ही एक प्रक्रिया है। रेचन के माध्यम से होश को साधें।

एक छोटा-सा प्रश्न और।

एक बहन ने लिखा है कि जब भी मैं आंख बन्द करके शून्य में खो जाना चाहती हूं, तभी थोड़ी देर शांति महसूस होती है और फिर भीतर घना अंधेरा छा जाता है। प्रकाश का कब अनुभव होगा? क्या कभी कोई प्रकाश की किरण दिखायी न पड़ेगी?

थोड़ा समझ लें पहली तो बात यह, अंधेरा बुरा नहीं है। और ऐसी जिद्द मत करें कि प्रकाश का ही अनुभव होना चाहिए। आपकी कोई भी जिद्द, कि यह अनुभव होना चाहिए, बाधा है गहराई में जाने में। गहराई में जाना हो तो जो अनुभव हो, उसको पूरे आनन्द से स्वीकार कर लेना चाहिए। अंधेरे को स्वीकार कर लें, अंधेरे का अपना आनन्द है। किसने कहा कि अंधेरे में दुख है? अंधेरे की अपनी शांति है, अंधेरे का अपना मौन है, अंधेरे का अपना सौन्दर्य है। किसने कहा?

लेकिन हम जीते हैं धारणाओं में। अंधेरे से हम डरते हैं, क्योंकि अंधेरे में पता नहीं कोई छुरा मार दे, जेब काट ले। इसलिए बच्चे को हम अंधेरे से डराने लगते हैं। धीरे-धीरे बच्चे का मन निश्चित हो जाता है कि प्रकाश अच्छा है, अंधेरा बुरा है। क्योंकि प्रकाश में कम से कम दिखायी तो पड़ता है !

मैं एक प्रोफेसर के घर रुकता था। उनका लड़का नौ साल का हो गया। उन्होंने मुझसे कहा कि कुछ समझायें इसको, इसको रात में भी पाखाना जाना हो—पुराना ढंग का मकान, बीच में आंगन, उस तरफ पाखाना—तो इसके साथ जाना पड़ता है। इतना बड़ा हो गया, अब अकेला जाना चाहिए। रात में इसके पीछे कोई जाये और दरवाजे के बाहर खड़ा रहे तो ही यह जा सकता है। तो मैंने उस लड़के से कहा कि अगर तुझे अंधेरे का डर है तो लालटेन लेकर क्यों नहीं चला जाता? उस लड़के ने कहा, खूब कह रहे हैं आप। अंधेरे में तो मैं किसी तरह भूत-प्रेत से बच जाता हूं, लालटेन में तो वे सब मुझे देख ही लेंगे। अंधेरे में तो मैं ऐसा चकमा देकर, इधर-उधर से निकल जाता हूं।

धारणाएं बचपन से हम निर्मित करते जाते हैं, कुछ भी, चाहे भूत-प्रेत की, चाहे प्रकाश की, चाहे अंधेरे की। फिर वे धारणाएं हमारे मन में गहरी हो जाती हैं। फिर जब हम अध्यात्म की खोज में चलते हैं तब भी उन्हीं धारणाओं को लेकर चलते हैं। उससे भूल होती है। न तो परमात्मा के लिए अंधेरे से कोई विरोध है, न प्रकाश से कोई लगाव है। परमात्मा दोनों में एक-सा मौजूद है। जिद्द मत करें कि हमें प्रकाश ही चाहिए। यह जिद्द बचकानी है।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि प्रकाश से ज्यादा शांति मिल सकती है अंधेरे में, क्योंकि प्रकाश में थोड़ी उत्तेजना है, अंधेरा बिलकुल ही उत्तेजना शून्य है। और प्रकाश में तो थोड़ी चोट है, अंधेरा बिलकुल ही अहिंसक है। अंधेरा कोई चोट नहीं करता। और प्रकाश की तो सीमा है, अंधेरा असीम है। और प्रकाश को तो कभी करो, फिर बुझ जाता है। अंधेरा सदा है, शाश्वत है। तो क्या घबराहट अंधेरे से?

प्रकाश को जलाओ, बुझाओ, लेकिन अंधेरा न जलता, न बुझता, वह सदा है। थोड़ी देर प्रकाश जला लेते हैं, वह दिखायी नहीं पड़ता। फिर प्रकाश बुझा, अंधेरा अपनी जगह ही था। आप भ्रम में पड़ गये थे। बड़े-बड़े सूरज जलते हैं और बुझ जाते हैं, अंधेरे को मिटा नहीं पाते। वह है। फिर प्रकाश तो कहीं न कहीं सीमा बांधता है। अंधेरा असीम है, अनन्त है। क्या घबराहट, अंधेरे से?

छोड़ दें अंधेरे में अपने को। अगर ध्यान में अंधेरा आ जाता है, लीन हो जायें अंधेरे में। जो व्यक्ति अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसे प्रकाश तो दिखाई नहीं पड़ेगा, लेकिन स्वयं का अनुभव होना शुरू हो जायेगा, वही प्रकाश है।

जो अंधेरे में भी लीन होने को राजी है, उसने परम समर्पण कर दिया। वह एक होने को राजी हो गया, अनन्त के साथ। यह जो अनुभव है एक हो जाने का, उसको ही सिम्बालिक रूप से प्रकाश कहा है, ज्योति कहा है। इन शब्दों में मत पड़ें, इन शब्दों का कोई अर्थ नहीं है। ईसाई फकीर अकेले हुए हैं दुनिया में जिन्होंने अंधेरे को आदर दिया है, और उन्होंने कहा है, 'डार्क नाइट आफ दि सोल।' जब आदमी ध्यान में जाता है तो आत्मा की अंधेरी रात से गुजरता है। वह परम सुहावनी है। है भी। कोई भय न लें।

ध्यान में जो भी अनुभव आये, उस पर आप अपनी अपेक्षा न थोपें कि यह अनुभव होना चाहिए। जो अनुभव आये, उसे स्वीकार कर लें, और आगे बढ़ते जायें। अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दें। जिसने अंधेरे के साथ दुश्मनी छोड़ दी, उसे प्रकाश मिल गया। और जिसने अंधेरे से दुश्मनी बांधी, वह झूठा, कल्पित प्रकाश बनाता रहेगा। लेकिन उसे असली प्रकाश कभी भी मिल नहीं सकता। क्यों? क्योंकि अंधेरा प्रकाश का ही एक रूप है। और प्रकाश भी अंधेरे का ही एक छोर है। ये दो चीजें नहीं हैं। इनको दो मानकर मत चलें। यह द्वैत छोड़ दें। परमात्मा अंधेरा दे रहा है तो अंधेरा सही, परमात्मा रोशनी दे रहा है तो रोशनी सही। हमारा कोई आग्रह नहीं। वह जो दे, हम उसके लिए राजी हैं। ऐसे राजीपन का नाम ही समर्पण है।

अब सूत्र।

'जिस साधक की आत्मा इस प्रकार दृढ़निश्चयी हो कि देह भले चली जाये, पर मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता, उसे इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं। जैसे भीषण बवंडर भी सुमेरु पर्वत को विचलित नहीं कर सकता।'

इस सूत्र के कारण बड़ी भ्रांतियां भी हुई हैं। ऐसे सूत्र कुरान में भी मौजूद हैं, ऐसे सूत्र गीता में भी मौजूद हैं, और उन सबने दुनिया में बड़ा उपद्रव पैदा किया है। उनका अर्थ नहीं समझा जा सका, और उनका अनर्थ समझा गया। इस तरह के सूत्रों की वजह से अनेक लोग सोचते हैं कि अगर कोई धर्म पर खतरा आ जाये धर्म पर—मतलब हिन्दू धर्म पर, जैन धर्म पर—तो अपनी जान दे दो। क्योंकि महावीर ने कहा कि चाहे देह भले चली जाये, मैं अपना धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।

तो अनेक शहीद हो गये नासमझी में। वे यह सोचते हैं कि जैन धर्म छोड़ नहीं सकता, चाहे देह चली जाये। और मजा यह है कि जैन धर्म पकड़ा कभी है ही नहीं, छोड़ने से डर रहे हैं। सिर्फ जैन घर में पैदा हुए हैं, पकड़ा कब था जो आपसे छूट जायेगा? हिन्दू धर्म नहीं छोड़ सकते, बस ! जब छोड़ने का सवाल आता है, तभी पकड़ने का पता चलता है, और कभी पता नहीं चला। मस्जिद में नहींजा सकते, क्योंकि हम मन्दिर में जानेवाले हैं, लेकिन मन्दिर में गये कब? मन्दिर में जाने की कोई जरूरत नहीं, जब मस्जिद से झंझट हो तभी मन्दिर का खयाल आता है।

इसलिए बड़ा मजा है। जब हिन्दू-मुस्लिम दंगे होते हैं, तब ही पता चलता है कि हिन्दू कितने हिन्दू, मुस्लिम कितने मुस्लिम। तभी पता चलता है कि सच्चे धार्मिक कौन हैं। वैसे कोई पता नहीं चलता।

मामला क्या है? जिस धर्म को आपने कभी पकड़ा ही नहीं, उसको छोड़ने का कहां सवाल उठता है? जन्म से कोई धर्म नहीं मिलता, क्योंकि जन्म की प्रक्रिया से धर्म का कोई संबंध ही नहीं है। जन्म की प्रक्रिया है बायोलाजिकल, जैविक। उसका धर्म से कोई संबंध नहीं है। आपके बच्चे को मुसलमान के घर में बड़ा किया जाये, मुसलमान हो जायेगा, हिन्दू के घर में बड़ा किया जाये हिन्दू हो जायेगा। ईसाई के घर में बड़ा किया जाये ईसाई हो जायेगा। यह जो धर्म मिलता है, यह तो संस्कार है, शिक्षा है घर की। इसका जन्म से, खून से कोई लेना-देना नहीं है। ऐसा नहीं है कि आपके बच्चे को, पहले दिन पैदा हो और ईसाई घर में रख दिया जाये तो कभी वह पता लगा ले कि मेरा खून हिन्दू का है। इस भूल में मत पड़ना। लोग बड़ी भूलों में रहते हैं। माताएं कहती हैं लड़के से कि मेरा खून। और बच्चा पैदा हो, जैसे मेटरनिटी होम में बच्चे पैदा होते हैं, बीस बच्चे एक साथ रख दिये जायें जो अभी पैदा हुए हैं और बीसों माताएं छोड़ दी जायें, एक न खोज पायेगी कि कौनसा बच्चा उसका है। आंख बन्द करके बच्चे पैदा करवा दिये जायें, बीसों बच्चे रख दिये जायें, बीसों माताओं को

छोड़ दिया जाये, एक मां न खोज पायेगी कि कौन सा खून उसका है। कोई उपाय नहीं है।

खून का आपको कोई पता नहीं चलता, सिर्फ दिये गये शिक्षाओं और संस्कारों का पता चलता है। खोपड़ी में होता है धर्म, खून में नहीं। तो जिसको मिला मौका आपकी खोपड़ी में डालने का धर्म, वही धर्म आपका हो जाता है। यह सिर्फ अवसर की बात है। लेकिन इससे कोई पकड़ भी पैदा नहीं होती, क्योंकि जो धर्म मुफ्त मिल जाता है, वह धर्म कभी गहरा नहीं होता। जो धर्म खोजा जाता है, और जिसमें जीवन रूपांतरित किया जाता है, और इंच-इंच श्रम किया जाता है, वह धर्म होता है।

तो महावीर कहते हैं, दृढ़ निश्चयी की आत्मा ऐसी होती है कि देह भली चली जाये, धर्म-शासन नहीं छोड़ सकता।

धर्म-शासन का अर्थ है कि वह जो अनुशासन, मैंने स्वीकार किया है। वह जो विचार, वह जो साधना, वह जो जीवन पद्धति मैंने अंगीकार की है, उसे मैं नहीं छोडूंगा। शरीर तो आज है, कल गिर जायेगा। लेकिन वह जो मैंने जीवन को रूपांतरित करने की कीमिया खोजी है, उसे मैं नहीं छोडूंगा।

बुद्ध को ध्यान हुआ, परम ज्ञान हुआ। उस दिन सुबह वे बैठ गये थे वृक्ष के तले और उन्होंने कहा था अपने मन में, सब हो चुका, कुछ होता नहीं। अब तो सिर्फ इस बात को लेकर बैठता हूं इस वृक्ष के नीचे कि अगर कुछ भी न हुआ तो अब उठूंगा भी नहीं यहां से। फिर सब करना छोड़कर वे वहीं लेट गये। फिर उन्होंने कहा, अब उठूंगा नहीं, अब बात खत्म हो गयी। अब सब यात्रा ही व्यर्थ हो गयी तब इस शरीर को भी क्यों चलाये फिरना? कहीं कुछ मिलता भी नहीं, तो अब जाना कहां है? कुछ करने से कुछ होता भी नहीं, तो अब करने का भी क्या सार है? अब कुछ भी न करूंगा, मैं जिन्दा ही मुर्दा हो गया। अब तो इस जगह से न हटूंगा। यह शरीर यहीं सड़ जाये, गल जाये, मिट्टी में मिल जाये। उसी रात ज्ञान की किरण जग गयी। उसी रात दीया जल उठा। उसी रात उस महासूर्य का उदय हो गया। क्या हुआ मामला? पहली दफा, आखिरी चीज दांव पर लगा दी। आखिरी दांव लगाते ही घटना घट जाती है।

हम दांव पर भी लगाते हैं तो बड़ी छोटी-मोटी चीजें लगाते हैं। कोई कहता है कि आज उपवास करेंगे। क्या दांव पर लगा रहे हैं? इससे आपको लाभ ही होगा, दांव पर क्या लगा रहे हैं? क्योंकि गरीब आदमी तो उपवास वगैरह करते नहीं। ज्यादा जो खा जाते हैं, ओवर फैड, वे करते हैं। तो आपको थोड़ा लाभ ही होगा। डाक्टर कहेंगे, अच्छा ही हुआ, कर लिया। थोड़ा ब्लड प्रेशर कम होगा, उम्र थोड़ी बढ़ जायेगी।

यह बड़े मजे की बात है, जिन समाजों में ज्यादा भोजन उपलब्ध है, वे ही उपवास को धर्म मानते हैं। जैसे जैनी, वे उपवास को धर्म मानते हैं। इसका मतलब, ओवर फैड लोग हैं। ज्यादा खाने को मिल रहा है, इसलिए उपवास में धर्म दिखायी पड़ा है। गरीब आदमी का धर्म देखा? जिस दिन धर्म दिन होता है, उस दिन वह मालपुआ बनाता है। गरीब आदमी का धर्म का दिन होता है भोजन का उत्सव। अमीर आदमी के धर्म का दिन होता है, अनशन। ये दोनों ठीक हैं, बिलकुल, लाजिकल हैं। होना भी ऐसा ही चाहिए। होना भी यही चाहिए, क्योंकि सालभर तो मालपुआ गरीब आदमी खा नहीं सकता, धर्म के दिन ही खा सकता है। जो सालभर मालपुआ खाते हैं इनके लिए धर्म के दिन ये क्या खायेंगे, कोई उपाय नहीं। उपवास कर सकते हैं। कुछ नया कर लेते हैं।

लोग कहीं उपवास करके दांव पर लगाते हैं। कोई टुच्ची चीजें छोड़ते रहता है। कोई कहता है, नमक छोड़ दिया। कोई कहता है, घी छोड़ दिया। इनसे कुछ भी न होगा। ये दांव दांव नहीं हैं, धोखे हैं। यह ऐसा है जैसा एक करोड़पति जुआ खेल रहा हो और एक कौड़ी दांव पर लगा दे, ऐसा। जुए का मजा ही नहीं आयेगा। जुए का मजा ही तब है कि करोड़पति सब लगा दे। और एक क्षण को ऐसी जगह आ जाये कि अगर हारा तो भिखारी होता हूं। उस क्षण में जुआ भी ध्यान बन जाता है। उस क्षण में सब विचार रुक जाते हैं।

आपको जानकर हैरानी होगी, जुए का मजा ही यही है कि यह भी एक ध्यान है। जब पूरा दांव पर कोई लगाता है, तो छाती की धड़कन रुक जाती है एक सेकेंड को कि अब क्या होता है; इस पार या उस पार, नरक या स्वर्ग, दोनों सामने होते हैं और आदमी बीच में हो जाते हैं। सस्पेन्स हो जाता है, सारा विचार, चिंतन बन्द हो जाता है। प्रतीक्षा भर रह जाती है कि अब क्या होता है। सब कंपन रुक जाता है, श्वास रुक जाती है कि कहीं श्वास के कारण कोई गड़बड़ न हो जाये। उस

क्षण में, जो थोड़ी सी शांति मिलती है, वही जुए का मजा है। इसलिए जुए का इतना आकर्षण है।

और जब तक सारी दुनिया ध्यान को उपलब्ध नहीं होती, तब तक जुआ बन्द नहीं हो सकता क्योंकि जिनको ध्यान का कोई अनुभव नहीं, वह अलग-अलग तरकीबों से ध्यान की झलक लेते रहते हैं, जुए से भी मिलती है झलक। पर झलक काहे की? दांव की। धर्म भी एक बड़ा दांव है।

महावीर कहते हैं, शरीर चाहे चला जाये, लेकिन वह जो धर्म का अनुशासन मैंने स्वीकार किया है, उसे मैं नहीं छोड़ूंगा। ऐसा जो दृढ़ निश्चय कर लेता है, ऐसा जो संकल्प कर लेता है, उसे फिर इंद्रियां कभी भी विचलित नहीं कर पातीं, जैसे सुमेरु पर्वत को हवाओं के झोंके विचलित नहीं कर पाते।

शरीर को कहा है नाव, जीव को कहा नाविक, संसार को कहा है समुद्र। इस संसार-समुद्र को महर्षिजन पार कर जाते हैं। शरीर को कहा है नाव।

इस वचन को समझ लेना ठीक से। क्योंकि महावीर को माननेवाले भूल गये मालूम होता है इस वचन को। अगर शरीर है नाव, तो नाव मजबूत होनी चाहिए, नहीं तो सागर पार नहीं होगा। देखो जैन-साधुओं के शरीर। कोई उनकी नाव में बैठने को तैयार भी न हो कि कहां डुबा दें, कुछ पता नहीं। डूबी हालत ही है उनकी। और शरीर का वह एक ही उपयोग कर रहे हैं जैसे कोई नाव का उपयोग कर रहा हो, उसमें और छेद करता चला जाये। इसको हम तपश्चर्या कहते हैं। महावीर नहीं कह सकते, क्योंकि महावीर कहते हैं, शरीर है नाव।

नाव तो स्वस्थ होनी चाहिए—अछिद्र। उसमें कोई छेद नहीं होना चाहिए। बीमारी छेद है। शरीर तो ऐसा स्वस्थ होना चाहिए कि उसपार तक ले जा सके। महावीर के पास ऐसा शरीर था। लेकिन कहीं कोई भूल हो गयी है। उनका माननेवाला शरीर का दुश्मन हो गया है। वह समझता है गलाओ शरीर को, मिटाओ शरीर को। जितना मिटाये, उतना बड़ा आदमी है। अगर भक्तों को पता चल जाये कि थोड़ा ठीक से खाना खा रहे हैं उनके गुरु, तो प्रतिष्ठा चली जाती है। अगर भक्तों को पता चल जाये कि थोड़ा ठीक से विश्राम कर लेते हैं लेटकर, तो सब गड़बड़ हो जाता है। तो अगर जैन साधुओं को ठीक से लेटना भी हो, ठीक से भोजन भी करना हो, उसके लिए भी चोरी करनी पड़ती है। क्योंकि वह जो भक्त-गण हैं चारों तरफ, दुश्मन की तरह लगे हैं। वे पता लगा रहे हैं, क्या कर रहे हो, क्या नहीं कर रहे हो।

एक दिगम्बर जैन मुनि एक गांव में ठहरे थे। तो दिगम्बर जैन मुनि तो किसी चीज पर सो नहीं सकता—किसी वस्त्र पर, बिस्तर पर—किसी चीज पर सो नहीं सकता। सर्द रात्रि थी। तो क्या किया जाये, तो दरवाजा बन्द कर दिया जाता है, थोड़ी-बहुत गम हो जाये। और किस तरह के पागलपन चलते रहते हैं। घासफूस डाल दिया जाता है कमरे में, वह भी भक्त गण डालते हैं। क्योंकि अगर मुनि खुद कहे कि घास-फूस डाल दो, तो उसका मतलब हुआ, तुम शरीर के पीछे पड़े हो? तुम्हें शरीर का मोह है। जब आदमी आत्मा ही है, तो फिर क्या सद और क्या गम। तो पुआल डाल देते हैं। लेकिन वह पुआल भी भक्त ही डालें। वह मुनि कह नहीं सकता कि तुम डाल दो। डली है, इसलिए मजबूरी में उस पर सो जाता है।

मैं उस गांव में था, मुझे पता चला कि रात में जिन भक्तों ने पुआल डाली थी, वे जाकर देख भी आते हैं कि पुआल ऊपर तो नहीं कर ली, नीचे डली रहे। ऐसे दुष्ट भक्त भी मिल जाते हैं कि वह पुआल कहीं ऊपर तो नहीं कर दी। नहीं की हो तो निश्चिंत लौट आते हैं कि ठीक आदमी है। अगर कर ली हो, तो सब भ्रष्ट हो जाता है।

ऐसा होता है कि पर-दुख का रस है। और पर-दुख का जिनको रस है वे वैसे आदमी को आदर दे सकते हैं, जिसको स्व-दुख का रस हो। अगर इसको मनोविज्ञान की भाषा में कहें, तो दो तरह के लोग हैं दुनिया में, सैडिस्ट और मैसोचिस्ट। सैडिस्ट वे लोग हैं जो दूसरे को दुख देने में मजा लेते हैं, और मैसोचिस्ट वे लोग हैं जो खुद को दुख देने में मजा लेते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि हिन्दुस्तान में इन दोनों के बड़े ताल-मेल हो गये हैं। मैसोचिस्ट हो गये हैं गुरु और सैडिस्ट हो गये हैं शिष्य।

तो गुरु को कितनी तकलीफ—गुरु अपने हाथ सिर उठा रहा है, उतना शिष्य चर्चा करते हैं कि क्या तुम्हारा गुरु, हमारा गुरु तो कांटों पर सोया हुआ है। जैसे कि यह कोई सर्कस है। यहां कौन कहां सोया हुआ है, इसका सब निर्णय होनेवाला

है। कौन खा रहा है, कौन नहीं खा रहा है, इसका निर्णय होनेवाला है। कौन पानी पी रहा है, कौन नहीं पी रहा है, इसका निर्णय होनेवाला है। निर्णायक एक ही बात है कि शरीर की कौन कितनी बुरी तरह से हिंसा कर रहा है।

महावीर का यह मतलब नहीं हो सकता। महावीर कहते हैं, शरीर को कहता हूं नाव। इससे ज्यादा आदर शरीर के लिए और क्या होगा? क्योंकि नाव के बिना नदी पार नहीं हो सकती। इसलिए शरीर मित्र है, शत्रु नहीं। शरीर साधन है, शत्रु नहीं। शरीर मार्ग है, शत्रु नहीं। शरीर उपकरण है, शत्रु नहीं। और उपकरण का जैसा उपयोग करना चाहिए वैसा शरीर का उपयोग करना चाहिए। कि कोई कहे कि कार से पार करनी है यात्रा और पेट्रोल हम देंगे न कार को। कोई कहे कि शरीर से करनी है यात्रा और भोजन डालेंगे न शरीर में, तो फिर वह शरीर के यंत्र को नहीं समझ पा रहा है।

महावीर ने कहा है कि किसी भी दिशा में असंतुलित न हो जाओ, न तो इतना भोजन डाल दो कि नाव भोजन से ही डूब जाये, और न इतना अनशन कर दो कि नाव के प्राण बीच नदी में ही निकल जायें। सम्यक—इतना जितना पार होने में सहयोगी हो, बोझ न बने। इतना कम भी नहीं कि अशक्य हो जाये और बीच में डूब जाये। सम्यक भाव शरीर के प्रति हो, और शरीर का पूरा ध्यान रखना जरूरी है।

'जीव को नाविक और संसार को समुद्र।'

वह जो भीतर बैठी हुई आत्मा है, वह जो चेतना है, वह है यात्री। और सारा संसार है समुद्र, उससे पार होना है। वह बुरा है, ऐसा नहीं है। उसके साथ कोई दुर्भाव पैदा करना है, ऐसा भी नहीं। लेकिन वहां कोई किनारा नहीं है, वहां कोई विश्राम की जगह नहीं है। वहां अशांति रहेगी, तूफान रहेंगे, आंधियां रहेंगी। अगर आंधियों, अशांतियों और दुखों और पीड़ाओं से बचना हो तो इस संसार सागर को पार करके, तट पर पहुंच जाना चाहिए, जहां आंधियों और तूफानों का कोई प्रभाव नहीं है। और जब तक कोई सागर में है तब तक डूबने का डर बना ही रहेगा, कितनी ही अच्छी नाव हो। नाव पर ही डूबना, न डूबना निर्भर नहीं है, सागर की उत्ताल तरंगें भी हैं। भयंकर आघात होते हैं, तूफान हैं, आंधियां उठती हैं, वर्षा आती है। इससे जितनी जल्दी कोई पार हो सके।

अगर हम इस प्रतीक को ठीक से समझें और अपने चारों तरफ संसार को देखें तो वहां क्रोध है, दुख है, पीड़ा है, संताप है, उपद्रव ही उपद्रव है। और हम उसके बीच में खड़े हैं। और यह एक शरीर ही मार्ग है जिससे हम उसके पार उठ सकें।

अगर संसार को कोई समुद्र की तरह देख पाये तो बराबर समुद्र की तरह दिखाई पड़ेगा। और महावीर के समय में तो छोटा-मोटा समुद्र था, अब तो बड़ा समुद्र दिखायी पड़ता है। महावीर के जमाने में भारत की आबादी भी दो करोड़ से ज्यादा नहीं थी। अब भारत दुनिया को मात किये दे रहा है, आबादी में। अब ऐसा समझो, जमीन हमने बचने नहीं दी, समुद्र ही समुद्र हुआ जा रहा है। सारी दुनिया की आबादी साढ़े तीन अरब हो गयी है। इस सदी के पूरे होते-होते भारत की ही आबादी एक अरब होगी। आदमियों का सागर है। और आदमियों के सागर में, आदमियों की वृत्तियों, इच्निदरयों, क्रोध, रोष, मान, अपमान, इन सबका भयंकर झंझावात है।

अगर महावीर इस सागर को देखें तो वे कहें, अब जरा नाव को और ठीक से संभालना। क्योंकि आदमी अकेला पैदा नहीं होता, अपने सारे पाप, अपने सारे रोग, अपनी सारी वृत्तियों को लेकर पैदा होता है। और हर आदमी इस पूरे सागर में तरंगें पैदा करता है। जैसे मैं सागर में एक पत्थर फेंक दूं, तो वह एक जगह गिरता है, लेकिन उसकी लहरें पूरे सागर को छूती हैं। जब एक बच्चा इस जगत में पैदा होता है तो एक पत्थर और गिरा। उसकी लहरें सारे जगत को छूती हैं। वह हिटलर बनेगा, कि मुसोलिनी बनेगा, कि तोजो बनेगा, कि क्या बनेगा, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी लहरें सारे जगत को कंपायेंगी।

यह जो सागर है हमारा, इसको महर्षिजन पार कर जाते हैं। सांसारिक आदमी और धार्मिक आदमी में एक ही है फर्क। सांसारिक आदमी वह है जो इस सागर में गोल-गोल चक्कर काटता रहता है। कभी आपने नाव देखी? उसमें दो डांड लगाने पड़ते हैं। एक डांड बन्द कर दें और एक ही डांड चलायें, तब आपको पता लगेगा कि सांसारिक आदमी कैसा होता है। एक ही डांड चलायें तो नाव गोल-गोल चक्कर खायेगी। जगह वही रहेगी, यात्रा बहुत होगी। पहुंचेंगे कहीं भी नहीं, लेकिन पसीना काफी झरेगा। लगेगा कि पहुंच रहे हैं, और गोल-गोल चक्कर खायेंगे।

आपकी जिन्दगी गोल चक्कर तो नहीं है? एक व्हिशियस सर्कल तो नहीं है? क्या कर रहे हैं आप, गोल-गोल घूम रहे हैं? कल जो किया था, वही आज भी कर रहे हैं, वही परसों भी किया था, वही पूरी जिन्दगी किया है रोज-रोज, वही और जिन्दगियों में भी किया है। एक ही नाव का डांड मालूम पड़ती चल रही है और आप गोल-गोल घूम रहे हैं।
धार्मिक आदमी गोल नहीं घूमता, एक सीधी रेखा में तट की तरफ यात्रा करता है। दोनों डांड हाथ में होने चाहिए, दोनों पतवार। न तो बायें झुकें, और न दायें। ठीक से समझ लें, यही संयम का अर्थ है। अगर नाव को बिलकुल ठीक चलाना हो तो दोनों साधने पड़ेंगे, न बायें झुक जाये नाव, न दायें। जरा दायें झुके तो बायें झुका लें, जरा बायें झुके तो दायें झुका लें और बीच सीधी रेखा में लीनियर, एक रेखा में यात्रा करें। तो आप किसी दिन तट पर पहुंच पायेंगे।

संयम का इतना ही अर्थ है कि दोनों तरफ विषमताएं हैं। भोग की है, त्याग की है, दोनों के बीच संयम है। नरक की, स्वर्ग की दोनों के बीच संयम। सुख की, दुख की, दोनों के बीच संयम। शत्रु भी झुकाते हैं। मित्र भी झुकाते हैं। दोनों के बीच संयम है। कोई न झुका पाये और आपकी नाव बीच में चल पाये। ऐसा अगर आप बीच में नाव को चला सकें सीधी रेखा में, तो किसी दिन आप तट पर पहुंच सकते हैं। लेकिन सीधी रेखा में चलने वाले आदमी के अनुभव बदल जायेंगे। उसके जीवन में पुनरुक्ति नहीं होनी चाहिए। जिसके जीवन में पुनरुक्ति हो रही है, वह आदमी गोल-गोल घूम रहा है। लेकिन इसका मतलब यह मत समझना आप कि रोज नया भोजन होगा तो पुनरुक्ति न होगी। कि रोज नये कपड़े पहन लेंगे तो पुनरुक्ति न होगी। कपड़े-भोजन का सवाल नहीं है, वृत्ति का सवाल है। आपकी वृत्तियां पुनरुक्ति में तो नहीं घूम रही हैं। सरकुलर तो नहीं है, इसका ध्यान रखना चाहिए।
कभी आपने खयाल किया कि जब भी आप क्रोध करते हैं, फिर वैसे ही करते हैं जैसा पहले किया था। कुछ भी न सीखा जीवन से। जब फिर प्रेम में गिरते हैं तब फिर वैसे ही गिरते हैं जैसे पहले गिरे थे। फिर वही बातें करने लगते हैं जो पहले करके उपद्रव खड़ा कर चुके हैं। फिर वही मूढ़ता, फिर पुनरुक्ति कर रहे हैं आप। जिंदगी को थोड़ा जांचें, पीछे लौटकर एक नजर फेकें। जिन्दगी पर एक सर्च लाइट फेंकना जरूरी है पीछे जिन्दगी पर। उसमें देखें कि आप जिंदगी जी रहे हैं कि चक्कर में घूम रहे हैं। अगर आप चक्कर में घूम रहे हैं तो समझें कि यही संसार है।
हम संसार का अर्थ ही चक्कर करते हैं। इस मुल्क में हमने संसार शब्द को ही इसलिए चुना है। संसार का मतलब होता है, द व्हील, चक्का। वह गोल-गोल घूमता रहता है। भ्रम होता है यात्रा का, मंजिल नहीं आती। जिसे भी मंजिल लानी है, उसे एक रेखा में चलने की कला सीखनी पड़ती है, वही धर्म है।
जो कल हो चुका, उससे सीखें और पार जायें, दुहराएं मत। और जिंदगी में जिन रास्तों से गुजर गये उन पर से बार-बार गुजरने का मोह छोड़ दें। कोई सार नहीं है। जहां से गुजर गये, वहां से गुजर ही जायें, उसको पकड़े मत रखें। कल किसी ने गाली दी थी, वह बात हो गयी। उस रास्ते को छोड़ दें, आगे बढ़ें लेकिन वह गाली अटकी हुई है। जिसके मन में कल की गाली अटकी हुई है, वह वहीं रुक गया। उसने गाली को मील का पत्थर बना लिया। जमीन में गाड़ दिया खम्बा और उसने कहा, अब हम यहीं रहेंगे। अब हम आगे नहीं जाते।
अगर आपको कल अब भी सता रहा है, बीता हुआ कल, तो आप वहीं रुक गये हैं। अगर इसको हम सोचें तो हमें तो बड़ी हैरानी होगी कि हम कहां रुक गये। मनोवैज्ञानिक कहते हैं आमतौर से लोग बचपन में ही रुक जाते हैं। फिर शरीर ही बढ़ता रहता है। न बुद्धि बढ़ती है, न आत्मा बढ़ती है, कुछ नहीं बढ़ता है, वहीं रुक जाते हैं। इसलिए आपके बचपन को जरा में निकाला जा सकता है। अभी एक आदमी आप पर हमला बोल दे तो आप एकदम चीख मारकर नाचने-कूदने

लगेंगे। आप भूल जायेंगे कि आप क्या कर रहे हैं। अगर आपका चित्र उतार लिया जाये, या आपको स्मरण दिलाया जाये तो यह शायद आप जब पांच साल के बच्चे थे, जो करते, वही आपने किया। मतलब, मनोवैज्ञानिक कहते हैं, आपका रिग्रेशन हो गया, आप पीछे लौट गये बचपन में। उस खूंटे पर पहुंच गये, जहां आप बंधे हैं।

इसलिए मनसविद किसी भी व्यक्ति की मानसिक बीमारी दूर करना चाहते हैं तो पहले उसके अतीत जीवन में उतरते हैं, खासकर उसके बचपन में उतरते हैं। वे कहते हैं, जब तक हम तुम्हारा बचपन न जान लें तब तक हम जान नहीं सकते, तुम कहां रुक गये हो। कहां रुक जाने से तुम्हारा सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। हम सब रुके हुए लोग हैं। गति नहीं है जीवन में, यात्रा नहीं है।

महावीर कहते हैं, महर्षिजन पार कर जाते हैं इस सागर को। पार करने का मार्ग है, संयम। □

अतियों से बच जाना। दो अतियों के बीच जो बच जाता है, वह तट पर पहुंच जाता है। लेकिन हम क्या करते हैं? हम घड़ी के पेंडुलम की तरह हैं।

घड़ी का पेंडुलम, पुरानी घड़ियों का—नयी घड़ियों में खयाल नहीं आता, कुछ पुरानी घड़ी पर जरा ध्यान करना चाहिए। दीवार घड़ी का पेंडुलम जाता है बायें, दायें, घूमता रहता है। जब वह दायें जाता है तब ऐसा लगता है कि अब बायें कभी न आयेगा। वहां भूलकर रहे हैं आप। जब वह दायें जा रहा है तब वह बायें आने की ताकत जुटा रहा है, मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। वह बायें जा ही इसलिए रहा है कि दायें जाने की ताकत इकट्ठी हो जाये। फिर वह दायें जायेगा। जब वह दायें जाता है तब वह फिर बायें जाने की ताकत इकट्ठी करता है। और इसी तरह वह घूमता रहता है। हम भीहममें से एक आदमी कहता है कि उपवास करना है। ये अब बायें जा रहे हैं। अब ये फिर भोजन जोर से करने की ताकत जुटायेंगे। एक आदमी कहता है, ऊब गये हम तो वासनाओं से, अब त्याग करना है, अब यह बायें जा रहे हैं।

अतियों में डोलना बहुत आसान है। इसलिए एक बहुत बड़ी घटना घटती है दुनिया में। क्रोधी अगर चाहे तो एक क्षण में क्षमावान हो जाते हैं। दुष्ट अगर चाहें तो एक क्षण में शांति को धारण कर लेते हैं। भोगी अगर चाहें तो एक क्षण में त्यागी हो जाते हैं। देर नहीं लगती। क्योंकि एक अति से दूसरी अति पर लौट जाने में कोई अड़चन नहीं है। बीच में रुकना कठिन है। भोगी संयम पर आ जाये, यह कठिन है। त्याग पर जा सकता है। त्यागी भोग में आ जायें, यह आसान है। संयम में आना कठिन है। एक उपद्रव से दूसरा उपद्रव चुनना आसान है, क्योंकि उपद्रव की हमारी आदत है, उपद्रव कोई भी हो, उसे हम चुन सकते हैं। बीच में रुक जाना, निरुपद्रवी हो जाना अति कठिन है।

महावीर संयम को सूत्र कहते हैं, धर्म का। यह शरीर है नाव। इसका उपकरण की तरह उपयोग करें। यह आत्मा है यात्री, इसे वर्तुलों में मत घुमायें, इसे एक रेखा में चलायें। यह संसार है सागर, इसमें एक डांड की नाव मत बनें। इसमें दोनों पतवार हाथ में हों, और दोनों पतवार बीच में सधने में सहयोगी बनें, इस पर दृष्टि हो। तो एक दिन व्यक्ति जरूर ही संसार के पार हो जाता है।

संसार के पार होने का अर्थ है—दुख के पार हो जाना, संताप के पार हो जाना।

संसार के पार होने का अर्थ है—आनन्द में प्रवेश।

जिसे हिन्दुओं ने 'सच्चिदानंद' कहा है, उसे महावीर ने 'मोक्ष' कहा है। उसे ही बुद्ध ने 'निर्वाण' कहा है। उसे जीसस ने 'किंगडम आफ गाड' कहा है, ईश्वर का राज्य कहा है। कोई भी हो नाम, जहां हम हैं उपद्रव में, वहां वह नहीं है। इस उपद्रव के पार कोई तट है, जहां कोई आंधी नहीं छूती, जहां कोई तूफान नहीं उठता, जहां सब शून्य और शांत है।

इतना ही।

अब हम कीर्तन करें।

विकास की ओर गति है धर्म

दसवां प्रवचन

दिनांक 25 अगस्त, 1973; तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

लोकतत्व-सूत्र : 1

धम्मो अहम्मो आगासं, कालो पुग्गल जन्तवो।
एस लोगो त्ति पण्णतो, जिणेहिं वरदंसिहि।।
गइलक्खणो उ धम्मो, अहम्मो ठाणलक्खणो।
भायणं सव्वदव्वाणं, नहं ओगाहलक्खणं।।
बत्तणालक्खणो कालो,
जीवो उवओगलक्खणो।
नाणेणं दंसणेणं च,
सुहेणं य दुहेण य।।

धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुदगल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। केवल दर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।

धर्म द्रव्य का लक्षण गति है; अधर्म द्रव्य का लक्षण स्थिति है, सब पदार्थों को अवकाश देना—आकाश का लक्षण है। काल का लक्षण वर्तना (बरतना) है, और उपयोग अर्थात अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, दुख से तथा सुख से जाना पहचाना जाता है।

ऐसा मनुष्य खोजना मुश्किल है जो जीवन के संबंध में प्रश्न न उठाता हो; जिसकी कोई जिज्ञासा न हो, जो पूछता न हो। मनुष्य और पशु में वही भेद भी है। पशु जीवन जैसा है, उसे स्वीकार कर लिया है। कोई प्रश्न पशु चेतना में नहीं उठता, कोई जिज्ञासा नहीं जगती। आदमी जैसा है, उतना होने से राजी नहीं है। आदमी जानना भी चाहता है कि 'मैं क्या हूं, क्यों हूं, किसलिए हूं' प्रश्न मनुष्य का चिह्न है। इसलिए जिस मनुष्य ने प्रश्न नहीं उठाये, वह अभी पशु के जीवन से ऊपर नहीं उठा। और जिस मनुष्य के जीवन में जिज्ञासा का जन्म नहीं हुआ, अभी—अभी उस मनुष्य का मनुष्य की तरह जन्म भी नहीं हुआ है। इसलिए कठिन है खोजना ऐसा मनुष्य, जो प्रश्न न पूछ रहा हो, जिसके लिए जीवन एक जिज्ञासा न हो।

प्रश्न सभी पूछते हैं, लेकिन कुछ लोग दूसरों के उत्तर को अपना उत्तर मान लेते हैं और अटक जाते हैं, कुछ लोग जब तक अपना उत्तर नहीं खोज लेते, तब तक अथक श्रम करते हैं। जो दूसरों का उत्तर स्वीकार करके रुक जाते हैं, उनमें प्रश्न का जन्म तो हुआ, लेकिन प्रश्न की भ्रूण हत्या हो गई, एबार्शन हो गया। प्रश्न का बीज तो पैदा हुआ, लेकिन उन्होंने इसके पहले कि बीज अंकुरित होता और वृक्ष बनता, उसकी हत्या कर दी।

हत्या की विधि है : उधार उत्तर को स्वीकार कर लेना। ध्यान रहे, प्रश्न आपका है और जब तक आप अपना उत्तर न खोज लेंगे, तब तक हल न होगा। प्रश्न दूसरे का होता, तो दूसरे के उत्तर से हल भी हो जाता। प्रश्न आपका, उत्तर दूसरे के—इन दोनों में कहीं कोई मिलन नहीं होता। इसलिए जब भी आप दूसरों के उत्तर स्वीकार कर लेते हैं, तो आपने जल्दी ही प्रश्न की गर्दन घोंट दी। आपने प्रश्न को पूरा काम न करने दिया। प्रश्न तो तभी पूरा काम कर पाता है, जब जीवन की खोज और प्यास बन जाता है; जब प्रश्न जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है। यह जानना कि 'जीवन क्या है', जिस दिन जीवन से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाता है, उस दिन साधना का जन्म होता है। जिस दिन आप इस खोज के लिए जीवन को भी समर्पित करने को राजी हो जाते हैं, उस दिन आप जिज्ञासु न रहे, मुमुक्षु हो गये। उस दिन प्रश्न सिर्फ बौद्धिक न रहा, बल्कि आपके रोएं-रोएं का हो गया। आपके समग्र जीवन का हो गया और जिस दिन भी प्रश्न इतना गहन हो जाता है कि हमारी श्वास-श्वास पूछने लगती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।

और ध्यान रहे, जिस भांति प्रश्न भीतर से आता है, उसी भांति उत्तर भी भीतर से ही आएगा। प्रश्न बाहर से नहीं आते। और बाहर से जो प्रश्न आते हैं, उनका कोई भी मूल्य नहीं है, उन्हें बाहर के ही उत्तरों से निपटाया जा सकता है। लेकिन जो प्रश्न आपकी ही श्वासों से और आपके ही प्राण की गहनता से उठते हैं, जो आपकी ही अंतरात्मा से जगते हैं, उन प्रश्नों का उत्तर भी आपकी अंतरात्मा में ही छिपा है। और जहां से प्रश्न आया है, उसी गहराई में खोजने पर उत्तर भी उपलब्ध होगा। धर्म और दर्शन का यही फर्क है। दर्शन है—प्रश्नों की बौद्धिक खोज। और धर्म है—प्रश्नों की जीवंत खोज।

बौद्धिक खोज का अर्थ है—आपकी बुद्धि संलग्न है, आप पूरे के पूरे संलग्न नहीं हैं। एक खण्ड जीवन का लगा है, लेकिन पूरा जीवन—पूरा जीवन दूर है।

धार्मिक खोज का अर्थ है कि बुद्धि ही नहीं, आपका हृदय भी—हृदय ही नहीं, आपकी देह भी—आपकी समग्र आत्मा, आप जो भी हैं अपनी पूर्णता में, वह पूरी की पूरी खोज में लग गई है। और जिस दिन खोज अखंड होती है, पूरी होती है, उस दिन उत्तर दूर नहीं है।

महावीर ने जो भी कहा है, ये एक दार्शनिक के वचन नहीं हैं, एक फिलासफर के वचन नहीं हैं—प्लेटो या अरस्तू या कांट और हीगल के वचन नहीं हैं। महावीर ने जो भी कहा है , ये एक धार्मिक, अनुभूति को उपलब्ध व्यक्ति के वचन हैं। महावीर ने जो भी कहा है, सोचकर नहीं कहा, देखकर कहा है।

इस भेद को ठीक से समझ लें, क्योंकि यह बहुत मौलिक है। सोचकर बहुत-सी बातें कही जा सकती हैं। लेकिन सोचकर जो कहा जाता है, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक नहीं हो सकता। कोई व्यक्ति प्रेम के संबंध में बहुत-सी बातें सोचकर कह सकता है। शास्त्र उपलब्ध हैं, प्रेम पर लिखे हुए काव्य उपलब्ध हैं; प्रेम की कथाएं, विश्लेषण उपलब्ध हैं; जिन्होंने प्रेम को जाना है, उनके भी शब्द उपलब्ध हैं—ये सब पढ़े जा सकते हैं, और आप भी प्रेम के संबंध में कोई धारणा बना सकते हैं, वह बुद्धि की होगी। लेकिन अगर आपको प्रेम का अपना निजी अनुभव नहीं है, तो आप जो भी कहेंगे, वह कितना ही ठीक मालूम पड़े, ठीक हो नहीं सकता। उसका ठीक मालूम पड़ना बहुत ऊपरी होगा, तार्किक होगा, शब्दगत होगा। क्योंकि जिसने प्रेम नहीं जाना, वह प्रेम के संबंध में क्या कह सकता है ?

प्रेम की कोई फिलासफी नहीं हो सकती, प्रेम का सिर्फ अनुभव हो सकता है। लेकिन, तब बड़ी कठिनाई है। क्योंकि जो जान ले प्रेम को, उसे कहना मुश्किल हो जाता है। जो प्रेम को न जाने, उसे कहना बहुत आसान है, क्योंकि उसे उस कठिनाई का पता ही नहीं है जो अनुभव से पैदा होती है। जिसने प्रेम को नहीं जाना, वह दूसरों के शब्द दोहरा सकता है, और सोचेगा बात पूरी हो गई। और जिसने प्रेम को जाना है, उसके सामने एक बड़ा कठिन, दुर्गम सवाल है, जो उसने जाना है, उसे कैसे शब्दों में प्रविष्ट करे। क्योंकि जो जाना है, वह विराट है, शब्द बहुत क्षुद्र हैं। जो जाना है, वह आकाश की भांति है, और शब्द छोटी मटकियों की भांति हैं, वह उनसे भी छोटे हैं। उस बड़े आकाश को उन मटकियों में भरना, उस सागर को गागर में डालना अति कठिन है, असंभव है।

महावीर जो भी कह रहे हैं, वह उनका जाना हुआ है। वह उन्होंने सोचा नहीं है, वह उन्हें ध्यान से उपलब्ध हुआ है, विचार से नहीं। और, विचार और ध्यान की प्रक्रियाएं विपरीत हैं।

महावीर इस बोध के पहले बारह वर्ष तक मौन में रहे। तब उन्होंने सब विचार करना छोड़ दिये। तब उन्होंने सारी बुद्धि को तिलांजलि दे दी। तब उन्होंने चिंतना एक तरफ हटा दी। वे सिर्फ मौन होते चले गए। बारह वर्ष लम्बा समय है। निश्चित ही, मौन होना कठिन है। और महावीर को बारह वर्ष लगते हैं, तो सोच सकते हो, साधारण व्यक्ति को जीवन लग जायेंगे।

चुप होना कठिन है, क्योंकि चुप होना एक तरह की मृत्यु है। आप जीते ही विचार में हैं। और जब विचार चलता होता है, तब आप को लगता है आप हैं; जब विचार खोने लगते हैं, तो आप भी खोने लगते हैं। विचार बिखरने लगते हैं, आप भी बिखरने लगते हैं। और जब विचार के सब बादल खो जाते हैं तो शून्य रह जाता है भीतर। वह शून्य महामृत्यु जैसा मालूम होता है। उस महामृत्यु के लिए जो तैयार होता है, वह ध्यान में प्रवेश पाता है। और ध्यान के बाद ही अनुभव है। विचार से कोई अनुभव नहीं होता। सच, विचार तो अनुभव में बाधा है। जब आप सोचने लगते हैं, तब आप अनुभव से टूट जाते

हैं। जब आप सोचते नहीं, केवल होते हैं, तब आप अनुभव से जुड़ते हैं।

तो महावीर बारह वर्ष तक अपने विचार को काटते हैं, छोड़ते हैं। एक-एक ग्रंथि, विचार की एक-एक गांठ खोलते हैं; और जब विचार की सब गांठें खुल जाती हैं, और सब बादल बिखर जाते हैं। सिर्फ खाली आकाश रह जाता है स्वयं का, तब अनुभव शुरू होता है। इस अनुभव से जो वाणी प्रगट हुई है, उस पर ही हम विचार करने जा रहे हैं। इसे सोचेंगे आप तो भूल में पड़ जाएंगे। इसे सोचना कम, हृदय को खोलना ज्यादा, ताकि यह ऐसे प्रवेश कर सके भीतर, जैसे बीज जमीन में प्रवेश कर जाता है। जमीन बीज के संबंध में कोई विचार करने लगे, कि पहले सोच लूं, समझ लूं, इस बीज को गर्भ देना है या नहीं देना, तो जमीन कुछ भी न सोच पायेगी। क्योंकि बीज में कोई फूल प्रगट नहीं है; बीज में कोई वृक्ष भी प्रगट नहीं है। होगा—वह संभावना है। अभी वास्तविक नहीं है। अभी सब भविष्य में छिपा है। लेकिन जमीन बीज को स्वीकार कर लेती है। बीज टूट जाता है भीतर जाकर। जमीन उसे पचा लेती है। बीज मिट जाता है, खो जाता है। और जब बीज खो जाता है बिलकुल, कि जमीन को पता भी नहीं चलता कि मुझसे अलग कुछ है, तब अंकुरित होता है। तब एक नये जीवन का जन्म होता है और एक वृक्ष पैदा होता है।

महावीर के वचनों को अगर आप सोच-विचार में उलझा लेंगे, तो वे आपके भीतर उस जगह तक नहीं पहुंच पाएंगे, जहां हृदय की भूमि है। आप सोचना मत। आप सिर्फ हृदय की ग्राहक भूमि में उनको स्वीकार कर लेना। अगर वे व्यर्थ हैं, अगर वे निज□व हैं, तो अंकुर पैदा न होगा, बीज यों ही मर जायेगा। अगर वे सार्थक हैं, अगर अर्थपूर्ण हैं, अगर उनमें कोई छिपा जीवन है, अगर कोई विराट उनमें छिपी संभावना है, तो जिस दिन आप उन्हें भीतर पचा लेंगे, हृदय में जब वे मिलकर एक हो जाएंगे, और जब आपको याद भी न रहेगा कि यह विचार महावीर का है या मेरा, जब यह विचार आपका ही हो जायेगा, घुल जायेगा, पिघल जायेगा, एक हो जायेगा भीतर, तब आपको पता चलेगा, इस विचार का अर्थ क्या है। क्योंकि तभी आपके भीतर इस विचार के माध्यम से एक नये जीवन का जन्म होगा; एक नई सुगंध, एक नया अर्थ, एक नये क्षितिज का उदघाटन।

तो विचार के साथ हम दो तरह का व्यवहार कर सकते हैं : एक तो आलोचक का व्यवहार है कि वह सोचेगा, काटेगा, विश्लेषण करेगा, तर्क करेगा। आपको मना नहीं करता। अगर महावीर के साथ आपको आलोचक होना है आप हो सकते हैं। लेकिन आप महावीर जो दे सकते हैं, उससे वंचित रह जाएंगे। दूसरा ग्राहक का, प्रेमी का, भक्त का दृष्टिकोण—सोचता नहीं, सिर्फ रिसेप्टिविटी, सिर्फ संवेदनशील होता है, स्वीकार कर लेता है। हृदय में छिपा लेता है और प्रतीक्षा करता है उस दिन की, जिस दिन इस बीज में से अंकुर पैदा होगा। तभी, पूरा अर्थ प्रगट होगा।

यहां मैं आपको समझाने की कोशिश करूंगा कि महावीर का प्रयोजन क्या है। लेकिन उस कोशिश से आप अर्थ को न जान पाएंगे। उस कोशिश से तो इतना ही हो सकता है कि आप राजी हो जायें और हृदय को खुला छोड़ दें। द्वार-दरवाजे खोल दें, ताकि यह किरण भीतर प्रवेश कर जाये। मेरी कोशिश आपके हृदय का दरवाजा खोलने की होगी, आपकी बुद्धि को समझाने की नहीं। अर्थ तो तभी प्रगट होगा, जब बीज आपके भीतर प्रविष्ट हो जाएंगे और आप उन्हें पचा लेंगे।

ध्यान रहे, किसी चीज का आहार कर लेना ही काफी नहीं है, उसका पचना जरूरी है। इसलिए महावीर को दो तरह के लोग अपने भीतर लेते हैं। पंडित भी अपने भीतर ले लेता है, लेकिन वह पचा नहीं पाता है। वह जो आहार कर लेता है, वह अनपचा रह जाता है। इसलिए पंडित का मस्तिष्क बोझिल होता चला जाता है उस अनपचे आहार से। उसका अहंकार प्रगाढ़ होता चला जाता है। उसकी आत्मा तो खाली बनी रहती है, लेकिन उसकी स्मृति भरती चली जाती है। ज्ञानी भी आहार करता है विचार का, लेकिन उसे पचाने की कोशिश करता है। और जब तक वह खून न बन जाये, अपना न हो जाये, जब तक बहने न लगे रग-रग में, जब तक अपने जीवन का एक भाग न हो जाए, तब तक चैन नहीं लेता।

अगर आपको पंडित बनना हो तो आलोचक की दृष्टि से सोचना और अगर आपको ज्ञानी की तरफ यात्रा करनी हो तो एक भक्त के भाव से सोचना।

जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिये, जो हमें झकझोर दे। और हमारी यात्रा को पलट दे। जैसा हमारा जीवन है, वहां कोई चाहिए, जो हमें एक जोर का धक्का दे, एक शाक हमें लगे कि हमारी यात्रा की दिशा बदल जाए।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन शिकागो से एक संध्या एक ट्रेन में सवार हुआ। जिस डिब्बे में था, उस डिब्बे में एक और वृद्ध महिला भी थी। बस, वे दो ही थे। गाड़ी को छूटे पांच-सात मिनट हुए ही होंगे कि वृद्ध महिला को खयाल आया कि जो यात्री साथ में है, वह रो रहा है। सोचा उसने किसी प्रियजन से बिछुड़ना हुआ होगा। बोलना उचित न समझा।

नसरुद्दीन अपने माथे को पैरों में झुकाए, हाथों में दबाये रोए चला जा रहा है। उसकी हिचकियां उसके पूरे शरीर को हिला रही हैं। रात हो गई, वृद्धा सो गई, लेकिन सुबह जब फिर जागी तो देखा कि वह अभी भी रोए चला जा रहा है। आंसू पोंछता है, फिर हिचकियां आ जाती हैं, फिर थोड़ी देर रुकता है, फिर रोने लगता है। फिर उसने सोचा मैं अजनबी हूं, और पता नहीं कितने दुख में है वह आदमी। मेरा बीच में बोलना, या कुछ कहना कहीं दुख को और न बढ़ा दे, कहीं घाव को और न छेड़ दे।

दूसरा दिन भी बीत गया, और तीसने दिन की सुबह होने लगी। तब तो वृद्धा को भी सम्हालना मुश्किल हो गया अपने को। वह पास आई। उसने नसरुद्दीन के सिर पर हाथ रखा, थपथपाया और कहा कि क्या हो गया है ? मुझे कुछ कहें, शायद कहने से भी भार हल्का हो जाये। तो नसरुद्दीन ने कहा कि मत पूछें। सोचकर ही मन और दुखी होता है। नाउ इट इज थ्री डेज दैट आइ हैव बीन राइडिंग आन द रांग ट्रेन—तीन दिन हो गये हैं और मैं गलत गाड़ी में सवार हूं।

इस गाड़ी से कभी भी उतरा जा सकता था!

नसरुद्दीन पर आपको हंसी आ सकती है, लेकिन उस हंसी में आप मत भूल जाना कि करीब-करीब वैसी ही अवस्था आपकी है। तीन दिन ही नहीं, न-मालूम कितने जन्मों से आप गलत गाड़ी में सवार हैं। रो भी रहे हैं, ऐसा भी नहीं कि नहीं रो रहे हैं। बुरी तरह रो रहे हैं, हिचकिंया बंधी हैं। आंखें गीली हैं, सुख कहीं दिखाई नहीं पड़ता, दुख ही दुख है, फिर भी गाड़ी में बैठे हुए हैं। और जिससे दुख हो रहा है, जिससे गलत दिशा में जा रहे हैं, उसको आपका पूरा सहयोग है।

इसे थोड़ा ठीक-से अपनी तरफ देखेंगे तो खयाल में आ जायेगा कि जहां-जहां आप गलत जा रहे हैं, वहीं-वहीं आपकी ऊर्जा सहयोग कर रही है; जो-जो जीवन में गलत है, उसी-उसी के आप सहयोगी और साथी हैं। और जीवन में जो-जो श्रेष्ठ है, जहां से यात्रा का रुख बदल सकता है, पूरे जीवन का ढंग बदल सकता है, उस तरफ आपका कोई सहयोग नहीं है। उसे आप सुन भी लेते हैं, तो भी वह कभी आपके जीवन की मूलधारा नहीं बन पाता। मूलधारा तो आपकी गलत ही बनी रहती है। फिर इस गलत मूलधारा के बीच जो आप ठीक भी सुन लेते हैं, उसकी भी आप जो व्याख्या करते हैं, वह भी इस गलत को सहयोग देने वाली होती है। क्योंकि व्याख्या आप करेंगे।

इसलिए मैंने कहा कि आप सोचना-विचारना मत। महावीर की तरफ एक सहानुभूति, एक प्रेम के रुख की जरूरत है। क्योंकि जो भी आप सोचेंगे, वह 'आप' सोचेंगे। और 'आप' गलत हैं। आपके निर्णय के ठीक होने का कोई उपाय नहीं है। अगर आपके निर्णय ठीक हो सकते, तो आप खुद कभी के महावीर हो गये होते, महावीर को सुनने, समझने की कोई जरूरत नहीं थी। एक जिसको पश्चिम

के सौंदर्य-शास्त्री सिम्पेथेटिक पार्टिसिपेशन कहते हैं—एक सहानूभूतिपूर्ण मिलन, एक रेपर्ट—जहां आप लड़ नहीं रहे हैं, बल्कि उन्मुक्त हैं समझने को, जीने को, नये कोण को देखने को राजी हैं।

महावीर का मिजाज आपसे बिलकुल अलग है। यह आदमी बिलकुल और ढंग का है। इसकी यात्रा अलग है। यह किसी और ही ट्रेन में सवार है। इसकी दिशा भिन्न है। तो जैसे आप हैं, अगर वहीं से आप सोचेंगे, तो आप महावीर को चूक जायेंगे। जैसे महावीर हैं, अगर उनके रुख में आप झुकने को राजी होंगे, तो ही आप समझ पायेंगे।

इसलिए धर्मों ने श्रद्धा का बड़ा मूल्य माना है। नहीं कि संदेह व्यर्थ है। संदेह उपयोगी है; पर धर्म की दिशा में नहीं, विज्ञान की दिशा में उपयोगी है। संदेह बहुमूल्य है अगर पदार्थ को समझना हो, क्योंकि पदार्थ के साथ किसी सहानुभूति की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि अगर पदार्थ को समझना हो, और सहानुभूति हो, तो आप समझ ही न पायेंगे। अगर एक वैज्ञानिक पदार्थ को समझने में सहानुभूति रखता हो, तो पदार्थ को समझ नहीं पायेगा, क्योंकि वह निरपेक्ष नहीं रह जायेगा। उसके पक्षपात जुड़ जायेंगे। उसे तो पूरी तरह निरपेक्ष, तटस्थ होना चाहिए—कोई सहानुभूति नहीं, जैसे वह है ही नहीं; उसे जरा भी प्रविष्ट नहीं होना चाहिए पदार्थ को समझने में। उसे तो सिर्फ एक निरीक्षक होना चाहिए। जिससे उसका

कोई भी संबंध नहीं तो ही विज्ञान और वैज्ञानिक सफल हो पाता है।

ठीक उल्टी है बात धर्म की। वहां अगर आप बहुत तटस्थ हैं, दूर खड़े हैं, सिर्फ निरीक्षक हैं, तो आप प्रवेश ही न कर पायेंगे। धर्म में तो प्रवेश हो पायेगा, अगर आप अति सहानुभूति से भरे हैं। जैसे मां अपने बच्चे को गोद में ले लेती है, अगर महावीर के वचनों को ऐसे ही आप अपने हृदय के पास ले सकेंगे, तो ही—तो ही संबंध जुड़ पायेगा। और एक बार संबंध जुड़ जाए, तो आपका मिजाज बदल जाता है, आपके होने का ढंग बदल जाता है। फिर महावीर की बातें समझ में आनी शुरू हो जाती हैं। क्योंकि आपकी आंखों की दिशा, आपकी आंखों का ढंग, आपके देखने का ढंग, आपके होने का ढंग, सब बदल जाता है। इसके पहले कि महावीर आपके साथी बन सकें, आपको उनका साथी बन जाना बहुत जरूरी है और इसके पहले कि वे आपकी समझ में आ सकें, आपकी समझ का पूरा ढंग बदल जाना जरूरी है।

जैसे आप हैं, वैसे ही महावीर को समझने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए कोई महावीर को माननेवालों की कमी नहीं है, लेकिन समझनेवाला मुश्किल से कोई दिखाई पड़ता है। जो माननेवाले हैं, वे भी सोचनेवाले हैं। उन्होंने भी महावीर की व्याख्या कर रखी है अपने हिसाब से। अपने को पोंछकर, अपने को मिटाकर जो समझने चलेगा, वही केवल समझ पा सकता है।

अब हम सूत्र में प्रवेश करें।

ये सूत्र—प्राथमिक सूत्र थोड़े कठिन होंगे, क्योंकि महावीर अपने अनुभव को एक ढांचा दे रहे हैं, एक व्यवस्था दे रहे हैं। वह व्यवस्था समझ में आ जाये तो फिर बाद का प्रवेश बहुत आसान है।

'धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुदगल और जीव—ये छह द्रव्य हैं। केवलदर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इन सबको लोक कहा है।'

पहली बात : महावीर और जैनों के बाकी तेईस तीथच्कर किसी शास्त्र में विश्वास नहीं करते—किसी वेद, किसी कुरान, किसी बाइबिल में उनका विश्वास नहीं है। क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि अनुभव शब्द में संरक्षित नहीं किया जा सकता। इसलिए मूल स्त्रोत सदा व्यक्ति है, शास्त्र नहीं।

जैसे हिंदू-धारणा है, वेद पर भरोसा है। मूल विश्वास वेद पर है—शास्त्र पर। जो वेद कहता है, वह ठीक है। और अगर कोई व्यक्ति कुछ कहता हो, वह वेद के विपरीत जाता हो, तो व्यक्ति गलत होगा, वेद गलत नहीं होगा। लेकिन महावीर की दृष्टि बिलकुल उल्टी है।

महावीर कहते हैं, भरोसा व्यक्ति का है और अगर व्यक्ति कुछ कहता हो, और वेद विपरीत हो, तो वेद गलत हैं, व्यक्ति गलत नहीं है।

इस फर्क को ठीक-से समझ लें।

शास्त्र मृत हैं, व्यक्ति जीवित है। मृत पर बहुत भरोसा उचित नहीं है। और मृत का अगर कोई मूल्य भी है, तो भी इसीलिए है कि किसी जीवित व्यक्ति के वचन हैं वहां। लेकिन शास्त्र कितना ही प्राचीन हो, कितना ही मूल्यवान हो, किसी भी जीवित व्यक्ति के अनुभव को गलत करने के काम नहीं लाया जा सकता।

महावीर व्यक्ति पर इतना भरोसा करते हैं, जितना पृथ्वी पर किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं किया है। व्यक्ति की चरम मूल्यवत्ता महावीर को स्वीकार है। तो वेद जैसे कीमती शास्त्र को भी महावीर कह देते हैं, छोड़ देना होगा, अगर व्यक्ति के अनुभव के अनुकूल न हो। जीवित व्यक्ति चरम-मूल्य है, अंतिम इकाई है।

यह बहुत बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। मन को भी बड़ी चोट पहुंचाती है। और मजे की बात यह है कि जैन भी इस धारणा के अनुकूल नहीं चल पाये। जैन भी अब महावीर के वचन को सुनते हैं। अगर किसी व्यक्ति का अनुभव महावीर के वचन के विपरीत जाता हो, तो वे कहेंगे कि यह व्यक्ति गलत है। फिर महावीर का वचन वेद बन गया है। इसलिए जैन हिंदू-धर्म का एक हिस्सा होकर मर गये । उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है—हो नहीं सकता। क्योंकि महावीर की मौलिक धारणा ही नष्ट हो गई। महावीर की धारणा यह है कि व्यक्ति का सत्य चरम है। और इसलिए निरन्तर महावीर बार-बार कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, यह उनका अनुभव है, जो 'केवलज्ञान' को उपलब्ध हुए हैं। यह अनुभव है। किसी शास्त्र

की गवाही महावीर नहीं देते। हमेशा गवाही व्यक्तियों की है।

'केवलदर्शन के धर्ता जिन भगवानों ने इस सबको लोक कहा है।'

और भी कुछ बातें इसमें खयाल ले लेनी जरूरी हैं।

केवलदर्शन का अर्थ है, जो उस अवस्था को उपलब्ध हो गये जहां मात्र ज्ञान रह आता है और जानने को कुछ भी नहीं। हम जब भी कुछ जानते हैं, तो कुछ जानते हैं—कोई आब्जेक्ट।

आप यहां बैठे हैं, मैं आपको देख रहा हूं, तो मैं आपको जान रहा हूं। लेकिन आपको जान रहा हूं, फिर आप यहां से हट जाएं और जानने को कुछ भी न बचे, सिर्फ मेरा जाननेवाला रह जाए—सो न जाए, मूर्छित न हो जाए, होश में हो, जानने को कुछ भी न बचे और सिर्फ जाननेवाला बच जाए; मन के पदच पर से सारी तस्वीरें खो जाएं, सिर्फ चेतना का प्रवाह बच जाए, उस अवस्था को महावीर 'केवलज्ञान' कहते हैं, शुद्ध-ज्ञान—मात्र-ज्ञान। जो ऐसे मात्र-ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनको महावीर 'जिन' कहते हैं। जिन का अर्थ है, जिन्होंने जीत लिया, जिन्होंने जीवन की परम विजय उपलब्ध कर ली, जिनको जीतने को अब कुछ भी न बचा। और ऐसे जिनों को महावीर 'भगवान' कहते हैं।

यह भी समझ लेना जरूरी है कि महावीर के लिए 'भगवान' का वही अर्थ नहीं है, जो हिंदुओं के लिए है, ईसाइयों के लिए है, मुसलमानों के लिए है। महावीर की 'भगवान' की बड़ी अनूठी अवधारणा है।

तीन बातें खयाल में ले लेनी जरूरी हैं :

एक तो महावीर कहते हैं, उतने ही भगवान हैं, जितनी आत्माएं हैं। भगवान एक नहीं है। एक भगवान की धारणा बहुत डिक्टेटोरियल है, बहुत तानाशाहीपूर्ण है। महावीर कहते हैं, प्रत्येक आत्मा भगवान है। जिस दिन पता चल जायेगा, उस दिन प्रगट हो जायेगी। जब तक पता नहीं चला है, तब तक वृक्ष बीज में छिपा है।

अनंत भगवानों की धारणा है महावीर की, अनंत—जितने जीव हैं। आप ऐसा नहीं सोचना कि आप ही हैं। चींटी में जो जीव है, वह भी छिपा हुआ भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रगट होगा। वृक्ष में जो है, वह भी भगवान है। आज नहीं कल, वह भी प्रगट होगा। समय की भर देर है। एक घड़ी जो भी छिपा है, वह प्रगट हो जायेगा।

अनंत भगवानों की धारणा दुनिया में कहीं भी नहीं है। और उस के पीछे भी व्यक्ति का मूल्य है। महावीर को यह खयाल दुखद मालूम पड़ता है कि एक ब्रह्म है, जो सबका मालिक है। यह बात ही तानाशाही की मालूम पड़ती है। यह भी बात महावीर को उचित नहीं मालूम पड़ती कि 'उस एक' में ही सब खो जायेंगे। यह भी बात उचित नहीं मालूम पड़ती कि 'उस एक' ने सबको बनाया है, 'वह एक' सृष्टा है। यह बात बेहूदी है।

क्योंकि महावीर कहते हैं कि अगर मनुष्य की आत्मा बनाई गई है तो वह आत्मा ही न रही, वस्तु हो गई। जो बनाई जा सकती है, वह क्या आत्मा है। महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है वह वस्तु है, आत्मा नहीं। इसलिए अगर किसी परमात्मा ने आत्माएं बनाई हैं, तो वे सब वस्तुएं हो गइ।। फिर हम परमात्मा के हाथ की गुड्डियां हो गये, कोई मूल्य न रहा।

महावीर इसलिए सृष्टा की धारणा को अस्वीकार कर देते हैं। वे कहते हैं, कोई सृष्टा नहीं। क्योंकि अगर सृष्टा है तो आत्मा का मूल्य नष्ट हो जाता है। आत्मा का मूल्य ही यही है कि वह असृष्ट है, अनक्रिएटेड है। उसे बनाया नहीं जा सकता। जो भी चीज बनाई जा सकती है, वह वस्तु होगी, यंत्र होगी—कुछ भी होगी—लेकिन जीवंत चेतना नहीं हो सकती।

थोड़ा सोचें। जीवंत चेतना अगर बनाई जा सके, तो उसका मूल्य, उसकी गरिमा, उसकी महिमा—सब खो गयी। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई सृष्टा परमात्मा नहीं है। फिर महावीर कहते हैं, जो बनाई जा सकती है, वह नष्ट भी की जा सकती है।

ध्यान रहे, जो भी बनाया जा सकता है, वह मिटाया जा सकता है। अगर कोई परमात्मा है आकाश में, जिसने कहा बन जाओ और आत्माएं बन गइच, वह किसी भी दिन कह दे कि मिट जाओ और आत्माएं मिट जाएं, तो यह मजाक हो गया, जीवन के साथ व्यंग हो गया। इसलिए महावीर कहते हैं, न तो आत्मा बनाई जा सकती और न मिटाई जा सकती। जो न

बनाया जा सकता, जो न मिटाया जा सकता, उसको महावीर 'द्रव्य' कहते हैं—सब्सटेन्स।

यह उनकी परिभाषा को समझ लेना आप। द्रव्य उसको कहते हैं, जो न बनाया जा सकता और न मिटाया जा सकता है—जो है। इसलिए महावीर कहते हैं, जगत में जो भी मूल द्रव्य हैं, वे हैं सदा से। उनको किसी ने बनाया नहीं है और उनको कभी कोई मिटा भी नहीं सकेगा।

आधुनिक विज्ञान महावीर से राजी है। जैनों की वजह से महावीर का विचार वैज्ञानिकों तक नहीं पहुंच पाता, अन्यथा आधुनिक विज्ञान जितना महावीर से राजी है, उतना किसी से भी राजी नहीं है। अगर आइंस्टीन को महावीर की समझ आ जाती तो आइंस्टीन महावीर की जितनी प्रशंसा कर सकता था, उतनी कोई भी नहीं कर सकता है। लेकिन जैनों के कारण बड़ी कठिनाई है।

एक मित्र मेरे पास आए थे। महावीर की पच्चीस-सौवीं वर्ष गांठ आती है। वे मुझसे कहने लगे कि 'किस भांति हम इसको मनाएं कि सारे जगत को महावीर के ज्ञान का प्रसार मिल जाए ?' तो मैंने उनको कहा कि 'आप जब तक हैं, तब तक बहुत मुश्किल है। आप ही उपद्रव हैं, आप ही बाधा हैं।'

महावीर विराट हो सकते हैं, लेकिन जैनों का बड़ा संकीर्ण घेरा है और जैनों की संकीर्ण बुद्धि के कारण महावीर की जो तस्वीर दुनिया के सामने आती है, वह बड़ी संकीर्ण हो जाती है। महावीर का खुलकर अध्ययन भी नहीं हो पाता। बंधी लकीरोंवाले लोग कुछ भी नहीं खोज सकते। महावीर की पुनः खोज की जरूरत है, लेकिन तब बंधी लकारें तोड़ देनी पड़ेंगी।

महावीर की यह धारणा कि 'द्रव्य' उसको कहते हैं, महावीर जिसे आज विज्ञान 'एलिमेंट' कहता है। वह कभी नष्ट नहीं होता और कभी बनाया भी नहीं जाता—रूपांतरित होता है, बनता है, बिगड़ता है। लेकिन बनना और बिगड़ना सिर्फ रूप का होता है, मूल तत्व न ही बनता और न बिगड़ता। इस तरह के छह द्रव्य महावीर ने कहे हैं।

पहला द्रव्य है धर्म, दूसरा अधर्म, तीसरा आकाश, चौथा काल, पांचवां पुदगल, छठवां जीव। परमात्मा की कोई जगह नहीं है, ये छह मूल द्रव्य हैं। ये छह सदा से हैं और सदा रहेंगे। और जो कुछ भी हमें बीच में दिखाई पड़ता है वह इन छह का मिलन और बिछुड़न है। इनका आपस में जुड़ना और अलग होना है। सारा संसार संयोग है, ये छह मूल द्रव्य हैं।

अनंत आत्माएं हैं और हर आत्मा परमात्मा होने की क्षमता रखती है, इसलिए महावीर की परमात्मा की धारणा को ठीक से समझ लें। महावीर कहते हैं, आत्मा की तीन अवस्थाएं हैं : एक अवस्था है आत्मा की—बहिर आत्मा। जब चेतना बाहर की तरफ बहती रहती है। दूसरी अवस्था है आत्मा की—अंतरात्मा। जब चेतना भीतर की तरफ बहती है।

वासना में बहती है बाहर की तरफ, विचार में बहती है बाहर की तरफ तब आप बहिर आत्मा हैं—आत्मा की निम्नतम अवस्था। ध्यान में बहती है भीतर की तरफ, मौन में बहती है भीतर की तरफ, तब आप अंतरात्मा हैं—आत्मा की दूसरी अवस्था। और आत्मा की तीसरी अवस्था है, जब चेतना कहीं भी नहीं बहती—न बाहर की तरफ, न भीतर की तरफ, सिर्फ होती है। बहना बंद हो जाता है। कोई गति और कोई कंपन नहीं रह जाता—समाधि। उस तीसरी अवस्था में आत्मा का नाम परमात्मा है।

बहिर आत्मा से अंतरात्मा, अंतरात्मा से परमात्मा। और अनंत आत्माएं हैं, इसलिए अनंत परमात्मा हैं। और कोई आत्मा किसी में लीन नहीं हो जाती, क्योंकि प्रत्येक आत्मा अपने में स्वतंत्र द्रव्य है। अंतिम अवस्था में कोई भेद नहीं रह जाता, दो आत्माओं में कोई भेद नहीं रह जाता, कोई दीवार नहीं रह जाती, कोई अंतर नहीं रह जाता, किसी तरह का विवाद-विरोध नहीं रह जाता लेकिन फिर भी प्रत्येक आत्मा निजी होती है, इनडिविजुअल होती है।

ये छह द्रव्य भी महावीर के बड़े अनूठे हैं, इनकी व्याख्या समझने-जैसी है :

'धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति।' बहुत अनूठी दृष्टि है। महावीर कहते हैं, जिससे भी गति होती है, वह धर्म है; और जिससे भी गति रुकती है, वह अधर्म है। जिससे भी विकास होता है, वह धर्म है; जिससे भी अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता की तरफ पहुंचती है, वह धर्म है, और जिससे भी विकास रुकता है, वह अधर्म है।

अधर्म को महावीर कहते हैं, स्थिति का तत्व रोकनेवाला; और धर्म को महावीर कहते हैं, गति का तत्व बढ़ानेवाला। दोनों

हैं, आप पर निर्भर है कि आप किस तत्व के साथ अपने को जोड़ लेते हैं। अगर आप अधर्म के साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो आप रुक जाते हैं। जन्मों-जन्मों तक रुके रह सकते हैं। अगर आप धर्म के साथ अपने को जोड़ लेते हैं, तो बढ़ने शुरू हो जाते हैं।

एक मछली है, तैरने की क्षमता है उसमें, लेकिन वह भी पानी का सहारा न ले तो तैर न पायेगी; क्षमता है—पानी का सहारा ले तो तैर पायेगी। आपकी क्षमता है, क्षमता है परमात्मा होने की, लेकिन धर्म का सहारा लें तो तैर पायेंगे, अधर्म का सहारा लें तो रुक जायेंगे। अगर आप बहिर-आत्मा होकर रह गये हैं तो उसका कारण है कि आपने कहीं अधर्म का सहारा ले लिया है।

यह बहुत सोचने-जैसी बात है, महावीर बुराई को अधर्म नहीं कहते। जो भी रोक लेती है बात, वही अधर्म है। तो बुरे की व्याख्या भी नई हो जाती है। तब बुरे का अर्थ, अशुभ का अर्थ, पाप का अर्थ बड़ा नया हो जाता है। जीवन में जहां-जहां रोकनेवाले तत्व हैं, उनके साथ आपका जो गठबंधन है, वही अधर्म है।

धर्म खोलेगा, मुक्त करेगा, स्वतंत्र करेगा, बंधनों को काटेगा। नाव बंधी है किनारे से, उसे किनारे की खूंटियों से अलग करेगा और जैसे-जैसे किनारे की खूंटियां हटती जायेंगी, नाव मुक्त होती जायेगी गति करने को। कहां-कहां हम बंधे हैं ? जो-जो हमारी वासनाएं हैं, वे-वे हमारी खूंटियां हैं—नदी के किनारे जिनसे हमारी नाव बंधी है। और खूंटियों को हम मजबूत रखते हैं कि कहीं खूंटियां टूट न जायें। खूंटियों को हम बल देते हैं, ताकि खूंटियां कमजोर न हो जायें। हम अपने बंधनों को पोषण देते हैं। जो हमें बांध रहा है, जो हमारा कारागृह है, उसे ही हम जीवन समर्पित कर रहे हैं। जिससे हम अटक गए हैं, उसे हम सहारा समझ रहे हैं। और जब तक हमें यह दिखाई न पड़ जाए कि क्या सहारा है और क्या बाधा है—जब तक यह साफ न हो जाये, तब तक कोई गति नहीं हो सकती है।

अगर महावीर अपने राजमहल को छोड़कर चले जाते हैं, तो आप यह मत सोचना कि राजमहल में कुछ बुराई है, जिसकी वजह से छोड़कर चले जाते हैं। धन वैभव छोड़ देते हैं, तो आप यह मत सोचना कि धन, वैभव में कोई बुराई है। महावीर को दिखाई पड़ता है कि वे खूंटियां हैं, और जब तक उनके इर्द-गिर्द मैं हूं, तब तक धर्म के तत्व के साथ मेरा संबंध नहीं हो पायेगा। तो मैं गति नहीं कर पाऊंगा।

अगर ठीक-से समझें तो महावीर धन को नहीं छोड़ते, धन से अपने को छुड़ाते हैं। बुनियादी फर्क है। धन छोड़ना बहुत आसान है, धन से अपने को छुड़ाना बहुत कठिन है। क्योंकि धन छोड़कर आप भाग सकते हैं, लेकिन तत्काल आप दूसरा धन पैदा कर लेंगे, जिसको आप पकड़ लेंगे। धन कुछ रुपयों-सिक्कों में बंद नहीं है, जहां भी सुरक्षा है, वहीं धन है, और जहां भी भविष्य का आश्वासन है, वहीं धन है।

धन का मतलब क्या है ?

धन का मतलब है कि मेरे पास अगर एक हजार रुपये हैं, तो कल मेरा सुरक्षित है। कल मुझे भूखा नहीं मरना पड़ेगा। रहने को मकान होगा, भोजन होगा, कपड़े होंगे, मैं कल के लिए सुरक्षित हूं। धन की इतनी पकड़ भविष्य की सुरक्षा के लिए है। अगर आपको अचानक पता चल जाए कि कल सुबह दुनिया नष्ट हो जानेवाली है, धन पर आपकी पकड़ इसी वक्त छूट जायेगी; कंजूस-से-कंजूस आदमी धन लुटाता हुआ दिखाई पड़ेगा।

अगर दुनिया कल सुबह खत्म हो रही हो तो धन का मूल्य क्यों खतम होता है ?

धन का मूल्य है भविष्य की सुरक्षा में, अगर भविष्य ही नहीं, तो धन का कोई मूल्य नहीं। आप धन छोड़ सकते हैं, लेकिन भविष्य की सुरक्षा आपके साथ अगर लगी है, तो आप नया धन पैदा कर लेंगे।

तो एक आदमी धन को छोड़ जाता है फिर पुण्य को पकड़ लेता है। फिर पुण्य धन हो जाता है। फिर वह सोचता है कि पुण्य मेरे पास है तो स्वर्ग मुझे मिलेगा। आपके लिहाज से वह आदमी और भी बड़े भविष्य का इंतजाम कर रहा है। आप तो मरने तक भविष्य का उपयोग कर सकते हैं, वह मरने के बाद भी पुण्य का उपयोग कर सकता है। वह जिस करेंसी को इकट्ठा कर रहा है, वह जीवन के उस तरफ भी चलती है। आपके नोट उस तरफ नहीं चलेंगे। इसलिए साधु-संन्यासी गृहस्थियों को समझाते हैं कि 'क्या धन को पकड़ रहे हो, क्षणभंगुर है! पुण्य को पकड़ो, जो कि सदा साथ रहेगा।'

लेकिन, यह बड़े मजे की बात है कि, 'पकड़ो जरूर'। उनका कहना कुल इतना ही है कि 'तुम गलत धन को पकड़ रहे हो, ठीक धन को पकड़ो। तुम जिस धन को पकड़ रहे हो, यह मौत तक काम देगा, मौत के बाद तुम मुश्किल में पड़ोगे। हमने ठीक धन पकड़ा है। तुमने गलत बैंक का सहारा लिया है, हमने ठीक बैंक का सहारा लिया है।'लेकिन सहारा है!

धन को छोड़ना बहुत आसान है, क्योंकि आप नया धन पैदा कर लेंगे। जिस मन में असुरक्षा है, वह धन को पैदा कर ही लेगा। धन, असुरक्षित मन की संतान है। फिर वह धन कई तरह का हो सकता है।

लेकिन महावीर ने धन नहीं छोड़ा, धन से अपने को छुड़ाया। यह प्रक्रिया अलग है। धन पर ध्यान नहीं है, अपने पर ध्यान है, कि जो-जो चीज मुझे पकड़ती है, उसकी पकड़ मेरे ऊपर क्यों है। वह पकड़ मेरी न रह जाए।

फिर ध्यान रहे, धन आपको पकड़े हुए भी नहीं है, आप ही धन को पकड़े हुए हैं। इसलिए असली सवाल धन छोड़ने का नहीं है, असली सवाल अपनी पकड़ छोड़ने का है। इसलिए यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन के बीच भी पकड़ छोड़ दे—हुआ है। और यह भी हो सकता है कि कोई आदमी धन छोड़कर भी पकड़ न छोड़े—यह रोज हो रहा है।

बारीक है दोनों के बीच मार्ग। महावीर छुड़ा रहे हैं, अपनी पकड़। जहां-जहां पकड़ है, छोड़ रहे हैं। जहां-जहां सहारा है, छोड़ रहे हैं। क्योंकि अनुभव में आ रहा है कि सब सहारे बाधा बन गये हैं। उन्हीं की वजह से नाव रुकी है।

धर्म है, गति का तत्व। विज्ञान को बड़ी कठिनाई थी सौ साल पहले, तो विज्ञान ने एक तत्व की कल्पना की थी 'ईथर'। क्योंकि विज्ञान को कठिनाई थी कि सूर्य की किरणें आती हैं, यात्रा होती है, तो कोई-न-कोई तत्व चाहिए जिसमें यात्रा हो। तो ईथर परिकल्पित था, कि कोई-न-कोई तत्व होना चाहिये, नहीं तो किरण कैसे यात्रा करेगी। तो यह महाकाश जो शून्य है, इसमें कोई तत्व होना चाहिए। उस तत्व का कोई पता नहीं था। ईथर परिकल्पित था। क्योंकि यात्रा हो रही है इसलिए कोई तत्व चाहिये। अब ईथर की मान्यता क्षीण हो गई है। लेकिन, कहीं-न-कहीं चित्त में यह बात घूमती ही है विज्ञान के भी कि अगर कोई चीज यात्रा कर रही है, तो माध्यम जरूरी है। एक नदी बह रही है, तो दो किनारे जरूरी हैं। उन दो किनारों के माध्यम के बिना नदी नहीं बह पायेगी।

डार्विन ने सिद्ध किया कि मनुष्य विकास कर रहा है, लेकिन डार्विन को खयाल नहीं है, जो महावीर को खयाल है। अगर मनुष्य विकास कर रहा है, तो गति हो रही है। तो गति की एक धारणा, और गति का एक मूल द्रव्य होना चाहिए, अन्यथा गति नहीं होगी। मनुष्य यात्रा कर रहा है। पशु से मनुष्य हो गया है, या बंदर से मनुष्य हो गया है। डार्विन के हिसाब से मछली की और यात्रा चल रही है। डार्विन के हिसाब से पहला जीवन का तत्व था, पहला नदियों के किनारे लगी पत्थर पर जो काई होती है, वह है। हरी काई, वह जीवन का पहला तत्व है। उस हरी काई से आप तक यात्रा हो गई। आप तक ही नहीं, महावीर तक भी यात्रा हो गई।

तो महावीर कहते हैं, यह जो इतना एवोल्यूशन हो रहा है, इतनी गति हो रही है, इस गति का एक तत्व चाहिए। उसे वे 'धर्म' कहते हैं। और जो उस गति के तत्व को पहचान लेता है अपने जीवन में, और उसका संगी-साथी हो जाता है, उसमें अपने को छोड़ देता है, वह विकास की चरम अवस्था पर पहुंच जाता है। वह चरम अवस्था परमात्मा है। इसलिए धर्म वहां समाप्त हो जता है, जहां आप परमात्मा होते हैं। वहां यात्रा पूरी हो जाती है। मंजिल आ गई।

अगर एक पत्थर को आप रास्ते पर पड़ा देखते हैं तो आप कभी भी नहीं सोचते कि वह रुका क्यों है? आपमें और पत्थर में फर्क क्या है? पत्थर के पास ही एक पौधा उग रहा है, उस पत्थर और पौधे में फर्क क्या है?

पौधा बढ़ रहा है, गतिमान है; पत्थर अगतिमान है, रुका है, ठहरा है। उसकी अगति के कारण ही उसकी चेतना कुंद है। वहां भी परमात्मा छिपा है, लेकिन अधर्म को बड़े जोर से पकड़ा है। इतने जोर से पकड़ा है कि कोई भी गति नहीं हो रही है।

गति के दो बिंदु हम खयाल में ले लें। एक पत्थर-जैसी अवस्था, बंद, सब तरफ से कुछ प्रवेश नहीं करता, कोई प्रवाह नहीं है; सब ठहरा हुआ, फ्रोजन, जमा हुआ; और फिर एक तरल अवस्था महावीर की, जहां कुछ भी ठहरा हुआ नहीं, कुछ भी अटका हुआ नहीं, कुछ भी रुका हुआ नहीं; जीवंत प्रवाह है, मात्र प्रवाह है।

'अधर्म और धर्म'—हम आमतौर से सोचते हैं अधर्म को अनीति की भाषा में, धर्म को नीति की भाषा में। महावीर सोचते

हैं विज्ञान की भाषा में, नीति की भाषा में नहीं। इसलिए जो चीज भी आपको परमात्मा की तरफ ले जा रही है, वह धर्म है। यह भी प्रत्येक व्यक्ति को सोचने जैसा है कि क्या उसे परमात्मा की तरफ ले जायेगा। जरूरी नहीं है कि दूसरा जिस ढंग से परमात्मा की तरफ जा रहा है, उसी ढंग से आप भी जा सकेंगे; क्योंकि दूसरा अलग बिंदु पर खड़ा है और आप अलग बिंदु पर खड़े हैं, दूसरा अलग स्थिति में खड़ा है, आप अलग स्थिति में खड़े हैं। और कभी-कभी दूसरे के पीछे चलकर आप उलझन में पड़ जाते हैं। और ऐसा भी नहीं है कि दूसरा गलत था, अपने लिए ठीक रहा हो। इसलिए धर्म बड़ी व्यक्तिगत खोज है।

सुना है मैंने कि मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन लंगड़ा-लंगड़ाकर चल रहा है रास्ते पर। एक मित्र मिल गया और मित्र ने कहा कि यही तकलीफ मुझे भी थी। दांत मैंने निकलवा दिये, तब से बिलकुल चंगा हो गया।

नसरुद्दीन ने सोचा कि कोई हर्ज तो है नहीं। दांत निकलवाने में क्या हर्ज है। दांत निकलवा दिये। लंगड़ाना तो जारी रहा, मुंह और खराब हो गया! दूसरा मित्र मिल गया। मित्रों की कोई कमी तो है नहीं। उसने कहा कि क्या! दांत से कुछ होनेवाला नहीं। तकलीफ यही मुझे भी थी, अपेन्डिक्स निकलवा दी, तब से बिलकुल चंगा हो गया हूं!

मुल्ला ने सोचा कि अपेन्डिक्स का कोई उपयोग तो है नहीं, निकलवा दी। हालत और खराब हो गई, कमर और झुक गई। तीसरा मित्र मिल गया, उसने कहा कि क्या कर रहे हो? अपेन्डिक्स और दांतों से कुछ होनेवाला नहीं—टान्सिल्स असली तकलीफ है। मैंने निकलवा दिये, तब से बिलकुल जवान हो गया।

मुल्ला ने टान्सिल्स भी निकलवा दिये, कुछ लाभ न हुआ। लेकिन एक दिन पहला मित्र मिला, और देखा कि मुल्ला बिना लंगड़ाए शान से चल रहा है। उसने कहा कि अरे, मालूम होता है कि दांत निकलवा दिये, फायदा हो गया।

मुल्ला ने कहा कि दांत निकलवाने से भी नहीं हुआ, अपेन्डिक्स निकलवाने से भी नहीं हुआ, टान्सिल्स निकलवाने से भी नहीं हुआ—जूते में एक कील थी, उसको निकलवाने से सब ठीक हो गया!

मित्रों से सावधान! गुरुओं से सावधान! हो सकता है उनको दांत निकलवाने से लाभ हुआ हो। कोई उनकी गलती नहीं है। लाभ हो सकता है। तकलीफ क्या थी, इस पर निर्भर है।

आप अपनी तकलीफ पहचान लें, अपनी स्थिति, अपना बिंदु, वहीं से यात्रा होगी। आप, जहां से महावीर बोल रहे हैं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; जहां से मैं बोल रहा हूं, वहां से यात्रा नहीं कर सकते, जहां से कोई भी बोल रहा हो, वहां से यात्रा नहीं कर सकते; आप तो यात्रा वहीं से करेंगे, जहां आप खड़े हैं।

इसलिए अपने जीवन में एक सतत निरीक्षण चाहिए कि क्या है जो मुझे रोक रहा है? क्या है जिससे मैं कुंद हो गया, पत्थर हो गया? क्या है जिससे मैं जड़ हो गया हूं? और क्या है जो मुझे खोलेगा? और क्या मुझे खोलता है?

तब आपको किसी गुरु के पीछे चलने की जरूरत न होगी। आप अपने गुरु हो जायेंगे। और जब व्यक्ति अपना गुरु हो जाता है, और शांत निरीक्षण करता है अपनी जीवन स्थिति का, तो बहुत कठिन नहीं होता धर्म को जान लेना—कि धर्म क्या है?

आप अगर खुद ही निरीक्षण करेंगे, तो आप पायेंगे क्रोध आपको बांधता है, रोकता है, जड़ कर देता है, मूर्छित करता है, होश खो जाता है, आप रुग्ण होते हैं, अस्थायी रूप से पागल हो जाते हैं। मनोवैज्ञानिक तो कहते हैं क्रोध, टेंपररी मैडनेस है। पागल जो स्थायी रूप से होता है क्रोध में, आप अस्थायी रूप से हो जाते हैं! बाकी आप हो वही जाते हैं।

आप नीचे गिर रहे हैं, बहिर-आत्मा हो रहे हैं। जब आप किसी के प्रति दया और करुणा से देखते हैं, तो ठीक उल्टी घटना घटती है, क्रोध से उल्टी। आप खुलते हैं—बंधते नहीं, मुक्त होते हैं। खूंटी टूटती है, नाव खुलती है, आप बहते हैं।

जब भी आप करुणा के क्षण में होते हैं, तब आप पाते हैं शरीर का बोझ खो गया। जब आप क्रोध में होते हैं, तो पूरा ग्रेविटेशन, सारी जमीन आपको नीचे की तरफ खींचती है। जब आप क्रोध में होते हैं, तब आप वजनी हो जाते हैं। जब आप करुणा में होते हैं, तब आप हल्के हो जाते हैं।

अपने ही भीतर निरंतर कसना है और खोजना है कि क्या मुझे मुक्त करता है और क्या मुझे बांधता है? क्या है अधर्म और क्या है धर्म? ये प्रत्येक व्यक्ति को रोज-रोज कसकर जानने की बातें है। इनके कोई बंधे सूत्र वेद में उपलब्ध नहीं हैं। यही

महावीर का आग्रह है, कोई किताब नहीं है जो आपके लिए काम दे देगी। किसी किताब के सहारे चलकर आपके भटकने की संभावना है, बजाय पहुंचने की; क्योंकि हर किताब किसी व्यक्ति का निजी अनुभव है। और व्यक्ति भिन्न-भिन्न हैं। और धर्म का प्रत्येक व्यक्ति का अपना प्राथमिक अनुभव अलग-अलग होगा।

गुरजिएफ के पास लोग पहुंचते थे, तो गुरजिएफ कभी-कभी बड़ी हैरानी की बातें खड़ी कर देता था जो हम सोच भी नहीं सकते कि धर्म हो सकती हैं। एक आदमी गुरजिएफ के पास पहुंचता है जिसने कभी सिगरेट नहीं पी, और एक आदमी पहुंचता है जो सिगरेट का आदी है और सिगरेट नहीं छोड़ सकता। तो जो सिगरेट का आदी है, उसको गुरजिएफ कहेगा कि 'सिगरेट बंद', और जिसने कभी नहीं पी, और जो दुश्मन है, जो कहता है कि 'पी लूं तो मुझे उल्टी हो जाये', उसको कहेगा कि 'तू शुरू कर!' हम सोच भी नहीं सकते कि उसका क्या प्रयोजन है! आदत बांधती है। फिर चाहे वह सिगरेट पीने की हो और चाहे सिगरेट न पीने की हो। आदत अधर्म है।

तो गुरजिएफ बड़ी उल्टी बात कह रहा है। वह जिसने कभी नहीं पी है, जो कहता है 'मैं, अगर कोई दूसरा भी पी रहा हो तो मेरे भीतर मतली खड़ी हो जाती है, उल्टी होने लगती है', उसे गुरजिएफ कहता है : तू पी, क्योंकि तू भी एक आदत में कुंद है, और यह भी एक आदत में कुंद है। इसको भी इसकी आदत के बाहर लाना है, तुझे भी तेरी आदत के बाहर लाना है। आदत अधर्म है।

गुरजिएफ को महावीर का कोई पता नहीं था, नहीं तो वह बड़ा खुश हुआ होता। लेकिन आपको पता है कि महावीर को माननेवालों को यह खयाल है कि आदत अधर्म है? नहीं, वे कहते हैं कि अच्छी आदतें धर्म हैं, बुरी आदतें अधर्म है।

अच्छी और बुरी आदत का बड़ा सवाल नहीं है। आदत आपको जड़ बनाती है, तरलता खो जाती है। फिर आदत कुछ भी हो, चाहे रोज सुबह उठकर सामायिक करने की हो, या प्रार्थना करने की हो—अगर आदत है!

मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, 'आज ध्यान नहीं किया तो अच्छा नहीं लग रहा।' और जो आदमी सिगरेट पीता है, अगर वह भी नहीं पीता है तो उसको भी अच्छा नहीं लगता, फर्क क्या है? मगर जो सिगरेट न पिये और अच्छा न लगे तो हम कहेंगे—हिम्मत रखो, डटे रहो, ध्यानवाले से हम कहेंगे नहीं, ध्यान करना चाहिए था! मगर यह भी एक आदत का गुलाम हो रहा है, एक आदत इसके आस-पास घेरा बांध रही है।

बड़े मजे की बात है, लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से कुछ आनंद तो नहीं आता, लेकिन अगर न करो तो तकलीफ होती है। वही तो सिगरेटवाले की भी तकलीफ है। वह भी कहता है—सिगरेट पीने से कुछ मिल नहीं रहा है, लेकिन न पीओ तो बेचैनी होती है।

आदत का अर्थ यह है कि कुछ करने की एक यांत्रिक व्यवस्था बन गई है। उस यांत्रिकता में चलो तो ठीक लगता है, उस यांत्रिकता से हटो तो गलत लगता है।

अयांत्रिक होना, धार्मिक होना, नान-मैकेनिकल होना है। कोई आदत पकड़े न, कारागृह न बने। और आदत से चेतना सदा मुक्त रहे। चेतना कभी आदत के नीचे न दबे, सदा आदत के ऊपर हावी रहे, और हमारे हाथ में हो।

इसका यह मतलब नहीं है कि आप ध्यान न करें, इसका मतलब सिर्फ इतना है कि ध्यान भी आदत न हो। नहीं तो प्रेम भी आदत हो जाता है, ध्यान भी आदत हो जाता है।

मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी भाग गई थी तो वह छाती पीट-पीटकर रो रहा था। मित्रों ने सलाह दी कि ऐसा भी क्या है, छह महीने में सब घाव भर जायेगा, तुम फिर किसी के प्रेम में गिरोगे, फिर तुम शादी करोगे, ऐसा मत जार-जार होकर रोओ। सभी घाव भर जाते हैं, सिर्फ समय की बात है। मुल्ला ने कहा, छह महीने, और आज रात मैं क्या करूंगा?

वे पत्नी के लिए रो भी नहीं रहे हैं। एक आदत है।

तो सेक्स भी आदत हो जाती है, प्रेम भी आदत हो जाती है। अच्छी हैं, बुरी आदतें हैं, पर धर्म की फिकर इस बात की है कि आदत न हो, आप मुक्त हों। कोई भी चीज बांधती न हो, किसी ची का व्यसन न हो। ऐसी मुक्ति आपको धर्म की दिशा में ले जायेगी। और व्यसन कुछ भी हों—धार्मिक व्यसन हों, कि रोज जाकर धर्म की चर्चा सुननी, कि रोज मंदिर जाना है, नहीं कह रहा हूं कि रोज मंदिर मत जायें। लेकिन रोज मंदिर जाना आदत बन जाये, तो मुर्दा बात हो गई, आप

यंत्र की भांति जाते हैं और आते हैं, कोई परिणाम नहीं है। मंदिर तो चेतना को मुक्त करे, ऐसा चाहिये।

महावीर का यह सूत्र बड़ा विचारणीय है : धर्म द्रव्य का लक्षण है, गति। तो जहां-जहां आप गत्यात्मक हैं, डायनैमिक हैं, वहां-वहां धर्म है। लेकिन जैन साधुओं को देखें, उनसे ज्यादा अगति में लोगों को पाना कठिन है। जैन साधु को कोई गत्यात्मक नहीं कह सकता, कि उसमें गति है। उसमें गति है ही नहीं। ढाई हजार साल पहले जो जैन साधु की लक्षणा थी, वही अब भी है। ढाई हजार साल में समय जैसे बहा ही नहीं, चीजें बदली ही नहीं। वह अभी भी वहीं जी रहा है, जहां वह ढाई हजार साल पहले था। सब कुछ बदल गया है, लेकिन वह अपनी आदतों से जकड़ा है, वह वहीं खड़ा है। फिर भी वह सूत्र रोज पढ़ता है कि धर्म का लक्षण है गति। अगर धर्म का लक्षण है गति, तो जैन साधु से ज्यादा क्रांतिकारी व्यक्तित्व दूसरा नहीं होना चाहिये। उसे तो रुकना ही नहीं चाहिये। उसे तो जीवन के प्रवाह में गतिमान होना चाहिये।

लेकिन वह ठहरा हुआ है जड़ की तरह, पत्थर की तरह। और जितना पथरीला हो, उतने अनुयायी कहते हैं कि तपस्वी है। और अगर उसमें जरा- सी भी हलन-चलन दिखाई पड़े, जरा-सा कुछ अंकुरित होता दिखाई पड़े, तो वह आदमी विद्रोही है, वह आदमी ठीक नहीं है, वह मार्ग से च्युत हो गया। अगर गति दिखाई पड़े तो मार्ग से च्युत है, अगर अगति दिखाई पड़े तो बिलकुल ठीक है।

हम सब अगति के पूजक हैं, हम सब अधर्म के पूजक हैं, इसलिए हम सब आथाच्डाक्स हैं। ध्यान रहे, अगर महावीर की बात हमारे खयाल में आ जाये तो आथाच्डाक्स धर्म जैसी कोई चीज नहीं हो सकती, या हो सकती है? जो भी आथाच्डाक्स होग्र रूढ़ होगा, वह अधर्म होगा। धर्म तो सिर्फ क्रांतिकारी ही हो सकता है। धर्म का कोई रूप जड़ नहीं हो सकता। धर्म प्रवाहमान होगा, उसमें गति होगी।

मैं तो कहता हूं कि धर्म यानी क्रांति। और जिस दिन धर्म क्रांति नहीं रहता उस दिन संप्रदाय बन जाता है। और जैसे ही संप्रदाय बनता है, वैसे ही व्यर्थ बोझ और कारागृह हो जाता है।

धर्म का लक्षण है, गति। अधर्म का लक्षण है, स्थित, स्टेटिक, ठहरे होना। आप अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं; चाहे रोज मंदिर जा रहे हों, चाहे रोज पूजा कर रहे हों; अगर ठहरे हैं, तो अधार्मिक हैं। अगर गति कर रहे हैं, नदी की तरह बह रहे हैं, तालाब की तरह बन्द नहीं हैं — रोज सागर की तरफ जा रहे हैं, और भयभीत भी नहीं हैं कि कल क्या होगा, कल का आनंदपूर्ण स्वीकार है, स्वागत है, तो आप धार्मिक हैं। लेकिन हमारा मन स्थिति को पकड़ता है। इसे थोड़ा समझ लें।

हमारा मन सदा स्थिति को पकड़ता है, क्यों? क्योंकि मन के लिए सुविधापूर्ण है। जब भी कुछ नई बात होती है, तो मन को असुविधा होती है। क्योंकि मन को नई बात सीखनी पड़ती है। जब भी कोई नई घटना घटती है, तो मन को फिर से समायोजित होना पड़ता है, री-एडजस्टमेंट करना पड़ता है। इसलिए मन हमेशा आदतें पसंद करता है। क्योंकि आदतों के साथ कुछ नया नहीं है, सब पुराना है, इसलिए पुराने की धारा में आप बहे चले जाते हैं, नये से अड़चन होती है।

इसलिए मन नये को पसंद नहीं करता। जब आप कोई नई बात सुनते हैं, आप फौरन पायेंगे कि भीतर रेजिस्टेन्स है, भीतर विरोध है। जब आप कोई पुरानी बात सुनते हैं, जो आप पहले से ही जानते हैं, और मानते हैं, आप बिलकुल स्वीकार कर लेते हैं, कि बिलकुल ठीक है, इसलिए नहीं कि बिलकुल ठीक है बल्कि इसलिए कि आप आदी हैं, आपको पता है कि ऐसा है। मन को कुछ सीखना नहीं पड़ता। मन सीखने का दुश्मन है। सीखने में प्रवाह है। मन चाहता है, सीखो मत; जो है, वहीं ठहरे रहो।

पशुओं को देखें, पशु कुछ भी नहीं सीखते। सीखने की कोई संभावना ही नहीं पशु में। बामुश्किल, थोड़ा बहुत सर्कस के लिए उनको राजी किया जा सकता है। बाकी, वह भी बामुश्किल! बिलकुल स्थित हैं।

अगर अधर्म का आप अर्थ समझते हों, तो पक्के अधार्मिक हैं; क्योंकि जहां उनके बाप-दादे थे, वहीं वे हैं, बाप-दादों के बाप-दादे थे, वहीं वे हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। बंदर दस लाख साल पहले का था, तो बंदर अभी भी ठीक वैसे ही है। बंदर बड़ा पक्का अनुयायी है अपने बाप-दादों का। प्राचीन का अनुयायी है। सनातन, वही उसकी धारणा है। वह कभी नहीं बदलता। कोई उपद्रव नहीं, कोई क्रांति नहीं, किसी तरह का कोई परिवर्तन नहीं।

आपके हिसाब से तो बंदर ही धार्मिक होना चाहिए। महावीर के हिसाब से वह अधर्म में जी रहा है। आदमी बदलता है।

बदलता है, इसलिए आदमी गति करता है, सीखता है, नया अनुसंधान करता है, आविष्कार करता है, खोजता है। नये क्षितिज खोलता चला जाता है और आदमी हमेशा तैयार है, अपने पुराने को छोड़ने, काटने, बदलने को।

इसलिए मैं कहता हूं, महावीर की दृष्टि वैज्ञानिक है। विज्ञान कभी भी दावा नहीं करता कि जो हम जानते हैं, वह ठीक है। वह कहता है, अभी तक जो जानते हैं, उस हिसाब से ठीक है। कल जो हम जानेंगे, उस हिसाब से गलत भी हो सकता है। इसलिए महावीर कभी भी नहीं कहते कि यही ठीक है। वे कहते हैं कि इसके विपरीत भी ठीक हो सकता है, इससे भिन्न भी ठीक हो सकता है। यह एक दृष्टि है, और दृष्टियां भी हैं, उनसे ये चीज गलत भी हो सकती है।

एक प्रवाह है जीवन सीखने का, जानने का। हम ज्ञान को पकड़ते हैं, जानने से बचना चाहते हैं। ज्ञान मुर्दा चीज है। मैंने आपसे कुछ कहा, आपने पकड़ लिया, कहा कि बिलकुल ठीक है। लेकिन जानने की प्रक्रिया से आप नहीं गुजरे। ज्ञान को हम पकड़ लेते हैं, जानने से हम बचते हैं। क्योंकि जानना बड़ा कष्टपूर्ण है, जैसे कोई खाल उतारता हो। पुराना सब उतरता है, नए में प्रवेश करना पड़ता है।

इसलिए आप देखेंगे कि हमारे तथाकथित धर्मों में युवक उत्सुक नहीं होते, बूढ़े उत्सुक होते हैं। होना उलटा चाहिए। महावीर ने जब अपने जीवन का रूपांतरण किया, तब वे जवान थे। लेकिन मेरे पास जैन भी आते हैं, वे कहते हैं कि अभी तो काफी समय बाकी है, और ये बातें तो अंतिम समय की हैं। अभी कुछ संसार को देख लें, फिर आखिर में!

असल में मरता हुआ आदमी सीखने में बिलकुल असमर्थ हो जाता है। तब सब जड़ हो जाता है, सब ठहर गया होता है। उस ठहराव में आदमी धार्मिक हो जाते हैं, क्योंकि जिसको हम धर्म कहते हैं, वह खुद एक ठहराव हो गया है।

अगर धर्म जीवित हो तो जवान उत्सुक होंगे, अगर धर्म मुर्दा हो तो बूढ़े उत्सुक होंगे। मंदिर में कौन इकट्ठे हैं, इससे पता चल जायेगा कि मंदिर जिंदा है या मर गया है। अगर मंदिर में बूढ़े इकट्ठे हैं तो मंदिर मर चुका है, बहुत पहले मर चुका है। बूढ़ों से मेल खाता है। अगर जवान इकट्ठे हैं तो मंदिर अभी जिंदा है। यह मतलब नहीं है कि बूढ़े मंदिर न जाएं। लेकिन अगर मंदिर जवान हो तो बूढ़ों को जवान होना पड़ेगा, और अगर मंदिर बूढ़ा हो, और जवान उसमें जायें तो उनको बूढ़ा होना पड़ेगा। तभी तालमेल बैठ सकता है।

महावीर का धर्म, युवा का धर्म है। एक बड़ी क्रांति महावीर ने की। हिंदू विचार था कि धर्म अंतिम बात है। चौथे चरण में जीवन

के संन्यास, पहले पूरे संसार का अनुभव। ब्रह्मचर्य—शिक्षण का काल, फिर गृहस्थ—भोग का समय, फिर वानप्रस्थ—संन्यास की तैयारी का समय, और फिर पचहत्तर वर्ष की उम्र में, आखिरी पच्चीस वर्ष में संन्यास।

यह हिंदू धारणा थी। हिंदू धारणा दो चीजों पर टिकी थी—एक चार वर्ण ः और चार आश्रम। महावीर ने दोनों तोड़ दिये। महावीर ने कहा, न तो कोई वर्ण है। जन्म से कोई वर्ण नहीं होता। जन्म से तो सभी शूद्र पैदा होते हैं। इन शूद्रों में से कभी-कभी कोई-कोई ब्राह्मण हो पाता है। वह ब्राह्मण होना उपलब्धि है। जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता।

इसलिए जब हम महावीर की ब्राह्मण की परिभाषा पढ़ेंगे, बड़ी अनूठी है। महावीर किसको ब्राह्मण कहते हैं? जिसको ब्रह्म का अनुभव हो गया हो। तो जन्म से कोई कैसे ब्राह्मण हो सकता है, जन्म से सभी शूद्र होते हैं।

तो महावीर ने वर्ण की धारणा तोड़ दी थी, कि कोई ऊंचा-नीचा नहीं है जन्म से। और महावीर ने चार आश्रम की धारणा भी तोड़ दी, और कहा, ऐसी कोई बात नहीं है कि मरते समय धर्म। असल में ये तो बात ही गलत है। धर्म तो तब जब जीवन अपनी पूरी ऊर्जा पर है, युवा है। जब जीवन अपने पूरे शिखर पर है, जब काम-वासना पूरे प्रवाह में है, तब उसको बदलने का जो मजा है, और जो रस है, वह रस बुढ़ापे में नहीं हो सकता। क्योंकि बुढ़ापे में तो सब चीजें अपने-आप उदास होकर क्षीण हो गयी हैं।

वृद्धावस्था में ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होता है? पचहत्तर वर्ष के बाद ब्रह्मचर्य का क्या अर्थ होगा? शरीर शिथिल हो गया, इंद्रियां काम नहीं करतीं, रुग्ण देह कुरूप हो गई, कोई आकर्षित भी नहीं होता, अब सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब आप विदा हों, तब अगर आप कहते हैं कि अब मैं ब्रह्मचर्य का व्रत लेता हूं तो आप भी बड़े गजब के आदमी हैं।

जब सारे शरीर का रोआं-रोआं वासना से भरा हो, और जब शरीर का एक-एक कोष्ठ मांग कर रहा हो, जब शरीर की

सारी जीवन चेतना एक ही तरफ बहती हो, काम, तब कोई ठहर जाए, ट्रेन से उतर जाए, तब जो चरम अनुभव होता है, जीवन के प्रवाह को बदलने का, वह वृद्धावस्था में नहीं हो सकता। इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया।

महावीर पर बहुत नाराज थे लोग। नाराजगी की बहुत-सी बातों में सबसे बड़ी नाराजगी यह थी कि युवक संन्यास लें। क्योंकि आपको पता नहीं, युवक के संन्यास का मतलब क्या होता है? युवक के संन्यास का मतलब होता है, सारी गृहस्थी का जाल अस्त-व्यस्त हो जायेगा। बाप बूढ़ा है, वह युवक पर निर्भर है; पत्नी नई घर में आई है, वह युवक पर निर्भर है। छोटे बच्चे हैं, वह युवक पर निर्भर हैं।

समाज का पूरा जाल चाहता है कि आप पचहत्तर साल के बाद संन्यास लें। समाज में इससे बड़ी बगावत नहीं हो सकती थी कि युवक संन्यासी हो जाये। क्योंकि इसका मतलब था कि समाज की पूरी व्यवस्था अराजक हो जाये। महावीर अनार्किस्ट हैं, अराजक हैं। लाखों युवक संन्यासी हुए, लाखों युवतियां संन्यासिनी हुइच। आप सोच सकते हैं, उस समय के समाज का पूरा जाल कैसा अस्त-व्यस्त हो गया होगा।

सब तरफ कठिनाई खड़ी हो गई होगी। सब तरफ अड़चन आ गई होगी। लेकिन महावीर ने कहा कि यह अड़चन उठाने जैसी है। क्योंकि जब ऊर्जा अपने उद्दाम वेग में हो, तभी क्रांति हो सकती है, और तभी छलांग हो सकती है। जैसे-जैसे ऊर्जा शिथिल होती है, वैसे-वैसे छलांग मुश्किल होती जाती है। फिर आदमी मर सकता है, समाधिस्थ नहीं हो सकता। शिथिल होती हुई इंद्रियों के साथ कुछ भी नहीं हो सकता; क्योंकि शरीर ही तो यात्रा का रथ है।

इसलिए महावीर ने युवकों को संन्यास दिया, उसका भी कारण इसलिए है कि धर्म गति है, और युवक गतिमान हो सकता है। बूढ़ा गतिमान नहीं हो सकता। हिंदुओं ने एक समाज पैदा किया था, जो स्टेटिक है, जो ठहरा हुआ है तालाब की तरह। हिंदुओं के इस समाज में कभी कोई लहर नहीं उठी, इसलिए हिंदू माफ नहीं कर पाये महावीर को। आप हैरान होंगे कि उनकी नाराजगी का सबसे बड़ा लक्षण यह है कि हिंदुओं ने महावीर के नाम का भी उल्लेख नहीं किया, अपने किसी शास्त्र में।

और ध्यान रहे, यह आखिरी बात है। अगर मैं आपसे प्रेम करूं, यह एक संबंध है। आपसे घृणा करूं, यह भी एक संबंध है। क्योंकि मेरा नाता जारी रहता है। लेकिन मैं आपसे न प्रेम करूं, न घृणा करूं, उपेक्षा करूं तो यह आखिरी बात है। क्योंकि जब भी हम किसी को घृणा करते हैं, तब भी मूल्य देते हैं।

महावीर के साथ हिंदुओं ने आखिरी उपाय किया। उनकी उपेक्षा की। उनके नाम की भी चर्चा नहीं उठाई। जैसे यह आदमी हुआ ही नहीं। इसे भूल ही जाओ। इसकी चर्चा भी खतरनाक है। इसकी चर्चा चलाये रखने का मतलब है कि वे बिंदु जो उसने उठाये थे, वह जारी रहेंगे।

महावीर की बिलकुल, जैसे घटना घटी ही नहीं। अगर सिर्फ हिंदू-ग्रंथ उपलब्ध हों, तो महावीर गैर-ऐतिहासिक व्यक्ति हो जायेंगे। महावीर का कोई उल्लेख नहीं है। आदमी बड़ा खतरनाक रहा होगा, जिस वजह से इसकी इतनी उपेक्षा करनी पड़ी। इतना अराजक रहा होगा कि समाज ने इनका नाम भी संरक्षित करना उचित नहीं समझा।

बड़ी क्रांति यह थी कि युवक, ऊर्जा-प्रवाह में है, तभी धार्मिक हो सकता है। युवा-चेतना धार्मिक हो सकती है, क्योंकि त्वरा चाहिए, वीर्य चाहिए, क्षमता चाहिए।

'सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश का लक्षण है।' आकाश यानी अवकाश देने की क्षमता; स्पेस। यह भी बहुत सोचने जैसा है। महावीर कहते हैं, सब पदार्थों को अवकाश देना आकाश है। आप जो भी करना चाहें, आकाश आपको अवकाश देता है करने को। आप चोरी करना चाहें, तो चोरी। आप पत्थर होना चाहें, तो पत्थर। आप परमात्मा होना चाहें, तो परमात्मा। आकाश आपको सभी तरह के अवकाश देता है।

यह जो हमारे चारों तरफ घिरी हुई स्पेस है, यह आपको कुछ भी बनाने के लिए जोर नहीं डालती। यह बिलकुल तटस्थ है। यह आपसे कहती नहीं कि आप ऐसे हो जाएं। आप जैसे हो जाएं, इसे स्वीकार है। और यह आपको पूरा सहारा देती है। आकाश किसी का दुश्मन नहीं है, और किसी का मित्र नहीं है। सिर्फ अवकाश की क्षमता है।

तो आप जो भी हैं, अपने कारण हैं। ऐसा दबा नहीं रहा है, और कोई आपको बना नहीं रहा है। हिंदू-धारणा भिन्न थी।

हिंदू-धारणा थी कि आप ऐसे हैं, क्योंकि परमात्मा, नियति, भाग्य! आपकी विधि में कुछ लिखा है, इसलिए आप ऐसे हैं, आप परतंत्र हैं। महावीर कहते हैं, आप पूर्ण स्वतंत्र हैं। और परमात्मा घेर रहा है सब को, हिंदू-धारणा में। महावीर की धारणा में आकाश घेर रहा है। आकाश आपको कुछ भी बनाने के लिये उत्सुक नहीं है। आप जो बनना चाहते हैं, आकाश राजी है। आपको वही जगह दे देगा।

एक बीज वृक्ष बनता है, बरगद का वृक्ष बन जाता है, तो आकाश बाधा नहीं देता। उसे जगह देता है। रिसेप्टिव है, ग्राहक है। एक गुलाब का पौधा है। आकाश उसे गुलाब होने की सुविधा देता है।

आकाश बिलकुल तटस्थ सुविधा का नाम है। जो हमें घेरे हुए है, वह कोई परमात्मा नहीं है जिसकी अपनी कोई धारणा है कि हमें क्या बनाए? कोई भाग्य हमें घेरे हुए नहीं है। हमारे अतिरिक्त हमारा कोई भाग्य नहीं है। यह बड़ी कठिन बात है। यह स्वतंत्रता भी है, और एक महान जिम्मेवारी भी।

निश्चित ही, जहां भी स्वतंत्रता होगी, वहां रिस्पांसिबिलिटी, वहां उत्तरदायित्व हो जायेगा। परमात्मा के साथ एक खतरा है कि आप परतंत्र हैं, लेकिन एक लाभ है क्योंकि आप जिम्मेवार हैं; फिर आप पाप भी कर रहे हैं तो वही जिम्मेवार है। फिर आप नरक में भी पड़ते हैं, तो वही जिम्मेवार है; फिर जो भी हो रहा है, वही जिम्मेवार है। परतंत्र जरूर है, लेकिन परतंत्रता में एक लाभ है, एक सौदा है, वह यह कि आपकी कोई जिम्मेवारी नहीं, कोई चिंता नहीं। आप निश्चिंत हैं। उसकी जो मज□। उसकी बिना मज□ के पत्ता भी नहीं हिलता।

महावीर परमात्मा की जगह आकाश की धारणा को स्थापित करते हैं। और वे कहते हैं, पत्ता अपनी ही मज□ से हिलता है, और किसी की मज□ से नहीं। आकाश की अपनी कोई मज□ नहीं है आपको हिलाने-डुलाने की। आकाश सिर्फ अवकाश देता है। पत्ता हिलना चाहता है, तो अवकाश देता है, पत्ता ठहरना चाहता है, तो ठहरने के लिए सुविधा देता है।

निरपेक्ष अस्तित्व है चारों ओर। यह अस्तित्व आपको न तो खींच रहा है, और न आपको धक्के दे रहा है। आप जो भी कर रहे हैं, आपके अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं है। आप परम स्वतंत्र हैं। लेकिन तब चिंता पैदा हो जाती है। क्योंकि तब उसका अर्थ हुआ अगर गलत हो रहा है, तो मैं जिम्मेवार हूं, उसका अर्थ हुआ अगर मैं दुख पा रहा हूं तो मैं जिम्मेवार हूं। कोई ऊपर परमात्मा नहीं है।

इसलिए बहुत बड़ी संख्या में महावीर के अनुयायी नहीं बन सके; क्योंकि लोग चिंता छोड़ना चाहते हैं, चिंता पकड़ना नहीं चाहते। गुरु के पास लोग आते हैं कि मेरा बोझ आप ले लो। और ये महावीर खतरनाक आदमी हैं, ये सारे संसार का बोझ आप पर रखे दे रहे हैं। गुरु के पास आप जाते हैं, उसके चरणों में सिर रखते हैं कि सम्हालो! बस, अब आप ही हो। आपकी जो मज□, वैसा ही—कि आप एक आकाश में बैठे परमात्मा को समर्पण करते हैं।

समर्पण क्या करेंगे? आपके पास है क्या समर्पण करने को, सिवाय दुख और उपद्रव के? जब आप कहते हैं कि आपकी ही मज□, तो आप छोड़ क्या रहे हो? बीमारियां, उपाधियां, उपद्रव, पागलपन!

लेकिन एक लाभ है। हो परमात्मा या न हो, जब आप अनुभव करते हैं कि किसी पर छोड़ा, तो आप निश्चिंत हो पाते हैं।

महावीर की प्रक्रिया बिलकुल उलटी है। महावीर कहते हैं कि धार्मिक व्यक्ति अति चिंता से भर जायेगा। इसे समझ लें, क्योंकि बिलकुल विपरीत है। समर्पण नहीं है महावीर की धारणा में—संकल्प है। महावीर कहते हैं, कि धार्मिक व्यक्ति ही चिंतित होगा, अधार्मिक व्यक्ति चिंतित होता ही नहीं। और यह बात सच है। धार्मिक चिंता से बड़ी चिंता और नहीं हो सकती; क्योंकि धार्मिक चिंता का अर्थ है कि मैं जो भी हूं, मैं जिम्मेवार हूं। और कल मैं जो भी होऊंगा, मैं ही जिम्मेवार होऊंगा। इसलिए एक-एक कदम फूंक-फूंककर रखना है; और किसी दूसरे पर दायित्व नहीं डाला जा सकता; और किसी के कंधों पर बोझ नहीं रखा जा सकता ; और दोष दूसरों को नहीं दिये जा सकते। सब दोष मेरे हैं।

खतरा है। भारी चिंता का बोझ सिर पर हो जायेगा। अकेला हो जाऊंगा मैं, कोई सहारा नहीं। इसलिए महावीर कहते हैं, असहाय है, असहाय है आदमी। हिंदू भी कहते हैं, आदमी असहाय है। लेकिन हिंदू कहते हैं, आदमी असहाय है, इसलिए परमात्मा का सहारा खोजो। महावीर कहते हैं, आदमी असहाय है और कोई सहारा है नहीं, इसलिए अपने ही सहारे खड़े होने की चेष्टा करो।

निश्चित ही महाचिंता घेरेगी सिर पर। पर ध्यान रहे, इस चिंता झेलने को जो राजी है, उसके आनंद का मुकाबला कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि इसी चिंता से विकास है। इसी चिंता और संघर्ष से निखार है। इसी चिंता से फौलाद जन्मेगा, इसी आग से। कोई सहारा नहीं। इस असहाय अवस्था में ही खड़े रहने की हिम्मत साहस है जो आत्मा का जन्म बनेगी और एक ऐसी घड़ी आयेगी कि जब किसी सहारे की कोई जरूरत भी नहीं रह जायेगी, आकांक्षा भी नहीं रह जायेगी। आदमी अपने ही पैरों पर पूरी तरह खड़ा हो जायेगा।

महावीर कहते हैं, जब भी कोई आत्मा अपनी अवस्था में पूरी तरह खड़ी हो जाती है, जब बाहर के सहारे की कोई जरूरत नहीं होती, तब सिद्ध की अवस्था है। जब तक बाहर का सहारा चाहिये, तब तक संसार है। इसलिए महावीर की धारणा में भक्ति की कोई गुंजाइश नहीं है। मगर जैन बड़े अदभुत लोग हैं। वे महावीर के सामने हाथ जोड़े खड़े हैं। वे उन्हीं की पूजा-प्रार्थना कर रहे हैं। जबकि महावीर कहते हैं, भक्ति का कोई उपाय नहीं है।

और महावीर से कोई सहारा नहीं मिल सकता। अगर सहारा चाहिए तो दूसरी जगह जाना पड़ेगा। कृष्ण के पास जाना पड़ेगा। कृष्ण कहते हैं, अर्जुन, छोड़ सब, मेरी शरण में आ। वह अलग मार्ग है, अलग पद्धति है। महावीर कहते हैं, छोड़ मुझे, और अपने पैरों पर खड़ा हो।

महावीर कभी कृष्ण की बात नहीं कह सकते। और जैनों ने कृष्ण को अगर नरक में डाल रखा है तो उसका कारण है। इसलिए महावीर की दृष्टि बिलकुल विपरीत है। महावीर कहेंगे यह बात ही उपद्रव की है कि कोई किसी की शरण जाये। यह तो खतरा है। यह तो इस आदमी की आत्मा का हनन है। अगर कहीं अर्जुन महावीर के पास गया होता तो वे कहते, तू भी किस के चक्कर में पड़ गया है! और कृष्ण कह रहे हैं, सर्वधर्मान् परित्यज्य, मामेकं शरणंव्रज। सब धर्म-वर्म छोड़ मेरी शरण आ। महावीर कहते कि सब शरण छोड़, निज शरण बन। महावीर का शब्द है, अशरण बन। और जब तू अशरण बन जायेगा, तभी तू सिद्ध हो सकता है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि कृष्ण के मार्ग से लोग नहीं पहुंच पाते। उस मार्ग से भी पहुंचते हैं। ज्यादा लोग उसी मार्ग से पहुंचते हैं। लेकिन महावीर का मार्ग अनूठा है। जिसमें साहस है, उनके लिए चुनौती है। जिनमें थोड़ी हिम्मत है, जिनमें थोड़ा पुरुषार्थ है, उनके लिए महावीर का मार्ग है।

कृष्ण का मार्ग स्त्रैण है, स्त्री-चित्त के लिए है, समर्पण। महावीर का मार्ग पौरुषेय है। पुरुष का है, संकल्प। लेकिन पुरुष बहुत कम हैं, स्त्रियां बहुत ज्यादा हैं। पुरुषों में भी स्त्री-चित्त ज्यादा हैं; क्योंकि आदमी इतना कमजोर और भयभीत है कि उसके मन की आकांक्षा है, कोई सहारा मिल जाये, कोई कह दे!

इसलिए तो इतने गुरु पैदा हो जाते हैं दुनिया में। कितने गुरु हैं? कोई उपाय नहीं है। ये गुरु हैं, ये आपकी खोज है किसी सहारे की। इसलिए एक गधे को भी खड़ा कर दो, शिष्य मिल जायेंगे। इसमें गधे की कोई खूबी नहीं है, ये आपके सहारे की खोज हैं। तो उसको भी शिष्य मिल जायेंगे। एक पत्थर को भी रख दो, उस पर भी सिंदूर लगा दो, थोड़ी देर बाद आप देखोगे, कोई आदमी फूल रखकर उसके सामने सिर झुका रहा है। सिर झुकाने की जरूरत है किसी को। यह पत्थर मूल्यवान नहीं है, यह पत्थर जरूरत की पूर्ति है।

महावीर का मार्ग निर्जन है, अकेले का है—एकाकी का। जिनमें साहस है, केवल उनके लिए है। जिनमें हिम्मत है अकेले होने की, उनके लिए है।

'आकाश का लक्षण है, अवकाश देना। काल का लक्षण है, वर्तना।'

समय : समय का अर्थ है—चलना, वर्तन होना। समय पर कोई दोष मत दें कभी। लोग समय को दोष देते रहते हैं। लोग कहते हैं, समय बुरा है। जैसे आकाश जगह देता है आपको दिशाओं में, वैसे ही समय भी आपको जगह देता है भविष्य और अतीत की दिशा में। आइंस्टीन ने तो अभी सिद्ध किया कि समय भी आकाश का ही एक अंग है, वह भी एक दिशा है। चार दिशाएं आकाश की हैं। ये दो दिशाएं भी आकाश की हैं। फर्क इतना है कि इनमें आगे-पीछे की यात्रा है।

समय भी आपको अवकाश देता है। समय भी आपके ऊपर जोर नहीं डालता। लेकिन इधर मैं सुनता हूं, जैन भी कहते हुए सुने जाते हैं कि यह पंचम-काल है। इसमें कोई तीथ□कर नहीं हो सकता। इसमें कोई सिद्ध नहीं हो सकता। इसमें कोई

केवलज्ञान को उपलब्ध नहीं हो सकता। यह काल ही खराब है।

समय खराब नहीं होता, समय तो सिर्फ शुद्ध परिवर्तन है। आप समय पर बोझ डालते हैं और खुद निश्चिंत हो जाते हैं। आप निश्चिंत होना चाहते हैं तीथ□कर होने की चिंता से। क्योंकि तीथ□कर अगर हुआ जा सकता था, तो आपको भी बेचैनी होगी कि मैं क्यों नहीं हो रहा हूं। अगर कोई आदमी घोषणा कर दे कि वह तीथ□कर है, तो आप सब मिलकर सिद्ध करने की कोशिश करेंगे कि नहीं तुम, तीथ□कर नहीं हो सकते, यह काल ही तीथ□कर होने का नहीं है। यह बात ही गलत है।

आप असल में किस बात से लड़ रहे हैं, आपको पता नहीं है। मन बड़ा चालाक है। आप इस बात से लड़ रहे हैं कि अगर तीथ□कर हुआ जा सकता है, तो फिर मैं तीथ□कर क्यों नहीं हो सकता? वह अड़चन है।

नीत्से ने लिखा है कि अगर कहीं कोई ईश्वर है, तो फिर मुझे बड़ी अड़चन हो जायेगी कि फिर मैं ईश्वर क्यों नहीं हूं? इसलिए दो ही उपाय हैं : एक उपाय नीत्से का है। वह कहता है, ईश्वर है ही नहीं, और निश्चिंत हो जाता है। दूसरा उपाय महावीर का है। तर्क दोनों का एक है। महावीर ईश्वर होने की कोशिश में लग जाते हैं, और ईश्वर हो जाते हैं। चिंता एक ही है। नीत्से कहता है, इफ देयर इज गाड, देन हाउ आई कैन रिमेन विदाउट बीइंग ए गाड। देअरफोर देअर इज नो गाड—अगर ईश्वर है, तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं। इसलिए कोई ईश्वर नहीं है। महावीर भी कहते हैं कि अगर ईश्वर है तो मैं ईश्वर हुए बिना कैसे रुक सकता हूं, इसलिए ईश्वर होकर रहते हैं, ईश्वर हो जाते हैं।

तो एक चिंता पैदा होती है। हम कह देते हैं कि यह तो काल खराब है, कलयुग है, पंचम काल है, समय खराब है। खुद खराब होने के लिए सुविधा चाहते हैं, इसलिए कहते हैं, समय खराब है। सुविधा मिल जाती है। क्योंकि समय सुविधा देता है। आप खराब होना चाहते हैं, समय खराब होने की सुविधा देता है। आप महावीर होना चाहें, समय आपको वह भी सुविधा देता है। समय पर कोई पक्षपात नहीं है। समय जीवन प्रवाह की शुद्ध धारा है। ये सारे तत्व निष्पक्ष हैं।

'और उपयोग अर्थात अनुभव जीव का लक्षण है। जीवात्मा ज्ञान से, दर्शन से, सुख से तथा दुख से पहचाना जाता है।'

अंतिम तत्व है, जीवात्मा। जैसे आकाश का लक्षण है—अवकाश, और काल का लक्षण—वर्तन, और धर्म का लक्षण—गति, और अधर्म का लक्षण—अगति, वैसे जीव का लक्षण—अनुभव।

जैसे-जैसे आपके अनुभव की क्षमता प्रगाढ़ होती है, वैसे-वैसे आप आत्मा बनने लगते हैं। जितनी आपके अनुभव की क्षमता कम होती है, उतने आप पदार्थ के करीब होते हैं और आत्मा से दूर होते हैं। और अंतिम अनुभव है, शुद्ध अनुभव, जब अनुभव करने को कुछ भी नहीं बचता, सिर्फ अनुभोक्ता रह जाता है, द एक्सपीरियन्सर। सब खो जाता है, सिर्फ शुद्ध ज्ञाता, अनुभोक्ता बचता है। वह अंतिम क्षमता है।

एक पत्थर में और आप में फर्क क्या है?

सुबह होगी, सूरज निकलेगा, पत्थर खिल नहीं जायेगा, और नहीं कहेगा कि कितनी सुन्दर सुबह है। आप खिल सकते हैं। जरूरी नहीं कि आप खिलेंगे, सौ में से निन्यानबे आदमी भी नहीं खिलते। सूरज उगता रहे, उन्हें मतलब ही नहीं कब उगता है, कब डूबता है। फूल खिलते रहें, उन्हें मतलब नहीं, कब वसंत आती है, कब पतझड़। उन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। वे भी अपने में बंद एक पत्थर की तरह जी रहे हैं।

चेतना का लक्षण है, अनुभव, सूरज सुबह उगता है, आपके भीतर भी कुछ उगता है। एक अनुभव प्रगाढ़ हो जाता है। आप जानते हैं, कुछ हो रहा है। फूल खिलता है, आपके भीतर भी कुछ खिलता है। पत्थर पड़ा रहता है, जैसे कुछ भी नहीं हुआ।

सुख है, दुख है, ज्ञान है, बोध है—सब जीवन के लक्षण हैं। जिस मात्रा में बढ़ते चले जायें, उतनी जीवन की गहराई बढ़ती चली जाती है। जीवन उस दिन परम गहराई पर होता है, जब हम पूरे जीवन का अनुभव उसके शुद्धतम रूप में कर लेते हैं। उसे ही महावीर सत्य कहते हैं। वह जीवन का परम अनुभव है। सुख, दुख प्राथमिक अनुभव हैं, आनंद परम अनुभव है। इसे हम आगे विस्तार से समझने की कोशिश करेंगे।

आज इतना ही।

आत्मा का लक्षण है ज्ञान

ग्यारहवां प्रवचन

दिनांक 26 अगस्त, 1973; तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

लोकतत्व-सूत्र : 2

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ।।
सद्दंधयार उज्जोओ, पहा छायातवे इ वा ।।
वण्ण-रस-गंध-फासा, पुग्गलाण तु लक्खणं ।।
जीवाजीवा य बन्धो य पुण्णं पावासवा तहा।
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव ।।
तहियाणं तु भावाणं,
सब्भावे उवस्सणं।
भावेणं सद्दहन्तस्स,
सम्मत्तं तं वियाहियं ।।

ज्ञान, दर्शन, चारिच्तरय, तप, वीर्य और उपयोग अर्थात अनुभव—ये सब जीव के लक्षण हैं।
शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप (धूप), वर्ण, रस, गंध और स्पर्श—ये सब पुदगल के लक्षण हैं।
जीव, अजीव, बंध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये नौ सत्यतत्व हैं।
जीवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व में सदगुरु के उपदेश से, अथवा स्वयं ही अपने भाव से श्रद्धान करना, सम्यच्क्तव कहा गया है।

चेतना का लक्षण है, उपयोग या अनुभव। अनुभव को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। अस्तित्व तो पदार्थ का भी है। राह पर पड़े हुए पत्थर का भी अस्तित्व है, एग्जिस्टेन्स है, लेकिन उस पत्थर को अपने अस्तित्व का कोई बोध नहीं है, कुछ पता नहीं है, कुछ पता नहीं कि 'मैं हूं'। उसे अनुभव नहीं है।

अस्तित्व के बोध का नाम 'अनुभव' है—और वही चैतन्य में और अजीव में, आत्मा में और पदार्थ में भेद है। अस्तित्व दोनों का है—पदार्थ का भी और आत्मा का भी, लेकिन आत्मा के साथ एक नये तत्व का उदभावन है। एक नया आयाम खुलता है कि आत्मा को यह पता भी है कि 'मैं हूं'।

होने में कोई फर्क नहीं है। पत्थर भी है, आत्मा भी है, पर आत्मा को यह भी पता है कि 'मैं हूं।' और यह बहुत बड़ी घटना है। इस घटना के इर्द-गिर्द ही जीवन की सारी साधना, जीवन की सारी यात्रा है। यह तो पता है कि 'मैं हूं', और जिस दिन यह भी पता चल जाता है कि 'मैं क्या हूं', उस दिन यात्रा पूरी हो जाती है।

पदार्थ है, उसको पता नहीं है कि वह है। आत्मा है, उसको यह भी है, पता है कि 'मैं हूं' लेकिन यह पता नही है कि 'मैं कौन हूं'। और परमात्मा उस अवस्था का नाम है, जहां तीसरी घटना भी घट जाती है, जहां यह भी पता है कि 'मैं कौन हूं'। तो अस्तित्व की तीन स्थितियां हुइच : एक कोरा अस्तित्व—बोधहीन; दूसरा भरा हुआ अस्तित्व—अनुभव से; और

तीसरा परिपूर्ण विकसित अस्तित्व—जहां यह भी अनुभव हो गया कि 'मैं कौन हूं, मैं क्या हूं'।

और ऐसा नहीं कि ये अवस्थाएं पत्थर की, आदमी की और परमात्मा की हैं, आप इन तीनों अवस्थाओं में भी बराबर रूपांतरित रहते हैं। किसी क्षण में आप पत्थर की तरह होते हैं, जहां आप होते हैं और आपको अपने होने का पता नहीं होता। किसी क्षण में आप आदमी की तरह होते हैं, जहां आपको अपने होने का भी बोध है। और किसी क्षण में आप परमात्मा को भी छू लेते हैं, जहां आपको यह भी पता होता है कि 'हम कौन हैं'।

तो ये तीन पदार्थ-अस्तित्व की ही अवस्थायें नहीं हैं—चेतना, इन तीनों में निरंतर डोलती रहती है। किसी-किसी क्षण में आप बिलकुल परमात्मा के करीब होते हैं। कुछ क्षणों में आप मनुष्य होते हैं। बहुत अधिक क्षणों में आप पत्थर ही होते हैं।

मैंने सुना है कि मुल्ला नसरुद्दीन अपने बाल बनवाने एक नाई की दूकान पर गया है। दाढ़ी पर साबुन लगा दी गई है, गले में कपड़ा बांध दिया गया है—और नाई बिलकुल तैयार ही है काम शुरू करने को कि एक लड़का भागा हुआ आया और उसने कहा—'शेख, तुम्हारे घर में आग लगी है।' नसरुद्दीन ने कपड़ा फेंका, भूल गया अपना कोट उठाना भी, चेहरे पर लगी हुई साबुन, और उस लड़के के पीछे भागा घबड़ाकर। लेकिन पचास कदम के बाद अचानक ठहर गया, और कहा कि 'मैं भी कैसा पागल हूं! क्योंकि पहले तो मेरा नाम शेख नहीं, मेरा नाम मुल्ला नसरुद्दीन है; और दूसरा, मेरा कोई मकान नहीं जिसमें आग लग जाये!'

ऐसे क्षण आपके जीवन में भी हैं। आपको भी न तो अपने नाम का पता है और न अपने घर का पता है। न तो आपको पता है कि आप कौन हैं और न आपको पता है कि आप कहां से आते हैं और कहां जाते हैं। न आप अपने मूल स्रोत से परिचित हैं और न अपने अंतिम पड़ाव से और नाम जो आप जानते हैं कि आपका है, वह बिलकुल काम चलाऊ है, दिया हुआ है। राम की जगह कृष्ण भी दिया जाता, तो भी चल जाता काम। कृष्ण की जगह मोहम्मद दिया जाता, तो भी चल जाता काम। नाम दिया हुआ है, नाम कोई अस्तित्व नहीं है। लेकिन इस झूठे नाम को हम मानकर जी लेते हैं कि मैं हूं। और एक घर बना लेते हैं, जो कि घर नहीं है। क्योंकि जो छूट जाये, उसे घर कहना व्यर्थ है। और जिसे बनाना पड़े, वह मिटेगा भी। उस घर की तलाश ही धर्म की खोज है, जो हमारा बनाया हुआ नहीं है और जो मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उस घर में प्रविष्ट न हो जायें—जिसे महावीर 'मोक्ष' कहते हैं; जिसे शंकर 'ब्रह्म' कहते हैं; जिसे जीसस ने 'किंगडम आफ गाड' कहा है—जब तक उस घर में हम प्रविष्ट न हो जायें तब तक जीवन एक बेचैनी और एक दुख की एक यात्रा रहेगी।

महावीर जीव का पहला लक्षण कहते हैं, अनुभव—यह बोध कि 'मैं हूं'। लेकिन यह पहला लक्षण है, यह यात्रा की शुरुआत है। यह भी अनुभव में आ जाये कि 'मैं कौन हूं?' तो यात्रा पूरी हो गई; वह यात्रा का अंत है।

'ज्ञान, दर्शन, चारिच्तरय, तप, वीर्य और उपयोग—ये सब जीव के लक्षण हैं।'

थोड़ा-थोड़ा इन लक्षणों के संबंध में समझ लें, क्योंकि आगे हम विस्तार से इनकी बात कर पायेंगे।

ज्ञान से महावीर का अर्थ है, जानने की क्षमता—सामग्री नहीं, क्षमता; इनफमच्शन नहीं, सूचनाओं का संग्रह नहीं, क्योंकि सूचनाओं का संग्रह तो यंत्र भी कर सकता है। आप के मस्तिष्क में जो-जो सूचनाएं इकट्ठी हैं, वे तो टेपरिकार्ड पर भी इकट्ठी की जा सकती हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं, आपका मस्तिष्क टेपरिकार्ड से कुछ भिन्न नहीं है! इसलिए आपके मस्तिष्क को अगर चोट पहुंचाई जाये, तो आपकी स्मृति खो जायेगी। आपके मस्तिष्क से कुछ स्मृतियां बाहर भी निकाली जा सकती हैं, जिनका आपको फिर कभी भी पता नहीं चलेगा। और आपके मस्तिष्क में ऐसी स्मृतियां भी डाली जा सकती हैं, जिनका आपको कभी कोई अनुभव नहीं हुआ।

नवीनतम खोजें कहती हैं कि मेमोरी ट्रांसप्लांट भी की जा सकती है। आइंस्टीन मरता है तो आइंस्टीन के साथ उसकी स्मृतियों का पूरा का पूरा संग्रह भी नष्ट हो जाता है। यह बड़ा भारी नुकसान है। अब विज्ञान कहता है कि दस-बीस वर्ष के भीतर हम इस जगह पहुंच जायेंगे—प्राथमिक प्रयोग सफल हुए हैं—जहां मरते हुए आइंस्टीन को तो मरने देंगे, लेकिन उसकी स्मृति को बचा लेंगे; उसके मस्तिष्क में जो उसकी स्मृतियों का तानाबाना है, उसे बचा लेंगे और एक नवजात बच्चे के ऊपर उसे ट्रांसप्लांट कर देंगे। एक नये बच्चे को उन स्मृतियों के साथ जोड़ देंगे। वह बच्चा स्मृतियों के साथ ही बड़ा

होगा। और जो उसने कभी नहीं जाना, वह भी उसे लगेगा कि मैं जानता हूं। अगर आइंस्टीन की पत्नी सामने आ जाये तो वह कहेगा, यह मेरी पत्नी है; जिसे उसने कभी देखा भी नहीं। क्योंकि अब स्मृति आइंस्टीन की काम करेगी।

छोटे प्रयोग इसमें सफल हो गये हैं, पशुओं पर प्रयोग सफल हो गये हैं। इसलिये आदमी पर प्रयोग बहुत दूर नहीं हैं।

यह जानकर आपको हैरानी होगी कि महावीर पहले व्यक्ति हैं मनुष्य जाति के इतिहास में जिन्होंने स्मृति को पदार्थ कहा, जिन्होंने स्मृति को चेतना नहीं कहा; जिन्होंने कहा, स्मृति भी सूच्म पदार्थ है। आपके मस्तिष्क को खास जगह अगर इलेच्क्टिरकली स्टिम्युलेट किया जाये, विद्युत से उत्तेजित किया जाये, तो खास स्मृतियां पैदा होनी शुरू हो जाती हैं। जैसे आपके मस्तिष्क में बचपन की स्मृतियां किसी कोने में पड़ी हैं, उनको विद्युत से जगाया जाये, तो आप तत्काल बचपन में वापस चले जायेंगे और सारी स्मृतियां सजीव हो उठेंगी। उत्तेजन बंद कर दिया जाये, स्मृति बन्द हो जायेगी। फिर से उत्तेजित किया जाये, फिर से वही स्मृति वापस लौटेगी, फिर से वही कथा वापस दुहरेगी। जैसे टेपरिकार्ड पर आप एक ही बात को कितनी ही बार सुन सकते हैं, हजार बार उसी जगह को उत्तेजित करने पर वही स्मृति फिर लौटने लगेगी।

मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है, इसलिए स्मृति भी शरीर की ही प्रक्रिया है—आणविक पदार्थ।

ज्ञान का अर्थ स्मृति नहीं है। ज्ञान का अर्थ, स्मृति को भी जानने वाला जो तत्व है भीतर, उससे है। इसे ठीक से समझ लें, अन्यथा भूल होनी आसान है। आप जो जानते हैं, उससे ज्ञान का संबंध नहीं है। अगर आप अपने जानने को भी जानने में समर्थ हो जायें, तो ज्ञान का संबंध शुरू होगा।

आपके मन में एक विचार चल रहा है। आप चाहें तो दूर खड़े होकर इस विचार को चलते हुए भी देख सकते हैं। अगर यह संभव न होता, तो ध्यान का कोई उपाय भी न था। ध्यान इसीलिए संभव है कि आप अपने विचार को भी देख सकते हैं। और जिसको आप देख रहे हैं, वह पराया हो गया, वह देखनेवाला आप हो गये।

तो महावीर का ज्ञान से अर्थ है—जानने की क्षमता; संग्रह नहीं जानने का, ज्ञान का संग्रह नहीं—ज्ञान की प्रक्रिया के पीछे साक्षी का भाव। वहीं चेतना का पता चलेगा। अन्यथा अगर स्मृति ही मनुष्य की चेतना हो, तो बहुत जल्दी मनुष्य को पैदा किया जा सकेगा। कोई कठिनाई नहीं है। स्मृति तो पैदा की जा सकती है। कम्प्यूटर हैं, उनकी स्मृति आदमी से ज्यादा प्रगाढ़ है। और आदमी से भूल भी हो जाये, कम्प्यूटर से भूल होने की भी कोई संभावना नहीं है।

आज नहीं कल, हम मनुष्य से भी बेहतर मस्तिष्क विकसित कर लेंगे। कर ही लिया है। लेकिन, फिर भी एक कमी रह जायेगी, इस बात की कोई संभावना नहीं है कि कम्प्यूटर ध्यान कर सके। कम्प्यूटर विचार कर सकता है—और आप से अच्छा विचार कर सकता है, नवीनतम कम्प्यूटर उस जगह पहुंच गये हैं। मैं एक आंकड़ा पढ़ रहा था कि अगर दुनिया के सारे बड़े गणितज्ञ—समझ लें दस हजार गणितज्ञ—एक सवाल को हल करने में लगें, तो जिस सवाल को दस हजार गणितज्ञ दस हजार वर्ष में हल कर पायेंगे, उसे कम्प्यूटर एक सेकेंड में हल कर दे सकता है।

स्मृति की क्षमता तो बहुत विकसित हो गई है यंत्र के पास। आदमी की स्मृति का यंत्र तो आउट आफ डेट है। उसका कोई बहुत मूल्य नहीं रह गया। लेकिन, इतना सब करने के बाद भी, दस हजार आइंस्टीन का काम, दस हजार वर्ष में जो हो पाता, कम्प्यूटर वह एक सेकेंड में कर देगा, लेकिन कम्प्यूटर एक महावीर का काम जरा भी नहीं कर सकता। क्योंकि महावीर का काम स्मृति से संबंधित नहीं, स्मृति के पीछे जो साक्षी है, वह जो विटनेस है, जो स्मृति को भी देखता है, उससे संबंधित है। कम्प्यूटर साक्षी नहीं हो सकता। वह अपने को बांट नहीं सकता, कि खुद खड़े होकर देख सके भीतर कि क्या चल रहा है। हम बांट सकते हैं। वह जो बांटने की कला है, उससे ही ज्ञान का जन्म होता है।

तो महावीर कहते हैं, आत्मा का लक्षण है—ज्ञान, दर्शन। जो पहली झलक है स्वयं की, उसका नाम ज्ञान है। और जब हम उस झलक को सारे जगत और अस्तित्व के साथ संयुक्त करके देखने में समर्थ हो जाते हैं, गेस्टाल्ट पैदा हो जाता है, अपनी झलक के साथ जब सारे जगत की झलक का भी हमें बोध हो जाता है।

ध्यान रहे, जो भी मैं अपने संबंध में जानता हूं, उससे ज्यादा मैं किसी के संबंध में नहीं जान सकता। मेरा ज्ञान ही, अपने संबंध में फैलकर जगत के संबंध में ज्ञान बनता है। अगर आप कहते हैं कि कहीं कोई परमात्मा नहीं है, तो उसका अर्थ यही हुआ कि आपको अपनी आत्मा का कोई अनुभव नहीं है। अगर आपको अपनी आत्मा का अनुभव हो, तो पहला ज्ञान

तो यही होगा कि आत्मा है। दर्शन यह होगा कि सभी तरफ आत्मा है। जिस क्षण अपने भीतर जाने हुए तत्व को आप फैलाकर कास्मिक, जागतिक कर लेंगे, उस क्षण दर्शन की स्थिति निर्मित हो जायेगी।

किसी पशु के पास दर्शन नहीं है, क्योंकि ज्ञान भी नहीं है। पशु अपने से पीछे खड़ा नहीं हो सकता। स्मृति तो पशु के पास है। आप का कुत्ता आपको पहचानता है। आपकी गाय आपको पहचानती है। स्मृति तो पशु के पास है, वृक्षों के पास भी स्मृति है!

अभी वैज्ञानिक प्रयोग करते हैं कि अगर आप वृक्ष के पास रोज प्रीतिपूर्ण ढंग से जायें, तो वृक्ष का रिस्पान्स, उसका उत्तर भिन्न होता है। अगर आप क्रोध से जायें, घृणा से जायें, तो भिन्न होता है। जब आप प्रेम से वृक्ष के पास खड़े होते हैं, तो वृक्ष खुलता है। अब इसके वैज्ञानिक प्रमाण उपलब्ध हैं कि जब प्रेम से कोई वृक्ष को थपथपाता है, तो वृक्ष भीतर संवेदित होता है। वृक्ष भी अपने मित्र को और अपने शत्रु को पहचानता है। शत्रु करीब आता है तो वृक्ष सिकुड़ता है, जैसे आप सिकुड़ जायेंगे। कोई छुरा लेकर आपके पास आये तो आप भीतर सिकुड़ जायेंगे बचने की आकांक्षा में। वृक्ष भी सिकुड़ता है। और जब कोई मित्र करीब आता है तो वृक्ष भी फैलता है।

अब जाना गया है कि वृक्ष के पास भी स्मृति है। लेकिन, ध्यान सिर्फ मनुष्य के पास है। और इसलिए जब तक कोई ध्यान को उपलब्ध न हो जाये, तब तक मनुष्य होने की पूरी गरिमा को उपलब्ध नहीं होता। सिर्फ मनुष्य के शरीर में जन्म ले लेने से कोई मनुष्य नहीं हो जाता। सिर्फ संभावना है कि मनुष्य हो सकता है। द्वार खुला है, लेकिन यात्रा करनी पड़ेगी। मनुष्य कोई जन्म के साथ पैदा नहीं होता। मनुष्यता एक उपलब्धि है, एक अर्जन है। और इस अर्जन की जो दिशा है, वह ज्ञान और दर्शन है।

महावीर के इस सूत्र को ठीक से समझें।

ज्ञान का अर्थ है, पहली बार उसकी झलक पाना जो सबसे गहराई में मेरे भीतर साक्षी की तरह छिपा है। फिर उस झलक को जागतिक संबंध में जोड़ना और जो भीतर देखा है उसे बाहर देख लेना दर्शन है। और फिर जो भीतर देखा है, उसे जीवन में उतर जाने देना, चारिच्तरय है। वह जो भीतर देखा है और बाहर पहचाना है, वह जीवन भी बन जाये, सिर्फ बौद्धिक झलक न रहे। क्योंकि आप कह सकते हैं कि मैं आत्मा हूं, ऐसी मुझे झलक मिल गई है, लेकिन आपका आचरण कहेगा कि आप शरीर हैं, आपका व्यवहार कहेगा कि आप शरीर हैं; आपका ढंग, उठना, बैठना कहेगा कि आप शरीर हैं; आपकी आंखें, आपकी नाक, आपकी इच्निदरयां खबर देंगी कि आप शरीर हैं। तो आपकी सिर्फ बौद्धिक झलक से कुछ भी न होगा। यह आपका आचरण हो जाये— हो ही जायेगा, अगर आपका ज्ञान वास्तविक हो, और ज्ञान दर्शन बने, तो आचरण अनिवार्य है। उसे महावीर 'चारिच्तरय' कहते हैं।

किसी पशु के पास चरित्र नहीं है—हो नहीं सकता, क्योंकि ज्ञान के बिना दर्शन नहीं, दर्शन के बिना चरित्र नहीं।

मनुष्य की क्षमता है कि वह जैसा देखे, वैसा ही जी भी सके। और ध्यान रहे, इस जीने में चेष्टा नहीं करनी पड़ती। यह जरा जटिल है। जैन साधुओं ने पूरी स्थिति को उल्टा कर दिया है, पहले चरित्र। महावीर पहले चरित्र का उपयोग नहीं करते, महावीर कहते हैं—ज्ञान, दर्शन, चरित्र। जैन साधु से पूछें, वह कहता है चरित्र पहले। जब चरित्र पहले होगा—ज्ञान के पहले होगा, दर्शन के पहले होगा, तो झूठा और पाखण्डी होगा। क्योंकि जो मैंने जाना नहीं है, उसे मैं जी कैसे सकता हूं? जो मैंने देखा नहीं है, वह वस्तुतः मेरा आचरण कैसे बन सकता है? थोप सकता हूं, जबरदस्ती कर सकता हूं अपने साथ।

आदमी हिंसा करने में कुशल है—दूसरों के साथ भी, अपने साथ भी। आप चाहें तो आप अहिंसक हो सकते हैं, मगर वह अहिंसा झूठी होगी और भीतर हिंसा उबलती होगी। आप चाहें तो आप ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो सकते हैं, वह थोथा होगा, भीतर कामवासना भरी होगी।

लेकिन महावीर जिस ढंग से चल रहे हैं, वह बिलकुल वैज्ञानिक है बात। पहली झलक ज्ञान—अपने होने की—फिर दर्शन। अपने होने और दूसरों के होने के बीच का पूरा तारतम्य खयाल में आ जाये, क्योंकि मैं तभी अहिंसक हो सकता हूं, अगर मुझे पता चले कि मैं तो आत्मा हूं और पता चले कि आप आत्मा नहीं हैं, तो अहिंसक होने की कोई जरूरत नहीं

है। जिस दिन मुझे लगता है कि जैसा मेरे भीतर है, वैसा ही आपके भीतर भी है, जिस दिन मेरा भीतर और आपका भीतर एक होने लगते हैं, जिस दिन मैं आपमें अपने को ही देख पाता हूं और मुझे लगता है कि आप को पहुंचाई गई चोट खुद को ही पहुंचाई गई चोट होगी, उस दिन अहिंसा का जन्म हो सकता है।

महावीर चींटी पर भी पैर रखने में हिचकिचाते हैं, संभलकर चलते हैं, इसलिए नहीं कि चींटी को दुख हो जायेगा, चींटी का दुख महावीर का अपना ही दुख होगा। कोई चींटी की फिक्र नहीं कर सकता इस जगत में, सब अपनी ही फिक्र करते हैं। लेकिन जिस दिन अपना इतना फैलाव हो जाता है कि चींटी भी उसमें समाहित हो जाती है—इसे 'दर्शन' कहेंगे। महावीर को लगा कि जो मैं हूं, वही और सबके भीतर है। यह प्रतीति जब प्रगाढ़ हो जाती है, तब आचरण में उतरनी शुरू हो जाती है। उतरेगी ही।

तो ध्यान रहे, जब आचरण को जबरदस्ती लाना पड़ता है, तब आप व्यर्थ की चेष्टा में लगे हैं। तब ज्यादा से ज्यादा हिपोक्रेट, एक पाखंडी आदमी पैदा हो जायेगा जो बाहर कुछ होगा भीतर कुछ होगा—ठीक उल्टा होगा, और बड़ी बेचैनी में होगा; क्योंकि उसके जीवन की व्यवस्था सहज नहीं हो सकती; उसके भीतर से कुछ बह नहीं रहा है; अहिंसा भीतर से नहीं आ रही है, ऊपर से थोपी जा रही है। तो एक बड़े मजे की घटना घटेगी, एक तरफ अहिंसा थोप लेगा तो हिंसा दूसरी तरफ से शुरू हो जायेगी। क्योंकि हिंसा भीतर है तो उसे बहाव चाहिये। किसी झरने को हम रोक दें पत्थर से, तो झरना दूसरी तरफ से फूटना शुरू हो जायेगा। बहुत पत्थर लगा देंगे तो झरना रिस-रिस कर बूंद-बूंद बहुत जगह से फूटने लगेगा। झरना नहीं रह जायेगा, बूंद-बूंद झरने लगेगा।

जो लोग आचरण को ऊपर से थोप लेते हैं, उनका दुराचरण बूंद-बूंद होकर झरने लगता है। और ऐसे ढंग से झरता है कि वे खुद भी नहीं पहचान पाते। मवाद हो जाती है भीतर, सब सड़ जाता है, सिर्फ ऊपर शुभ्र आवरण होता है।

महावीर चारिच्तरय उसे कहते हैं, जो ज्ञान और दर्शन के बाद घटता है। उसके पहले घट नहीं सकता। मनुष्य को बदलना हो तो वह क्या करता है, उसे बदलने से शुरू नहीं किया जा सकता। वह क्या है, उसकी ही बदलाहट से ज्ञान बदलता है तो कर्म अनिवार्यरूपेण बदल जाता है। वह उसकी छाया है।

तो महावीर कहते हैं—'ज्ञान, दर्शन, चारिच्तरय, तप, वीर्य और अनुभव—ये जीव के लक्षण हैं।'

'तप' भी महावीर का समझने जैसा शब्द है। हम आमतौर से तप का अर्थ समझते हैं—अपने को तपाना; सताना। इससे बड़ी कोई भ्रान्ति नहीं हो सकती, भ्रान्ति पुरानी है, लेकिन परम्परागत है। और जैन साधु निरंतर अपने को सताने और तपाने में गौरव अनुभव करते हैं। लेकिन तप एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है—अल्केमिकल।

मनुष्य की जीवन-ऊर्जा एक तरह की अग्नि है। और अगर हम ठीक से समझें तो जिन लोगों ने भी जीवन को समझने की कोशिश की है, वे मानते हैं कि जीवन एक प्रगाढ़ अग्नि का नाम है। हेराक्लीतु ने यूनान में यही बात कही—करीब-करीब महावीर के समय में—कि अग्नि जीवन का मौलिक तत्व है। और अब विज्ञान कहता है कि 'विद्युत' जीवन का मौलिक तत्व है। लेकिन 'विद्युत' अग्नि का ही एक रूप है, या 'अग्नि' विद्युत का एक रूप है।

आपके शरीर में प्रतिपल अग्नि पैदा हो रही है। आप एक दीया हैं। जैसे दीया जलता है, वैसे ही आपका जीवन जलता है। और ठीक वैज्ञानिक हिसाब से भी जो कुछ दीये में घटता है, वही आप में घटता है।

दीया जल रहा है, वह क्या कर रहा है? आसपास जो आक्सीजन है, प्राणवायु है, उसको अवशोषित कर रहा है। वह प्राणवायु ही दीये में जल रही है। इसलिए कभी ऐसा हो सकता है कि तूफान आ रहा हो और आप सोचें कि दीया बुझ न जाए, तो उसे बर्तन से ढंक दें। हो सकता था तूफान दीए को न बुझा पाता, लेकिन आपका बर्तन दीए को बुझा देगा। क्योंकि बर्तन के भीतर की आक्सीजन थोड़ी ही देर में समाप्त हो जायेगी। और जैसे ही आक्सीजन समाप्त हुई कि दीया बुझ जायेगा।

आक्सीजन के बिना अग्नि नहीं हो सकती। आप भी यही कर रहे हैं। श्वास लेकर, जीवन के दीये को आक्सीजन दे रहे हैं। आपकी श्वास बंद हुई कि आप भी बुझ जायेंगे। तो वैज्ञानिक तो कहते हैं कि जीवन आक्सीडाइजेशन है। विज्ञान की भाषा में ठीक कहते हैं। सारा जीवन आक्सीजन पर निर्भर है। आप आक्सीजन को जला रहे हैं। और जब जल जाती है

आक्सीजन, तो कार्बनडाईआक्साईड को बाहर फेंक रहे हैं। एक क्षण को भी हवा से आक्सीजन तिरोहित हो जाये, जीवन पृथ्वी से तिरोहित हो जायेगा।

आक्सीजन जब भीतर जलती है, तो जीवन की ज्योति पैदा होती है।

यह जो जीवन की ज्योति है, इसके दो उपयोग हो सकते हैं। एक उपयोग है, काम वासना में इस जीवन की ज्योति को बाहर निष्कासित करना।

और ध्यान रहे। जीवन जब भर जाता है भीतर, अगर आप उसका कोई भी उपयोग न करें तो बोझिल हो जायेंगे, परेशान हो जायेंगे। प्रवाह रुक जाये तो बेचैनी हो जायेगी।

कामवासना का इसीलिए इतना आकर्षण है। क्योंकि कामवासना जीवन की बढ़ी हुई शक्ति को फेंकने का उपाय है। आप फिर खाली हो जाते हैं, फिर श्वास लेकर जीवन को भरने लगते हैं। फिर जीवन इकट्ठा हो जाता है। फिर आप खाली हो जाते हैं।

'तप' ठीक इसी से संबंधित दूसरी प्रक्रिया है। वह जो जीवन की अधिक ऊर्जा भीतर इकट्ठी होती है, उस ऊर्जा को काम वासना में न बहने देने का नाम 'तप' है। उस गम को, उस अग्नि को बाहर न जाने देना और भीतर की तरफ ऊर्ध्वगामी करने का नाम तप है। वह जो जीवन की ज्योति है, वह भीतर की तरफ बहने लगे—बाहर की तरफ नहीं, दूसरे की तरफ नहीं।

कामवासना का अर्थ है—दूसरे की तरफ, साधना का अर्थ है—अपनी ही तरफ। अंतर्यात्रा पर जीवन ऊर्जा बहने लगे, वह जो अग्नि जीवन की पैदा हो रही है, वह बाहर न जाये, बल्कि भीतर उसकी यात्रा शुरू हो जाये। अग्नि की अंतर्यात्रा का नाम तप है। उसके वैज्ञानिक उपाय हैं कि वह कैसे भीतर बहना शुरू हो सकती है।

ध्यान रहे, जो चीज भी बाहर बह सकती है, वह भीतर भी बह सकती है। जो चीज भी बह सकती है, उसकी दिशा भी बदली जा सकती है। अगर बहाव है पूरब की तरफ, तो पश्चिम की तरफ भी हो सकता है। प्रक्रिया का पता होना चाहिये कि वह पश्चिम की तरफ कैसे हो जाये। हमारी सारी जीवनऊर्जा बाहर बह रही है।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन मरने के करीब था। उसकी पत्नी ने कहा कि 'नसरुद्दीन, अगर तुम पहले मर जाओ तो मरने के बाद संपर्क साधने की कोशिश करना। मैं जानना चाहती हूं कि ये हिन्दू जो कहते हैं कि आत्मा फिर से जन्म लेती है, यह सच है या नहीं? अगर मैं मरूं तुमसे पहले तो मैं कोशिश करूंगी तुमसे संपर्क साधने की।'

नसरुद्दीन मरा पहले। सालभर तक उसकी विधवा पत्नी राह देखती रही। कुछ हुआ नहीं। कोई खबर न मिली। फिर धीरे-धीरे बात ही भूल गई। एक दिन अचानक सांझ को चाय बनाती थी चौके में और नसरुद्दीन की आवाज आई—फातिमा! घबड़ा गई। आवाज वैसी ही थी जैसे नसरुद्दीन रोज सांझ को जब जीवित था और बाजार से, दुकान से वापस लौटता था और—नसरुद्दीन ने कहा, 'घबड़ा मत, वायदे के अनुसार तुझे खबर करने आया हूं। मेरा जन्म हो गया है। और दूसरे खेत में देख, एक खूबसूरत गाय खड़ी है। सफेद काला रंग है।'

पत्नी को थोड़ी हैरानी हुई कि 'गाय की चर्चा उठाने की क्या जरूरत है?' पर उसने बात टाली। उसने कहा, कुछ और अपने संबंध में कहो—प्रसन्न तो हो, आनंदित तो हो?' नसरुद्दीन ने कहा, 'बहुत आनंदित हूं, थोड़ा मुझे गाय के संबंध में और बताने दे। बड़ी प्यारी और आकर्षक गाय है, उसकी चमड़ी बड़ी चिकनी और कोमल है।' पत्नी ने कहा कि 'छोड़ो भी गाय की बकवास, गाय से क्या लेना-देना है। मैं तुम्हारे संबंध में जानने को आतुर हूं, और तुम एक मूर्ख गाय के संबंध में कहे चले जा रहे हो।' नसरुद्दीन ने कहा, 'क्षमा कर, इट सीम्स आइ फरगाट टु टैल यू दैट नाउ आइ एम ए बुल इन पंजाब—मैं भूल गया बताना कि मैं एक बैल हो गया हूं, सांड हो गया हूं पंजाब में।' सांड की उत्सुकता गाय में ही हो सकती है।

जीवन कामवासना है, जैसा जीवन हम जानते हैं। पुरुष उत्सुक है स्त्री में, स्त्री उत्सुक है पुरुष में। तप का अर्थ है—यह उत्सुकता अपने में आ जाये, दूसरे से हट जाये। जब तक यह उत्सुकता दूसरे में है—महावीर कहते हैं—संसार है। जिस दिन यह सारी उत्सुकता अपने में लौटकर वर्तुल बन जाती है, तप शुरू हुआ। तप कहना उचित है, क्योंकि अति कठिन है

यह बात—दूसरे से उत्सुकता अपने में ले आना। होनी तो नहीं चाहिये, कठिन होनी तो नहीं चाहिये क्योंकि दूसरे में भी हम उत्सुक अपने लिए ही होते हैं। गहरे में तो उत्सुकता अपने ही लिए है। दूसरे के द्वारा घूमकर, अपने में लौटते हैं।

उपनिषद कहते हैं कोई पति, पत्नी को प्रेम नहीं करता, पत्नी के द्वारा अपने को ही प्रेम करता है। कोई मां बेटे को प्रेम नहीं करती, बेटे के द्वारा अपने को ही प्रेम करती है। प्रेम तो हम अपने को ही करते हैं, लेकिन हमारा प्रेम वाया—किसी से होकर आता है। जब हमारा प्रेम किसी से होकर आता है, तो उसका नाम अब्रह्मचर्य है। और जब हमारा प्रेम किसी से होकर नहीं आता है, सीधा अपने में ठहर जाता है—तपश्चर्या है, ब्रह्मचर्य है।

तप शब्द चुनना जरूरी था, क्योंकि जब कोई व्यक्ति अपनी ऊर्जा को बाहर जाने से रोकता है, तो उत्तप्त होता है; सारा जीवन एक नई अग्नि से भर जाता है। वह अग्नि बड़े अदभुत काम करती है, जीवन की पूरी कीमिया को बदल देती है। जीवन का एक-एक कोष्ठ उस अग्नि के प्रवाह से बदल जाता है। अलकेमिस्ट कहते हैं कि लोहा सोना हो जाता है, अगर अग्नि पास हो। तप उसी अग्नि का नाम है, जिसमें आपकी साधारण धातु लोहा स्वर्ण बन जायेगी। जो कचरा है वह जल जायेगा।

उपनिषदों ने नचिकेत-अग्नि की बात कही है। वह इसी अग्नि की चर्चा है। कठोपनिषद में नचिकेता पूछता है यम से कि किस भांति उस परम तत्व को पाया जा सकता है, जो मृत्यु के पार है। तो नचिकेता को यम ने कहा है कि तीन तरह की अग्नियों से गुजरना जरूरी है, और चूंकि तू पहला पूछनेवाला है, इसलिए वे अग्नियां तेरे ही नाम से पहचानी जायेंगी; नचिकेत-अग्नि कही जायेंगी। वे तीन अग्नियां—महावीर उन्हीं तीन अग्नियों की प्रक्रिया को तप कहते हैं।

दूसरे से अपने पर लौटना पहली अग्नि है। दूसरे से अपने पर लौटना, दूसरे को खोना, छोड़ना—पहली अग्नि है। दूसरी अग्नि में स्वयं को भी छोड़ना है। पहली अग्नि में दूसरा जल जायेगा, सिर्फ मैं बचूंगा। लेकिन मैं का कोई उपयोग नहीं है, जब तू खो जाये। वह तू का ही संदर्भ है, उसका ही अटका हुआ हिस्सा है। दूसरी अग्नि में मुझे भी जल जाना है; मैं भी न बचूं, शून्य रह जाए। और तीसरी अग्नि में शून्य का भाव भी न रह जाये; इतनी शून्यता हो जाये कि यह भी भाव न रहे कि अब मैं शून्य हो गया, कि अब मैं निरअहंकारी हो गया।

इन तीन अग्नियों का नाम तप है। और इस तप से जो गुजरता है वह उस परम अवस्था को उपलब्ध हो जाता है, जिसे महावीर ने 'मुक्ति' कहा है; परम स्वतंत्रता, 'मोक्ष' कहा है।

'वीर्य और उपयोग—ये सब जीव के लक्षण हैं।'

वीर्य का अर्थ है—पुरुषार्थ, और वीर्य का अर्थ 'काम-ऊर्जा' भी है। काम-ऊर्जा के संबंध में एक बात खयाल में ले लें कि काम-ऊर्जा के दो हिस्से हैं। एक तो शारीरिक हिस्सा है, जिसे हम वीर्य कहते हैं। महावीर उसे वीर्य नहीं कह रहे। एक उस शारीरिक हिस्से वीर्य के साथ, सीमेन के साथ जुड़ा हुआ आंतरिक हिस्सा है, जैसे शरीर और आत्मा है, वैसे ही प्रत्येक वीर्यकण भी शरीर और आत्मा है। इसीलिए तो वीर्यकण जाकर नये बच्चे का जन्म हो जाता है। प्रत्येक वीर्यकण दो हिस्से लिए हुए हैं। एक तो उसकी खोल है, जो शरीर का हिस्सा है। और दूसरा उसके भीतर छिपा हुआ जीव है, वह उसकी आत्मा है।

इस भीतर छिपे हुए जीव के दो उपयोग हो सकते हैं : एक उपयोग है नये शरीर को जन्म देना, और एक उपयोग है कि यह वीर्य की खोल तो पड़ी रह जाये और भीतर की जीवन-धारा है, वह ऊर्ध्वमुखी हो जाए स्वयं के भीतर। तो स्वयं का नया जन्म हो जाता है, स्वयं का नया जीवन हो जाता है।

मनुष्य दो तरह के जन्म दे सकता है : एक तो बच्चों को जन्म दे सकता है, जो उसके शरीर की ही यात्रा है; और एक अपने को जन्म दे सकता है, जो उसकी आत्मा की यात्रा है। अपने को जन्म देना हो तो वीर्य में छिपी हुई ऊर्जा जो उसको मुक्त करना है, देह से और ऊर्ध्वमुखी करना है।

महावीर ने, उसके बड़े अदभुत सूत्र खोजे हैं, कैसे वह वीर्य-ऊर्जा मुक्त हो सकती है; खोल पड़ी रह जायेगी शरीर में, उसके भीतर छिपी हुई शक्ति अन्तर्मुखी हो जायेगी। इसलिए जोर इस बात पर नहीं है कि कोई वीर्य का संग्रह करे, जोर इस बात पर है कि वीर्य से शक्ति को मुक्त करे।

महावीर उसमें सफल हो पाये, इसलिए हमने उन्हें 'महावीर' कहा। उनका नाम इसी कारण 'महावीर' पड़ा। नाम तो वर्धमान था उनका, लेकिन जब वे वीर्य की ऊर्जा को मुक्त करने में सफल हो गये, तो यह इतने बड़े संघर्ष और इतनी बड़ी विजय की बात थी कि हमने उन्हें 'महावीर' कहा। वर्धमान नाम को तो लोग धीरे-धीरे भूल ही गये, महावीर ही नाम रह गया।

महावीर ने कहा है कि मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा विजय का क्षण उस समय होता है, जब वह अपने जीवन को ही अपने नये जन्म का आधार बना लेता है; अपने को ही पुनज वित करने के लिए अपने जीवन की प्रक्रिया को मोड़ दे देता है और अपनी जीवन शक्ति का मालिक हो जाता है।

उसे महावीर 'पुरुषार्थ' कहते हैं। और अनुभव यह जीव के लक्षण हैं।

'शब्द, अंधकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श—ये पुदगल के लक्षण हैं।'

महावीर अति वैज्ञानिक हैं अपने दृष्टिकोण में। उनका दृष्टिकोण दार्शनिक का नहीं, वैज्ञानिक का है। इसलिए शंकर से वे राजी नहीं होंगे कि जगत माया है, कि जगत असत्य है। इसलिए वे उन लोगों से भी राजी नहीं होंगे जो कहते हैं एक ही ब्रह्म है और सब स्वप्न है। क्योंकि महावीर कहते हैं कि तुम्हारा सिद्धांत सवाल नहीं है; जीवन को परखो, सिद्धांत को जीवन पर थोपो मत। जीवन ही निर्णायक है, तुम्हारा सिद्धांत निर्णायक नहीं है। तो महावीर कहते हैं कि जीवन को देखकर तो साफ पता चलता है कि जीवन दो हिस्सों में बंटा है : एक चैतन्य और एक अचैतन्य, एक आत्मा और एक पदार्थ। तुम्हारे सिद्धांतों का सवाल नहीं है।

महावीर सिद्धांतवादी नहीं हैं, ठीक प्रयोगवादी हैं। वे कहते हैं, जीवन को देखो, तर्क का सवाल नहीं है। और तर्क से भी आदमी पहुंचता कहां है?

शंकर बड़ी कोशिश करते हैं कि जगत असत्य है, लेकिन कुछ असत्य हो नहीं पाता। शंकर से भी पूछा जा सकता है कि अगर जगत असत्य है तो इतनी चेष्टा भी क्या करनी उसको असत्य सिद्ध करने की? जो है ही नहीं उसकी चर्चा भी क्यों चलानी? इतना तो शंकर को भी मानना पड़ेगा कि है जरूर, भले ही असत्य हो। पदार्थ की सत्ता है, उसे इनकार नहीं किया जा सकता। और महावीर का एक और दृष्टिकोण समझ लेने जैसा है।

महावीर कहते हैं दुनिया में दो तरह के लोग हैं। एक, जिनको हम ब्रह्मवादी कहते हैं, जो कहते हैं—ब्रह्म है, पदार्थ नहीं है। दूसरे, जो बिलकुल इनका ही शीर्षासन करता हुआ रूप हैं, वे कहते हैं—ब्रह्म नहीं है, पदार्थ है। पर दोनों ही मोनिस्ट हैं, दोनों ही एकवादी हैं। एक तरफ मार्क्स, दिदरो, एपीक्यूरस, चार्वाक जैसे लोग हैं—जो कहते हैं कि सिर्फ पदार्थ है, ब्रह्म नहीं है; ब्रह्म मनुष्य की कल्पना है। ठीक इनके विपरीत खड़े हुए शंकर और अद्वैतवादी हैं, बर्कले और-और लोग हैं—जो कहते हैं कि पदार्थ असत्य है, ब्रह्म सत्य है। लेकिन दोनों में एक बात की सहमति है कि एक ही सत्य हो सकता है। और महावीर कहते हैं कि दोनों ही यथार्थ से दूर हैं, दोनों अपनी मान्यता को थोपने की कोशिश में लगे हैं। और दोनों सहमत हैं, दोनों में भेद ज्यादा नहीं है। भेद इतना ही है कि उस एक तत्व को शंकर कहते हैं 'ब्रह्म' और मार्क्स कहता है 'पदार्थ'—'मैटर'। और कोई भेद नहीं है। लेकिन पदार्थ एक ही होना चाहिए।

महावीर कहते हैं, मेरा कोई सिद्धांत नहीं है थोपने को। मैं जीवन को देखता हूं तो पाता हूं कि वहां दो हैं : वहां 'पदार्थ' है और 'चैतन्य' है। शरीर में भी झांकता हूं तो पाता हूं कि दो हैं : पदार्थ है और चैतन्य है। और दोनों में कोई भी एकता नहीं है; और दोनों में कोई समता नहीं है; और दोनों में कोई तालमेल नहीं है। दोनों बिलकुल विपरीत हैं, क्योंकि पदार्थ का लक्षण है, 'अचेतना'; और जीव का लक्षण है, 'चेतना'। ये चैतन्य के भेद हैं—जो महावीर कहते हैं, इतने स्पष्ट हैं कि इसे झुठलाने की सारी चेष्टा निरर्थक है। इसलिए महावीर दोनों को स्वीकार करते हैं।

पर महावीर पदार्थ को जो नाम देते हैं, वह बड़ा अदभुत है, वैसा नाम दुनिया की किसी दूसरी भाषा में नहीं है। और दुनिया के किसी भी तत्वचिंतक ने पदार्थ को पुदगल नहीं कहा है—पदार्थ कहा है, मैटर कहा है, और हजार नाम दिये हैं। लेकिन पुदगल अनूठा है, इसका अनुवाद नहीं हो सकता किसी भी भाषा में।

पदार्थ का अर्थ है—जो है। मैटर का भी अर्थ है—मैटीरियल—जो है, जिसका अस्तित्व है। पुदगल बड़ा अनूठा शब्द है। पुदगल का अर्थ है—जो है, नहीं होने की क्षमता रखता है; और नहीं होकर भी नहीं, नहीं होता। पुदगल का अर्थ

है—प्रवाह। महावीर कहते हैं—पदार्थ कोई स्थिति नहीं है, बल्कि एक प्रवाह है।

पुदगल में जो शब्द है 'गल', वह महत्वपूर्ण है—जो गल रहा है। आप देखते हैं पत्थर को, पत्थर लग रहा है—है, लेकिन महावीर कहते हैं— गल रहा है। क्योंकि यह भी कल मिटकर रेत हो जायेगा। गलन चल रहा है, परिवर्तन चल रहा है। है नहीं पत्थर, पत्थर भी हो रहा है। नदी की तरह बह रहा है। पहाड़ भी हो रहे हैं।

जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। पुदगल गत्यात्मक शब्द है। पुदगल का अर्थ है—मैटर इन प्रोसेस, गतिमान पदार्थ। महावीर कहते हैं, कोई भी चीज ठहरी हुई नहीं है, बह रही हैं चीजें। पदार्थ न तो कभी पूरी तरह मिटता है, और न पूरी तरह कभी होता है। सिर्फ बीच में है, प्रवाह में है।

आप देखें अपने शरीर को : बच्चा था, जवान हो गया, बूढ़ा हो गया। एक दफा आप कहते हैं—बच्चा है शरीर, एक दफा कहते हैं—जवान है, एक दफा कहते हैं—बूढ़ा है, लेकिन बहुत गौर से देखें, शरीर कभी भी 'है' की स्थिति में नहीं है—सदा हो रहा है। जब बच्चा है, तब भी 'है' नहीं, तब वह जवान हो रहा है। जब जवान है, तब भी 'है' नहीं, तब वह बूढ़ा हो रहा है। शरीर हो रहा है, एक नदी की तरह बह रहा है।

पुदगल का अर्थ है, प्रवाह। पदार्थ एक प्रवाह है। न तो कभी पूरी तरह होता है कि आप कह सकें, 'है' और न पूरी तरह कभी मिटता है कि कह सकें, 'नहीं है', दोनों के बीच में सधा है—है भी, नहीं भी है। बड़ी गहरी दृष्टि है, क्योंकि विज्ञान राजी है अब महावीर से। क्योंकि विज्ञान कहता है, पदार्थ भी जहां हमें ठहरा हुआ दिखाई पड़ता है, वहां भी ठहरा नहीं है। आप जिस कुस पर बैठे हैं, वह भी गतिमान है, उसके भी इलेच्कटरान्स घूम रहे हैं। बड़ी तेजी से घूम रहे हैं। इतनी तेजी से घूम रहे हैं कि आप गिर नहीं पाते हैं, संभले हुए हैं। जैसे बिजली का पंखा अगर बहुत तेजी से घूमे, तो आपको उसकी तीन पंखुड़ियां दिखाई नहीं पड़तीं। पंखा इतनी तेजी से घूम रहा है कि बीच की खाली जगह दिखाई नहीं पड़ती। इसके पहले कि खाली जगह दिखाई पड़े, पंखुड़ी आ जाती है और आपको पूरा एक गोला, घूमता हुआ वर्तुल दिखाई पड़ता है।

अगर बिजली का पंखा उतनी गति से घुमाया जा सके, जितनी गति से आपकी कुस के इलेच्कटरान्स घूम रहे हैं, तो आप बिजली के पंखे पर बड़े मजे से बैठ सकते हैं—जैसे कुस पर बैठे हैं। आपको पता भी नहीं चलेगा कि नीचे कोई चीज घूम रही है। क्योंकि गति इतनी तेज होगी कि आपको पता चलने के पहले दूसरी पंखुड़ी आपके नीचे आ जायेगी। बीच के खड्डे में आप गिर न पायेंगे। क्योंकि गिरने में जितना समय लगता है, उससे कम समय पंखुड़ी के आने में लगेगा। आप संभले रहेंगे।

अब विज्ञान कहता है कि हर चीज घूम रही है, हर चीज गतिमान है। वह जो पत्थर का टुकड़ा है, वह भी ठहरा हुआ नहीं है, वह भी बह रहा है। अपने भीतर ही बह रहा है। महावीर का पुदगल शब्द बड़ा सोचने जैसा है। आज से पच्चीस सौ साल पहले महावीर का पुदगल कहना, कि पदार्थ गतिमान है, गत्यात्मक है; जगत में कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। बहुत बाद में एडिंग्टन ने कहा, अभी तीस साल पहले कहा कि मनुष्य की भाषा में एक शब्द गलत है, और वह है—रेस्ट : कोई चीज ठहरी हुई नहीं है; सब चीजें चल रही हैं। महावीर ने पच्चीस सौ साल पहले, पदार्थ के लिए जो शब्द दिया, वह है—पुदगल। और पुदगल का अर्थ है—रेस्टलेसनेस।

इसलिए एक और बात समझ लेनी जरूरी है : जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, रेस्ट इज नाट पासिबल। जब तक आप शरीर से जुड़े हैं, तब तक रेस्टलेसनेस है। तब तक बेचैनी रहेगी ही। इसलिए महावीर कहते हैं, शरीर से मुक्त होकर ही कोई शान्त हो सकता है। क्योंकि शरीर का स्वभाव परिवर्तन है। इसके पहले कि आप ठहरें, शरीर बदल जाता है। अभी स्वस्थ है, अभी बीमार है। अभी ठीक है, अभी गलत है।

शरीर बदल रहा है। अगर ठीक से कहें तो शरीर स्वस्थ कभी भी नहीं होता। जिसको आप स्वास्थ्य कहते हैं वह भी स्वास्थ्य नहीं होता। शरीर स्वस्थ हो ही नहीं सकता, ठीक अर्थों में, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है। इसलिए हमने जो शब्द दिया है स्वास्थ्य के लिए वह बड़ा समझने जैसा है। उसका अर्थ है, स्वयं में स्थित हो जाना—स्वस्थ। शरीर कभी स्वयं में स्थित नहीं हो सकता वह हमेशा बह रहा है। और उसे हमेशा पर की जरूरत है—भोजन चाहिये, श्वास चाहिये, वह हमेशा 'पर' पर निर्भर है, वह कभी स्वस्थ नहीं हो सकता, सिर्फ आत्मा ही स्वस्थ हो सकती है।

यह जो महावीर का शब्द है पुदगल, यह पूरे जगत में चेतना को छोड़कर सभी पर लागू है। सिर्फ चेतना पुदगल नहीं है। बुद्ध ने चेतना के लिए भी पुदगल शब्द का प्रयोग किया है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि वह भी बदल रही है। यहां बुद्ध और महावीर का बुनियादी भेद है। महावीर ने पदार्थ को पुदगल कहा है, बुद्ध ने आत्मा को भी पुदगल कहा है। क्योंकि बुद्ध कहते हैं कि पदार्थ ही नहीं बदल रहा है, आत्मा भी बदल रही है। आत्मा के लिए अपवाद करने की क्या जरूरत है? सब चीजें बदल रही हैं। जैसे सांझ को हम दीया जलाते हैं और सुबह दीये को बुझाते हैं, तो हम सुबह कहते हैं उसी दीये को बुझा रहे हैं, पर बुद्ध कहते हैं कि नहीं, क्योंकि वह दीया तो रातभर बदलता रहा—ज्योति बदलती रही, धुआं बनती रही, नई ज्योति आती रही; दीये की ज्योति तो प्रवाह थी। तो तुमने जो दीया जलाया था, उसे तुम बुझा नहीं सकते। वह तो न-मालूम कब का बुझ गया, उसकी संतति बची है, उसकी संतान बची है, उसकी धारा बची है। वह किसी दूसरी ज्योति को जन्म दे गया है। तो सुबह तुम उसकी संतान को बुझा रहे हो, उसको नहीं बुझा रहे, बुद्ध कहते हैं चेतना भी ऐसे ही दीये की लौ की तरह जल रही है।

बुद्ध कहते हैं, जगत में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है, सभी पुदगल है। लेकिन महावीर की बात ज्यादा वैज्ञानिक मालूम पड़ती है—कारण है। और कारण यह है कि जगत में हर चीज विपरीत से बनी है। अगर सभी कुछ परिवर्तन है, तो परिवर्तन को नापने और जानने का भी कोई उपाय नहीं है। अगर परिवर्तन पता चलता है तो जरूर कोई तत्व होना चाहिये जो परिवर्तित नहीं होता। नहीं तो परिवर्तन का पता किसको चलेगा? परिवर्तन से विपरीत कुछ होना जरूरी है।

जगत में विपरीत के बिना कोई उपाय नहीं है। अगर सिर्फ अंधेरा हो तो आपको अंधेरे का पता नहीं चल सकता, या कि चल सकता है? क्योंकि प्रकाश के बिना कैसे अंधेरे का पता चलेगा? विपरीत चाहिये। अगर सिर्फ जीवन हो मृत्यु न हो, तो आपको जीवन का पता नहीं चलेगा। जीवन का पता मृत्यु के साथ ही चल सकता है। सिर्फ प्रेम हो, घृणा न हो, तो आपको प्रेम का पता नहीं चलेगा। सिर्फ मित्रता हो, शत्रुता न हो, तो आपको मित्रता का पता नहीं चलेगा। द्वंद्व है जीवन।

अगर पता चलता है—तो महावीर कहेंगे कि अगर किसी को पता चल रहा है कि सब प्रवाह है, तो एक बात पक्की है कि वह खुद प्रवाह नहीं हो सकता क्योंकि प्रवाह से बाहर किसी का खड़ा होना जरूरी है। लगता है, नदी बह रही है, क्योंकि आप खड़े हैं। तो नदी बहती हुई नहीं मालूम पड़ेगी, अगर आप भी बह रहे हों!

इसे ऐसा समझें :

आइंस्टीन कहा करता था कि दो ट्रेनें शून्य आकाश में चलाई जायें, दोनों एक ही गति से चल रही हों, तो क्या पता चलेगा कि चल रही हैं? दो ट्रेन, एक साथ समानांतर, शून्य आकाश में जहां आसपास कुछ भी नहीं है—क्योंकि वृक्ष हों तो पता चल जायेगा कि चल रही हैं, वे खड़े हैं—शून्य आकाश में दो ट्रेनें साथ चल रही हों—समानान्तर, दोनों बराबर एक गति से चल रही हों, तो दोनों ट्रेनों के यात्रियों को पता नहीं चल सकता कि आप खिड़की के बाहर मुंह निकालिए, तो उस तरफ जो आदमी था, वह सदा वही है, वही खिड़की, वही नंबर। आप कभी पता नहीं लगा सकते कि चल रही हैं, क्योंकि चलने का पता कोई चीज ठहरी हो तो चलता है। इसलिए जब एक ट्रेन खड़ी रहती है और एक ट्रेन चलती है, तो कभी-कभी खड़ी ट्रेनवालों को शक हो जाता है कि उनकी ट्रेन चल पड़ी है। और जब एक ट्रेन खड़ी होती है और एक ट्रेन चलती है—समझें कि एक ट्रेन खड़ी है, और दूसरी ट्रेन उसके पास से गुजरती है, पचास मील की रफ्तार से तो अभी उसकी गति पचास मील प्रति घंटा है। दूसरी कल्पना करें कि पहली ट्रेन भी पचास मील की रफ्तार से विपरीत दिशा में जा रही है और फिर एक ट्रेन उसके करीब से गुजरती है जो पचास मील की रफ्तार से दूसरी दिशा में जा रही है, तो जब वे दोनों करीब होती हैं, तो उनकी रफ्तार सौ मील होती है—एक-दूसरे की तुलना में। इसलिए जब एक ट्रेन आपके करीब से गुजरती है, तो आपको लगता है कि आपकी ट्रेन—अगर चल रही है, तो बहुत तेजी से चलने लगी है। क्योंकि दूसरी ट्रेन पचास मील रफ्तार से पीछे जा रही है, आपकी पचास मील की रफ्तार से आगे जा रही है। दोनों ट्रेनें एक-दूसरे की तुलना में सौ मील की रफ्तार से चल रही हैं।

वृक्ष खड़े हैं किनारे पर, उनकी वजह से आपको पता चलता है कि आपकी ट्रेन चल रही है। किसी दिन वृक्ष तय कर लें और साथ चल पड़ें तो जिस ट्रेन से आप चल रहे हैं, थोड़ी देर में आप समझ जायेंगे कि ट्रेन चल नहीं रही है, स्टेशन के

साथ ही चली जा रही है।

गति की प्रतीति हो रही है, क्योंकि कहीं कोई गति से विपरीत है। जीवन की सब प्रतीतियां विपरीत पर निर्भर हैं। पुरुष को अनुभव होता है, क्योंकि स्त्री है; स्त्री को अनुभव होता है, क्योंकि पुरुष है—सारा विपरीत, दि पोलर अपोजिट!

ध्रुवीय विपरीतता है, अभी तो विज्ञान भी इस नतीजे पर पहुंचा है। अभी विज्ञान साफ नहीं हो पा रहा है, लेकिन विज्ञान में एक नई धारणा पैदा हुई है। वह है, एन्टी-मैटर—वह कहते हैं कि पदार्थ है, तो विपरीत-पदार्थ भी चाहिये। और बहुत अनूठी बात अभी पैदा हुई है, और इस आदमी को नोबल प्राइज भी मिला जिसने यह अनूठी बात कही है कि एन्टी-मैटर होना चाहिये। और उसने एक और अजीब बात कही कि समय बह रहा है, अतीत से भविष्य की तरफ, तो समय की एक विपरीत धारा भी चाहिये, जो भविष्य से अतीत की तरफ बह रही हो। नहीं तो समय बह नहीं सकता।

यह बहुत अजीब धारणा है, और इसकी कल्पना करना बहुत घबड़ानेवाली है। इसका मतलब यह है—होजेनबर्ग का कहना है कि कहीं न कहीं कोई जगत होगा, इसी जगत के किनारे, जहां समय उल्टा बह रहा होगा। जहां बूढ़ा आदमी पैदा होगा, फिर जवान होगा, फिर बच्चा होगा, और फिर गर्भ में चला जायेगा। और होजेनबर्ग को नोबल प्राइज भी मिली है, क्योंकि उसकी बात तात्विक है।

जगत में विपरीतता होगी ही, यह एक शाश्वत नियम है। इसलिए बुद्ध की बात किसी और अर्थ में अर्थपूर्ण हो, पर वैज्ञानिक अर्थों में महत्वपूर्ण नहीं है। महावीर ठीक कह रहे हैं कि विपरीतता है; वहां पुदगल है और यहां भीतर अपुदगल, एन्टी-मैटर है। वहां सब चीजें बाहर बह रही हैं—पदार्थ में, यहां कुछ भी नहीं बह रहा है, सब खड़ा है, सब ठहरा हुआ है।

इस ठहरी हुई स्थिति का अनुभव 'मुक्ति' है। और इस बहते हुए के साथ जुड़े रहना 'संसार' है। संसार का अर्थ है, बहाव।

पदार्थ के लक्षण महावीर ने कहे, 'शब्द, अन्धकार, प्रकाश, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श—ये सब पदार्थ के लक्षण हैं।'

'जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष—ये नौ सत्य-तत्व हैं।'

पहले छह महातत्व कहे हैं महावीर ने। वे महातत्व मैटाफिजिकल हैं। जगत, जागतिक रूप से इन छह तत्वों में समा गया है। अब जिन नौ तत्वों की बात वे कर रहे हैं, वे नौ तत्व—साधक, साधक के आयाम, और साधक के मार्ग के संबंध में हैं। जगत की बात छह तत्वों में पूरी हो गयी, फिर एक-एक साधक एक-एक जगत है अपने भीतर। विराट है जगत, फिर वह विराट एक-एक मनुष्य में छिपा है। उस मनुष्य को साधना की दृष्टि से जिन तत्वों में विभक्त करना चाहिये, वे नौ तत्व हैं।

'जीव', 'अजीव'—यह पहला विभाजन है। अजीव पुदगल है, जीव चैतन्य जिसे अनुभव की क्षमता है। यह जो अनुभव की क्षमता है, यह सात स्थितियों से गुजर सकती है। उन सात स्थितियों का इतना मूल्य है, इसलिए महावीर ने उनको भी 'तत्व' कहा है—वे तत्व हैं नहीं। वे सात स्थितियां हैं—बन्ध, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा और मोक्ष। इनको एक-एक को बारीकी से समझना जरूरी है, क्योंकि महावीर का पूरा का पूरा साधना-पथ इन सात की समझ पर निर्भर होगा।

'जीव' और 'अजीव' दो विभाजन हुए जीवन के : पदार्थ और परमात्मा। पदार्थ से परमात्मा तक जाने का, पदार्थ से परमात्मा तक मुक्त होने की सात सीढ़ियां हैं, या परमात्मा से पदार्थ तक उतरने की भी सात सीढ़ियां हैं। ये सात सीढ़ियां—महावीर के हिसाब से बड़ी अनूठी इनकी व्याख्या है।

'बन्ध' : महावीर कहते हैं, बन्ध भी एक तत्व है—बॉन्डेज, परतंत्रता। किसी ने भी परतंत्रता को तत्व नहीं कहा है। महावीर कहते हैं, परतंत्रता भी एक तत्व है। इसे समझें, क्या अर्थ है? आप वस्तुतः स्वतंत्र होना चाहते हैं? सभी कहेंगे, 'हां', लेकिन थोड़ा गौर से सोचेंगे तो कहना पड़ेगा, 'नहीं'।

एरिफ फ्रोम ने अभी एक किताब लिखी है, किताब का नाम है—फियर आफ फ्रीडम; स्वतंत्रता का भय। लोग कहते जरूर हैं कि हम स्वतंत्र होना चाहते हैं, लेकिन कोई भी स्वतंत्र होना नहीं चाहता। थोड़ा सोचें, सच में आप स्वतंत्र होना

चाहते हैं? खोजते तो रोज परतंत्रता हैं—और जब तक परतंत्रता न मिल जाये तब तक आश्वस्त नहीं होते। रोज खोजते हैं—कोई सहारा, कोई आसरा, कोई शरण, कोई सुरक्षा। खोजते तो परतंत्रता हैं।

एक आदमी धन इकट्ठा कर रहा है। वह सोचता है कि धन होगा, तो मैं स्वतंत्र हो जाऊंगा। क्योंकि जितना धन होगा, उतनी शक्ति होगी। लेकिन होता यह है कि जितना धन हो जाता है, उतना वह परतंत्र होता है। अमीर आदमी से गरीब आदमी खोजने बहुत मुश्किल हैं। उनका खयाल होता है कि पैसों की मालकियत उनके पास है, लेकिन पैसा मालिक हो जाता है। एक कौड़ी भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है, एक पैसा भी छोड़ना मुश्किल हो जाता है।

राकफैलर लन्दन आया तो एक होटल में ठहरा और उसने आते ही पूछा कि 'सबसे सस्ता कमरा कौनसा है?' अखबारों में फोटो उसका निकला था। मैनेजर पहचान गया। उसने कहा कि 'आप राकफैलर मालूम होते हैं, और आप सस्ता कमरा खोजते हैं? और आपके बेटे यहां आते हैं तो सबसे कीमती कमरा खोजते हैं।' तो राकफैलर ने ठंडी सांस भरकर कहा कि 'दे आर मोर फारच्युनेट, दे हैव ए रिच फादर, आई ऐम नाट सो—मैं इतना भाग्यशाली नहीं हूं, मैं एक गरीब बाप का बेटा हूं। वे मौज कर रहे हैं, उड़ा रहे हैं, वे एक अमीर बाप के बेटे हैं।'

धन स्वतंत्रता देता होगा, ऐसा हमारा खयाल है—देता नहीं, परतंत्रता देता है। सम्राट को लगता होगा कि वह स्वतंत्र है, क्योंकि इतनी शक्ति उसके पास है। लेकिन जितनी शक्ति इकट्ठी होती है, उतना परतंत्र हो जाता है, उतना घिर जाता है, उतना मुश्किल में पड़ जाता है।

प्रेम में हमें लगता है कि प्रेम से स्वतंत्रता मिलेगी—मिलनी चाहिये, लेकिन मिलती नहीं। जिसके भी प्रेम में आप पड़ते हैं, परतंत्रता शुरू हो जाती है। पत्नी पति को बांधने की कोशिश में लगी है, पति पत्नी को बांधने की कोशिश में लगा है। दोनों के हाथ एक दूसरे की गर्दन पर हैं। दोनों कोशिश में लगे हैं कि दूसरे को किस भांति बिलकुल वस्तु की तरह, पदार्थ की तरह कर दें। और दोनों सफल हो जाते हैं, एक दूसरे को गुलाम बना लेते हैं। इसलिए बहादुर से बहादुर पति जब घर की तरफ आता है, तब देखें, तब उसके हाथ-पैर कंपने लगते हैं। तब वह तैयारी करने लगता है कि अब क्या करें। क्योंकि जिससे भी हम प्रेम करते हैं, वहीं परतंत्रता शुरू हो जाती है।

प्रेम का मतलब हुआ कि हमने अपने को जरा भी शिथिल छोड़ा कि दूसरे ने हम पर कब्जा किया। हमने जरा ही अपने अस्त्र-शस्त्र हटाकर रखे कि दूसरा हम पर हावी हुआ। और आप भी इसी कोशिश में लगे हैं कि आप हावी हो जायें। बाप बेटे पर हावी होने की कोशिश में लगा है, बेटे बाप पर हावी होने की कोशिश में लगे हैं।

हमारे पूरे जीवन की चेष्टा यही है कि हम मालिक हो जायें। लेकिन आखिरी परिणाम यह होता है कि हम न मालूम कितने लोगों के गुलाम हो जाते हैं। निश्चित ही, कहीं गहरे में हम स्वतंत्रता से डरते हैं। थोड़ी देर सोचें कि अगर आप अकेले रह जायें पृथ्वी पर तो क्या आप पूरे स्वतंत्र होंगे क्योंकि कोई परतंत्र करनेवाला नहीं होगा, तो कोई उपाय ही नहीं होगा। लेकिन क्या आप अकेले होने पसंद करेंगे? सब भोजन की सुविधा हो—सब हो, लेकिन आप अकेले हों, सारा जीवन का रस चला जायेगा। पूरी तरह स्वतंत्र होंगे, लेकिन रस बिलकुल खो जायेगा।

स्वतंत्रता में हमारा रस ही नहीं है, इसलिए लोग मोक्ष की बात सुनते हैं, लेकिन मोक्ष को खोजने नहीं जाते। महावीर कहते हैं कि बंध, परतंत्रता हमारे जीवन का एक तथ्य है। हम बंधन चाहते हैं—कोई बांध ले। फिर बड़े मजे की बात है कि कोई न बांधे, तो हमें बुरा लगता है, और कोई बांधे, तो बुरा लगता है।

एक फिल्म अभिनेता से उसका एक मित्र पूछ रहा था कि 'तुम जरूर थक जाते होओगे, क्योंकि जहां भी तुम जाते हो, वहीं इतनी भीड़ घेर लेती है, लोग हस्ताक्षर मांगते हैं, धक्कम-धुक्की होती है—तुम जरूर थक जाते होओगे? तुम जरूर ऊब गये होओगे?' तो उसने कहा कि 'बिलकुल ऊब गया हूं, लेकिन इससे भी एक बुरी चीज है, और वह यह है कि कोई न घेरे और कोई हस्ताक्षर न मांगे—उससे यह बेहतर है।'

मैं एक कालेज में शिक्षक था। और एक युवती ने मुझसे आकर कहा कि 'एक युवक उसे कभी चिट्ठियां फेंकता है लिखकर, कभी कंकड़ मारता है।' वह बहुत नाराज थी। मैंने उससे कहा, 'तू बैठ, और तू इस तरह सोच कि तू छह साल कालेज में रहे, कोई कंकड़ न मारे, कोई चिट्ठी न फेंके, फिर क्या हो?' वह थोड़ी बेचैन हो गई। उसने कहा कि 'आप किस

तरह की बातें करते हैं, वह ज्यादा दुखद होगा।' तो मैंने कहा, 'फिर फेंकने दे चिट्ठी। और तू जो यहां कहने आई है उसमें सिर्फ तेरा क्रोध ही नहीं, तेरा गौरव और गरिमा भी मालूम हो रही है, तेरे चेहरे पर शान भी है कि कोई पत्थर मारता है, कोई चिट्ठी फेंकता है। तू फिर से सोचकर, इस पर ध्यान करके आना कि तू इसका रस भी ले रही है या नहीं ले रही है? क्योंकि मैं उन लड़कियों को भी जानता हूं, जिनकी तरफ कोई नहीं देख रहा है, तो वे परेशान हैं।'

सुना है मैंने कि एक स्त्री ने—जो पचास साल की हो गई और विवाह नहीं कर पाई, क्योंकि कोई बांधने नहीं आया, कोई बंधने नहीं आया—एक दिन सुबह-सुबह फायर ब्रिगेड को फोन किया, बड़ी घबराहट में कि 'दो जवान आदमी मेरी खिड़की में घुसने की कोशिश कर रहे हैं, शीघ्रता करें।' तो फायर ब्रिगेड के लोगों ने कहा कि 'क्षमा करें, आपसे भूल हो गई, यह तो फायर डिपार्टमेंट है, आप पुलिस स्टेशन को खबर करें।' उस स्त्री ने कहा कि, 'पुलिस स्टेशन से मुझे मतलब नहीं, मुझे फायर डिपार्टमेंट से ही मतलब है।' तो उन्होंने पूछा कि 'क्या मतलब है? हम क्या कर सकते हैं?' उस स्त्री ने कहा कि 'बड़ी सीढ़ी ले आएं, वे लोग छोटी सीढ़ी से घुसने की कोशिश कर रहे हैं। बड़ी सीढ़ी की जरूरत है।'

पचास साल जिसे किसी ने कंकड़ न मारा हो, चिट्ठी न लिखी हो, उसकी हालत ऐसी हो ही जायेगी।

आदमी बंधने के लिए आतुर है। न बंधे तो मुसीबत में पड़ता है। लगता है मैं बेकार हूं, मेरे जीवन का कोई अर्थ नहीं है। बांध ले कोई तो लगता है कि बंधन हो गया, कैसे छुटकारा हो? आदमी एक उलझन है, और उलझन का कारण यह है कि वह चीजों को साफ-साफ नहीं समझ पाता कि क्या, क्या है?

पहली बात समझ लेनी जरूरी है कि बंध हमारे भीतर एक तत्व है, हम बंधना चाहते हैं। और जब तक हम बंधना चाहते हैं तब तक दुनिया में कोई भी हमें मुक्त नहीं कर सकता।

मजे की बात यह है कि हम अगर बंधना चाहते हैं, तो जो हमें मुक्त करने आयेगा, हम उसी से बंध जायेंगे; महावीर से बंधे हुए लोग हैं। वह बंध-तत्व काम कर रहा है। वे कह रहे हैं कि हम जैन हैं। आपके जैन होने का क्या मतलब है? महावीर को मरे पच्चीस सौ साल हो गये, आप क्यों पीछा कर रहे हैं?

इधर मैं देखता हूं, जब मैं महावीर पर बोलता हूं तो दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं, जब मैं लाओत्से पर बोलता हूं, दूसरी शक्लें दिखाई पड़ती हैं। लाओत्से से आपका कोई बंधन नहीं है, बंध-तत्व महावीर से लगता है। तब आप दिखाई नहीं पड़ते, आपका कोई रस नहीं है लाओत्से में। आप वहीं दिखाई पड़ते हैं, जहां आपका बंध है। जहां आपकी गर्दन बंधी है, वहां आप चले जाते हैं। गुलाम हैं।

महावीर आपको मुक्त करना चाहते हैं, लेकिन इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। महावीर क्या करेंगे, आप बंधना चाहते हैं। महावीर कहते हैं, अपने पैर पर खड़े हो जाओ। आप कहते हैं, 'आप ही हमारी शरण हैं'। महावीर कहते हैं, कोई किसी का सहारा नहीं, कोई किसी का आसरा नहीं, आप कहते हैं कि 'आपके बिना यह भव-सागर से कैसे पार हों?' और वे कह रहे हैं कि हमारे ही कारण डूब रहे हो भव-सागर में।

दूसरे के कारण आदमी डूबता है, अपने कारण उबरता है। कोई गुरु उबार नहीं सकता। लेकिन आपने डूबना पक्का कर रखा है। आपकी पूरी चेष्टा यही है कि किसी तरह डूब जायें।

इस भीतर के तत्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है। और जब तक बंध की वृत्ति काम कर रही है, तब तक मोक्ष से आपका कोई संपर्क नहीं हो सकता, मुक्ति की हवा भी आपको नहीं लग सकती। आप पहचानें इस मानसिक बात को कि आप जहां भी जाते हैं, वहां जल्दी से बंधने को आतुर हो जाते हैं। स्वतंत्र रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, मुक्त रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है, क्यों?

क्योंकि अकेले रहना कष्टपूर्ण मालूम पड़ता है। अकेले में आप बैठ नहीं पाते—अखबार खोल लेते हैं, किताब खोल लेते हैं, रेडिओ खोल लेते हैं, टेलिविजन—कोई नहीं मिलता, तो होटल, क्लब, रोटरी, लायंस; सब इंतजाम हैं, वहां भागे जाते हैं, क्यों? थोड़ी देर अकेले होने में इतनी अड़चन क्या है? अपने साथ होने में इतना दुख क्या है? दूसरे का साथ क्यों इतना जरूरी है?

अकेले में डर लगता है, भय लगता है। अकेले में जीवन की सारी समस्या सामने खड़ी हो जाती है। अगर ज्यादा देर

अकेले रहेंगे तो सवाल उठेगा, 'मैं कौन हूं?' भीड़ में रहते हैं तो पता रहता है कि कौन हैं क्योंकि भीड़ याद दिलाती रहती है—आपका नाम, आपका गांव, आपका घर, आपका पेशा—भीड़ याद दिलाती रहती है। अकेले में भीड़ याद नहीं दिलाती।

और भीड़ के दिये हुए जितने लेबल हैं, वे भीड़ के साथ ही छूट जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, जो व्यक्ति बंधन से मुक्त होना चाहता है, उसे एकांत में रस लेना चाहिए, अकेले में रस लेना चाहिए, अपने में रस लेना चाहिए। धीरे-धीरे दूसरे की निर्भरता छोड़नी चाहिए। उस जगह आ जाना चाहिए, जहां अगर मैं अकेला हूं तो पर्याप्त हूं।

अगर कोई व्यक्ति अकेले में पर्याप्त है, तो बंधन का तत्व गिर गया। अगर कोई अकेले में पर्याप्त नहीं है, वह बंधेगा ही, वह खोजेगा ही कुछ न कुछ। उसे कोई न कोई डूबने के लिए सहारा चाहिए। तब एक सुविधा है कि जब दूसरा हमें डुबाता है, तो हम दोष दूसरे को दे सकते हैं, दूसरे में दोष दिखाई पड़ते हैं। लेकिन हम दूसरे की तलाश क्यों करते हैं? और जब आप एक गलत आदमी से मैत्री बना लेते हैं, या विवाह कर लेते हैं एक गलत स्त्री से, तो आप सोचते हैं —गलती हो गई, गलत स्त्री से विवाह कर लिया। आपको पता नहीं है कि आप गलत स्त्री से ही विवाह कर सकते हैं। ठीक स्त्री की आप तलाश ही न करेंगे।

मैंने सुना है कि एक आदमी एक बार ठीक स्त्री की तलाश करते-करते अविवाहित मरा। उसने पक्का ही कर लिया था कि जब तक पूर्ण स्त्री न मिले, तब तक मैं विवाह न करूंगा। फिर जब वह बूढ़ा हो गया, नब्बे साल का हो गया, तब किसी ने पूछा कि 'आप जीवन भर तलाश कर रहे हैं पूर्ण स्त्री की, क्या पूर्ण स्त्री मिली ही नहीं इतनी बड़ी पृथ्वी पर?' उसने कहा, 'पहले तो बहुत मुश्किल था, मिली नहीं, फिर मिली भी।'

तो उस आदमी ने पूछा, 'आपने विवाह क्यों नहीं कर लिया?' तो उस आदमी ने कहा कि 'वह भी पूर्ण पुरुष की तलाश कर रही थी। तब हमको पता चला कि यह असंभव है मामला।'

वह भी अविवाहित ही मरी होगी, उसका कुछ पता नहीं है।

हम जो हैं, उसी को हम खोजते हैं। वही हमें मिल भी सकता है। तो जो भी आपको मिल जाये, वह आपकी ही खोज है, और आपके ही चित्त का दर्शन है उसमें। अगर आपने गलत स्त्री खोज ली है, तो आप गलत स्त्री खोजने में बड़े कुशल हैं। और आप दूसरी स्त्री खोजेंगे तो ऐसी ही गलत स्त्री खोजेंगे। आप अन्यथा नहीं खोज सकते, क्योंकि आप ही खोजेंगे।

हम जो भी कर रहे हैं अपने चारों तरफ—दुख, चिंता, पीड़ा—वे सब हमारे ही उपाय हैं। और आप चकित होंगे जानकर कि अगर आपके दुख आपसे छीन लिये जायें, तो आप राजी नहीं होंगे। क्योंकि वे आपने खड़े किये हैं। उनका कुछ कारण है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे ऐसी चिंताएं बताते हैं। मैं उनसे कहता हूं कि आप कहते तो जरूर हैं, लेकिन आप चिंताएं बताते वक्त ऐसे

लगते हैं, जैसे कि बड़ा भारी काम कर रहे हैं, कि कोई बड़ी उपलब्धि कर ली है आपने!

आप चिंताओं में रस लेते हैं। लोग अपने दुख को कितने रस से सुनाते हैं। आप ऊबते हैं, वे नहीं ऊबते। उनकी दुख कथा आप सुनो, कितना रस लेते हैं। पश्चिम में तो पूरा धंधा खड़ा हो गया है साइको-एनालिसिस का। वह पूरा धंधा इस बात पर निर्भर है कि लोग अपना दुख सुनाने में रस लेते हैं। और अब कोई राजी नहीं है सुनने को, किसी के पास समय नहीं है। तो प्रोफेशनल सुननेवाला चाहिए। वह जो साइको-एनालिस्ट है, सुननेवाला है, वह प्रोफेशनल है। वह पैसा लेता है। उसको कोई मतलब नहीं है। वह बड़े गौर से सुनता है। लेकिन पता नहीं कि वह गौर और उसका ध्यान, सिर्फ दिखावा भी हो सकता है।

मैंने सुना है कि एक दिन फ्रायड को उसके एक युवक शिष्य ने पूछा कि 'मैं तो थक जाता हूं, दो-चार-पांच मरीजों को सुनने के बाद, और आप शाम को भी ताजे दिखाई पड़ते हैं।' फ्रायड ने कहा, 'सुनता ही कौन है? सिर्फ चेहरे का ढंग होता है कि हां, सुन रहे हैं। मगर वह आदमी हल्का होकर ठीक भी हो जाता है।'

दुख की चर्चा करने में रस आता है, उससे लगता है कि आप महत्वपूर्ण हैं, कुछ आपकी जिंदगी में भी हो रहा है।

मैंने सुना है कि एक स्त्री एक डाक्टर के पास गई। और उसने कहा कि 'कोई न कोई आपरेशन कर ही दें।' डाक्टर ने कहा, 'लेकिन तुझे कोई जरूरत ही नहीं है, तू बिलकुल स्वस्थ है।' उसने कहा, 'वह तो सब ठीक है, लेकिन जब भी स्त्रियां मिलती हैं—कोई कहती है उसका अपेन्डिक्स का आपरेशन हो गया है, किसी का टान्सिल का हो गया है, मेरा कुछ भी नहीं हुआ है। तो जिंदगी बेकार ही जा रही है—कुछ भी कर दें, चर्चा के लिए ही सही।'

आदमी अपनी बीमारी में, अपने दुख में, अपनी पीड़ा में, अपनी चिंता में रस ले रहा है। महावीर उस रस को ही बंध कहते हैं।

'पुण्य','पाप'—महावीर के हिसाब से पुण्य पाप की बड़ी अलग धारणा है। महावीर पुण्य, पाप को भी पौदगलिक कहते हैं, मैटीरियल कहते हैं। वे कहते हैं, जब आप पाप करते हैं तब आप की चेतना के पास खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं, जब आप पुण्य करते हैं तब खास तरह के परमाणु इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य करने से कोई मुक्त नहीं होगा, क्योंकि पुण्य भी परमाणुओं को इकट्ठा करता है। पुण्य करने से अच्छा शरीर मिल सकता है, पुण्य के परमाणु होंगे। और पाप करने से बुरा शरीर मिल सकता है, बुरे परमाणु होंगे।

महावीर कहते हैं, पाप है, जैसे लोहे की हथकड़ियां और पुण्य है, जैसे सोने की हथकड़ियां। लेकिन सोने की हथकड़ियों को हथकड़ियां नहीं कहते, उनको आभूषण कहते हैं। जब आपको किसी स्त्री को बांधना हो, तो लोहे की हथकड़ी भेंट मत करना—सोने की, उनको लोग आभूषण कहते हैं। सोना जिस तरह बांध लेता है, उतना लोहा कभी भी नहीं बांध सकता, क्योंकि लोहे में कोई रस पैदा होता नहीं मालूम होता। इसलिए महावीर कहते हैं, पुण्य भी बांधता है।

बुरे कर्म तो बांधते ही हैं, अच्छे कर्म भी बांध लेते हैं। और हर कर्म पौदगलिक है—यह बड़ी क्रांतिकारी धारणा है। महावीर कहते हैं जब तुम शुभ कर्म करते हो तो तुम्हारे पास शुभ परमाणु इकट्ठे होते हैं, वस्तुतः। तुम्हारी चेतना के आस-पास अच्छे तत्व इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिए तुम्हें अच्छा लगता है। जैसे चारों तरफ फूल खिले हों और किसी को अच्छा लगे, ऐसा ही पुण्य करते वक्त अच्छा लगता है। पाप करते वक्त बुरा लगता है, जैसे कोई दुगन्ध के बीच बैठा हो।

तो जब आप चोरी करते हैं तो मन को बुरा लगता है, झूठ बोलते हैं तो मन को बुरा लगता है, क्रोध करते हैं तो मन को बुरा लगता है; उस बुरे लगने का कारण है कि आप गलत, विकृत, दुगन्धयुक्त परमाणुओं को अपने पास बुला रहे हैं, निमंत्रण दे रहे हैं। और जब आप किसी पर दया करते हैं, किसी पर करुणा प्रगट करते हैं, किसी गिरे को उठने का सहारा दे देते हैं—कोई छोटा-सा कृत्य भी—कि एक बूढ़े आदमी को देखकर मुस्कुरा देते हैं, जिसको देखकर अब कोई नहीं मुस्कुराता, तो आपके भीतर एक हल्कापन छा जाता है; आप उड़ने लगते हैं, पंख निकल आते हैं।

यह जो आपको उड़ने का हल्कापन मालूम होता है, यह जो ग्रेव्हिटेशन कम हो जाता है, कशिश कम हो जाती है जमीन की, यह जो प्रसादयुक्त अवस्था है, इसको महावीर 'पुण्य' कहते हैं।

महावीर के हिसाब से जो करके भी आपको हल्कापन मालूम होता हो, प्रसन्नता मालूम होती हो, खिलते हों आप, फूल की तरह बनते हों, वह पुण्य है। और जिससे भी आप भारी होते हों, पथरीले होते हों, डूबते हों नीचे, और जिससे बोझिलता बढ़ती हो—वह पाप है। जो नीचे लाता हो, डुबाता हो, वजन देता हो, वह पाप है; और जो ऊपर ले जाता हो, हल्का करता हो, आकाश में खोलता हो, वह पुण्य है।

इसका अर्थ अगर खयाल में आ जाये तो आप बहुत हैरान होंगे। अगर आपका धर्म भी आपको भारी करता है, सीरियस करता है, तो पाप है। अगर आपका धर्म आपको उत्सव देता है, आनंद देता है, नृत्य देता है, तो ही पुण्य है। पुण्य का लक्षण है कि आप हल्के हो जायेंगे, बच्चे की तरह नाचने लगेंगे; पाप का अर्थ है, आप भारी हो जायेंगे, बैठ जायेंगे पत्थर की तरह।

अपने साधु संन्यासियों को जाकर गौर से देखें, क्या उनके जीवन में उत्सव है? और जिनके जीवन में उत्सव ही नहीं है, उनके जीवन में मोक्ष तो बहुत दूर है। अभी पुण्य भी जीवन में नहीं है। क्या आपका साधु हंस सकता है? बच्चे की तरह किलकारी ले सकता है? नाच सकता है? प्रफुल्लित हो सकता है?

नहीं, वह भारी है। और न केवल खुद भारी है, अगर आप हंसते हुए उसके पास पहुंच जायें, तो अपमान अनुभव करेगा। वह आपको भी भारी करता है। तो जब आप मंदिर में पहुंचते हैं, तो आप जूते ही बाहर नहीं उतारते, सब हल्कापन भी बाहर रख देते हैं। एकदम गंभीर होकर, रीढ़ को सीधी करके, आंखें भारी करके, नीची करके आप अंदर प्रवेश करते हैं। मंदिर में जिंदा आदमी के लिये कोई जगह नहीं मालूम होती—मरे-मराये लोग, इसलिए अगर मंदिर में बच्चे आ जायें, तो सबको लगता है कि डिस्टबच्न्स कर रहे हैं। सच्चाई उलटी है। बच्चे मंदिर में पुण्य ला रहे हैं। और अगर आप भी बच्चों की तरह कूद सकें, और नाच सकें, और गीत गा सकें, तो ही, तो ही मंदिर पुण्य के तत्व देगा।

मैं निरंतर कहता हूं कि कभी एक बगीचे में भी पुण्य के तत्व हो सकते हैं, कभी एक नदी के किनारे भी, कभी एक पहाड़ के एकांत में भी। जरूरी नहीं है कि मंदिर में ही हों। क्योंकि मंदिर पर गंभीर लोगों ने बड़े पुराने दिनों से कब्जा कर रखा है। गंभीर लोग एक लिहाज से खतरनाक हैं, क्योंकि जहां भी गंभीर लोग हों, वे हल्के-फुल्के लोगों को निकालकर बाहर कर देते हैं।

इकानामिक्स का एक नियम है कि जब भी बुरे सिक्के हों तब अच्छे सिक्के चलन के बाहर हो जाते हैं। रद्दी नोट अगर आपके खीसे में पड़ा हो, तो पहले आप रद्दी को चलायेंगे कि असली को? रद्दी पहले चलेगा, असली को आप छिपाकर रखेंगे। रद्दी हमेशा असली को चलन के बाहर कर देता है।

गंभीर लोग प्रफुल्लता को सदा बाहर कर देते हैं। और उन्होंने ऐसी हालत पैदा कर दी है कि प्रफुल्लता पाप मालूम होने लगी है। अगर आप हंसते हैं, तो आप पापी हैं। आपको एक रोती हुई लम्बी शक्ल चाहिये, तब आप पुण्यात्मा मालूम होंगे।

महावीर कहते हैं, पुण्य का तत्व प्रफुल्ल करनेवाला तत्व है। और यह निश्चित सही है। और इससे ज्यादा सही कोई और बात नहीं हो सकती। अगर आपने जीवन में कभी भी कोई हल्कापन अनुभव किया है, तो आप समझ लेना कि वहां पुण्य का तत्व आपने आकर्षित किया था। अगर आपको भारीपन अनुभव होता है, बोझिलता अनुभव होती है, तो उसका मतलब है कि शरीर वजनी हो रहा है, आत्मा ताकत खो रही है, शरीर ज्यादा भारी होकर छा रहा है।

प्रफुल्लता की तलाश, पुण्य की तलाश है। और ध्यान रहे, जो खुद प्रफुल्लित रहना चाहता है, वह दूसरे को प्रफुल्लित करेगा; क्योंकि प्रफुल्लता संक्रामक है। अगर यहां इतने लोग रो रहे हों, तो आप प्रफुल्लित नहीं हो सकते अकेले। आप दब जायेंगे। तो जो आदमी आनंदित होना चाहता है, वह दूसरे को दुख नहीं देना चाहेगा; क्योंकि आनंदित होने की बुनियादी शर्त ही यह है कि आनंद चारों तरफ हो, तो ही आप आनंदित हो पायेंगे। और जो आदमी दुखी होना चाहता है, वह अपने चारों तरफ दुखी चेहरे पैदा करेगा; क्योंकि दुख के बीच ही दुखी हुआ जा सकता है।

जब धर्म जन्म लेता है, तो नाचता हुआ होता है, और जब धर्म संप्रदाय बनता है तो मुर्दा हो जाता है, लाश हो जाता है—गंभीर । और उसके आसपास बैठे हुए लोग वैसे ही हो जाते हैं, जब घर में कोई मर जाता है तो पड़ोस के लोग आकर आस-पास बैठ जाते हैं। मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजाघरों में, गुरुद्वारों में बैठे हैं लोग—जैसे लाश के आसपास।

महावीर के पास जो प्रफुल्लता रही होगी, वह महावीर की मूर्ति के पास नहीं बची। जरा महावीर का चेहरा देखें, जाकर अपने ही मंदिर की मूर्ति में जरा गौर से देखें। यह चेहरा बिलकुल हलका है, इस चेहरे पर लेशमात्र भी बोझ नहीं है; यह छोटे बच्चे की भांति निदाच्ष है; इस पर कोई भार नहीं, कोई चिंता नहीं। महावीर इसीलिए नग्न भी खड़े हो गये। छोटा बच्चा ही नग्न खड़ा हो सकता है।

नहीं कि आप नग्न खड़े हो जायें तो छोटे बच्चे हो जायेंगे। कुछ पागल भी नग्न खड़े हो जाते हैं। लेकिन अगर आप नग्न खड़े हैं और आपको पता है कि आप नग्न खड़े हैं तो आप छोटे बच्चे नहीं हैं।

महावीर इतने हल्के हो गये, कि नग्न खड़े हो गये। उन्हें पता भी नहीं चला होगा कि वे नग्न हैं। और उनकी नग्नता का दूसरों को भी पता नहीं चलता कि वे नग्न हैं। एक निदाच्ष, एक इनोसेंस, एक कुवांरापन भीतर आ गया, जहां सब बोझ गिर गये।

महावीर कहते हैं—पुण्य हल्का करनेवाला तत्व है, पाप बोझिल करनेवाला तत्व है। लेकिन ध्यान रहे, पुण्य से ही कोई

मुक्त नहीं हो जायेगा। पुण्य पाप से मुक्त करेगा। और आखिरी घड़ी आती है, जब आदमी को पुण्य से भी मुक्त हो जाना पड़ता है, क्योंकि वह कितना ही हल्का करता हो, फिर भी थोड़ा तो भारी होगा ही। तत्व है तो उसका थोड़ा तो बोझ होगा ही। आपने कितना ही पतला कपड़ा पहन रखा हो, मलमल पहन रखी हो ढाका की, तो भी थोड़ा सा बोझ देगी। उतना बोझ भी मोक्ष के लिए बाधा है।

तो महावीर कहते हैं, पहला पड़ाव है पाप से मुक्ति, पाप के तत्वों से छुटकारा; और दूसरा पड़ाव है पुण्य से मुक्ति, और तीसरा पड़ाव नहीं है, मंजिल है आखिरी, क्योंकि वहां फिर कुछ भी नहीं बचता जिससे छूटना है।

'आस्रव' का अर्थ है बुलाना, निमंत्रण, आने देना। आप खुले होते हैं कुछ चीजों के लिए। एक सूबसूरत स्त्री पास से निकलती है, आपके भीतर एक दरवाजा खुल जाता है। साथ में पत्नी हो तो बात अलग है। तो आप दरवाजे को पकड़े रखते हैं, खुलने नहीं देते। पत्नी न हो तो दरवाजा एकदम खुल जाता है।

'आस्रव' का अर्थ है, आपकी वृत्ति खुलने की, पाप की तरफ। जहां-जहां गलत है, आप एकदम से खुल जाते हैं। शराब की दुकान हो, भीतर कोई कहने लगता है, चलो।

'आस्रव' का अर्थ है, खुलने की वृत्ति पाप की तरफ। वह हमारे भीतर है। हम सब आस्रव में जी रहे हैं। यह हो सकता है कि सबके आस्रव की अपनी-अपनी शर्तें हों।

मैंने सुना है, एक साधु अपनी आजीविका के लिए एक छोटी सी नाव चलाता था, इस किनारे से उस किनारे तक नदी के। एक दिन एक स्मगलर ने उससे कहा कि 'यह सोने का इतना पाट है, इसको ले चलो, मैं सौ रुपये दूंगा।' उसने कहा कि 'भूलकर ऐसी बात मत करना।

वह आपको अछूता नहीं छोड़ेगा। वह आपके भीतर जा रहा है, तो आस्रव हो रहा है। कुछ भी कचरा भीतर जा रहा है। 'पनामा सरस सिगरेट छे'—उसको भी पढ़े जा रहे हैं। उसको भीतर लिए जा रहे हैं। वह भरता जा रहा है। वह काम करेगा, क्योंकि आस्रव हो रहा है। और जब आप पढ़ रहे हैं, तो आपकी ऊर्जा बाहर जा रही है, आपकी चेतना बाहर जा रही है, आपकी शक्ति बाहर जा रही है।

छोटे से कृत्य में भी शक्ति का अपव्यय हो रहा है। इसलिए महावीर कहते हैं कि जमीन पर चार कदम देखकर साधु चले। ज्यादा देखने की जरूरत नहीं है, चार कदम काफी है। जब चार कदम चल लेंगे, तो आंखें चार कदम और देख लेगीं। पर जमीन पर देख कर चलें, कई कारणों से : जमीन पर जब आप देखकर चलते हैं, आप हैरान होंगे आपकी आंखें थकेंगी नहीं। और कहीं भी आप देखकर चलेंगे तो आंखें थकेंगी, क्योंकि जमीन हमारी जीवन-दात्री है, वहां से हम पैदा हुए हैं। शरीर भी एक वृक्ष है, जो जमीन से पैदा हुआ है। मिट्टी इसके कण-कण में है।

जब आप जमीन पर देखकर चलते हैं, तो जो ऊर्जा जमीन पर जा रही है, वह वापस लौट आती है, द्विगुणित होकर वापिस लौट आती है। जब आप घास पर देखकर चलते हैं; तो ऊर्जा वापिस लौट आती है। आदमी के कृत्यों को देखकर मत चलें, और आदमी को मत देखें। आदमी से थोड़ा बचें। आदमी खतरनाक है। उसकी छोटी-छोटी बात भी आपको बाहर ले जा रही है।

लेकिन हम ऊर्जा नष्ट करने में लगे हैं। हमें संवरित करने का खयाल ही नहीं है। संवर का सुख हमें पता नहीं है। महावीर कहते हैं कि संवर का एक सुख है। शुद्ध ऊर्जा जब भीतर होती है, आप कुछ उसका उपयोग नहीं करते, सिर्फ ऊर्जा होती है, ऊर्जा उबलती है, ऊर्जा नाचती है, कोई उपयोग नहीं करते, सिर्फ शक्ति का शुद्ध आनंद—संवर है। और जो व्यक्ति आस्रव से बचे और संवर करे अपनी ऊर्जा का—वह शक्तिशाली होता चला जायेगा। उसके पास वीर्य होगा; उसके पास पुरुषार्थ होगा; उसके पास साहस होगा। अगर वह आदमी आपकी आंख में आंख डाल देगा, तो आपके भीतर कुछ हिल जायेगा। लेकिन आपकी आंख तो खर्च हो चुकी है। वह वैसे ही है, जैसे चला हुआ कारतूस होता है। उससे आप किसी को देखें भी, तो कहीं उसके भीतर कुछ नहीं होता।

आप एक प्रयोग करें। एक सात दिन तक सिर्फ जमीन पर देखकर चलें और सात दिन बाद जरा किसी की तरफ देखें। अनूठा अनुभव होगा। अगर सात दिन आप जमीन पर देखकर चलते रहे हैं और फिर कोई आदमी जा रहा हो आपके

सामने, तो सिर्फ उसके सिर के पीछे दोनों आंखें गड़ाकर कहें कि 'पीछे लौटकर देख' , तो वह आदमी उसी वक्त लौटकर देखेगा। अब आपके पास शक्ति है। करने की जरूरत नहीं है, एकाध ऐसा प्रयोग करके देख लेना। करने की जरूरत नहीं है क्योंकि उसमें भी शक्ति-ऊर्जा नष्ट हो रही है।

अगर महावीर जैसे व्यक्तियों के पास लोग जाकर सम्मोहित हो जाते हैं, तो ऐसा नहीं है कि महावीर सम्मोहित कर रहे हैं। महावीर का क्या प्रयोजन हो सकता है? लेकिन महावीर इतनी ऊर्जा से भरे हैं कि स्वभावतः उस विराट ऊर्जा की तरफ आप चुम्बक की तरह खिंचे आते हैं। आपको भला लगेगा कि आप सम्मोहित हो गये, हिप्नोटाइज हो गये, महावीर ने कुछ खींच लिया, महावीर खींच नहीं रहे हैं। लेकिन संवरित ऊर्जा आकर्षित करती है, मैगनेटिक हो जाती है।

'निर्जरा' और 'मोक्ष'।

निर्जरा महावीर का विशेष शब्द है और बड़ा बहुमूल्य शब्द है। निर्जरा का अर्थ है, वे जो हमने जन्मों-जन्मों में कर्म इकट्ठे किए हैं, वे जो हमने जन्मों-जन्मों में बंध किये हैं, पाप किये हैं, पुण्य किए हैं, वे हमारे चारों तरफ इकट्ठे हैं, जैसे धूल—कोई यात्री चले रास्ते पर और धूल इकट्ठी हो जाए वस्त्रों पर। वस्त्रों से धूल को झाड़ दें, उस धूल के झड़ जाने का नाम निर्जरा है।

निर्जरा का अर्थ है, वह जो हमने जन्मों-जन्मों में इकट्ठा किया है, वह सब झड़ जाये, हम फिर से खाली हो जायें, शून्य हो जायें। निर्जरा का अर्थ है, हमने जो संग्रह किया है, वह सब झड़ जाए। बड़े सूच्म संग्रह हैं हमारे : हमारा ज्ञान , हमारी स्मृति, हमारे कर्म, हमारे जन्मों-जन्मों के संस्कार, वे सब इकट्ठे हैं। निर्जरा में वे गिरने शुरू हो जाते हैं। निर्जरा की प्रक्रिया ही महावीर का योग है, कि वे कैसे गिरें?

आस्रव बदलें। गलत के द्वार को खुला न रखें, शक्ति को व्यर्थ मत जाने दें; जब जरूरी हो तभी जाने दें; संवर करें। और भी बहुत इकट्ठा है, पुराना इकट्ठा है। नया इकट्ठा होना बंद हो जायेगा, अगर आस्रव और संवर का ध्यान रहे। लेकिन जो पुराना रखा है, उसके प्रति साक्षी का भाव रखें; उसे सिर्फ देखें, उसे शक्ति मत दें।

एक आदमी आपको गाली देता है। जैसे ही वह गाली देता है, आपको भी गाली देने की इच्छा होती है। इस इच्छा को देखें; यह इच्छा पुरानी आदत है। यह पुराना संस्कार है। जब जब आपको गाली दी गई है, आपने भी गाली दी है। यह सिर्फ उसकी लकीर है। इसे देखें, इसे काम मत करने दें। क्योंकि अगर आप गाली दे रहे हैं, तो आप ऊर्जा भी बाहर भेज रहे हैं। फिर नया संस्कार बन रहा है, फिर नया कर्म बन रहा है।

महावीर एक जंगल में खड़े हैं। एक ग्वाला आया और उसने कहा कि 'मैं जरा जल्दी में हूं, मेरी गायें यह बैठी हैं यहां, तुम जरा ध्यान रखना।' उस ग्वाले को यह पता नहीं है कि वे मौन में हैं। और उन्होंने सुना भी नहीं, उन्होंने 'हां-हूं' कुछ भी नहीं कहा। ग्वाला जल्दी में था, जल्दी चला गया। सांझ को लौटकर जब वह आया, तो महावीर वहीं मौन खड़े थे। उन्होंने 'हां-ना' कुछ भी नहीं कहा। उन्होंने 'हां-ना' कहना तो बंद कर दिया था। उन्होंने तो बाहर के सब संबंध शिथिल कर दिये थे, सब सेतु तोड़ डाले थे। गायें अपने-आप उठकर जंगल की तरफ चली गई थीं। वह ग्वाला आया और उसने देखा कि गायें वहां नहीं हैं। उसने पूछा, 'कहां हैं मेरी गायें?' महावीर को चुपचाप खड़ा देखकर उसने समझा कि आदमी चालबाज है। बताता क्यों नहीं है कि मेरी गायें कहां हैं? जब महावीर चुपचाप ही खड़े रहे, तो उसने सोचा कि 'हो सकता है, यह आदमी पागल हो! किस तरह का आदमी है? न आंख खोलता है, न बोलता है! मैंने गलत आदमी से कह दिया।' तो वह गया जंगल में अपनी गायों को खोजने। वह जब गायों को जंगल में खोज रहा था, तब गायें जंगल से चरकर सांझ हो जाने के कारण वापस लौट आई थीं। जब वह आदमी लौटकर आया, तो उसने देखा कि गायें महावीर के पास इकट्ठी हैं। उसने सोचा कि 'यह आदमी तो गायों को लेकर भागने का इरादा रखता है। इसने पहले गायें छिपा दी थीं और अब गायें निकाल ली हैं। अब अंधेरा हुआ, अब यह गायें लेकर भाग जाता।' तो उसने उनकी अच्छी पिटाई की, और उनको बोलते-सुनते न देखकर उसने कहा, 'क्या तुम बहरे हो?' और उसे इतना गुस्सा आया कि उसने दो लकड़ियां उठाकर उनके कान में ठोक दीं। महावीर सब देखते रहे। वह आदमी चला गया।

बड़ी प्यारी कथा है कि इंद्र को पीड़ा हुई। शुभ को पीड़ा होगी ही, इतना ही मतलब है। दिव्य जो है, उसको पीड़ा होगी ही,

किसी को अकारण सताये जाने पर। तो कथा है कि इंद्र आया, और उसने महावीर के अंतस्तल में, क्योंकि ऊपर से तो वे चुप थे, कहा कि 'दुख होता है, अकारण आपको सताया गया।' महावीर ने भीतर कहा कि 'अकारण कुछ भी नहीं होता है, मैंने कभी न कभी कुछ किया होगा, यह उसका फल है। अच्छा हुआ, निर्जरा हो गई; एक संबंध छूटा, एक झंझट मिटी। उस आदमी को जो करना था, वह कर गया।' इंद्र ने कहा कि 'हमें कुछ कहें, हम कुछ इंतजाम करें, कोई प्रतिबंध करें।' तो महावीर ने कहा, 'तुम कुछ मत करो । क्योंकि मैं तुमसे कुछ भी करने को कहूं , तो वह कहना एक नया बंध हो जाएगा—एक नया कर्म। फिर मुझे उससे भी निबटना पड़ेगा। तुम मुझे छोड़ो। पुराना लेन-देन चुक जाये, इतना काफी है। मुझे कोई नया लेन-देन शुरू नहीं करना है; मैं व्यापार सिकोड़ रहा हूं, समेट रहा हूं।

निर्जरा का अर्थ है : वह जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाये। जब कोई गाली दे, तो उसे देख लेना। ताकि जो पुराना लेन-देन है, वह चुक जाये। धीरे-धीरे एक क्षण आता है, जब सब संस्कार झर जाते हैं। ऐसी निर्जरा की अवस्था के पूरे होने पर जो बच रहता है वह मोक्ष है, वह मुक्त अवस्था है—जहां चेतना पर कोई भी बंधन नहीं, कोई भी बोझ नहीं, कोई कन्डीशनिंग नहीं, कोई संस्कार नहीं।'ये नौ सत्य तत्व हैं। ऐसे सत्य तत्वों के संबंध में सदगुरु के उपदेश से या स्वयं अपने ही भाव से श्रद्धान करना (श्रद्धा करना) सम्यकत्व कहा गया है।'

सम्यकत्व का अर्थ है : सम्यसंतुलित हो जाना—टोटली बैलेंस्ड। यह घटना दो तरह से घट सकती है : सद्गुरु के उपदेश से, या अपने ही प्रयास से।

सदगुरु के उपदेश का क्या अर्थ है? सदगुरु का मतलब है कि जिसने स्वयं जाना हो। पंडित के उपदेश से यह घटना नहीं घट सकती। जिसने स्वयं जाना हो, उसके उपदेश से घट सकती है। लेकिन सदगुरु के उपदेश से भी नहीं घटेगी, अगर आप उपदेश लें ही न, अगर कुछ आप में प्रवेश ही न करे। तो वर्षा के पानी की तरह आपके शरीर पर गिरकर उपदेश विदा हो जायेगा, धूल में खो जायेगा।

वर्षा का पानी गिरता है। अगर आप उसे आकाश से सीधे ही ले लें अपने मुंह में, तो वह शुद्ध होता है। और अगर जमीन पर गिर जाए, तो अशुद्ध हो जाता है। पंडितों से सुनना, जमीन पर गिरे हुए पानी को इकट्ठा करना है; और महावीर जैसे व्यक्ति से सुनना, सीधे आकाश से गिरी शुद्ध बूंद को मुंह में ले लेना है।

सदगुरु का अर्थ है : जिसने स्वयं जाना है, जो दूसरों के जाने हुए को नहीं कह रहा है, जिसकी अपनी प्रतीति, अपना दर्शन है; जिसका अपना साक्षात्कार है—उसके उपदेश से यह घटना घटती है। लेकिन उसके उपदेश को लेने की तैयारी हो, मन खुला हो, हृदय के द्वार उन्मुक्त हों, तो ही श्रद्धा घटित होती है। सुनकर ही घटित हो जाती है, अगर सुननेवाला तैयार हो। इसलिए महावीर ने सुननेवालों को अलग ही नाम दिया। उन्होंने सुननेवालों को 'श्रावक' कहा है।

सभी सुननेवाले श्रावक नहीं होते हैं। यहां इतने लोग सुन रहे हैं, सभी श्रावक नहीं हैं। जो श्रावक है, वह सुनकर ही श्रद्धा को उपलब्ध हो जाएगा। श्रावक का अर्थ है : जो इतना हार्दिक रूप से सुन रहा है, इतनी सहानुभूति से सुन रहा है, इतने प्रेम से सुन रहा है कि भीतर कोई भी विरोध, कोई रेजिस्टेन्स नहीं है, कोई बचाव नहीं है। वह सब तरह से बह जाने को राजी है। गुरु जहां ले जाये उस धारा में बह जाने को राजी है। गुरु चाहे मौत में ही क्यों न ले जाये, तो भी वह जाने को राजी है। ऐसे सरल भाव से सुनी गई बात से श्रद्धा का जन्म होता है। और या फिर अपने ही प्रयास से।

सौ में से एक व्यक्ति अपने प्रयास से भी कर सकता है। लेकिन उसका अपना प्रयास भी इसलिए सफल होता है कि पिछले जन्मों में सदगुरु के पास कुछ जाना है; उसे कुछ झलक मिल गई है, कोई संपर्क मिल चुका है।

जैसे जन्म अपने ही द्वारा नहीं मिलता, मां-बाप से मिलता है; वैसे ही श्रद्धा भी वस्तुतः अपने ही द्वारा नहीं मिलती, वह भी सदगुरु से ही मिलती है। कोई आदमी जैसे अपने को ही जन्म देने की कोशिश करे कि मैं अपना ही मां-बाप भी बन जाऊं, तो बहुत मुसीबत होगी, बहुत झंझट होगी। शायद यह हो भी नहीं सकता है। वैसे ही ज्ञान का जन्म भी, जहां ज्ञान घटा हो, उस आदमी के निकट आसानी से हो जाता है।

यह इसलिए नहीं कि गुरु आपको ज्ञान दे देता है। ज्ञान कुछ दी जानेवाली चीज नहीं है। पर गुरु कैटलिटिक एजेंट है, गुरु उत्परेरक तत्व है। उसकी मौजूदगी में घटना घट जाती है। घटना तो आपके भीतर ही घटती है, घटना आपसे ही घटती है,

पर उसकी मौजूदगी आपको हिम्मत और साहस दे देती है। उसकी मौजूदगी में आप निदाच्ष हो पाते हैं। उसकी मौजूदगी में उसका संगीत आपको शांत कर पाता है। उसकी उपस्थिति आपको उठा लेती है उन ऊंचाइयों पर, जिन पर आप अपने ही बल नहीं उठ सकते। उन ऊंचाइयों पर सत्य का दर्शन हो जाता है। उस सत्य के दर्शन की स्थिति को 'सम्यकत्व' कहा है। ऐसा व्यक्ति संतुलित हो जाता है, सम्यक हो जाता है। और जो व्यक्ति सम्यकत्व को उपलब्ध हो गया, उसके जीवन की सबसे बड़ी
कठिनाई हट गई; दिशा बदल गई, यात्रा का रुख बदल गया। संसार की तरफ उसने पीठ कर ली, और मोक्ष की तरफ उसका मुंह हो गया।

आज इतना ही।

मुमुक्षा के चार बीज
बारहवां प्रवचन

दिनांक 27 अगस्त, 1973; तृतीय पर्युषण व्याख्यानमाला, पाटकर हाल, बम्बई

225

लोकतत्व-सूत्र ः 3

नाणेण जाणइ भावे,
दंसणेण य सद्दहे।
चरित्तेण निगिण्हाइ,
तवेण परिसुज्झइ।।

नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता,
जीवा गच्छंति सोग्गइं।।

मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धान करता है, चारिच्तरय से भोग-वासनाओं का निग्रह करता है, और तप से कर्ममलरहित होकर पूर्णतया शुद्ध हो जाता है।
ज्ञान, दर्शन, चारिच्तरय और तप—इस चतुष्टय अध्यात्ममार्ग को प्राप्त होकर मुमुक्षु जीव मोक्षरूप सदगति पाते हैं।

226

ज्ञान का कोई शिक्षण संभव नहीं है। शिक्षण सूचनाओं का हो सकता है। ज्ञान का उदभावन होता है, आविर्भाव होता है। ज्ञान कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जो बाहर से भीतर डाली जा सके। ज्ञान जीवन की उस धारा का नाम है, जो भीतर से बाहर की ओर आती है। सूचनाएं बाहर से भीतर की ओर आती हैं, ज्ञान भीतर से बाहर की ओर आता है। इसलिए कोई विद्यालय, कोई विद्यापीठ ज्ञान नहीं दे सकता; सूचनाएं दे सकता है, इनफरमेशन्स दे सकता है। कोई शास्त्र, कोई गुरु ज्ञान नहीं दे सकता, सूचनाएं दे सकता है। जो ज्ञान दिया जा सकता है, वह ज्ञान नहीं होगा, इस मौलिक बात को ठीक से खयाल में ले लें।

ज्ञान आत्मा का स्वभाव है। उसे लेकर ही आप पैदा हुए हैं, जैसे बीज में वृक्ष छिपा हो—वैसे ज्ञान आपमें छिपा है। इसलिए ज्ञान को पाने के लिए कुछ और नहीं करना, सिर्फ बीज को तोड़ना है। बीज मिट्टी में खो जाए, मिट जाये, तो ज्ञान का अंकुरण शुरू हो जायेगा।

ज्ञान को हम लेकर ही पैदा होते हैं। ज्ञान हमारे होने की आंतरिक स्थिति है। जो बीज की खोल है, वह बाधा है। इसलिए ज्ञान को पाने की प्रक्रिया नकारात्मक है, निगेटिव है। कुछ तोड़ना है, कुछ पाना नहीं है; कुछ मिटाना है, कुछ बनाना नहीं है, कुछ गिराना है, कुछ निर्मित नहीं करना है। अस्मिता टूट जाये, 'मैं' का भाव टूट जाए, ज्ञान का जन्म हो जाता है।

इसलिए महावीर ने कहा है : अहंकार के अतिरिक्त और कोई अज्ञान नहीं। और जिस ज्ञान को हम बाहर से भीतर ले जाते हैं, वह भी हमारे अहंकार को ही मजबूत करता है। अहंकार टूटना चाहिये; उल्टा मजबूत होता है। जितना हम जानने लगते हैं, जितना हमें खयाल आता है कि मैं जान गया, उतना ही 'मैं' मजबूत हो जाता है। जिसे हम ज्ञान कहते हैं, वह हमारे अहंकार का भोजन बन जाता है। महावीर जिसे ज्ञान कहते हैं, वह अहंकार की मृत्यु पर घटित होता है। इस फर्क को ठीक-से समझ लेना जरूरी है। और हमारे 'मैं' की कोई सीमा नहीं है। हम कहते हैं कि 'परमात्मा असीम है', हम कहते हैं कि 'आत्मा असीम है,' हम कहते हैं, 'सत्य असीम है', लेकिन वे सब सुने हुए शब्द हैं। हमारी अपनी अनुभव की तो बात इतनी ही है कि 'अहंकार असीम है' और अहंकार असत्य है।

मैंने सुना है, जनरल दीगाल एक रात अपने बिस्तर पर सोये हैं। मैडम दीगाल ने आधी रात कहा, 'माई गाड, इट इज सो कोल्ड—हे भगवान, रात बहुत सर्द है।' दीगाल ने करवट बदली और कहा, 'मैडम, इन बेड यू कैन काल मी चार्ल्स—रात बिस्तर में तुम मुझे चार्ल्स कहकर बुला सकती हो।'

पत्नी कह रही है, 'हे भगवान, रात बड़ी सर्द है', और दीगाल ने समझा कि 'हे भगवान' पत्नी उनसे कह रही है !

अहंकार असीम है।

मैंने सुना है यह भी कि जनरल दीगाल ने एक बार अमरीका के प्रेसिडेंट जान्सन को कहा कि फ्रांस को बचाने के लिए परमात्मा से मुझे सीधे आदेश प्राप्त हुए थे; 'आई रिसीव्ड डाइरेक्ट आर्डर फ्राम दि डिवाइन टु सेव फ्रांस।' जान्सन ने कहा, 'च्सटरेंज, बिकाज आई डोंट रिमेंबर टु हैव गिवन एनी आर्डर्स टु यू ! मैंने कभी कोई आज्ञाएं तुम्हें भेजी नहीं!'

हर आदमी अपने अहंकार में बड़ा विस्तीर्ण है, बड़ा असीम है। एक ही असीम तत्व हम जानते हैं; वह है अस्मिता, वह है अहंकार, और उससे बड़ा झूठ कुछ भी नहीं है; क्योंकि मनुष्य के जो होने की जो शुद्धता है, वहां 'मैं' का कभी कोई अनुभव नहीं होता। जितना अशुद्ध होता है मनुष्य, उतना ही 'मैं' का अनुभव होता है। जैसे-जैसे शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे 'मैं' तिरोहित होता चला जाता है। परम शुद्धि की अवस्था में 'मैं' बिलकुल भी नहीं बचता। जैसे सोने से कचरा जल जाता है अग्नि में, वैसा ही जीवन से अहंकार जल जाता है। अहंकार की खोल है बीज के चारों तरफ, अकुंर भीतर

छिपा है।

इसका यह मतलब नहीं कि अहंकार व्यर्थ ही है; बीज की खोल भी सार्थक है। क्योंकि वह जो भीतर अंकुर छिपा है; वह, अगर बीज की खोल न हो तो हो भी नहीं सकता। इसलिए बीज की खोल जरूरी है एक सीमा तक, क्योंकि रक्षा करती है, बचाती है। और एक सीमा तक जो रक्षा करती है, वही फिर बाधा बन जाती है। फिर अगर खोल इनकार कर दे टूटने से, मिटने से तो भी बीज मर जायेगा।

तो अहंकार बिलकुल जरूरी है जीवन के बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए। जो बच्चा बिना अहंकार के पैदा हो जाये, वह बच नहीं सकेगा, क्योंकि जीवन संघर्ष है। उस संघर्ष में 'मैं' का भाव चाहिए। अगर 'मैं' का कोई भाव न हो तो वह मिट जायेगा। उसे दूसरे 'मैं' मिटा देंगे। उसे 'मैं' चाहिये, यह प्राथमिक जरूरत है। लेकिन एक सीमा पर यह 'मैं' इतना मजबूत हो जाये, कि जब इसे छोड़ने का क्षण आए तब भी हम छोड़ न सकें, तो खतरा हो गया। फिर जो सीढ़ी थी, वह बाधा बन गयी, फिर जिसका सहारा लिया था, वह गुलामी हो गई।

अहंकार जरूरी है प्राथमिक चरण में, और अंतिम चरण में टूट जाना जरूरी है। इसलिए जैसे ही बच्चा पैदा होगा, हम उसे अहंकार सिखाना शुरू करते हैं। लेकिन अगर कोई मरते वक्त भी अहंकार में ही मर जाये, तो बीज खोल में ही मर गया, अंकुरित नहीं हो पाया, और न उस अंकुर ने—उसने आकाश जाना ही न सूर्य का प्रकाश जाना। वह अंकुर छिपा-छिपा अंधा अंधेरे में ही मर गया। वह अवसर खो गया।

जन्म के साथ तो अहंकार जरूरी है, मृत्यु के पहले खो जाना जरूरी है। और जिस व्यक्ति का अहंकार मृत्यु के पहले खो जाता है, उस की मृत्यु, महावीर कहते हैं, मोक्ष बन जाती है।

मरते हम सब हैं। अगर अहंकार के साथ मरते हैं, तो नये जीवन में फिर प्रवेश करना होगा, क्योंकि जीवन से अभी परिचय ही नहीं हो पाया। फिर नया जीवन, ताकि जीवन से हम परिचित हो सकें। अगर अहंकार के साथ ही हम मर गये, खोल के साथ ही मर गये तो फिर हमें बीज में जन्म लेना पड़ेँगा। अगर खोल टूट गई और खुला आकाश मोक्ष, मुक्ति का हमें अनुभव हो गया, और जीवन खोल से मुक्त होकर आकाश की तरफ उड़ने लगा, तो फिर दूसरे जन्म की कोई जरूरत न रह जायेगी। शिक्षण पूरा हो गया; अवसर का लाभ उठा लिया गया; जो हम हो सकते थे, हो गये; जो होना हमारी नियति थी, वह पूर्ण हो गई; अर्थ, अभिप्राय, सिद्धि उपलब्ध हो गई। फिर दूसरे जन्म की कोई भी जरूरत नहीं।

अहंकार मर जाये मृत्यु के पहले, तो मोक्ष उपलब्ध हो जाता है।

अब हम सूत्र को लें।

क्योंकि महावीर कहते हैं, 'मुमुक्षु-आत्मा ज्ञान से जीवादिक पदार्थों को जानता है।'

228

□

मुमुक्षा के चार बीज

दो बातें : तो एक 'मुमुक्षु-आत्मा' को समझ लेना जरूरी है। दो तरह के लोग हैं : एक जो कोरी जिज्ञासा करते रहते हैं। उस जिज्ञासा के पीछे कोई प्राण नहीं होता। वे कुछ करना नहीं चाहते, वे सिर्फ पूछते रहते हैं। पूछकर जान भी लें तो उनके जीवन में कोई अंतर नहीं आता, सिर्फ जानकारी बढ़ जाती है। वे जो भी इकट्ठा करते हैं, स्मृति में इकट्ठा करते हैं। उनका जीवन उससे रूपांतरित नहीं होता। ऐसी आत्माओं को महावीर ने जिज्ञासु आत्माएं कहा है।

जिज्ञासा शुभ है, बुरी नहीं है। लेकिन सिर्फ जिज्ञासा आत्मघातक है। एक आदमी पूछता ही रहे, पूछता ही रहे और इकट्ठा करता रहे जन्मों-जन्मों तक, तो भी कोई रूपांतरण नहीं होगा। और आनंद का कोई अनुभव जानकारी इकच्ठठी करने से नहीं होता। हां जानकारी से सिर्फ इतना ही हो सकता है कि वह आदमी जानकारी के अहंकार से और भी मूर्छित हो जाये।

इसलिए पंडित अज्ञानियों से भी ज्यादा गहन अंधकार में भटक जाते हैं। ज्ञान का अहंकार, इस जगत में बड़े-से-बड़ा अहंकार है; धन का अहंकार भी उतना बड़ा नहीं है। इसलिए ज्ञान का अहंकार बचाने के लिए आदमी धन भी छोड़ सकता है, यश भी छोड़ सकता है, पद भी छोड़ सकता है। सब छोड़ सकता है, लेकिन ज्ञान का अहंकार अगर बच जाये तो सब छोड़ने को राजी है।

इस मुल्क में ब्राह्मणों के साथ ऐसा हुआ है। ब्राह्मण के पास न तो धन था और न पद था, लेकिन सम्राट भी उसके पैर छूते थे। ज्ञान का अहंकार मजबूत था। धनी भी उसके पैर छूते थे। धनी भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने निर्धन हैं, और सम्राट भी अनुभव करते थे कि हम ब्राह्मण के सामने शक्तिहीन हैं। तो ब्राह्मण गरीब रहकर भी प्रसन्न था; दीन रहकर भी प्रसन्न था; झोपड़े में रहकर भी प्रसन्न था। इसलिए भारत में कोई क्रांति नहीं हो सकी। क्योंकि क्रांति हमेशा ब्राह्मणों के द्वारा होती है। भारत के ब्राह्मण बड़े संतुष्ट थे। कोई क्रांति का उपाय नहीं था। शूद्र क्रांति नहीं करते, क्योंकि क्रांति का खयाल ही उनको आता है, जिनके पास बड़ी बौद्धिक बेचैनी होती है।

मार्क्स ब्राह्मण है, लेनिन ब्राह्मण है, ट्राटस्की ब्राह्मण है, माओ ब्राह्मण है। ये सब इंटेलेक्चुअल्स हैं। ये सब बुद्धिवादी लोग हैं। भारत में माओ और मार्क्स और लेनिन और ट्राटस्की पैदा नहीं हो सके, क्योंकि भारत का सम्राट और धनी भी ब्राह्मण के चरण छू रहा था। व्यवस्था इतनी प्रीतिकर थी, ब्राह्मण के अहंकार को इतनी पोषक थी कि क्रांति का कोई सवाल ही नहीं था। रूस में भी क्रांति होनी बहुत मुश्किल है, क्योंकि जो भारत ने किया था वही रूस कर रहा है। रूस में बुद्धिजीवी का बहुत आदर है। यूनीवर्सिटी का प्रोफेसर, लेखक, कवि, संगीतज्ञ परम आदृत हैं। उनके आदर की कोई कमी नहीं है। और जब तक वह आदृत हैं, तब तक कोई उपद्रव नहीं हो सकता।

ज्ञान का अहंकार सूच्मतम है। और महावीर के हिसाब से जिज्ञासा, मात्र कोरी जिज्ञासा, सिर्फ आपको अहंकार से भर देगी, इसलिए मुमुक्षा चाहिए। जिज्ञासा काफी नहीं है। मुमुक्षा का अर्थ है कि मैं जानने में उत्सुक नहीं हूं। और अगर मैं जानना भी चाहता हूं, तो अपने को रूपांतरित करने के लिए जानना चाहता हूं। जानना मेरे लिए उपाय है, लच्य नहीं। जानकर ही मैं राजी नहीं हो जाऊंगा, जानकर मैं अपने को बदलना चाहूंगा। जीवन में मुझे रूपांतरण करना है, वह मेरा लच्य है। जीवन की शुद्धि लानी है, मुक्ति लानी है, वह मेरा लच्य है। जीवन में कहीं कोई कलुष न रह जाये, कोई कषाय न रह जाये, जीवन में कोई बंधन न रह जाये, जीवन में कुछ दुख का कांटा न रह जाये, वह मेरा लच्य है। और जानना चाहता हूं तो सिर्फ इसलिए जानना चाहता हूं कि कैसे यह हो सके। ज्ञान साधना है। जिज्ञासु के लिए ज्ञान साध्य है; मुमुक्षु के लिए ज्ञान साधन है, मुक्ति लच्य है।

बुद्ध का उल्लेख कीमती है। बुद्ध निरंतर कहते थे, एक आदमी को तीर लगा और वह गिर पड़ा। और वह बेहोश होने के करीब है। और गांव के लोग इकच्ठठे हो गये। वे उसका तीर खींचना चाहते हैं। बुद्ध भी उस गांव से गुजरते हैं। वे भी वहां पहुंच गये। लेकिन वह आदमी कहता है, 'पहले तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाये कि तीर किसने मारा? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो

पता हो जाए कि तीर किस दिशा से आया ? तीर निकालने के पहले मुझे यह तो पता हो जाये कि तीर विषाक्त है या नहीं ?' बुद्ध ने कहा, 'पागल, तीर को पहले निकल जाने दे, फिर तू सब जिज्ञासाएं कर लेना। क्योंकि तेरी जिज्ञासाएं इतनी लम्बी हैं कि अगर उनको तृप्त करने की कोशिश की जाए तो हो सकता है, इसके पहले कि जिज्ञासाएं पूरी हों, तेरे जीवन का दिया बुझ जाए!'

फिर तो बुद्ध ने इस घटना को अपना आधार बना लिया। फिर तो वे लोगों से कहते थे, 'मत पूछो कि ईश्वर क्या है ? मत पूछो कि आत्मा क्या है ? सिर्फ इतना ही पूछो कि दुख से कैसे निवृत्ति हो, तीर से कैसे छुटकारा हो ?' जीवन बिंधा है तीरों से, जीवन जल रहा है प्रतिपल, और हम जिज्ञासाएं कर रहे हैं बचकानी ! लगती हैं बड़ी तात्विक; परमात्मा की बातें बड़ी तात्विक लगती हैं, लेकिन बुद्ध कहते हैं, जरा भी तात्विक नहीं हैं। तत्व की बात तो इतनी है कि तुम दुखी हो। तुम क्यों दुखी हो, और कैसे दुख का निवारण हो जाये, तत्व की बात तो इतनी है कि तुम कारागृह में पड़े हो। कहां है द्वार, कहां है चाबी, कि तुम कारागृह के बाहर हो जाओ। कैसे जीवन मुक्त हो सकें उस उपद्रव से, जिसमें हम घिरे हैं, जिस पीड़ा और संताप में हम पड़े हैं, कैसे इस गर्त अंधेरे से जीवन प्रकाश में आ सके, वही बात तात्विक है।

तो मुमुक्षु और जिज्ञासु में एक बुनियादी फर्क है, और वह कीमती है। क्योंकि अगर जिज्ञासा के रास्ते पर कोई चलता रहे तो दर्शन में प्रवेश कर जायेगा—फिलासफी में। अगर मुमुक्षा के रास्ते पर कोई चले तो धर्म में प्रवेश करेगा, फिलासफी में नहीं। धर्म बहुत व्यावहारिक है, वास्तविक है, वैज्ञानिक है। जो वास्तविक है उसे कैसे बदला जाये ? व्यर्थ की बकवास से धर्म का कोई संबंध नहीं है।

लेकिन मुमुक्षा होनी चाहिए। आपके प्रश्न बुद्धि से न उठें, जीवन के अनुभव से उठें, तो मुमुक्षा बन जाते हैं। कोई मेरे पास आता है, वह पूछता है, 'ईश्वर है या नहीं?' मैं उससे पूछता हूं कि 'तुम्हारे जीवन के किस अनुभव से प्रश्न उठ रहा है। अगर ईश्वर है तो तुम क्या करोगे, अगर नहीं है तो तुम क्या करोगे ?' वह आदमी कहता है, 'मैं बस जानना चाहता हूं, है या नहीं।'

है, तो भी यह आदमी ऐसा ही रहेगा, जैसा है। नहीं है, तो भी यह ऐसा ही रहेगा, जैसा है।

क्या फर्क पड़ता है, एक आदमी जैन दर्शन में विश्वास करता है, एक आदमी हिंदू दर्शन में विश्वास करता है; एक आदमी इस्लाम में एक आदमी ईसाईउनके दर्शन अलग-अलग हैं, फिलासफी अलग-अलग हैं, लेकिन ये आदमी बिलकुल एक जैसे हैं। किसी को भी गाली दो, वह क्रोध करेगा, भला ईश्वर हो उसके दर्शन में या न हो, भला वह मानता हो कि आत्मा बचती है मृत्यु के बाद या न मानता हो, भला वह मानता हो कि पुनर्जन्म होता है या नहीं होता। गाली से परीक्षा हो जायेगी कि ये चारों आदमी एक जैसे हैं।

क्या फर्क है हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन में?

फर्क बातचीत में होगा, अंतस्तल में जरा भी फर्क नहीं है। आदमी को भीतर खोदो, बिलकुल एक जैसा है। बस, ऊपर चमड़ी-चमड़ी के फर्क हैं।

मुमुक्षा का अर्थ है कि जो मैं जानना चाहता हूं, उससे मैं जीवन को बदलने का काम लूंगा; वह मेरे लिए एक उपकरण होगा, उससे मैं नया आदमी बनूंगा। अन्यथा ज्ञान भी मूर्छा बन जायेगा, शराब की तरह हो जायेगा। बहुत लोग ज्ञान का उपयोग शराब की तरह ही करते हैं। उसमें अपने को भुलाये रखते हैं। शराब का मतलब ही इतना है, जिसमें हम अपने को भुला सकें, और जिसमें भुलाकर अकड़ पैदा हो जाये। तो पंडितों की अकड़ आप देखते हैं ! ब्राह्मण जैसी अकड़ दुनिया में कहीं देखी नहीं जा सकती। और अकड़ इतनी स्वाभाविक हो गई है, खून में मिल गई है कि उसे पता भी नहीं चलता कि अकड़ है।

जितने हम मूर्छित होते हैं, उतना अहंकार मजबूत होता है।

सुना है मैंने, एक दिन मुल्ला नसरुद्दीन गया शराबघर में। एक गिलास शराब उसने ब

ERROR: syntaxerror
OFFENDING COMMAND: %ztokenexec_continue

STACK:

-filestream-